संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० २२

आचार्य शुभचन्द्र विरचित

श्रेणिक चरित्र

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

श्रेणिक चरित्र

कृतिकार : आचार्य शुभचन्द्र
अनुवादक : अज्ञात
संस्करण : २८ जून, २०१७ (आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत्
आवृत्ति : २५४३) ११००
वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान
जैन विद्यापीठ
भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२
ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक
विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स
प्लाट नं. ४५, सेक्टर एफ, इन्डस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा, भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम

लेने का नाम ही नहीं लेते। यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

भगवान् महावीर स्वामी के समय में उन्हीं के समवसरण में दिव्य देशना सुनने वाले प्रथम श्रावक राजा श्रेणिक का जीवन चरित्र इस ग्रन्थ में है। भट्टारक शुभचन्द्र विरचित यह ग्रन्थ सर्व जनोपयोगी जैनधर्म की प्राथमिक भूमिका को जानने वाले अध्येयताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है। या यूँ कहें स्वाध्याय की शुरूआत सर्वप्रथम सामान्य व्यक्ति को इसी ग्रन्थ से करना चाहिए। इस ग्रन्थ का मूल पाठ के साथ अनुवाद पहले से उपलब्ध था। उसी को ज्यों का त्यों रखा गया है। हिन्दी अनुवादकर्ता के विषय में भी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं हुई। अपनी विशेषताओं के कारण ही इस ग्रन्थ को संयम स्वर्ण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

आचार्य शुभचन्द्र और उनका श्रेणिक चरित्र

भट्टारक शुभचन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने भट्टारक ज्ञानभूषण और विजयकीर्ति इन दोनों के शासनकाल का दर्शन किया था। इनका जन्म वि० सं० १५३०-१५४० के मध्य में कभी हुआ होगा। शैशव से इन्होंने संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया था। व्याकरण, छन्द, काव्य, न्याय आदि विषयों का पाण्डित्य सहज में ही प्राप्त कर लिया था। त्रिविधविद्याधर और षट्भाषाकविचक्रवर्ती ये इनकी उपाधियाँ थीं। इन्होंने अनेक देशों में विहार किया था। गौड, कलिंग, कर्नाटक, तैलव, पूर्व, गुर्जर, मालव आदि देशों के वादियों को पराजित किया था। इनका धर्मोपदेश सुनने के लिए जनता टूट पड़ती थी। इन्होंने अन्य भट्टारकों के समान कितने ही प्रतिष्ठा-समारोहों में भी सम्मिलित होकर धर्म की प्रभावना की थी। उदयपुर, सागवाड़ा, डूंगरपुर, जयपुर आदि स्थानों के मन्दिरों में इनके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

आचार्य शुभचन्द्र की शिष्य परम्परा में सकलभूषण, वर्णी क्षेमचन्द्र, सुमतिकीर्ति, श्रीभूषण आदि के नामोल्लेख मिलते हैं। इनकी मृत्यु के पश्चात् सुमतिकीर्ति इनके पट्ट पर आसीन हुए थे।

स्थितिकाल

डॉ. जोहरापुरकर ने शुभचन्द्र का भट्टारककाल वि० सं० १५७३-१६१३ माना है। शुभचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् सुमतिकीर्ति उनके पद पर आसीन हुए हैं और सुमतिकीर्ति का समय वि० सं० १६२२ है, अतः भट्टारक शुभचन्द्र का जीवनकाल वि० सं० १५३५-१६२० होना चाहिए। ४० वर्षों तक भट्टारक पद पर आसीन रहकर शुभचन्द्र ने साहित्य और संस्कृति की सेवा की है। इन्होंने त्रिभुवनकीर्ति के आग्रह से वि० सं० १५७३ की आश्विन शुक्ला पञ्चमी को अमृतचन्द्रकृत समयसार कलशों पर अध्यात्मतरंगिणी नामक टीका लिखी है। संवत् १५९० में ईडर नगर के हूंमड़जातीय श्रावकों ने ब्रह्मचारी तेजपाल के द्वारा पुण्यास्त्रवकथाकोश की प्रति लिखवाकर इन्हें भेंट की थी। संवत् १५८१ में इन्हीं के उपदेश से हूंमड़जातीय श्रावक साह, हीरा, राजू आदि ने प्रतिष्ठामहोत्सव सम्पन्न किये थे।

''संवत् १५८१ वर्षे पोष वदी १३ शुक्रवार श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टा० श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे श्री भट्टा० विजयकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्रगुरुपदेशात् हूंबड़जाति साह हीरा भा० राजू सुत सं० तारा द्वि. भार्या पोई सुत सं० मा का भार्या हीरा दे०...भा० नारंग दे० भा० रत्नपाल भा० विराला दे सुत रखभदास नित्यं प्रणमति।''

संवत् १५९९ में डूंगरपुर के आदिनाथ चैत्यालय में इन्हीं के उपदेश से अंगप्रज्ञप्ति की प्रतिलिपि करवाकर विराजमान की गयी थी। संवत् १६०७ की वैशाख कृष्णा तृतीया को एक पंच परमेष्ठी की मूर्ति स्थापित की थी। संवत् १६०८ की भाद्रपद द्वितीया को सागवाड़ा में 'पाण्डवपुराण' की रचना पूर्ण की थी। संवत् १६११ में करकण्डुचरित और संवत् १६१३ में कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका लिखी। इस प्रकार आचार्य शुभचन्द्र का जीवनकाल १५३५-१६२० तक आता है।

रचनाएँ

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एवं विद्याओं में पारंगत थे। ग्रन्थ-परिमाण और मूल्य की दृष्टि से इनकी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। संघ व्यवस्था, धर्मोपदेश एवं आत्मसाधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हें मिलता था, उसका सदुपयोग इन्होंने ग्रन्थरचना में किया है। वि० सं० १६०८ में इन्होंने पाण्डव-पुराण की रचना की है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से अवगत होता है कि इस रचना के पूर्व इनकी २१ कृतियाँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं। संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं।

संस्कृत-रचनाएँ

१. चन्द्रप्रभचरित
२. करकण्डुचरित
३. कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका
४. चन्दनाचरित
५. जीवन्धरचरित
६. पाण्डवपुराण
७. श्रेणिकचरित्र
८. सज्जनचित्तबल्लभ
९. पार्श्वनाथकाव्यपञ्जिका
१०. प्राकृतलक्षण
११. अध्यात्मतरंगिणी
१२. अम्बिकाकल्प
१३. अष्टाह्निकाकथा
१४. कर्मदहनपूजा
१५. चन्दनषष्ठीव्रतपूजा
१६. गणधरवलयपूजा
१७. चारित्रशुद्धिविधान
१८. तीसचौबीसीपूजा
१९. पञ्चकल्याणकपूजा
२०. पल्लीव्रतोद्यापन
२१. तेरहद्वीपपूजा
२२. पुष्पाञ्जलिव्रतपूजा
२३. सार्द्धद्वयद्वीपपूजा
२४. सिद्धचक्रपूजा

हिन्दी रचनाएँ

१. महावीरछन्द
३. गुरुछन्द

२. विजयकीर्तिछन्द
४. नेमिनाथछन्द
५. तत्त्वसारदूहा
७. क्षेत्रपालगीत
६. अष्टाह्निकागीत

इन रचनाओं में कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका, सज्जनचित्तबल्लभ, अम्बिकाकल्प, गणधरवलयपूजा, चन्दनषष्ठीव्रतपूजा, तेरहद्वीपपूजा, पंचकल्याणकपूजा, पुष्पाञ्जलिव्रतपूजा, सार्द्धद्वयद्वीपपूजा एवं सिद्धचक्रपूजा आदि संवत् १६०८ के पश्चात् अर्थात् पाण्डवपुराण के बाद की कृतियाँ हैं।

१. करकण्डुचरित–करकण्डु का जीवन इस काव्य की मुख्य कथावस्तु है और यह १५ सर्गों में विभक्त है। वि० सं० १६११ में जवाछपुर के आदिनाथ चैत्यालय में इस ग्रन्थ की रचना पूर्ण हुई है। इस ग्रन्थ के सहायक शुभचन्द्र के प्रमुख शिष्य सकलभूषण भट्टारक थे। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है–

श्रीमूलसंघे कृति नंदिसंघे गच्छे बलात्कार इदं चरित्रं।
पूजाफलेद्धं करकण्डुराज्ञो भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिः॥
व्याष्टे विक्रमतः शते समहते चैकादशाब्दाधिके।
भाद्रे मासि समुज्वले युगतिथौ खड्ग जावाछपुरे॥
श्रीमच्छ्रीवृषभेश्वरस्य सदने चक्रे चरित्रं त्विदं।
राज्ञः श्रीशुभचन्द्रसूरियतिपदचंपाधिपस्याद् ध्रुवं॥
श्रीमत्सकलभूषेण पुराणे पाण्डवे कृतं।
साहायं येन तेनाऽत्र तदाक्रारिस्वसिद्धये॥

२. अध्यात्मतरंगिणी—इस ग्रन्थ का आधार आचार्य अमृतचन्द्र के समयसार के कलश हैं। इस आध्यात्मिक कृति में निश्चय और व्यवहार नय की अपेक्षा आत्मतत्त्व का वर्णन किया गया है। यह रचना एक प्रकार से समयसार पर आधृत टीका है। इसका रचनाकाल वि० सं० १५७३ है।

३. कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका—प्राकृत भाषा में लिखित स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की यह टीका है। इस ग्रन्थ को आचार्य शुभचन्द्र की संस्कृत टीका ने विशेष लोकप्रिय बनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६०० माघ शुक्ला के एकादशी के दिन हिसार नगर में हुई है। ग्रन्थ की प्रशस्ति में बताया है–

श्रीमत् विक्रमभूपतेः परमिते वर्षे शते षोडशे
माघे मासिदशाग्रवह्निमहिते ख्याते दशम्यां तिथौ।

श्रीमच्छ्रीमहीसार-सार नगरे चैत्यालये श्रीपुरोः
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा नन्दतु॥

यह टीका शुभचन्द्र के शिष्य वर्णी खीमचन्द्र के आग्रह से लिखी गयी है। टीका सरल और ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करती है।

जीवन्धरचरित—कुमार जीवन्धर का जीवनवृत्त संस्कृत के कवियों को विशेष प्रिय रहा है। शुभचन्द्र ने पुण्यपुरुष जीवन्धर के आख्यान को ग्रहण कर १३ सर्ग प्रमाण यह रचना लिखी है। इसकी समाप्ति वि० सं० १६०३ में हुई है।

चन्द्रप्रभचरित—अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के पावन चरित को १२ सर्गों में निबद्ध किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में आचार्य ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि न तो छन्द-अलंकार का परिज्ञान है, न काव्यशास्त्र का, न जैनेन्द्र व्याकरण का, न कलाप का और न शाकटायन का। त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार जैसे महान ग्रन्थों का भी अध्ययन नहीं किया है। यह रचना मैं भक्तिवश लिख रहा हूँ।

चन्दनाचरित-यह एक कथाकाव्य है। इसमें सती चन्दना के पावन एवं उज्ज्वल जीवन का चित्रण किया गया है। काव्य की कथावस्तु पाँच सर्गों में विभक्त है। इसकी रचना बागड़ प्रदेश के डूंगरपुर नगर में हुई है।

शास्त्राण्यनेकान्यवगाह्य कृत्वा पुराणसल्लक्षणकानि भूयः।
सच्चंदनाचारुचरित्रमेतत् चकार च श्रीशुभचन्द्रदेवः॥

पाण्डवपुराण—जैन साहित्य में कौरव और पाण्डवों की कथा का आरम्भ जिनसेन प्रथम के हरिवंशपुराण से होता है। स्वतन्त्ररूप में इस चरित का प्रणयन देवप्रभ सूरि ने वि० सं० १२७० में किया है। पश्चात् आचार्य शुभचन्द्र ने वि० सं० १६०८ में इस चरित की रचना की है। कथा के प्रारम्भ में भोगभूमिकाल में होने वाले १४ कुलकरों के उत्पत्तिक्रम के कथन के पश्चात् बताया है कि ऋषभदेव ने इक्ष्वाकु, कौरव, हरि और नाथ नामक चार क्षत्रियगोत्र स्थापित किये। कुरुवंश की परम्परा में सोमप्रभ, जयकुमार, अनन्तवीर्य, कुरुचन्द्र, शुभंकर और द्युतिकर आदि राजाओं के पश्चात् विश्वसेन राजा के पुत्र शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। इसी परम्परा में भगवान् कुन्थुनाथ और अरनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुए।

यह कथा पच्चीस पर्वों में विभक्त है। २५वें पर्व में युद्ध के पश्चात् पाण्डव दीक्षा ग्रहण करते हैं और दुर्धर तपश्चरण के अवसर पर उन्हें उपसर्गादि सहन करने पड़ते हैं। वे अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व आदि १२ भावनाओं का चिन्तन कर कर्मों की निर्जरा करते हैं। फलतः युधिष्ठिर,

भीम और अर्जुन को मुक्ति लाभ होता है एवं नकुल और सहदेव को सर्वार्थसिद्धि लाभ होता है।

आचार्य ने धर्म का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है–

धर्माद्वैरिजनस्य भेदनमहो धर्माच्छुभं सत्प्रभम्
धर्माद्‌बन्धुसमागमः सुमहिमालाभः सुधर्मात्सुखम्।
धर्मात्कोमलकप्रकायसुकला धर्मात्सुताः समताः
धर्माच्छ्रीः क्रियतां सदा बुधजना ज्ञात्वेति धर्मः[१] श्रियैः॥

पूजा ग्रन्थों में सतत् विषयों की पूजाएँ निबद्ध हैं। हिन्दी रचनाओं में महावीर छन्द में भगवान् महावीर के सम्बन्ध में २७ पद्यों में स्तवन हैं। विजयकीर्ति छन्द एक ऐतिहासिक कृति है। यह कवि के गुरु विजयकीर्ति की प्रशंसा में लिखा गया है। इसमें २९ पद्य हैं। यह एक रूपककाव्य है। इसके नायक विजयकीर्ति हैं और प्रतिनायक कामदेव। इस रूपककाव्य में अध्यात्मशक्ति की विजय दिखलायी गयी है। गुरुछन्द में ११ पद्य हैं और भट्टारक विजयकीर्ति का गुणानुवाद किया गया है। नेमिनाथ छन्द में तीर्थंकर नेमिनाथ के पावन जीवन का चित्रण २५ पद्यों में किया है। तत्त्वसारदूहा में ९१ दोहे एवं चौपाइयाँ हैं। सात तत्त्वों का वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना दुलहा नामक श्रावक के अनुरोध से की गयी है।

श्रेणिक पुराण—श्रेणिक पुराण के कथानायक महाराज श्रेणिक हैं। जैन क्षत्रिय जाति में महाराज श्रेणिक का परम आदर है। जैनियों का बच्चा-बच्चा महाराज श्रेणिक के गुणों से परिचित है और उनके गुणों के स्मरण से अपनी आत्मा को मानता है यहाँ तक कि जैनियों के बड़े-बड़े आचार्यों का भी यह मत है कि यदि महाराज श्रेणिक इस भारतवर्ष में जन्म न लेते तो इस कलिकाल पंचमकाल में जैनधर्म का नामोनिशान भी सुनना दुर्लभ हो जाता; क्योंकि वर्तमान में इस भरतक्षेत्र में कोई सर्वज्ञ रहा नहीं। जितना जैन सिद्धान्त है, उनके जानने का उपाय केवल आगम रह गया है और उनका प्रकाश भगवान् महावीर अथवा गणधर गौतम से अनेक विषयों में गूढ़-गूढ़ प्रश्न कर महाराज श्रेणिक की कृपा से हुआ है।

महाराज श्रेणिक कब हुए इस विषय में सिवाय इनके पुराण को छोड़कर कोई पुष्ट प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता। जैन सिद्धान्त के आधार से भगवान् महावीर को निर्वाण गये २५४२ वर्ष हुए हैं और भगवान् महावीर के समय में महाराज श्रेणिक थे। इसलिए इस रीति से भगवान् महावीर और महाराज श्रेणिक समकालीन सिद्ध होते हैं। कहीं-कहीं पर यह किंवदंती सुनने में आती है कि राजा श्रेणिक चन्द्रगुप्त के दादे व परदादे थे।

अनुक्रमणिका

प्रथम सर्ग	:	महाराज उपश्रेणिक को राज्य-प्राप्ति का वर्णन	१
द्वितीय सर्ग	:	महाराज उपश्रेणिक के नगर-प्रवेश का वर्णन	१३
तृतीय सर्ग	:	कुमार श्रेणिक का राजगृह नगर से निष्कासन का वर्णन	२५
चतुर्थ सर्ग	:	श्रेणिक का कुमारी नन्दश्री के साथ विवाह-वर्णन	४४
पंचम सर्ग	:	श्रेणिक को राज्य-प्राप्ति का वर्णन	५९
षष्ठ सर्ग	:	अभयकुमार का राजगृह में आगमन-वर्णन	७०
सप्तम सर्ग	:	अभयकुमार की उत्तम बुद्धि का वर्णन	९५
अष्टम सर्ग	:	चेलना के साथ विवाह का वर्णन	१०७
नवम सर्ग	:	महाराज श्रेणिक को मुनिराज के समागम का वर्णन	१२०
दसम सर्ग	:	मनोगुप्ति, वचनगुप्ति दोनों गुप्तियों की कथा-वर्णन	१४४
एकादश सर्ग	:	काय गुप्ति कथा वर्णन	१६६
द्वादश सर्ग	:	महाराज श्रेणिक को क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का वर्णन	२०५
त्रयोदश सर्ग	:	देव द्वारा अतिशय प्राप्ति का वर्णन	२२२
चतुर्दश सर्ग	:	श्रेणिक चेलना आदि की गति का वर्णन	२३२
पंचदश सर्ग	:	भविष्यत्काल में होने वाले भगवान पद्मनाभ के पंच-कल्याणक का वर्णन	२४५

ॐ

आचार्य शुभचन्द्र विरचित

श्रेणिक चरित्र

प्रथमः सर्गः

श्री वर्द्धमानमानन्दं नौमिनानागुणाकरम्। विशुद्धध्यान दीप्तार्चिर्हुतकर्मसमुच्चयम् ॥१॥
बाल्येऽपि मुनिसन्देह निर्नाशाद्यो जिनेश्वरः। सन्मतित्वं समापन्नः सन्मत्याख्या समाश्रुतः ॥२॥
अमराहि फणामर्दनाद् महावीर सुनामभाक्। बाल्ययोर्बालत्वः प्राप्तो वीराणां वीरतांगतः ॥३॥
जरत्तृणमिवाख्यं तं प्राज्यं राज्यं नरेश्वरम्। मत्वा त्यक्त्वाम्भितो दीक्षां यो वीरो विश्ववन्दितः ॥४॥
विकाश्य केवलं लोक्ये चकाशे धर्मसम्पदः। तं दधे हृदये देवं कृतलोकसुमंगलम् ॥५॥
ज्ञान भूषान् जिनान् धर्मतीर्थ नाथादिवान् परान्। शेषान् स्मरामि संसिद्धये विशुद्ध ज्ञान सम्पदः ॥६॥

शुक्लध्यानरूपी देदीप्यमान अग्नि से समस्त कर्मों के समूह को जलाने वाले अनेक गुणों के आकर आनन्द के करने वाले श्री वर्द्धमान तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ। जिस भगवान् ने बाल्यावस्था में ही मुनियों का सन्देह दूर करने से श्रेष्ठ विद्वत्ता को पाकर सन्मति नाम को धारण किया। जिस भगवान् ने कुमारावस्था में ही मायामयी सर्प के मर्दन करने से महावीर नाम को प्राप्त किया और जो शिशु अवस्था में ही अत्यन्त बल को पाकर वीरों के वीर कहलाये। जिस भगवान् ने मनुष्य लोक सम्बन्धी बड़े भारी राज्य को भी, जीर्ण तृण के समान समझ कर छोड़ दिया एवं जो दिगम्बर जिन दीक्षा धारण कर त्रैलोक्य के वन्दनीय हुए तथा जो महावीर भगवान् केवलज्ञान-केवलदर्शन को प्रकाश कर धर्मरूपी सम्पत्ति से शोभित हुए। ऐसे समस्त लोक में आनन्द मंगल करने वाले श्री महावीर भगवान् को मैं (ग्रन्थकार) अपने हृदय कमल में धारण करता हूँ ॥१-५॥

तत्पश्चात् ज्ञानरूपी भूषण के धारक, धर्मरूपी तीर्थ के स्वामी श्री वृषभदेव भगवान् से लेकर पार्श्वनाथ पर्यन्त तीर्थंकरों को भी मैं अपनी इष्ट सिद्धि के लिए इस ग्रन्थ की आदि में नमस्कार करता हूँ ॥६॥

गणाधीशं पराधीशं वृषभादि 'सुशेनकम्'। योगोद्दीपित देहाढ्यं तोष्टवीमीति हिताप्तये ॥७॥
चतुर्गणाश्रितं धारं गौतमं गौतमं स्तुवे। मिथ्यावादीभ पंचास्यं विकाशित जगत्यम् ॥८॥
वो बुध्यन्ते जनाः सर्वं विष्टपे च हिताहितम्। यस्याः प्रसादतो वाणीं तां स्मरामि जिनोद्भवाम् ॥९॥
गुरुवो ये हितोद्युक्ताः सूक्ति सम्पद्विराजिताः। ज्ञानभूषाः प्रभा पुंजाः खंजीकृत मदद्विपाः ॥१०॥
विजये कीर्ति सम्पन्नाः तांस्तां च हितकांक्षिणः। अनमं पुण्य हेमाद्रिमस्तके स्थिर वासिनः ॥११॥
अथात्र भारतेक्षेत्रे भविष्यं तं जिनोत्तमम्। पद्मनाभं प्रभापुंजं वन्दे विघ्नौघशान्तये ॥१२॥
गतेकाले कियन्मात्रे उत्सर्पिण्यामजायत। यः पंचातिशयः प्राप्तः शतेन्द्र सुरपूजितः ॥१३॥
चिर प्ररूढतामस्य वृक्षे वज्रान्यते च यः। लुप्ताखिल जगद्धर्म मार्गे मार्ग मदोत्करे ॥१४॥
उच्छेद्य तामसं लोके लोकान् धर्मेऽन्योजयेत्। यः प्रकाशस्य परं धाम ज्ञानानन्दितविग्रहः ॥१५॥
यः श्रेणिक भवे पूर्वं श्री वीर स्वामिः सन्निधौ। अच्छेद्यत्तरां दीर्घरूढ मिथ्यात्वमञ्जसा ॥१६॥

इनसे भी भिन्न जो ज्ञानरूपी सम्पत्ति के धारी हैं उनको भी नमस्कार करता हूँ तथा ध्यान से देदीप्यमान शरीर के धारी, गणों के स्वामी एवं उत्कृष्ट स्वामी (आदि गणधर) श्री वृषभसेन गुरू को भी मैं अपने हित की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इन चारों गणों से सेवित, धीर, समस्त पृथ्वी तल में श्रेष्ठ, जिनसे मिथ्यावादी लोग डरते हैं और जो तीनों लोक के प्रकाश करने वाले हैं, ऐसे (अन्तिम गणधर) श्री गौतम स्वामी को भी मैं नमस्कार करता हूँ इनके पश्चात् जिस भगवती वाणी के प्रसाद से संसार में जीव समस्त हिताहित को जानते और जो श्री केवली भगवान् के मुख से प्रकट हुई है उस वाणी को भी मैं नमस्कार करता हूँ ॥७-८॥

तत्पश्चात् जो गुरु हितकारी, श्रेष्ठ वचनरूपी सम्पत्ति से शोभित ज्ञानरूपी भूषण के धारक, अत्यन्त तेजस्वी, अहंकाररूपी हस्ती के मर्दन करने वाले हैं, ऐसे कामरूपी वैरियों के विजय से कीर्ति को प्राप्त करने वाले, हितैषी और पुण्यरूपी मेरु पर्वत के शिखर पर निवास करने वाले अर्थात् अत्यन्त पुण्यात्मा गुरुओं को भी मैं नमस्कार करता हूँ तथा इस भरतक्षेत्र में आगे होने वाले समस्त तीर्थंकरों में उत्तम अत्यन्त तेजस्वी श्री पद्मनाभ तीर्थंकर को भी मैं समस्त विघ्नों की शान्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥९-१२॥

जो पद्मनाभ भगवान्, उत्सर्पिणी काल के कुछ समय के व्यतीत होने पर, इस भरत क्षेत्र में पाँच प्रकार के अतिशयों सहित, सैकड़ों इन्द्र और देवों से पूजित, उत्पन्न होवेंगे और चिरकाल से विद्यमान पापरूपी वृक्ष के लिए वज्र के समान होंगे तथा चतुर्थ काल के आदि में जब समस्त धर्म-मार्गों का नाश हो जायेगा, अहंकार व्याप्त होगा, उस समय जो भगवान् समस्त जीवों के अज्ञानांधकार को नाशकर, मोक्ष-मार्ग के प्रकाशनपूर्वक धर्म की ओर उन्मुख करेंगे और जिस पद्मनाभ भगवान् ने पहले अपने श्रेणिक भव में (श्रेणिक राजा की पर्याय में) श्री महावीर स्वामी भगवान् के समीप में, अनादि काल से विद्यमान मिथ्यात्व को शीघ्र ही दूर किया ॥१३-१६॥

सम्प्राप्त क्षायिकं रम्यं निर्मलं दोष निग्रहम्। करणानि च संकृत्त्यय: शुद्ध दृग्विमण्डित: ॥१७॥
तीर्थनाथस्य सान्निध्ये तीर्थ कृत्वं बबन्ध य:। अशेष पुण्य शास्तिक्यं त्रैलोक्य क्षोभकारणम् ॥१८॥
श्रेणिकप्रश्नमुद्दिश्य भगवान् गदीद्वच:। हरिराम पुराणार्थ गर्भं ध्वान्त विनाशकम् ॥१९॥
यस्य प्रश्न वशादद्य वर्तन्ते ग्रन्थ राशय:। पुराण-व्रतसंख्यान-सन्दर्भा दर्प हानय: ॥२०॥
महाश्रोता महाज्ञाता वक्ताधर्म परीक्षक:। बभूव श्रेणिको धीमान् भावी तीर्थंकरोऽग्रणी: ॥२१॥
भविष्यत्तीर्थ नाथं तं नत्वा मूर्ध्वा निरन्तरम्। पद्मनाभं प्रवक्ष्येऽहं तत्चरित्रं भवान्वितम् ॥२२॥
क्व चरित्रं क्व मे बुद्धिरनन्त जिनविस्तरम् । असंख्येय भेद सम्भिन्न ज्ञानाच्छादन संग्रह: ॥२३॥
सप्तभुमं महोत्तुंग मारु रुक्षोर्गृहोत्तमम् । खञ्जस्येव प्रशंसास्यान्मामकीनां न संशय: ॥२४॥
वसन्ते कोकिले व्रते काकाश्चापि निरन्तरम् । समयेऽर्य सूरिश्च सदाहं तत्र कोविस्मय: ॥२५॥

अतिशय मनोहर निर्मल समस्त दोषों से रहित क्षायिक सम्यक्त्व को धारण किया और समस्त इन्द्रियों को संकोच कर शुद्ध सम्यग्दर्शन से विभूषित हुए। जिसने भगवान् महावीर स्वामी के सामने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया और समस्त लोक में सर्वथा आश्चर्य करने वाले आस्तिक्य गुण को प्राप्त किया ॥१७-१८॥

जिस पद्मनाभ तीर्थंकर के श्रेणिक अवतार के समय, उनके किये हुए प्रश्न के उत्तर में श्री महावीर स्वामी ने समस्त पापों के नाश करने वाले तथा इस श्रेणिक चरित्र के भी प्रकाश करने वाले वचनों को प्रतिपादन किया और जिस पद्मनाभ भगवान् के जीव, श्रेणिक महाराज के प्रश्न के प्रसाद से, पुराण, व्रत, संख्यान आदि के वर्णन करने वाले, समस्त विवादियों के अभिमान को नाश करने वाले इस समय भी अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। जो श्रेणिक महाराज महाश्रोता, महाज्ञाता, महावक्ता, धर्म की वास्तविक परीक्षा करने वाले, भविष्यत्काल में होने वाले समस्त तीर्थंकरों में प्रथम व मुख्य तीर्थंकर भगवान् होंगे (श्रेणिक महाराज के जीव) श्री पद्मनाभ तीर्थंकर को भी मैं मस्तक झुकाकर नमस्कारपूर्वक उनके संसार सम्बन्धी समस्त चरित्र का वर्णन करता हूँ ॥१९-२२॥

ग्रन्थकार शुभचन्द्राचार्य अपनी लघुता प्रकाश करते हुए कहते हैं कि कहाँ तीर्थंकर का यह चरित्र जिसके विस्तार का अन्त नहीं और कहाँ अनेक प्रकार के आवरणों से ढकी हुई मेरी बुद्धि तथापि जिस प्रकार सप्त मंजिला उत्तम मकान के ऊपर चढ़ने की इच्छा करने वाला पंगु पुरुष प्रशंसा का पात्र होता है, उसी प्रकार इस गम्भीर विस्तृत चरित्र के वर्णन करने से मैं भी प्रशंसा का भाजन होऊँगा इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। यदि कोई विद्वान् मुझे वावदूक अर्थात् अधिक बोलने वाला वाचाल कहे तो भी मझे किसी प्रकार का भय नहीं क्योंकि जिस प्रकार कोयल वसन्त ऋतु में ही बोलती है और शुक सदा ही बोलता रहता है फिर भी शुक का बोलना किसी को आश्चर्य का करने वाला नहीं होता, उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्य परिमित तथा समय पर ही बोलने वाले थे और मैं सदा बोलने वाला हूँ तो भी मेरा बोलना आश्चर्यजनक नहीं ॥२३-२५॥

पुष्पदन्तगते लोके न चकासति तारकाः । अल्पे प्रभावयं किं च चकास्मतदद्दुद्धताः ॥२६॥
मुखराः शब्द शास्त्रज्ञागदन्ति वचनं शुभम् । स्खल जिव्हा न किं तद्वत्पूर्वाचार्यां वयं स्मृताः ॥२७॥
महायानाः समुद्रेऽस्मिन् यान्तिपारं सुखेच्छया।क्षुद्रयानाश्च सर्पन्ति पौर्वाचार्यैर्वयं तथा ॥२८॥
नो विषादो विधातव्यो मयावाक्य प्रबन्धने। पूर्व-सूरि-कृतिं दृष्ट्वा सर्व सूत्रानुसारिणीम् ॥२९॥
महर्द्धि कालयोद्धूतिं विभूतिं वीक्ष्यनिर्धनः। यथा न कुर्वते रोषं सामर्थ्य वृथासहि ॥३०॥
स्वशब्दं कुरुते सिंहो भेकः किन्तु करोति न। पूर्वसूरिः स्वशास्त्रं च तनुतेऽहं तथाप्यधा ॥३१॥
अल्पतर देहोऽहं कुन्थुर्देहीति कथ्यते। पर्वत प्राय देहात्मागजोदेही निरूप्यते ॥३२॥
पुराण-तर्क-काव्यादि शास्त्रज्ञः कविरुच्ययते। सर्व शास्त्रज्ञ एवाहं कवितां गतवांस्तथा ॥३३॥
समस्तज्ञानमुक्तोऽपियतेऽहं च तथाप्यहो। विचक्षति न किं मूकः प्रशस्त वचनातिगः ॥३४॥

जिस प्रकार पुष्पदन्त नक्षत्र के अस्त हो जाने पर अल्प प्रभाव वाले तारागण भी चमकने लगते हैं, उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्यों के सामने मैं कुछ भी जानने वाला नहीं हूँ तो भी इस चरित्र के कहने के लिए मैं उद्धत होकर उद्योग करता हूँ॥२६॥

यद्यपि शब्द-शास्त्र के जानने वाले अधिक बोलने वाले होते हैं तो भी वे वचन शुभ ही बोलते हैं। उसी प्रकार यद्यपि हमारी वाणी स्खलित है तो भी हम शुभ वचन बोलने वाले हैं इसलिए हम पूर्वाचार्यों के समान ही हैं॥२७॥

जिस प्रकार बड़े-बड़े जहाज वाले सुखपूर्वक अभीष्ट स्थान को चले जाते हैं और उनके पीछे-पीछे चलने वाले छोटे जहाज वाले भी सुखपूर्वक अपने इष्ट स्थान को प्राप्त हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार पूर्वाचार्यों के पीछे-पीछे चलने वाले हमको भी इष्टसिद्धि की प्राप्ति होगी॥२८॥

तथा जिस प्रकार दरिद्री पुरुष धनिक लोगों के महलों, उनके उदय तथा उनकी अन्य अनेक विभूतियों को देखकर विषाद नहीं करते, उसी प्रकार सूत्र के अनुसार पूर्वाचार्यों की कृति को देखकर हमको भी वाक्यों की रचना में कभी भी विषाद नहीं करना चाहिए क्योंकि शक्ति के न होने पर ईर्ष्या-द्वेष करना बिना प्रयोजन का है। जिस प्रकार सिंह ही अपने शब्द को कर सकता है परन्तु उस शब्द को मेंढक नहीं कर सकता अर्थात् सिंह के शब्द करने में मेंढक असमर्थ है, उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्यों ने ग्रन्थों की रचना की है तो भी मैं वैसे ग्रन्थों की रचना करने में असमर्थ ही हूँ॥२९-३१॥

जिस प्रकार अत्यन्त छोटे देह का धारक कुंथु जीव भी देहधारी कहा जाता है और पर्वत के समान देह का धारण करने वाला हाथी भी देहधारी कहा जाता है, उसी प्रकार पुराण-न्याय-काव्य आदि शास्त्रों को भली-भाँति जानने वाला भी कवि कहा जाता है और अल्पशास्त्रों का जानने वाला मैं भी कवि कहा गया हूँ। मूक पुरुष भले ही उत्तम न बोलता हो तो भी वह बोलने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार यद्यपि मैं समस्त शास्त्रों के ज्ञान से रहित हूँ तो भी मैं इस चरित्र के वर्णन करने का प्रयत्न करता हूँ॥३२-३४॥

चरित्र-श्रवणात्पुण्यं चरित्र कथनान्न किम्। जायेत सप्रबुद्ध्या श्रुतचरित्रं प्रकथ्यते ॥३५॥
तीर्थकृत्व चरित्रस्य श्रवणतीर्थनाथता। इन्द्रत्वं चक्रवर्तित्वं जायते शुभदेहिनाम् ॥३६॥
इतिमत्वा शुभं सारं चरित्रं पावनं परम् । वक्ष्येऽहं तद्गुणालीनं दृढसंस्कारो भवति ॥३७॥
विस्तारादति संक्षिप्तं चरित्रं हरते मनः । समीचीनं यथापक्वमन्नं धान्य भराच्छुभम् ॥३८॥
अथ त्रैलोक्यमध्यस्थो जम्बूद्वीपो मनोहरः। भाति व्रत संस्थानो लक्षयोजन विस्तृतः ॥३९॥
क्षेत्रपत्रं महोत्तुंगं लसद्ज्योतिष्ककेसरम्। मेरू कर्णिकमाभात्यहि मृणाल मनोहरम् ॥४०॥
दीप पद्मं जनानेकपद्मदाकुल मण्डितम्। जनाल्हादकरं रम्यं क्षारोदक जलाशये ॥४१॥
नानामहिधरेः सेव्यः कुलीनः शुभसंस्थितिः। रामालीनो गृहावेशी द्वीपो राजेव राजते ॥४२॥

जिस प्रकार चरित्र के सुनने से पुण्य की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार चरित्र के कथन करने से भी पुण्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार भली-भाँति विचार कर मैंने इस श्रेणिक चरित्र का कथन करना प्रारम्भ किया है ॥३५॥

चरित्रों के सुनने से भव्य जीवों को संसार में तीर्थंकर, इन्द्र, चक्रवर्ती आदि पदों की प्राप्ति होती है यह भले प्रकार समझकर और तीर्थंकर आदि के गुणों का लोलुपी होकर, दृढ़ श्रद्धानी हो मैं शुभचन्द्राचार्य सारभूत उत्कृष्ट और पवित्र श्रेणिक चरित्र को कहता हूँ परन्तु जिस प्रकार अधिक विस्तारने वाले कच्चे धान्यों की अपेक्षा पका हुआ थोड़ा-सा धान्य भी उत्तम होता है, उसी प्रकार विस्तृत चरित्र की अपेक्षा संक्षिप्त चरित्र उत्तम तथा मनुष्यों के मन को हरण करने वाला होता है। इसलिए मैं इस श्रेणिक चरित्र का संक्षिप्त रीति से ही वर्णन करता हूँ ॥३६-३८॥

समस्त लोक का मन हरने वाला, लाख योजन चौड़ा, गोल और तीन लोक में अत्यन्त शोभायमान जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप कमल के समान मालूम पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार कमल में पत्ते होते हैं, उसी प्रकार भरतादि क्षेत्ररूपी पत्ते इसमें भी मौजूद हैं, जिस प्रकार कमल में पराग होती है, उसी प्रकार नक्षत्ररूपी पराग इसमें भी मौजूद हैं। जिस प्रकार कमल में कली रहती है, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में मेरुपर्वतरूपी कली मौजूद है। जिस प्रकार कमल में मृणाल (सफेद तन्तु) रहता है, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में भी शेषनागरूपी मृणाल मौजूद है तथा जिस प्रकार कमल पर भ्रमर रहते हैं, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में भी अनेक मनुष्यरूपी भ्रमर मौजूद हैं। यह जम्बूद्वीप दूध के समान उत्तम निर्मल जल से भरे हुए तालाबों से जीवों को नाना प्रकार के आनन्द प्रदान करने वाला है। यह जम्बूद्वीप राजा के समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक बड़े-बड़े राजाओं से सेवित होता है, उसी प्रकार यह द्वीप भी अनेक प्रकार के महीधरों से अर्थात् पर्वतों से सेवित है। जिस प्रकार राजा कुलीन उत्तम वंश का होता है, उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी कुलीन अर्थात् पृथ्वी में लीन है और जिस प्रकार राजा शुभ स्थिति वाला होता है उसी प्रकार यह भी अच्छी तरह स्थित है, तथा राजा जिस प्रकार रामालीन अर्थात् स्त्रियों से संयुक्त होता है, उसी प्रकार यह भी, रामालीन, अनेक वन-उपवनों से शोभित है ॥३९-४२॥

नदी जड़संसेव्यो निम्नगास्त्री समाश्रितः। द्विज राजाश्रितश्चित्रमुत्तमत्वं च यः श्रितः ॥४३॥
क्षेत्रैर्महीधरै रम्यो गम्यः पुण्यवतां च यः। जलाशयैर्महाकुण्डैर्विभातिभुवनत्रये ॥४४॥
यद्वृत्तत्वंसमालोक्य ह्रीयमाणो भ्रमत्यलम्। चन्द्रक्षीणत्वमापन्नो व्योम्निमन्ये मनोहरः ॥४५॥
लोका-लोकस्य मध्यं यं मध्ये द्वीपं तथामतम्। त्रिलोकानां तथा मध्यं समाख्यान्ति यतीश्वरः ॥४६॥
तन्मध्येऽनेक शोभाढ्यं संतप्तस्वर्ण देहकः। लसत्कान्ति कलाकीर्णःस्वर्णाद्रिः शोभते स्वयम् ॥४७॥
गजदन्त चतुर्बाहुरच्युतः श्री समन्वितः। देशाधीशो महाभृत्यो यो विष्णुरिव सम्बभौ ॥४८॥
सुभद्रो भद्र शालाढ्यो नन्दनो नन्दनांचितः। सुमनोभिः कृतावासः सोमनस्य वनाश्रितः ॥४९॥
अपाण्डुः पान्डुकाधारी द्व्यष्ट चैत्य जिनालयः। स्वख्यातिव्याप्त-सर्वस्य यो मेरुदाश्रितः ॥५०॥

जिस प्रकार राजा महादेशी अर्थात् बड़े-बड़े देशों का स्वामी होता है, उसी प्रकार यह भी महादेशी अर्थात् विस्तीर्ण है, यद्यपि यह द्वीप नदी 'नजड़संसेव्यः' अर्थात् उत्कट जड़ मनुष्यों से सेवित है तथापि 'नदीनजड़संसेव्यः' अर्थात् समुद्रों के जलों से वेष्टित है इसलिए यह उत्तम है। यद्यपि यह जम्बूद्वीप 'निम्नगास्त्रीविराजितः' अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्रियों कर सहित है तथापि 'अनिम्नगास्त्रीविराजितः' अर्थात् पतिव्रता स्त्रियों कर शोभित है इसलिए यह उत्तम है तथा यद्यपि यह द्वीप 'द्विजराजाश्रितः' अर्थात् वरुणसंकर राजाओं के आधीन है तो भी उत्तम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का निवास स्थान होने के कारण यह उत्तम ही है और पर्वतों से मनोहर, पुण्यवान् उत्तम पुरुषों का निवास स्थान यह जम्बूद्वीप अनेक प्रकार के उत्तम लताओं से तथा बड़े-बड़े कुंडों से तीन लोक में शोभित है। जिस जम्बूद्वीप की उत्तम गोलाई देखकर लज्जित व दुःखित हुआ, यह मनोहर चन्द्रमा रात-दिन आकाश में घूमता फिरता है तथा जिस प्रकार लोक-अलोक का मध्य भाग है उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी समस्त द्वीपों में तथा तीन लोक के मध्य भाग में है ऐसा बड़े-बड़े यतीश्वर कहते हैं ॥४३-४६॥

इस जम्बूद्वीप के मध्य में अनेक शोभाओं से शोभित, गले हुए सोने के समान देहवाला, देदीप्यमान, अनेक कान्तियों से व्याप्त, सुवर्णमय मेरु पर्वत है। यह मेरु साक्षात् विष्णु के समान मालूम पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार विष्णु के चार भुजा हैं, उसी प्रकार इस मेरु पर्वत के भी चार गजदन्तरूपी चार भुजा हैं और जिस प्रकार विष्णु का नाम अच्युत है, उसी प्रकार यह भी अच्युत अर्थात् नित्य है ॥४७-४८॥

जिस प्रकार विष्णु श्री समन्वित अर्थात् लक्ष्मी सहित हैं, उसी प्रकार यह मेरु पर्वत भी श्री समन्वित अर्थात् नाना प्रकार की शोभाओं से युक्त है। इस मेरु पर्वत पर सुभद्र, भद्रशाल तथा स्वर्ग के नन्दन वन के समान नन्दन वन, अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगंधी से सुगन्धित करने वाले सौमनस्य वन हैं। यह मेरु अपांडु अर्थात् सफेद न होकर भी पांडुशिला का धारक सोलह अकृत्रिम चैत्यालयों से युक्त अपनी प्रसिद्धि से सबको व्याप्त करने वाला अर्थात् अत्यन्त प्रसिद्ध और नाना प्रकार के देवों से युक्त है ॥४९-५०॥

निराधारस्य नाकस्य दत्तः स्तम्भ इवाभौ। महापरिधि रुच्चैर्यो रत्नस्वर्ण विराजितः ॥५१॥
अनादिर्निधनातीतो कृत्रिमो यः स्वभावतः। सिद्धोमहीधराधीशो वाभाति भुवने स्वयम् ॥५२॥
मुक्तिं जिगमिषूणां यो दर्शयन्मोक्षवीथिकाम्। स्थितो मध्ये परां शोभां दधल्लोकोत्तरोद्भवाम् ॥५३॥
जिन गन्धोदकेनैव पवित्रस्तीर्थतां गतः। चारणार्षि सदासेव्यो योभूभृत्परमेश्वरः ॥५४॥
इन्द्रः स्वर्गं सदात्यक्त्वा क्रीडायैव शचिसमम्। आयाति यत्र संकल्पा नोकुहैर्जितसद्दिवि ॥५५॥
उच्चैस्तरत्वादुच्चैस्त्वं सिद्धत्वात्सिद्धतांगतः। भूधरत्वाद्धराधीशो यो बभूव निरन्तरम् ॥५६॥
यत्रत्यैश्चैत्यगेहैश्च जनानां याति किल्विषाम्। स्तुत्यैश्चारणयोगिन्द्रैः परात्मध्यान कोबिदैः ॥५७॥
किं वर्ण्यं तस्य माहात्म्यं यस्य व्याख्यान विस्तरः। वर्ण्यतेऽनेक ग्रन्थैश्च कोटिसंख्या समाचितैः ॥५८॥
ततो दक्षिणदिग्भागे प्रसस्यं सस्यमुत्तमम्। भारतं भारतीपूर्णं समस्ति सुखसंश्रितम् ॥५९॥
चापाकारं च यद्भाति गंगासिन्धु शराश्रितम्। क्षारोदधि नीरेणैव ताड़ितं क्षार हानये ॥६०॥
यन्मध्ये रूप्यनामायं शिखर्यां सिन्धु विस्तृतः। श्रेणीद्वय समाकीर्णः खचरैः कृतसंस्थितिः ॥६१॥

बड़े भारी ऊँचे परकोटे को धारण करने वाला, सुवर्णमय और नाना प्रकार के रत्नों से शोभित यह मेरु, निराधार स्वर्ग के टिकने के लिए मानो एक ऊँचा खम्भा ही है ऐसा जान पड़ता है। यह मेरु पर्वत तीनों लोक में अनादिनिधन, अकृत्रिम, स्वभाव से ही और अनेक पर्वतों का स्वामी अपने-आप ही सुशोभित है ॥५१-५२॥

यह पर्वत अत्युत्तम शोभा को धारण करने वाले जम्बूद्वीप के मध्य भाग में अनुपम सुख मोक्ष को जाने की इच्छा करने वाले भव्य जीवों को मोक्ष के मार्ग को दिखाता हुआ और जिनेन्द्र भगवान् के गन्धोदक से पवित्र हुआ, एक महान् तीर्थपने को प्राप्त हुआ है। चारण ऋद्धि के धारण करने वाले मुनियों से सदा सेवनीय है, समस्त पर्वतों का राजा है। श्रेष्ठ कल्पवृक्षों के फूलों से स्वर्गलोक को भी जीतने वाले इस मेरु पर्वत पर स्वर्ग को छोड़कर इन्द्र भी अपनी इन्द्राणियों के साथ क्रीड़ा करने को आते हैं। यह मेरु पर्वत अधिक ऊँचा होने के कारण अत्युच्च कहा गया है और पृथ्वी का धारण करने वाला होने के कारण धराधीश अर्थात् पृथ्वी का स्वामी कहा गया है। इस मेरु पर्वत के ऊपर विराजमान चैत्यालयों के और स्तुति करने योग्य परमात्मा के ध्यान करने वाले योगीन्द्रों के स्मरण से मनुष्यों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५३-५७॥

इस मेरु पर्वत के माहात्म्य का हम कहाँ तक वर्णन करें इस मेरु पर्वत के माहात्म्य का विस्तार बड़े-बड़े करोड़ों ग्रन्थों में भले प्रकार वर्णन किया गया है। इसी मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में जहाँ उत्तम धान्य उपजाते हैं वहीं मनोहर, अनेक प्रकार की विद्याओं से पूर्ण और सुखों का स्थान भरत क्षेत्र है। यह भरतक्षेत्र साक्षात् धनुष्य के समान है क्योंकि जिस प्रकार धनुष्य में बाण होते हैं, उसी प्रकार गंगा-सिन्धु दो नदीरूपी बाण हैं। इस भरतक्षेत्र के मध्य भाग में रूपाचल नाम का विशाल पर्वत है जो चारों ओर से सिन्धु नदी से वेष्टित है और जिसकी दोनों श्रेणी सदा रहने वाले विद्याधरों से भरी हुई हैं ॥५८-६१॥

गंगा-सिन्धु द्विकेनैव विजयार्द्धा चलेन च। षट्खण्डतां समानीतं द्योतयेच्छुमालयम् ॥६२॥
तत्रार्यखण्डमाभाति दक्षिणे भरते परे। त्रिखण्डषंडसंकीर्णे पूर्णे पुण्यजनैः सदा ॥६३॥
षट्काल चक्रसंतानं वर्तते यत्र भाषिनि। शर्माशर्म-समाकीर्णं पुण्य-पापकलावहम् ॥६४॥
प्रथमो वर्तते कालः सुषमाद्विक संज्ञकः। कायाहारादिभिर्ज्ञेयो यत्र देवकुरुपमः ॥६५॥
द्वितीय सुषमः ख्यातः क्रोशद्वय शरीरिभाक्। हरि वर्ष समोज्ञेयः स्थित्वाहारादिभिःशुभः ॥६६॥
द्वि कोटि कोटि संस्थायी क्रोशोत्सेध शरीरभृत्। जघन्यभोग भूद्दक्षस्तृतीयः काल इब्यते ॥६७॥
विदेह कालसादृश्य चतुर्थः समयो मतः। तीर्थकृद्वक्ति रामादि जननोत्सवतां गतः ॥६८॥
पञ्चमः पुण्य पापाढ्यस्तुच्छ धर्म सुखाकरः। समयः प्रोच्यते सद्भिर्हीनायुर्देह धर्मकः ॥६९॥
धर्म हीनोति पापात्मा षष्टो दुष्ट जनाश्रितः। कालोऽल्पायुर्जनैः कीर्णो ज्ञातव्यः काल कोविदैः ॥७०॥
इत्थं कालः प्रवर्तेत यत्रार्य पुण्यधामनि। मुक्तिमार्ग पथोद्दीपे शुभकर्म परायणे ॥७१॥
विशेष देश संकीर्णं पुरपत्तन भूषितम्। यतिवृन्द समाश्लिष्टं दिद्युते यच्छुभावहम् ॥७२॥

यह भरतक्षेत्र अत्यन्त पवित्र है और गंगा-सिन्धु नाम की दो नदियों से तथा विजयार्द्ध पर्वत से छह खण्डों में विभक्त अतिशय शोभा को धारण करता है। इसी भरतक्षेत्र में तीन खण्डों से व्याप्त, पुण्यात्मा भव्य जीवों से पूर्ण, दक्षिण भाग में आर्य खण्ड शोभित है ॥६२-६३॥

इस देदीप्यमान आर्य खण्ड में सुख तथा दुःख से व्याप्त, पुण्य-पापरूपी फल को धारण करने वाला, सुषमा-सुषमादि छहों कालों का समूह सदा प्रवर्तमान रहता है। इन छह प्रकार के कालों में प्रथम काल सुषमा-सुषमा है, जो कि शरीर, आहार आदिक से देवकुरु-भोगभूमि के समान है। दूसरा काल सुषमा नाम का है जिसमें मनुष्य के शरीर की ऊँचाई दो कोश के प्रमाण की रहती है, यह काल, स्थिति, आहार आदिक से हरि वर्ष क्षेत्र के समान है तथा शुभ है। तीसरा काल सुषमा-दुषमा नामक है, इसमें मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई एक कोश के प्रमाण है। इसकी रचना जघन्य भोगभूमि के समान होती है। चौथा काल दुषमा-सुषमा है जिसकी रचना विदेह क्षेत्र के समान होती है, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि महापुरुषों की उत्पत्ति भी इसी काल में होती है। पाँचवाँ काल दुषमा है जिसमें पुण्य तथा पाप से शुभाशुभ गति की प्राप्ति होती है, यह दुःखों का भंडार है तथा इस पंचम काल में मनुष्यों की आयु, शरीर, धर्म सब कम हो जाते हैं। इसके पश्चात् धर्म से रहित, पापस्वरूप, दुष्ट मनुष्यों से व्याप्त और थोड़ी आयु वाले जीवों सहित, छठवाँ दुषमा-दुषमा काल आता है ॥६४-७०॥

इस प्रकार मोक्ष-मार्ग साधन करने के लिए दीपक के समान, नाना प्रकार की शुभ क्रियाओं सहित और पुण्य के स्थान, इस आर्य खण्ड में उक्त प्रकार के काल सदा प्रवर्तमान रहते हैं। ऐसा यह आर्यखण्ड नाना प्रकार के बड़े-बड़े देशों से व्याप्त, पुर और ग्रामों से सुशोभित, बहुत से मुनियों से पूर्ण और पुण्य की उत्पत्ति स्थान, अत्यन्त शोभायमान है ॥७१-७२॥

तन्मध्ये मगधोदेशो नाभिवद्भाति भूतले। जनता वृन्द संसेव्यो भूरि भव्य विशेषितः ॥७३॥
ग्रामाः कुक्कुटसम्पात्या धनधान्य गुणालयः। रेजुर्यत्र जनाकीर्णा विशीर्णास्सम्पदः शुभाः ॥७४॥
सुवृक्षा यत्र सम्भेजुः कल्पवृक्षश्रियं पराः। यच्छन्तः फलसंराशीं जनानां फल कांक्षिणाम् ॥७५॥
शालि क्षेत्राणि राजन्ते सुपक्व फलितानि च। तद्वर्णं शुकसमिश्रं फलानि यत्र सुन्दरे ॥७६॥
पक्व शालिवने यत्र पतन्तः शुक-पक्षिणः। लक्ष्यन्ते तत्रजैर्लोकेः कल्पवृक्ष फलानि वा ॥७७॥
सरांसि यत्र शोभन्ते स्वच्छनीर भृतानि च। नीलद्विपैः श्रितानीवमेघवृन्दैश्च सेवितुम् ॥७८॥
कमलाकर संकीर्णाः सुमनोज सुमण्डितः। सिन्धुदर्पापहाः पद्माकराः कृष्णाइवावभुः ॥७९॥
दृश्यन्ते मुनयो यत्र वने पर्वतमस्तके। ग्रामे देशे पुरे द्रोणे मण्टपे कर्वटे तटे ॥८०॥
गणेश गणणातीताः संघेनमहत्तासमम्। धर्मोपदेश संरक्ता दृश्यन्ते यत्र निर्मलाः ॥८१॥
क्वचित्केवलपूजाया आगच्छन्ति सुरोत्तमाः। नाना विमानसंरूढ़ादृढ़ दिव्यांगणासमम् ॥८२॥
रमन्ते रम्य रामेषु यत्र देवाः सयोषितः। मुक्त्वा स्वर्गमहीं रम्यां सुगम्यां पुण्य शालिनाम् ॥८३॥

इस आर्यखण्ड के मध्य में जिस प्रकार शरीर के मध्य भाग में नाभि होती है, उसी प्रकार इस पृथ्वीतल के मध्य भाग में मगध नामक एक देश है जो अनेक जनों से सेवित और विशेषतया भव्यजनों से सेवित है। इस मगध देश में धन-धान्य और गुणों के स्थान मनुष्यों से व्याप्त, प्रकट रीति से सम्पत्ति के धारी, अनेक ग्राम पास-पास बसे हुए हैं। इस मगध देश में, फल की इच्छा करने वाले मनुष्यों को उत्तमोत्तम फलों को देने वाले उत्कृष्ट वृक्ष, कल्पवृक्षों की शोभा को धारण करते हैं। उस देश में वहाँ के मनुष्य, पके हुए धान्यों के खेतों में गिरते हुए सूवों को कल्पवृक्ष के फलों के समान जानते हैं। वहाँ अत्यन्त निर्मल जल से भरे हुए, काले-काले हाथियों से व्याप्त सरोवर ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो स्वयं मेघ ही आकर उनकी सेवा कर रहे हैं। वहाँ के तालाब साक्षात् कृष्ण के समान मालूम पड़ते हैं क्योंकि जिस प्रकार श्रीकृष्ण कमलाकर अर्थात् लक्ष्मी के (कर) हाथ सहित है, उसी प्रकार तालाब भी कमलाकर अर्थात् कमलों से भरे हुए हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सुमनसों (देवों) से मण्डित हैं, उसी प्रकार तालाब भी (सुमनस) अर्थात् नाना प्रकार के फूलों से पूर्ण हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण हस्तियों के मद को चकनाचूर करने वाले हैं अर्थात् इनके पास आते ही हस्ती शान्त हो जाते हैं ॥७३-८०॥

जिस देश में, वन में, पर्वत के मस्तकों पर, ग्राम में, पुर में, खोलारों में, नदियों के तटों पर सदा मुनिगण देखने में आते हैं और धर्म के उपदेश में तत्पर, निर्मल, असंख्यात गणधर बड़े-बड़े संघों के साथ दृष्टिगोचर होते हैं उस देश में कहीं पर अनेक प्रकार के विमानों में बैठे हुए उत्तम देव, अपनी-अपनी अत्यन्त सुन्दरी देवांगनाओं के साथ केवली भगवान् की पूजा करने के लिए आते हैं और कहीं पर मनोहर बाग में पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा प्राप्त करने योग्य, अपनी मनोहर स्वर्गपुरी को छोड़ देवतागण अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥८१-८३॥

गोपालिका महागीतमन्त्रं सयंत्रिता मृगाः। न यान्ति यत्र सन्दत्तचित्ता भय वर्जिताः ॥८४॥
पद्माकरेषु चायान्ति गजा यत्र पिपासया। दृष्ट्वा तत्रत्य नारीणां रूपं मुंचन्ति जीवनम् ॥८५॥
किं वर्ण्यते च योदेशो नानातीर्थ समाश्रितः। देवविद्या धरैः सेव्यो मुनिवृन्दविराजितः ॥८६॥
राजगृहं पुरंतत्र राजगृह विराजितम्। समस्ति सर्व शोभाढ्यं धनाढ्य जनसंस्कृतम् ॥८७॥
न नराज्ञानसंत्यक्ता नाशीलाः कुलयोषितः। निर्धना न जना यत्र वर्तन्ते परमर्द्धिकाः ॥८८॥
लोकपाल समालोकाः स्त्रियो दिव्यांगनासमाः। कल्पवृक्ष समाकारा वृक्षायत्र पदे पदे ॥८९॥
स्वर्विमानोपमा यत्र गृहास्वर्णैश्च वद्धकाः। पापशासन सादृक्षा नरेन्द्रा बुध संस्कृताः ॥९०॥
उत्तुंग शालतो याति यत्स्वर्गं जेतुमिच्छया। अधः कृत्यं स्ववीर्येण भुवनं भूरिशो भया ॥९१॥
यत्रत्याः परं धाम विशान्तिव्रत भूषिताः। उत्पाद्यके वलं बोधं क्षयंनीत्वाद्यः संचयम् ॥९२॥
केचित्सद्व्रतंसंसिद्ध्या ब्रजन्ति व्रत योगतः। सर्वार्थसिद्धि संस्थानं प्राग्दृष्टमिव योगिनः ॥९३॥
केचिदच्युतपर्यन्तं सस्त्रियो व्रतभूषिताः। श्रावकाणां च गच्छन्ति पुण्यस्य फलमीदृश्यम् ॥९४॥
केचित्त्रिविधपात्रेभ्यो दत्वादानं सुरवार्थिनः। अटन्ति भोग भूस्थानं यावज्जीव सुखांकिताम् ॥९५॥

वहाँ गोपालों की रमणियों द्वारा गाये हुए मनोहर गीतरूपी मन्त्रों से मन्त्रित तथा उनके गीतों में दत्तचित और भयरहित हिरणों का समूह निश्चल खड़ा रहता है और भगाने पर भी नहीं भागता है और वहाँ जब तालाबों में प्यास से अत्यन्त व्याकुल हो अनेक हाथी पानी पीने आते हैं तब हथिनियों को देखकर उनके विरह से पीड़ित होकर अपना जीवन छोड़ देते हैं। यह मगध देश नाना प्रकार के उत्तमोत्तम तीर्थंकरों सहित, नाना प्रकार के देव विद्याधरों से सेवित और विशेष रीति से अनेक मुनिगणों से शोभित है इसका कहाँ तक वर्णन करें। इसी मगध देश में राजघरों से शोभित, अनेक प्रकार की शोभाओं से मण्डित, धन से पूर्ण तथा अनेक जनों से व्याप्त राजगृह नामक एक नगर है। राजगृह नगर में न तो अज्ञानी मनुष्य हैं और न शील रहित स्त्रियाँ हैं और न निर्धन पुरुष बसते हैं ॥८४-८८॥

वहाँ के पुरुष उत्तम कुबेर के समान ऋद्धि के धारण करने वाले और स्त्रियाँ देवांगनाओं के समान हैं । जगह-जगह पर कल्पवृक्षों के समान वृक्ष हैं। स्वर्गों के विमानों के समान सुवर्ण से घर बने हुए हैं, वहाँ राजा इन्द्र के समान अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, वहाँ ऊँचे-ऊँचे धान्यों के खेत और वृक्ष, ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो वे मूर्तिमान् अत्यन्त शोभा है और अपने पराक्रम से इस लोक को भली-भाँति जीत कर स्वर्गलोक के जीतने की इच्छा से स्वर्गलोक को जा रहे हैं ॥८९-९१॥

उस नगर के रहने वाले भव्य जीव मनुष्य नाना प्रकार के व्रतों से भूषित होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर तथा समस्त कर्मों को निर्मूलन कर परम धाम मोक्ष को प्राप्त होते हैं। वहाँ की स्त्रियों के प्रेमी अनेक पुरुष भी व्रतों के सम्बन्ध से श्रेष्ठ चरित्र को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं क्योंकि पुण्य का ऐसा ही फल है। वहाँ के कितने एक सुख के अर्थी भव्य जीव उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार के पात्रों को दान देकर भोगभूमि नामक स्थान को प्राप्त होते हैं और जीवनपर्यन्त सुख से निवास करते हैं ॥९२-९५॥

दानेस्पर्द्धां चिकीर्षन्ति पूजायां च विशेषतः। जनायत्र न बोधेषु ज्ञान भावाश्रितां नराः ॥९६॥
प्रासादा यत्र शोभन्ते जिनानां भूभुजां पुनः। जय कोलाहला कीर्णाः ससभ्याः फल दायिनः ॥९७॥
शास्ता भूतस्य पुण्येन लक्षणांकित विग्रहः। उपश्रेणिक इत्याख्यां दधद्दीप्तयशः शुभः ॥९८॥
दानेन कल्पवृक्षत्वं ज्ञानेन गुरुतां गतः। तेजसा चन्द्ररूपत्वं प्रतापेनाकतां च यः ॥९९॥
ऐश्वर्येणेन्द्रतां यातो धनेनराजराजताम्। गाम्भीर्येण समुद्रत्वमित्यनेक गुणाश्रितः ॥१००॥
त्यागी भोगी सुखी धर्मी दाता वक्ता विचक्षणः। शूरो भीरुः परोमानी ज्ञानि यो दिद्युतेभुवि ॥१०१॥
वलेन चतुरङ्गेणाभूत्साध्यं स्वबलेन किम् । किं तस्य महाराजस्य सेवितस्य महीधरैः ॥१०२॥
महिषी तस्य संजाता रूपलावण्य भूषिता। इन्द्राणी पुरु दूतस्येन्द्राणीव च महाप्रिया ॥१०३॥
तनूदरी गुणैः स्थूलारजयद्भूपतिं पतिम्। गत्या विभ्रमदृस्या च भुविकारेण संततम् ॥१०४॥
सुधाकुम्भसमौ पीनौ मदनोज्जीवनौ परौ। दधौ सा कुचकुम्भौ च हारनाग समाश्रितौ ॥१०५॥
कुचसंसर्गस्तस्य नाभून्मदनज्वरः। तस्यारसासनादेव यथाज्वरः विनिग्रहः ॥१०६॥

राजगृह नगर के मनुष्य ज्ञानवान् हैं इसलिए वे विशेष रीति से दान तथा पूजा में ही ईर्ष्या-द्वेष करना चाहते हैं और ज्ञान में (कला-कौशलों में) कोई किसी के साथ ईर्ष्या तथा द्वेष नहीं करता। उसमें जिन-मन्दिर तथा राज-मन्दिर सदा जय-जय शब्दों से पूर्ण, उत्तम सभ्य मनुष्यों से आकीर्ण, याचकों को नाना प्रकार के फल देने वाले शोभित होते हैं ॥९६-९७॥

राजगृह नगर का स्वामी नाना प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त शरीर और देदीप्यमान यश का धारण करने वाला उपश्रेणिक नाम का राजा था ॥९८॥

वह उपश्रेणिक राजा अत्यन्त ज्ञानवान्, कल्पवृक्ष के समान दानी, चन्द्रमा के समान तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी, इन्द्र के समान परम ऐश्वर्यशाली, कुबेर के समान धनी तथा समुद्र के समान गम्भीर था ॥९९॥

इनके अतिरिक्त उसमें और भी अनेक प्रकार के गुण थे, त्यागी था, भोगी था, सुखी था, धर्मात्मा था, दानी था, वक्ता था, चतुर था, शूर था, निर्भय था, उत्कृष्ट था, धर्मादि उत्तम कार्यों में मान करने वाला ज्ञानवान् और पवित्र था, इसलिए अनेक राजाओं से सेवित उपश्रेणिक महाराज को न तो चतुरंग सेना से ही कुछ काम था और न अपने बल से ही कुछ प्रयोजन था ॥१००-१०२॥

महाराज उपश्रेणिक के साक्षात् इन्द्र की इन्द्राणी के समान, जो उत्तम रूप तथा लावण्य से युक्त थी इन्द्राणी नाम की पटरानी थी। वह तनूदरी इन्द्राणी, अनेक प्रकार के गुणों से युक्त होने के कारण अपने पति को प्रसन्न रखती रहती थी। उसके स्तन, अमृतकुम्भ के समान मोटे, कामदेव को जिलाने वाले, उत्तम हाररूपी सर्प से शोभित, दो कलशों के समान जान पड़ते थे। उसके उत्तम स्तनों के सम्बन्ध से मदन ज्वर तो कभी होता ही नहीं था ॥१०३-१०६॥

स्त्री भवं देशसम्भूतं लक्ष्मीजंसातमातनोत्। स पुण्यफलमाभुञ्जन् स्त्रियासाकं निरन्तरम् ॥१०७॥

अन्योन्य प्रेमबद्धौ विशदसुखसरोमग्न कायौ महांतौ।
राज्यते दम्पती तौ निखिल नरपतिश्लिष्टपादौ पवित्रौ ॥१०८॥
व्यापकीर्ति विशीर्णसुख समयपरौ पुण्यमूर्ति प्रशस्यौ।
भुञ्जानौ भोगलक्ष्मी त्रिदशपतिसमांपुण्य सारां समस्ताम् ॥१०९॥
सराज्यमासा-द्यचिरं प्रभुज्यमहीकृतां शेष विनाश मुक्ताम्।
तयासमंतिष्ठति राज्यभारे निराकृताशेषविपक्ष वारे ॥११०॥
धर्माद्राज्यस्य सम्पद्भवति तनुभृतां धर्मतः शर्मसारम्।
धर्मात् स्त्रीणां च वृन्दं निखिलसुरपतिस्त्रीसमानं विमानम् ॥१११॥
धर्मात्पुत्रस्य भूतिर्जगति सुकृतीनांचाक्रि पुण्यानुलक्ष्मी।
धर्मात्स्वर्गादिसातं कुरूत जिनपतेर्धर्मेकं सारम् ॥११२॥

इति श्रेणिक भावानुवद्ध भविष्यत् श्रीपद्मनाभतीर्थङ्कर चरित्रे भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचिते श्रेणिकराज्य वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥

जैसे रसायन के खाने से ज्वर दूर हो जाता है वैसे ही उसके स्तनों के रसायन से मदन ज्वर भी नष्ट हो जाता था। वह इन्द्राणी अत्यन्त पवित्र और नाना प्रकार की शोभाओं सहित, उपश्रेणिक राजा को आनन्द देती थी तथा वह राजा भी इस पटरानी के साथ सदा भोग-विलासों को भोगता हुआ इस प्रकार परस्पर अतिशय प्रेमयुक्त, अत्यन्त निर्मल सुखरूपी सरोवर में मग्न, अत्यन्त पवित्र और महान्, जिनके चरणों की वन्दना बड़े-बड़े राजा आकर करते थे, चारों ओर जिनकी कीर्ति फैल रही थी और समस्त प्रकार के दुःखों से रहित तथा पुण्य मूर्ति वे दोनों राजा-रानी इन्द्र के समान पुण्य के फलस्वरूप राज्य-लक्ष्मी को भोगते थे ॥१०७-१०९॥

राजा उपश्रेणिक ने राज्य को पाकर उसे चिरकाल पर्यंत भोग किया और समस्त पृथ्वी को उपद्रवों से रहित कर दिया और उसके राज्य में किसी प्रकार के बैरी नहीं रह गये। उनके लिए ऐसे राज्य में महारानी इन्द्राणी के साथ स्थित होना ठीक ही था क्योंकि भव्य जीवों को धर्म की कृपा से ही राज्य सम्पदा की प्राप्ति होती है, धर्म से ही अनेक प्रकार के कल्याणों की प्राप्ति होती है, धर्म से उत्तमोत्तम स्त्रियाँ तथा चक्रवर्ती लक्ष्मी मिलती है और धर्म से ही स्वर्ग के विमानों के समान उत्तमोत्तम घर, आज्ञाकारी उत्तम पुत्र भी मिलते हैं, इसलिए भव्य जीवों को श्री जिनेन्द्र भगवान् के सारभूत उत्कृष्ट धर्म की अवश्य ही आराधना करनी चाहिए ॥११०-११२॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित उपश्रेणिक को राज्य-प्राप्ति का वर्णन करने वाला प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

द्वितीय: सर्ग:

नौमि पद्मश्रियं देवं पद्मनाभं जिनेश्वरम्। भावितीर्थं विशिष्टार्थं प्रतिपादकमीश्वरम् ॥१॥
तयोरथ महापुण्याच्छ्रेणिकः सुखसन्ततिः। तनुजो जनितानेक सन्तोषः परमर्द्धिकः ॥२॥
गुणा यस्मिन् शुभं रूपं यस्मिन्नैर्मल्यमुत्तमम्। यस्मिन् वर्तेत सौभाग्यं यस्मिल्लक्ष्मी परिग्रहः ॥३॥
यस्य मूर्ध्नि कचारेजुः कामिनी मोहकारकाः। मुखपंकज सौगन्ध्यान्नागा इव समागताः ॥४॥
विस्तीर्णं सुन्दराकारं ललाटं तिलकाकुलम्। विद्युते पट्टकं दत्तं वेधसालिखनाय च ॥५॥
नेत्रविस्फारि राजेत नीलोत्पलदलायतम्। सीमंकृते धृतानाशा सुगंधातिं सुलोलुपा ॥६॥
मुखचंद्रं स्फुरद्दीप्रं दोषाकर समन्वितम्। निर्दोषं च सदोद्योतं मुक्तं कलंक संपदा ॥७॥
तार हारकराकीर्णं विस्तीर्णं भार धारणात्। बभौ वक्ष स्थलं तस्य नाना शोभा समन्वितं ॥८॥
बाहुयुग्मं रराजास्य कामिनी मोहपाशकं। कम्रं शाखायुगं कल्पवृक्षस्येव बहुप्रदम् ॥९॥
कटितटसुवृक्षेऽस्य वसते मदनान्वितः। कांचीदाममहानागो रणक्तिं किण शब्दकः ॥१०॥

पद्म की शोभा को धारण करने वाले जिनेश्वर तथा भविष्य में तीर्थों की प्रवृत्ति करने वाले ईश्वर श्री महापद्मनाथ भगवान् को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ। अनन्तर इसके उन दोनों राजा-रानी के महान् पुण्य के उदय से, अनेक सुखों का स्थान, भले प्रकार माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला, परम ऋद्धिधारक, श्रेणिक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। कुमार श्रेणिक में सर्वोत्तम गुण थे, उसका रूप शुभ और अतिशय निर्मल था। वह अत्यन्त भाग्यवान् और लक्ष्मीवान् था। कुमार श्रेणिक के कामिनी स्त्रियों के मन को लुभाने वाले काले-काले केश ऐसे जान पड़ते थे मानो उसके मुख-कमल की सुगन्धी से सर्प ही आकर इकट्ठे हुए हैं ॥१-४॥

उसका विस्तीर्ण सुन्दर और अतिशय मनोहर तिलक से शोभित ललाट ऐसा मालूम पड़ता था मानो ब्रह्मा ने तीनों लोक के आधिपत्य का पट्टक ही रचा है। बालक के दोनों नेत्र नीलकमल के समान विशाल अतिशय शोभित थे। दोनों नेत्रों की सीमा बाँधने के लिए उनके मध्य में अतिशय मधुर सुगंधि को ग्रहण करने वाली नासिका शोभित थी। स्फुरायमान दीप्तिधारी बालक श्रेणिक का मुख यद्यपि चन्द्रमा के समान देदीप्यमान था तथापि निर्दोष सदा प्रकाशमान और समस्त प्रकार के कलंकों से रहित ही था। विशाल एवं अतिशय मनोहर हारों से भूषित उसका वक्षःस्थल राज्य-भार के धारण करने के लिए विस्तीर्ण था और अनेक प्रकार की शोभाओं से अत्यन्त सुशोभित था। कामिनी स्त्रियों के फँसाने के लिए जाल के समान उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो याचकों को अभीष्ट दान की देने वाली दो मनोहर कल्पवृक्ष की शाखा ही हैं। उसके कटिरूपी वृक्ष पर, करधनी में लगी हुई छोटी-छोटी घण्टियों के ब्याज-से शब्द करता हुआ, कामदेव सहित, करधनीरूपी महासर्प निवास करता था ॥५-१०॥

पादद्वयं शुभाकारं नानालक्षणलक्षितम्। श्रेणिकस्य बभौ रम्यं जितानेकमहाद्विषः ॥११॥
विवेकः सह संपत्या वर्द्धते देह सद्मनि। ज्ञानं च कलया साकं तस्य पुण्य सुभागिनः ॥१२॥
बुद्ध्या बाल्येऽपि वृद्धोभूत्सतां मान्यो विचक्षणः। असाधारण सौभाग्य बुद्ध्यादिगुण लिङ्गितः ॥१३॥
तीर्णः शास्त्रार्णवो येन प्रयासेन विना चिरात्। शस्त्रविद्यासमालेभे क्षात्रधर्मस्य कारणम् ॥१४॥
गुणेन लिङ्गितो देहो मेधया ज्ञानमुत्तमं। दानेनालंकृतो हस्तोऽभवत्तस्य शुभागिनः ॥१५॥
ततान परमं तोषं पित्रोः परम संपदा। संसिद्धयौवनारूढो व्यूढशक्तिसमन्वितः ॥१६॥
अन्ये पुत्राः शुभास्तस्य शतपंचप्रभाः पराः। बभूवुः पुण्यमाहात्म्याद् दृष्टपुण्य फलोत्तमाः ॥१७॥
अथ चंद्रपुराधीशः सोमशर्मा महाबली। प्रत्यंत देश संवाक्षी धृतबैरो बलोद्धतः ॥१८॥
मगधेशेन सोपायं साधितश्चन्द्रनायकः। सेवकत्वं समापन्नः स्थितो राज्ये खलाशयः ॥१९॥
मगधेश्वर संनाशं चिंतयन् दुष्टमानसः। लब्धोपायस्तदाचक्रे विनाशे मतिमुन्नतां ॥२०॥

श्रेणिक के शुभ आकृति के धारक, अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम लक्षणों से युक्त और अतिशय कान्ति के धारण करने वाले, दोनों चरण अत्यन्त शोभित थे तथा उस पुण्यात्मा एवं भाग्यवान् कुमार श्रेणिक के अतिशय मनोहर शरीर रूपी महल में सम्पत्ति के साथ विवेक बढ़ता था और अनेक प्रकार की राज सम्बन्धी कलाओं के साथ ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता था ॥११-१२॥

यद्यपि कुमार श्रेणिक बालकथा तथापि बुद्धि की चतुराई से वह बड़ा ही था और सज्जनों को मान्य था वह हरेक कार्य में चतुर और सौभाग्य बुद्धि आदि असाधारण गुणों का भी आकर था। इसने बिना परिश्रम के शीघ्र ही शास्त्ररूपी समुद्र को पार कर लिया था और क्षत्रिय धर्म की प्रधानता के कारण अनेक प्रकार की शस्त्रविद्याएँ भी सीख ली थीं तथा भाग्यशाली जिस बालक श्रेणिक के अनेक प्रकार के गुणों से मण्डित उत्तम ज्ञान, बुद्धि से भूषित था, उसके हाथ दान से शोभित थे ॥१३-१५॥

इस प्रकार यौवन अवस्था को प्राप्त, अत्यन्त बलवान् श्रेणिक सुन्दरता आदि सम्पदाओं से सम्पन्न था, जिसे देख उसके माता-पिता अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। श्रेणिक के अतिरिक्त महाराज उपश्रेणिक के पाँच सौ पुत्र और भी थे जो अत्यन्त पुण्यात्मा और उत्तमोत्तम शुभ लक्षणों से भूषित थे। महाराज उपश्रेणिक के देश के पास ही उसका शत्रु चन्द्रपुर का राजा सोमशर्मा रहता था जो अपने पराक्रम के सामने समस्त जगत् को तुच्छ समझता था ॥१६-१८॥

जिस समय महाराज उपश्रेणिक को यह पता लगा कि चन्द्रपुर का स्वामी सोम शर्मा अपने सामने किसी को पराक्रमी नहीं समझता तो उन्होंने शीघ्र ही उसे अपने अधीन करने का विचार कर अनेक उपायों से उसे अपने अधीन तो कर लिया पर उसे पुनः ज्यों-का-त्यों राज्याधिकार दे दिया। सोमशर्मा जब महाराज उपश्रेणिक से हार गया तो उसको बहुत दुःख हुआ और उसने मन में यह बात ठान ली कि महाराज उपश्रेणिक से इस अपमान का बदला किसी न किसी समय पर अवश्य लूँगा ॥१९-२०॥

सुवर्णं धनधान्यं च वस्त्रालंकरणं तथा। उपायनकृते चान्यद्रत्नमुक्ताफलादिकं ॥२१॥
अशिक्षितमनौपम्यं दुष्टांश्च वञ्चनोद्यतम्। प्राहिणोत्सोमशर्मा तं मागधं विद्यया कृतम् ॥२२॥
दृष्ट्वा राजगृहाधीशो लेखं सोपायनं पुनः। शंसां चक्रे च सोमस्याजानं तस्य मनोगतं ॥२३॥
पुनर्विलोक्य वीततं दृष्टमात्रप्रियं परं। सामग्री सकलं तुङ्ग तुतोष नरनायकः ॥२४॥
अश्वरत्नमिदं सारं सर्वाश्वाधीशतां गतं। ममगृहे नास्तिचेद्वृक्षं बभाणेति वचोनृपः ॥२५॥
तत्परीक्षाकृते राजा-चटित्वा स स्वयं वनं। गतः क्रीड़ा वरां प्राप्तः पश्यन् वनसुवेदिकाम् ॥२६॥
कशाघातः कृतो यावत्तावद्दुष्ट तुरङ्गमः। अगमद्राज्यसंघातं मुक्त्वा भीते वने घने ॥२७॥
न तिष्ठति तदा दुष्टो वीतो विश्व विवञ्चकः। महाटव्यां प्रविष्टः स न वेत्त्यमुखजालकं ॥२८॥
क्रोशंति जंबुका यत्र फूत्कुर्वंति फणीश्वराः। रटंति वनभल्लूका निनदंतिमहागजाः ॥२९॥
पतंति मर्कटा वृक्षा-चीत्कुर्वन्ति च वंशकाः। पक्षिणः पानसंतुष्टाः कृतरावा नदंत्यहो ॥३०॥
निक्षिप्तस्तत्र राजेंद्रस्तेन वातेन पापिना। गर्तेऽत्यंतमहारौद्रे नारके वा परे तदा ॥३१॥

तदनुसार उसने एक दिन यह चाल की कि सुवर्ण धन-धान्य मनोहर वस्त्र और उत्तमोत्तम आभूषण की भेंट महाराज उपश्रेणिक की सेवा में भेजी उसके साथ एक वीत नाम का घोड़ा भी भेजा। यह घोड़ा देखने में सीधा पर सर्वथा अशिक्षित, अतिशय दुष्ट एवं अत्यन्त ही धोखेबाज था ॥२१-२२॥

जिस समय महाराज उपश्रेणिक ने चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा की भेजी हुई भेंट को देखा तो वे सोमशर्मा के मन की भीतरी अभिप्राय को न समझ उसके विनय भाव पर अतिशय मुग्ध होकर उसकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे और भेंट से अपने को धन्य भी मानने लगे ॥२३-२४॥

ऊपर से ही मनोहर घोड़े को देख वे मुक्तकण्ठ से यह कहने लगे कि अहा यह राजा सोमशर्मा का भेजा हुआ घोड़ा सामान्य घोड़ा नहीं है किन्तु समस्त घोड़ों का शिरोमणि अश्वरत्न है मेरी घुड़साल में ऐसा मनोहर घोड़ा कोई है ही नहीं ॥२५॥

ऐसा कहते-कहते उस घोड़े की परीक्षा करने के लिए वे अपने-आप उस पर सवार हो गये और चढ़कर मार्ग में अनेक प्रकार की शोभाओं को देखते हुए एक वन की ओर रवाना हुए ॥२६॥

जिस समय महाराज उपश्रेणिक वन के मध्य भाग में पहुँचे आनन्द में आकर घोड़े को कोड़ा लगाया फिर क्या था ? कोड़ा लगते ही वह अशिक्षित एवं दुष्ट घोड़ा उछलकर बात-ही-बात में ऐसे भयंकर वन में निर्भयता से प्रवेश कर गया जहाँ अजगरों के फुत्कार हो रहे थे, रीछ भी भयंकर शब्द कर रहे थे, बड़े-बड़े हाथी भी चिंघाड़ रहे थे और बन्दर वृक्षों से गिर पड़ने पर भयंकर चीत्कार कर रहे थे एवं जहाँ-तहाँ भाँति-भाँति के पक्षियों के भी शब्द सुनाई पड़ते थे। घोड़े ने उस वन में प्रवेश कर, महाराज उपश्रेणिक को ऐसे अन्धकारमय भयंकर गड्ढे में, जहाँ सूर्य की किरण प्रवेश नहीं कर सकती थी, पटक दिया और बात-ही-बात में दृष्टि से लुप्त हो गया ॥२७-३१॥

अहो वैरं न कर्तव्यं दुर्बलेऽपि मदोद्धतैः। प्रांते दुःखप्रदं ज्ञेयमहो व्यसनसंततिः ॥३२॥
क्व राजा मगधाधीशः क्वाटवी दुःखदायिका। क्व गर्त्तं क्व पुरं रम्यं वैरस्य फलमीदृशं ॥३३॥
इति मत्वा जनैस्त्याज्यं वैरं दुःखप्रदं परं। इहामुत्र भवे पापा प्रीतिदं श्वभ्रदायकं ॥३४॥
सेनायामथ देशेऽपि नगरे सज्जने जने। हाहारवस्तदा जातः शोकचिंतालिलिंगितः ॥३५॥
श्रुत्वांतःपुरनार्योऽपि व्यधुर्दुःखं विमानसाः। केश हारस्वशृंगार त्रोटनं च पुनः पुनः ॥३६॥
चतुरंग बलेनापि सपुत्रेण पुनः पुनः। यत्नतः प्रेक्ष्यमाणोऽपि नो दृष्टो नरनायकः ॥३७॥
अथ स्मरन्महामंत्रमपराजितनामकं। स्थितोंऽतः खिद्यमानोऽसौ सार्द्धे गर्त्ते व्यथाश्रितः ॥३८॥
तत्र पल्ली शुभा-चास्ति तुच्छवासा मनोहरा। तत्पतिर्यमदण्डाख्यः क्षत्रियो भिल्लनायकः ॥३९॥
विद्युन्मती शुभ्रा राज्ञी रूप सौभाग्य संश्रिता। तिलकवती नामा पुत्री तयोश्चंद्राननाऽपरा ॥४०॥

अतिशय बलवान् पुरुषों को भी दुर्बल मनुष्यों के साथ कदापि वैर नहीं करना चाहिए क्योंकि दुर्बल के साथ भी किया हुआ वैर मनुष्यों को इस संसार में अनेक प्रकार का अचिंतनीय कष्ट देता है। अहा! दुःखों का समूह कैसा आश्चर्य का करने वाला है। देखो? कहाँ तो मगध देश का स्वामी राजा उपश्रेणिक? और कहाँ अनेक प्रकार के भयंकर दुःखों का देने वाला महान् वन? कहाँ अतिशय मनोहर राजगृह नगर? कहाँ अन्धकारमय भयंकर गड्ढा? क्या किया जाये वैर का फल ही ऐसा है, इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे उभय लोक में दुःख देने वाले इस परम बैरी बैर-विरोध को अपने पास कदापि न फटकने दे ॥३२-३४॥

जब लोगों ने महाराज उपश्रेणिक के लापता होने का समाचार सुना तो सेना में, देश में, अनेक जनों से सर्वथा पूर्ण राजगृह नगर में एवं अन्यान्य नगरों में भी शोक और चिन्ता छा गई और हा-हाकार मच गया। रनवास की समस्त रानियाँ यह समाचार सुनते ही मूर्च्छित हो गई और महाराज के वियोग में एकदम करुणाजनक रुदन करने लगीं। जितने केश-विन्यास हार आदिक शृंगार थे उन सबको उन्होंने तोड़कर अलग फेंक दिया। चतुरंगिनी सेना ने और महाराज उपश्रेणिक के पुत्रों ने महाराज के ढूँढ़ने के लिए अनेक प्रयत्न किये किन्तु कहीं पर भी उनका पता न लगा किन्तु 'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं' इत्यादि महामन्त्र को ध्यान करते हुए महाराज उपश्रेणिक अंधकारमय एवं दुःखों के देने वाले उसी गड्ढे में पड़े हुए अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते रहे ॥३५-३८॥

जिस वन के भीतर भयंकर गड्ढे में महाराज उपश्रेणिक पड़े थे उसी वन में एक अत्यन्त मनोहर भीलों की पल्ली थी। उस पल्ली का स्वामी, समस्त भीलों का अधिपति क्षत्रिय यमदण्ड नाम का राजा था। उसकी विद्युन्मती पटरानी अतिशय मनोहर और रूप एवं सौभाग्य की खान थी। इन दोनों राजा-रानी के चन्द्रमा के समान उत्तम मुखवाली तिलकवती नाम की एक कन्या थी ॥३९-४०॥

यावन्मागधनाथोऽसौ स्थितोशर्मप्रपूरितः। पल्लीपतिः समायातस्तावत्क्रीडां कृतेऽथ च ॥४१॥
दृष्ट्वा तत्र स्थितं राजगृहनाथं सविस्मितः। कोऽयं कथं दशां दुष्टामिमां प्राप्तः प्रभुः परः ॥४२॥
चिंतयन्निति स दूरादागत्योत्तीर्य घोटकात्। अनमत्त्यादयोर्युग्म मतिष्ठत्तस्य संनिधौ ॥४३॥
पप्रच्छेति प्रभो केनानीतस्त्वं दुष्टवैरिणा। अवस्थामीदृशीं प्राप्तः कथं मगधनायकः ॥४४॥
ततः प्राख्यत्स भूपालो यमदण्डं प्रति प्रियं। वचः शृणु च भो मित्र वृत्तांतं विस्मयप्रदम् ॥४५॥
प्रत्यंतवासिना तेन वैरिणा सोमशर्मणा। विद्यामयः खलोवीतः प्रेषितः प्रीतिदायकः ॥४६॥
विद्यामयं तुरंगं तं समारुह्यागमं वनम्। दुष्टेन तेन नीतोऽहमत्र क्वापि गतः सहि ॥४७॥

क्रीड़ा करने का अत्यन्त प्रेमी राजा यमदण्ड इधर-उधर अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं को करता हुआ उसी गड्ढे के पास आया जिस गड्ढे में महाराज उपश्रेणिक पड़े नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहे थे। गड्ढे के अत्यन्त समीप आकर जब महाराज उपश्रेणिक को उसने भयंकर गड्ढे में पड़ा देखा तो वह आश्चर्य से अपने मन में यह विचार करने लगा कि यह कौन है ? वह कैसे इस दशा को प्राप्त हुआ ? और इसे किसने इस प्रकार का भयंकर कष्ट दिया है? कुछ समय इसी प्रकार विचार करते-करते जब उसको यह बात मालूम हो गई कि ये राजगृह नगर के स्वामी महाराज उपश्रेणिक हैं, तो झट वह अपने घोड़े पर से उतर पड़ा और अत्यन्त विनय से उसने महाराज उपश्रेणिक के दोनों चरणों को नमस्कार किया और विनयपूर्वक उनके पास बैठकर यह पूछने लगा कि हे प्रभो किस दुष्ट बैरी ने आपको इस भयंकर गड्ढे में लाकर गिरा दिया ? हे मगधेश! ऐसी भयंकर दशा को आप किस कारण से प्राप्त हुए? कृपा कर यह समस्त समाचार सुनाकर मुझे अनुगृहीत करें। आपकी इस प्रकार दुःखमय अवस्था को देखकर मुझे अत्यन्त दुःख है। जिस समय महाराज उपश्रेणिक ने भीलों के स्वामी यमदण्ड का इस प्रकार भक्ति भरा वचन सुना तो उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन्होंने प्रिय वचनों में राजा यमदण्ड के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया और कहा-मित्र यदि तुमको अत्यन्त आश्चर्य करने वाले मेरे वृत्तान्त के सुनने की अभिलाषा है तो ध्यानपूर्वक सुनो मैं कहता हूँ ॥४१-४५॥

मेरे देश के समीप देश में रहने वाला सोमशर्मा नाम का एक चन्द्रपुर का स्वामी है। वह अपने पराक्रम के सामने किसी को भी पराक्रमी नहीं समझता था और बड़े अभिमान से राज्य करता था। जिस समय मुझे उसके इस प्रकार के अभिमान का पता लगा तो मैंने अपने पराक्रम से बात-ही-बात में उसका अभिमान ध्वंस कर दिया और उसे अपना सेवक बनाकर पुनः मैंने ज्यों-का-त्यों उसे चन्द्रपुर का स्वामी बना दिया। यद्यपि उसने मेरी अधीनता स्वीकार तो कर ली पर उसने अपने कुटिल भावों को नहीं छोड़ा इसलिए एक दिन उस दुष्ट ने नाना प्रकार के आभूषण, उत्तम वस्त्र एवं धन-धान्य, सुवर्ण आदिक पदार्थ मेरी भेंट के लिए भेजे और इन पदार्थों के साथ एक घोड़ा भी भेजा। यद्यपि वह घोड़ा ऊपर से मनोहर था पर अशिक्षित एवं अतिशय दुष्ट था ॥४६-४७॥

इति वृत्तान्त सर्वस्वं प्रजल्प्य पुनरादिशत्। कस्त्वं किमर्थमायातः को जानाति तवकथ्यतां ॥४८॥
स ब्रूतेश्रृणु राजेन्द्र क्षत्रियोऽहं यमाह्वयः। भ्रष्ट राज्यत्वतः पल्यां तिष्ठामि नरनायकः ॥४९॥
कृपां कुरु महाभागागच्छ मे मंदिरं द्रुतम्। पवित्रये स्वपादेन सफलीकुरुमज्जनिं ॥५०॥
इति वाक्यात्समाकृष्टोभूपो मगधनायकः। अयात्तन्मंदिरं रम्यं शरीराशर्महायने ॥५१॥
दृष्ट्वा स तद्गृहाचारमगदीद्वचनं परम्। भिल्लसादृश्यतां प्राप्तं चित्तक्षोभनकारकम् ॥५२॥
भो दण्ड मे कथं पथ्यं पवित्रोऽहं विशुद्धधीः। अत्र भोक्तुं न योग्यं मे शुभाचारविवर्जिते ॥५३॥

जिस समय उसकी भेजी हुई भेंट मैंने देखी तो मैं उसके कुटिल भाव को तो समझ नहीं सका किन्तु बिना विचारे ही मैं उसके इस प्रकार के व्यवहार को उत्तम व्यवहार समझकर प्रसन्न हो गया। भेंट में भेजे हुए उन समस्त पदार्थों में मुझे घोड़ा बहुत ही उत्तम मालूम पड़ा, इसलिए बिना विचारे ही उस घोड़े की परीक्षा करने के लिए मैं उस पर सवार होकर वन की ओर चल पड़ा। जिस समय मैं वन में आया तो मैंने आनन्द में आकर उसको कोड़ा मारा किन्तु वह घोड़ा कोड़े के इशारे को न समझकर एकदम ऊपर उछला और मुझे इस भयंकर गड्ढे में पटककर न जाने कहाँ चला गया। इसी कारण मैं इस गड्ढे में पड़ा हुआ इस प्रकार के कष्टों को भोग रहा हूँ ॥४८॥

जब महाराज उपश्रेणिक ने अपना समस्त वृत्तान्त सुना दिया तो उन्होंने राजा यमदण्ड से भी पूछा कि हे भाई तुम कौन हो? कैसे आपका यहाँ आना हुआ! आपकी क्या जाति है? महाराज उपश्रेणिक के समस्त वृत्तान्त को जानकर और भले प्रकार उनके प्रश्नों को भी सुनकर राजा यमदण्ड ने विनय भाव से उत्तर दिया कि हे प्रभो! समस्त भीलों का स्वामी मैं राजा यमदण्ड हूँ और क्रीड़ा करता-करता मैं इस स्थान पर आ पहुँचा हूँ। मेरी जाति क्षत्रिय है और अपने राज्य से भ्रष्ट होकर मैं इस पल्ली में रहता हूँ, इसलिए हे महाभाग कृपा कर आप मेरे घर पधारिए और अपने चरण-कमलों से मेरे घर को पवित्र कर मुझे अनुगृहीत कीजिए ॥४९-५०॥

महाराज उपश्रेणिक तो अपने दुःख को दूर करने के लिए ऐसा अवसर देख ही रहे थे इसलिए जिस समय राजा यमदण्ड ने महाराज उपश्रेणिक से अपने घर चलने के लिए प्रार्थना की तो महाराज उपश्रेणिक ने उसे विनीत समझकर शीघ्र ही उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उसके साथ-साथ उसकी ओर चल दिया ॥५१॥

यद्यपि राजा यमदण्ड क्षत्रियवंशी राजा था और उसका आचार-विचार उत्तम गृहस्थों के समान होना चाहिए था किन्तु उसका सम्बन्ध अधिक दिनों से भीलों के साथ हो गया था इसलिए उसकी क्रिया गृहस्थों की क्रियाओं के समान नहीं रही थीं, भीलों की क्रियाओं के समान हो गई थीं। महाराज उपश्रेणिक ने जब उसके घर जाकर उसके गृहस्थाचार को देखा तो वे एकदम दंग रह गये और राजा यमदण्ड से कहा कि हे यमदण्ड यद्यपि तुम क्षत्रिय राजा हो तथापि अब तुम्हारा गृहस्थाचार क्षत्रियों के समान नहीं रहा है। मैं शुद्ध गृहस्थाचार पूर्वक बने हुए ही भोजन को कर सकता हूँ, पवित्र एवं विशुद्ध ज्ञानी होकर मैं आपके घर में भोजन नहीं कर सकता ॥५२-५३॥

आकर्ण्य यमदण्डोऽप्यगदीद्वचनमुत्तमं। राजन्न रोचते तुल्यमुपायं-चेत्करोम्यहं ॥५४॥
तिलकवतीया पुत्री ममास्ति शुभलक्षणा। जानाति सत्कुलाचारं कुलाचारपरायणा ॥५५॥
सा करिष्यति ते सेवां पथ्यपानादिजां परा। श्रुत्वेति वचनं राजा तुतोष मगधाधिपः ॥५६॥
अनंतरं स्वजनकादेशात्सापि तथाकरोत्। भेषजैर्भोजनैः पानैः शरीरस्वास्थ्यहेतवे ॥५७॥
ततो बभूव सत्स्वास्थ्यं तस्य पुण्यानुभागिनः। दिनैः कतिपयैस्तस्याः करभेदाद्विशेषतः ॥५८॥
स्वास्थ्ये जातेऽथ सद्राज्ञो महास्नेहविवर्द्धनात्। तस्या उपरि स राजा मोहं प्राप्तो महामतिः ॥५९॥
अहोरूपमहोध्वानश्चाहोयानं शुभ्रामतिः। हरिणी नेत्र सादृश्यं यस्य नेत्रयुगं परं ॥६०॥
ललाटं खंडचंद्राभं वक्त्रं चन्द्रसमप्रभम्। दधाति कोकिलध्वानं या सौभाग्यखनिः परा ॥६१॥

जिस समय राजा यमदण्ड ने महाराज उपश्रेणिक के इस प्रकार के वचनों को सुना तो उसने तत्क्षण इस भाँति विनयपूर्वक कहा कि हे प्रभो! यदि आप ऐसे गृहस्थाचार संयुक्त मेरे घर में भोजन करना नहीं चाहते हैं तो आप घबराये नहीं गृहस्थाचार पूर्वक भोजन के लिए मेरे यहाँ दूसरा उपाय भी मौजूद है। वह उपाय यही है कि मेरे अत्यन्त शुभ लक्षणों को धारण करने वाली, भली प्रकार गृहस्थाचार में प्रवीण, एक तिलकवती नाम की कन्या है वह कन्या शुद्ध क्रियापूर्वक भोजन पानी आदि से आपकी सेवा करेगी। भीलों के स्वामी यमदण्ड के इस प्रकार के विनम्र वचनों को सुनकर मगध देशाधिपति महाराज उपश्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५४-५६॥

उसी दिन से अपने पिता की आज्ञा से कन्या तिलकवती ने भी महाराज उपश्रेणिक की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी। कभी वह कन्या एक प्रकार का और कभी दूसरे प्रकार का मिष्ट भोजन बनाकर महाराज को प्रसन्न करने लगी। कभी महाराज के रोग को भली-भाँति पहचान कर वह उत्तम औषधि युक्त उनको भोजन कराती और कभी-कभी अतिशय मधुर शीतल जल से महाराज के मन को सन्तुष्ट करती इस प्रकार कुछ दिनों के बाद औषधि संयुक्त भोजनों से विशेषतया उस कन्या के हाथ से भोजन करने से महाराज उपश्रेणिक का स्वास्थ्य ठीक हो गया तथा महाराज उपश्रेणिक पूर्व की तरह निरोग हो गये ॥५७-५९॥

जब तक महाराज सरोग रहे तब तक तो मैं किस प्रकार निरोग होऊँगा ? मेरा यह रोग किस रीति से नष्ट होगा ? इत्यादि चिन्ता के सिवाय महाराज के चित्त में किसी विचार ने स्थान नहीं पाया, किन्तु निरोग होते ही निरोगता के साथ-साथ उस कन्या के स्नेह, सेवा, रूप एवं सौंदर्य पर अतिशय मुग्ध होकर वे विचार करने लगे कि इस कन्या का रूप आश्चर्य कारक है और इसके मनोहर वचन भी आश्चर्य करने वाले ही हैं तथा इसकी यह मन्द-मन्द गति भी आश्चर्य ही करने वाली है, इसकी बुद्धि अतिशय शुभ है। इसके दोनों नेत्र चकित हरिणी के समान चंचल एवं विशाल हैं। अर्ध चन्द्र के समान मनोहर इसका ललाट है और इसका मुख चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति का धारण करने वाला है। यह कोकिला के समान अतिशय मनोहर शब्दों को बोलने वाली है, रूप एवं सौभाग्य की खान है ॥६०-६१॥

निधिकुंभाविवोत्तुंगौ मार सर्पकलंकितौ। पीनौ पयोधरौ यस्या राजते प्राणिदुर्लभौ ॥६२॥
ययोर्मध्ये सदा याति कामज्वरसुशांतये। नदीभोगिमृगाकीर्णास्तनोपांतविराजिता ॥६३॥
ईदृशी भुवने नारी न दृष्टा नापि दृश्यते। सुन्दराकार सर्वांगा कटाक्षक्षेपविभ्रमा ॥६४॥
इति स्वरूपसौभाग्यं वितर्क्य निजमानसे। यमदण्डं प्रति प्राह वचनं स महीधरः ॥६५॥
देहि ते पुत्रिकां मह्यं गुणभूमिं सुखाकराम्। मन्येत्वतः सुखं जातं यतो मम महामते ॥६६॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य प्राख्यद्यमनराधिपः। मागधं प्रति संप्रीत्या कृतमौलिनमस्क्रियः ॥६७॥
क्व मे सुता क्व राजात्वमनेकस्त्री समाश्रितः। वर्तते बहवो नार्यस्तव दिव्यांगना समाः ॥६८॥
पुत्राश्च बहवो राजंस्तव श्रेणिकमुख्यकः। महाबलः समाकीर्णाः संति धीरा महीभृतः ॥६९॥
लघीयसी सुतेयं मे तुभ्यं दत्ता मयाऽधुना। पराभवभवां पीडां सहेत किमु योषितः ॥७०॥
न जाने तनुजो राजन् भवितास्यां न वा शुभः। कदाचिज्जातवान्पूर्व पुत्रपादप्रघर्षणात् ॥७१॥
दुःखभाग् जायते नूनं सुतदुःखेन दुःखिनी। सुता मम भवेन्नूनं पराभववशंगता ॥७२॥

अतिशय मनोहर इस कन्या के ये दोनों स्तन, खजाने के दो सुवर्णमय कलशों के समान उन्नत, कामदेवरूपी सर्प से कलंकित, अतिशय स्थूल हैं और हर एक मनुष्य को सर्वथा दुर्लभ हैं और इसके दोनों स्तनों के मध्य में अत्यन्त मनोहर, कामदेवरूपी ज्वर को दमन करने वाली नदी है। इसके समस्त अंगों की ओर दृष्टि डालने से यही बात अनुभव में आती है कि इस प्रकार सुन्दराकार वाली रमणी रत्न न तो कभी देखने में आई और न कभी सुनने में आई और न आवेगी ॥६२-६४॥

महाराज उपश्रेणिक इस प्रकार कन्या के स्वरूप की उधेड़-बुन में लगे थे कि इतने में ही राजा यमदण्ड उनके पास आये और उनसे महाराज उपश्रेणिक ने कहा कि हे भीलों के स्वामी यमदण्ड! यह तुम्हारी तिलकवती नाम की कन्या नाना प्रकार के गुणों की खान एवं अनेक प्रकार के सुखों को देने वाली है, आप इस कन्या को मुझे प्रदान कीजिए क्योंकि मेरा विश्वास है कि मुझे इसी से संसार में सुख मिल सकता है ॥६५-६६॥

महाराज उपश्रेणिक के इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा यमदण्ड ने इस विनय भाव से कहा कि हे प्रभो! कहाँ तो आप समस्त मगध देश के प्रतिपालक ? और कहाँ मेरी अत्यन्त तुच्छ यह कन्या? हे महाराज देवांगनाओं के समान अतिशय रूप और सौभाग्य की खान आपके अनेक रानियाँ हैं तथा कुमार श्रेणिक को आदि लेकर आपके ही पुत्र हैं जो अतिशय बलवान्, धीर और समस्त पृथ्वी-तल की भली प्रकार रक्षा करने वाले हैं। इसलिए अत्यन्त तुच्छ यह मेरी प्यारी पुत्री प्रथम तो आपके किसी काम की नहीं, यदि दैवयोग से इसका सम्बन्ध आपसे हो भी जाये ? तो हे प्रभो! क्या यह अन्य रानियों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखी जाने पर उस अपमान से उत्पन्न हुई पीड़ा को सहन कर सकेगी? और हे प्रजापालक! प्रथम तो मुझे विश्वास नहीं कि इसके कोई पुत्र होगा? ॥६७-७२॥

न दास्यामि महाराजन्नतः पुत्रीं मम प्रियां। विधास्यसि व्रतं चेत्थं यदि तुभ्यं ददाम्यहं ॥७३॥
कदाचिन्मम पुत्र्याश्च तनुजो यदि जायते। तस्मै राज्यं प्रदातव्यमिति नियमो विधीयतां ॥७४॥
तर्हि दास्यामि पुत्रीं मे नान्यथेति वचो मम। तत्रथेति प्रपद्यासौ मागधः परिणीतवान् ॥७५॥
ततो राजगृहं गंतुं चचाल सह संपदा। तया समं परां क्रीडां कुर्वन्नाना सुखोद्यतः ॥७६॥
नगराः सेवकाः सर्वे तदा पुत्राः समुत्सुकाः। आगच्छतं परिज्ञाय बभूवुः सोद्यमाः शुभाः ॥७७॥
सन्मुखाः सकलाः लोकाश्चेलुश्चंचलमानसाः। समीक्ष्य तं प्रभुं नेमुः सर्वे तत्पादपंकजम् ॥७८॥
चिर वासर संरूढ विप्रलंभादवाप्य तं। निर्निमेषत्वमत्यंतं सर्वे संतोषपूरिताः ॥७९॥
संभाष्य वचनं रम्यमन्योन्यं प्रीत्यवंचिताः। स्थित्वा क्षणं क्षणैः सार्द्धं केलुः सर्वे पुरं प्रति ॥८०॥

कदाचित् दैवयोग से इसके कोई पुत्र भी उत्पन्न हो जाये और श्रेणिक आदि कुमारों का वह सदा दास बना रहे तो भी उसको अवश्य दुःख ही होगा और पुत्र के दुःख से दुःखित यह मेरी प्राणस्वरूप पुत्री अन्य रानियों द्वारा अवश्य ही अपमानित रहेगी। इसलिए उपरोक्त दुःखों के भय से मैं अपनी इस प्यारी पुत्री का आपके साथ विवाह करना उचित नहीं समझता। हाँ, यदि आप मुझे इस प्रकार का वचन देवें कि जो इससे पुत्र उत्पन्न होगा वही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा तो मैं हर्षपूर्वक आपकी सेवा में अपनी पुत्री को समर्पण कर सकता हूँ। आप जो उचित न्याय एवं अन्याय समझे सो करें आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ ॥७३-७५॥

राजा यमदण्ड के इस प्रकार के वचन सुनकर महाराज उपश्रेणिक ने उसकी समस्त प्रतिज्ञाओं को स्वीकार किया और प्रसन्नता पूर्वक उसकी तिलकवती पुत्री के साथ विवाह कर उसके साथ भाँति-भाँति की क्रीड़ा करते हुए महाराज उपश्रेणिक विशाल सम्पत्ति के साथ राजगृह नगर को रवाना हुए और मार्ग में अनेक प्रकार वन-उपवनों की शोभाओं को देखते राजगृह नगर के समीप आकर पहुँचे। महाराज उपश्रेणिक के आने का समाचार सारे नगर में फैल गया महाराज उपश्रेणिक के शुभागमन सुनते ही समस्त नगर-निवासी मनुष्य, राजसेवक एवं महाराज के समस्त पुत्र, अपने को धन्य और पुण्यात्मा समझकर, उनके दर्शन के लिए अतिशय लालायित होकर शीघ्र ही उनके सामने स्वागत के लिए आये और आकर विनयपूर्वक महाराज के चरणों को नमस्कार किया ॥७६-७८॥

चिरकाल से महाराज के वियोग से दुःखित उनके दर्शन से संतुष्ट हो समस्त जन उपश्रेणिक महाराज से प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए उन लोगों ने कुछ समय तक वहीं ठहरकर पीछे महाराज से नगर में प्रवेश करने के लिए प्रार्थना की तथा महाराज के चलने पर समस्त नगर निवासी जनों ने महाराज के पीछे-पीछे राजगृह नगर की ओर प्रस्थान किया ॥७९-८०॥

आनकानां महाध्वाना: शंखकाहलनिस्वना:। गंभीरदुंदुभिध्वाना बभूवुरटनोत्सवे ॥८१॥
नटंति लयसंरूढा हावभावावलंबिता:। नर्त्तक्यस्तर्जयंत्यश्व सुराणां वामलोचना: ॥८२॥
सतोरणं पुरं प्रापत्केतुमालाविराजितम्। नानाशोभान्वितं पश्यंश्चतु: पथ शतोत्तमं ॥८३॥
अहोपुण्यमहोपुण्यं पश्यतोत्तमतां गतं। क्व भूपतिर्महाधीरोऽटव्यां नि:सारणं क्व च ॥८४॥
क्वेयं कन्या शुभाकारा पूर्णचंद्राननाब्जिका। मृगाक्षी कमलारूपा पीनोन्नतपयोधरा ॥८५॥
एतया सह संयोग: क्व प्राप्तोऽनेन पुण्यत:। भूपनि:सारणं मन्येऽहमेतत्कृत एव च ॥८६॥
विपदो यांति संपत्त्वं दु:खं सौख्यायते पुन:। पुण्यान्नृणां न संदेहोऽत: कार्यं सुकृतं बुधै: ॥८७॥
इत्यादि शुभशंसीनि जनानां वचनानि च। श्रृण्वन् स मंदिरं प्राप्त: सजानि: सह संपदा ॥८८॥
तस्यै मनोहरं रम्यं सप्तभूमं गृहं ददौ। उपश्रेणिकभूपालस्तद्‌गुणग्रामरंजित: ॥८९॥
नवोढ्‌या तया साकं रेमे रंजितमानस:। तद्वक्त्रपंकजेऽसौ भूत्षट्पदोरसचुम्बक: ॥९०॥

महाराज उपश्रेणिक के नगर में प्रवेश करते ही उनके शुभागमन के उपलक्ष्य में अतिशय उत्सव मनाया गया। पटह, शंख, काहल, दुन्दुभि आदि मनोहर बाजे बजने लगे तथा उत्तमोत्तम हाव-भावों के दिखाने में प्रवीण, नृत्य-कला में अति चतुर देवांगनाओं के मद को चूर करने वाली और अति सुन्दर वेश्याएँ अधिक आनन्द-नृत्य करने लगीं। महाराजा उपश्रेणिक बहुत दिनों के बाद नगर के देखने से अति आनन्दित हुए और सर्वांग सुन्दरी महारानी तिलकवती के साथ-साथ अनेक प्रकार के तोरणों से शोभित, नीली-पीली आदि ध्वजाओं से सुशोभित, चित्त को हरण करने वाले नाना प्रकार के चौकों से मण्डित, राजगृह नगर में प्रवेश किया ॥८१-८३॥

राजगृह नगर के राजमार्ग में जाते हुए महाराज उपश्रेणिक को देखकर अनेक नगर निवासी अपने मन में इस प्रकार कल्पना करते हुए कहते थे कि अहा! पुण्य का माहात्म्य विचित्र है देखो कहाँ तो अत्यन्त धीर-वीर महाराज उपश्रेणिक ? कहाँ उत्तमांगी चन्द्रमुखी, मृगाक्षी, लक्ष्मी के समान अति मनोहर, स्थूल उन्नत स्तनों से मण्डित, कन्या तिलकवती? कहाँ महाराज उपश्रेणिक का विशाल वन में गड्ढे में गिरना और निकलना ? कहाँ पीछे इस कन्या के साथ विवाह ? जान पड़ता है इस कन्या की प्राप्ति के लिए महाराज उपश्रेणिक को समस्त पुण्य मिलकर वहाँ ले गये थे। इसमें सन्देह नहीं जो मनुष्य पुण्यवान् हैं उनके लिए विपत्ति भी सम्पत्ति स्वरूप और दु:ख भी सुखस्वरूप हो जाता है। बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि वे सदा पुण्य का ही संचय करें ॥८४-८७॥

इस प्रकार नगरवासियों के कथा-कौतूहलों को सुनते महाराज उपश्रेणिक ने रानी तिलकवती के साथ-साथ अनेक प्रकार की शोभाओं से सुशोभित राजमंदिर में प्रवेश किया। राजमंदिर में प्रवेश करने पर महाराज उपश्रेणिक ने तिलकवती के उत्तमोत्तम गुणों से मुग्ध हो उसे अतिशय मनोहर क्रीड़ा योग्य मकान में ठहराया और नवोढ़ा तिलकवती के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगे।

नेत्रानुलीलया रेजे तस्या भूयो दृढांगकः। चंदनद्रुमवल्लयेव नागोऽनंग समुत्सुकः ॥९१॥
वक्षः स्थलवने तस्या मोहोक्तेन मृगायितं। स्तनद्वंद्व महारम्यं क्रीड़ागिरि विराजते ॥९२॥
पयोधरमहाकुंभ निधौ सर्पायते पुनः। यस्य हस्तद्वयं कुर्वन्कुच वस्त्रापसारणं ॥९३॥
हंसायते तरां धीमान् यस्याज घनसारसे। रतिपानीय सुस्वादे मदनोत्कर पंकजे ॥९४॥
क्रीड़येत्थं च भूपालो व्याकुली कुरुते च तां। क्रीड़ाब्जताड़नेनैव चुंबनेन घनेन च ॥९५॥
ततस्तस्यां सुतो जातश्चिलातीनामभाक् शुभः। अचिरेणैव कालेन वृद्धिं पत् शुभ्रायतः ॥९६॥
इति सुकृतविपाकात् पाकरम्यां नवीनां। रमयति वरकांतां कांतिदीप्रां प्रवीणाम् ॥९७॥
सुकृत फलं समाजोद्धूतरूपां कलां कां। सनिखिल सुरनारी रूपसंपत्सभानां ॥९८॥

कभी-कभी तो महाराज कमल के रस-लोलुप भँवरे के समान रानी तिलकवती के मुख-कमल के रस का आस्वादन करते और कभी-कभी चन्दन गन्ध-लोलुप भ्रमर के तुल्य उसके साथ उत्तान क्रीड़ा करते। जान पड़ता था कि स्तनरूपी दो मनोहर क्रीड़ा पर्वतों से युक्त महारानी तिलकवती का वक्षःस्थल वन है और महाराज उपश्रेणिक उस वन में विहार करने वाले मनोहर हिरण है। जब उपश्रेणिक अपने हाथों से महारानी तिलकवती के स्तनों पर से अति मनोहर वस्त्र को खींचते थे तब जान पड़ता था कि उसके स्तनरूपी खजाने के कलशों पर उनकी रक्षार्थ दो सर्प ही बैठे थे। महारानी तिलकवती के मैथुनरूपी जल से युक्त कामदेवरूपी मनोहर कमल के आधारभूत दोनों जंघारूपी सरोवर के बीच महाराज उपश्रेणिक ऐसे मालूम पड़ते थे मानो सरोवर में हंस ही क्रीड़ा कर रहा है। रानी तिलकवती के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर महाराज उपश्रेणिक ने उसे केवल क्रीड़ा के ताड़नों से व्याकुल ही नहीं किया था किन्तु निर्दयता के साथ वे उसे चुम्बनों से भी व्याकुल करते थे ॥८८-९५॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक चिरकाल क्रीड़ा करने से रानी तिलकवती के चलाती (चिलाती) नाम का उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ और अत्यन्त भाग्यशाली वह चिलाती थोड़े ही काल में बड़ा हो गया इस रीति से पुण्य के महात्म्य से अत्यन्त मनोहर, नवीन स्त्रियों में उत्तम, अत्यन्त उज्ज्वल, प्रत्येक कला में प्रवीण, समस्त पुण्य फलों से उत्पन्न, उत्तम रूप वाली और समस्त देवांगनाओं के समान अत्यन्त उत्कृष्ट, भाग्यवती तिलकवती को महाराज उपश्रेणिक नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से सन्तुष्ट करते थे तथा मोह से नाना प्रकार की काम पैदा करने वाली चेष्टाओं को करने वाली, अत्यन्त मनोहर, अपने शरीर को दिखाने वाली अत्यन्त प्रौढ़ा, देदीप्यमान वस्त्रों से शोभित, मुकुट जड़ित मणियों की किरणों से अधिक शोभायमान, अत्यन्त निर्मल रूपवाली और पुण्य की मूर्ति, तिलकवती भी अपने हाव-भावों से, नाना प्रकार के भोग-विलासों से महाराज उपश्रेणिक के साथ क्रीड़ा कर उन्हें तृप्त करती थी ॥९६-९८॥

हावैर्भावैर्विलासै विरमयति नृपम् सापि मोहानुभावात्...
कुर्वंति कामचेष्टां सुभग निजतनुं
दर्शयंती प्रगल्भां चंचद्वस्त्रासभूषा मुकुटमणिकरालंकृता तार हारा
स्वर्गाधीशं शचीवा विशदगुणगणालंकृतापुण्यरूपा ॥९९॥
धर्माज्जन्मकुले सतां भवति वै धर्माद्वरं मंदिरं,
धर्माद्रूपवती सती शुभलता सीमंतिनी जायते।
धर्माद्भूतिरनाकुला शिवसुखं धर्मान्महानंदता,
मत्वा धर्मफलं कुरुध्वमखिलं राज्यादिनाकाप्तिकं ॥१००॥

इति श्रेणिक भवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभ तीर्थंकर-चरित्रे भट्टारक श्रीशुभचंद्राचार्य विरचिते उपश्रेणिक नगरप्रवेशनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

सच है धर्मात्मा प्राणियों को धर्म की कृपा से ही उत्तम कुल में जन्म मिलता है, धर्म की कृपा से ही उत्तमोत्तम राजमंदिर मिलते हैं, धर्म के माहात्म्य से ही मनोहर रूपवाली, भाग्यवती, सती, सर्वोत्तम स्त्री-रत्न की प्राप्ति होती है, धर्म से ही समस्त प्रकार की आकुलता रहित विभूति प्राप्त होती है एवं अत्यन्त आनंद को देने वाले धर्म से ही मोक्ष-सुख भी मिलता है। इसलिए उत्तम मनुष्यों को उचित है कि वे उत्तमोत्तम राज्य, स्वर्ग, मोक्ष इत्यादि सुखों के प्राप्त कराने वाले धर्म के फलों को भली-भाँति जानकर धर्म में अपनी बुद्धि को स्थिर कर धर्म को धारण करें ॥९९-१००॥

इस प्रकार महाराज श्रेणिक के जीव भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित महाराज उपश्रेणिक के नगर-प्रवेश को कहने वाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीयः सर्गः

मंगलाचरणम्

नौमि वृषभनामानं जिनं संजितकल्मषं।
पुराणपुरुषं रम्यं केवलज्ञान भास्करं ॥१॥

नृपचिंता

अथैकदा निजे चित्ते चिंतयन्निति मागधः।
एतेषां बहुपुत्राणां कस्मै राज्यं ददाम्यहं ॥२॥

वचनबद्धता

इति चित्ते चिरं राजा वितर्क्य चिरचिंतकः।
स्मरं चिलातकी पुत्रे राज्यं पूर्वप्रदत्तकं ॥३॥
नैमित्तिकं समाहूय पप्रच्छेति नराधिपः।
तदैकांते कलाकीर्णो राज्यदत्तिविचिंतकः ॥४॥

वार्तालाप प्रश्न—

निमित्तशास्त्रवेत्तस्त्वं विज्ञातार्थमहामते।
ज्ञातज्योतिष्शास्त्रार्थ कथयस्व मनोगतं ॥५॥
एतेषां मम पुत्राणां राज्यभोक्ता भविष्यति।
को मध्ये वद शीघ्रत्वं विचार्य विधिवत्पुनः ॥६॥
संविचार्य चिरं चित्ते निमित्तज्ञान कोविदः।
अष्टांगनिर्निमित्तैश्च मत्वा प्रोवाच सद्गिरां ॥७॥
भो भूप! शृणु राज्यस्य योग्यं पुत्रं वदाम्यहं।
मत्त्वा समस्तवृत्तांतं सर्वशास्त्रपरायणः ॥८॥

समस्त कर्मों से रहित, प्राचीन, मनोहर, अखण्ड केवलज्ञानरूपी सूर्य के धारक, प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभदेव भगवान् को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

अनन्तर इसके महाराज मगधेश्वर उपश्रेणिक के मन में इस प्रकार की चिन्ता हुई कि मेरे बहुत-से पुत्र हैं। इनमें से मैं किस पुत्र को राज्य का भार दूँ? इस प्रकार अतिशय दूरदर्शी महाराज उपश्रेणिक ने इस बात को चिरकाल तक विचार कर और इस बात को भी भली-भाँति स्मरण कर कि तिलकवती के पुत्र चिलाती को मैंने राज्य दे दिया है। किसी ज्योतिषी को एकान्त में बुलाकर पूछा-हे नैमित्तिक! तू ज्योतिष शास्त्र का जानने वाला है इस बात को शीघ्र विचार कर कह कि मेरे बहुत-से पुत्रों में राज्य का भोगने वाला कौन पुत्र होगा ? महाराज की इस बात को सुनकर ज्योतिर्विद नैमित्तिक अष्टांग निमित्तों से भली-भाँति महाराज के प्रश्न को विचार कर बोला महाराज मैं ज्योतिषशास्त्र के बल से ''आपके पुत्रों में से राज्य का भोगने वाला कौन-सा पुत्र होगा''

१. मिष्ठान्न भक्षणम् :

कुमारेभ्यश्च सर्वेभ्यः शर्कराघटवृन्दके। दत्ते योन्येन कुंभं तं धारयित्त्वा स्वलीलया ॥९॥
आगमिष्यति सिंहस्य द्वारं संविश्य सद्गृहं। स भविष्यति राज्यस्य भोक्ता नात्र विचारणा ॥१०॥

२. ओस-जल से घटपूर्ति :

पुनर्निमित्तमाज्ञेय यः प्रपूरयति स्फुटं। कुंभं तृणजलेनैव नूतनं राज्यभाक् स हि ॥११॥

३. कुत्तों से भोजन की रक्षा :

पुनरस्ति महाभाग निमित्तं निश्चयात्मकं। सर्वेषु च कुमारेषु भोजनार्थं स्थितेषु च ॥१२॥
एकपंक्तौ प्रभुक्तेषु पायसेषु शुभेषु च। शर्कराघृतपूपादि भोजनेषु वरेषु च ॥१३॥
नानाव्यंजनयुक्तेषु माषान्नमंडकादिषु। करंबकेषु रम्येषु नानास्वादु सुभाविषु ॥१४॥
भुज्यमानेषु भो भूप! मोक्तव्या मृगदंशकाः। दीर्घदंष्ट्रा महाक्रूरा व्याघ्रा इव मदोद्धताः ॥१५॥
त न्निवार्य स्वबुद्ध्या यो भुनक्ति वरभोजनं। मगधेशं विजानीहि त्वत्समं नात्र संशयः ॥१६॥

४. सिंहासन-रक्षा :

चतुर्थमिंगितं विद्धि दह्यमाने पुरे वरे। सिंहासनमहाछत्रचामरादि परिग्रहं ॥१७॥
परिगृह्य विनिर्गत्य पुराद्यः स्वयमस्तके। नियमात्तं विजानीहि महामुकुटबद्धकं ॥१८॥

कहता हूँ आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥१-८॥

उसके जानने का पहला निमित्त तो यह है कि-आपके जितने पुत्र हैं सब पुत्रों को आप एक-एक घड़े में शक्कर भर के दीजिए उनमें जो पुत्र किसी दूसरे मनुष्य पर उस घड़े को रखकर निर्भय सिंह के द्वार में प्रवेश कर अपने घर में खेलता हुआ चला आवे तो जानिये कि वही पुत्र राज्य का अधिकारी होगा ॥९-१०॥

दूसरा निमित्त यह है कि-आप अपने सब कुमारों को एक-एक नवीन घड़ा दीजिये और उनसे कहिये कि हर एक ओस के जल से उस घड़े को भरकर ले आवे जो पुत्र ओस से घड़े को भर कर ले आवेगा अवश्य वही पुत्र राजा होगा ॥११॥

तीसरा निमित्त यह भी है कि-आप अपने सब पुत्रों को एक साथ भोजन करने के लिए बैठा दीजिये और आप उन पुत्रों को खीर, शक्कर, पूए और दाल-भात आदि सर्वोत्तम स्वादिष्ट पदार्थों को एक साथ बैठाकर खिलाइये। जिस समय वे भोजन के स्वाद में अत्यन्त लीन हो जावें उस समय भयंकर दाढ़ों वाले अत्यन्त क्रूर तथा बाघों के समान मत्त कुत्तों को धीरे से छुड़वा दीजिए उस समय जो पुत्र उन भयंकर कुत्तों को हटाकर आनन्दपूर्वक निर्भयता से भोजन करेगा वही पुत्र आपके समान इस मगधेश का निःसंदेह राजा हो सकेगा ॥१२-१६॥

चौथा निमित्त यह समझिये-जिस समय नगर में आग लगे उस समय जो पुत्र सिंहासन, छत्र, चँवर आदि पदार्थों को अपने सिर पर रखकर नगर से बाहर निकले, समझ लीजिए कि मुकुट का धारण करने वाला वही राज्य का भोगने वाला होगा ॥१७-१८॥

तथान्यच्च परिज्ञानं शृणु मागधनायकः। मोदकैः खज्जकैश्चान्यैः करंडकसमूहकं ॥१९॥
पूरयित्वा मुखे मुद्रां कृत्वा बद्धवा तथा घटाः। जलैर्नवीनाः संपूर्य बद्धवक्त्रा मनोहराः ॥२०॥
भिन्ने भिन्ने गृहे रम्ये करंडकघटाः पुनः। स्थापनीयाः कुमारैकः स्थापनीयो गृहे गृहे ॥२१॥
अनुद्घाट्य घटं रम्यं करंडकमनुत्तरं। पानीयं पीयते येनभुज्यतेऽन्नं स राज्यभाग् ॥२२॥
निमित्तपंचकं राजन् वर्त्ततेऽत्र विचारणा। विधातव्या त्वया धीमन् राज्यज्ञानस्यसिद्धये ॥२३॥
इति श्रुत्वा महीपालो विससर्ज विशालधीः। नैमित्तिकं परीक्षायै चिंतयन्निति मानसे ॥२४॥
अहो! राज्यं मया दत्तं चिलातीसूनवे पुरा। निमित्तात्कस्य पुत्रस्य भविष्यति न वेद्म्यहं ॥२५॥
अन्यदा च समाहूताः सभामध्ये शुभाशयाः। सर्वे सुताः समागत्य स्थिताः प्रणतमौलयः ॥२६॥
राज्ञोक्तं भो सुताः सर्वे गृह्णीध्वं शर्कराघटं। एकैकमिति वाक्यं हि श्रुत्वा तत्करणोत्सुकाः ॥२७॥
राजाज्ञया ततः सर्वे गृहीत्वा स्वकरे घटं। सिंहद्वारे क्षणं स्थित्वा गताः स्वं स्वं गृहं प्रति ॥२८॥
श्रेणिकोन्येन संग्राह्य सेवकेन घटं शुभं। सिंहद्वारेऽगमद्धीमांल्लीलया स्वगृहं प्रति ॥२९॥

हे महाराज! राज्य की प्राप्ति का पाँचवाँ निमित्त यह भी है कि-थोड़े-से पिटारों को उत्तमोत्तम लड्डू तथा खाजे आदि मिष्ठान्नों से भरवा कर, उनके मुँह को अच्छी तरह से बंद कराकर और मुहर लगवा कर हरेक के घर में रखवा दीजिये तथा उन पिटारों के साथ शुद्ध निर्मल मधुर जल से पूर्ण एक-एक उत्तम घड़े को भी मुँह बंद कर उसी तरह प्रत्येक के घर में रखवा दीजिये फिर प्रत्येक कुमार को एक-एक घड़े में से पानी तथा एक-एक पिटारे में से लड्डू आदि के खाने की आज्ञा दीजिये। उनमें से जो कुमार जल से भरे हुए घड़े के मुख को खोले बिना ही पानी पी लेवे तथा पिटारे से बिना खोले ही लड्डू आदि पदार्थों को खा लेवे समझ लीजिये कि वही पुत्र राज्य का भोगने वाला होगा ॥१९-२२॥

इस प्रकार नैमित्तिक के बताये हुए पाँच निमित्तों को सुनकर महाराज ने उस नैमित्तिक को विदा किया और ज्योतिषी के बतलाये हुए उन निमित्तों से कुमारों की परीक्षा करने के लिए स्वयं ऐसा विचार करने लगे कि आश्चर्य की बात है कि राज्य तो मैंने चिलाती को देने के लिए दृढ़ संकल्प कर लिया है लेकिन अब नहीं जान सकता कि इन निमित्तों से परीक्षा करने पर राज्य का कौन भोगने वाला ठहरेगा ॥२३-२५॥

कुछ समय बीत जाने पर महाराज ने एक समय अपने समस्त पुत्रों को सभा में बुलाया और सरल स्वभाव से वे लोग महाराज की आज्ञा के अनुसार सभा में आकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। उनको भली-भाँति बैठे हुए देखकर महाराज ने कहा-हे पुत्रो! मैं जो कहता हूँ सुनो-आप लोग एक-एक शक्कर का घड़ा लेकर सिंह-द्वार की ओर जाइये ॥२६-२७ ॥

महाराज के इस वचन को सुनकर महाराज की आज्ञा के पालन करने वाले सब कुमार महाराज की आज्ञा से एक-एक शक्कर के घड़े को स्वयं लेकर सिंह-द्वार की ओर गये तथा थोड़ी देर वहाँ पर ठहरकर अपने अपने घरों को चले आये पर चतुर कुमार श्रेणिक किसी अन्य सेवक

श्रेणिकोऽयं शुभायत्तो राज्ययोग्यो भविष्यति। कथं दास्यामि राज्यं मे श्री चिलातीस्वसूनवे ॥३०॥
अन्यदाहूय स सूनून् वरप्रीतिकरान् परान्। बभाषे नृपतिः पुत्राः शृणुध्वं वचनं मम ॥३१॥
ततः प्रातर्गताः सर्वे भिन्ना भिन्नास्तृणाकुले। प्रदेशे घटमादाय सोत्सुकास्ते जलकृते ॥३२॥
सार्द्रतृणं च संप्राप्य संतुष्टास्ते कृतोद्यमाः। तृणोत्थं जलमादातुं स्थिता भिन्ने प्रदेशके ॥३३॥
पानीयं स्वकरेणैव तृणोत्थं नूतने घटे। क्षिपंत्यादाय शीघ्रं ते तच्छुष्यति घटोदरे ॥३४॥
आघश्रं ते जलेनापि व्याकुलीभूतमानसाः। तत्र स्थिता न संपूर्त्तिमेकस्यापि घटोऽभजत् ॥३५॥
राज्ञो निरूप्य सर्वस्वं चिलातीपुत्रकादयः। अधोवक्त्रा गृहं जग्मुरसिद्धोक्तस्वकार्यकाः ॥३६॥
श्रेणिकोऽपि स्वयं बुद्ध्यागमत्सार्द्रतृणाकुलं। तत्र सार्द्रसुचेलेन गृहीत्वा तृणजं जलम् ॥३७॥

के सिर पर घड़े को रखवा कर सिंह-द्वार में गया तथा पीछे खेलता हुआ अपने घर को चला गया ॥२८-२९॥

जब महाराज उपश्रेणिक ने यह बात सुनी तब वे चकित होकर रह गये और अपने मन में विचार करने लगे निःसंदेह भाग्यशाली श्रेणिककुमार ही राज्य का अधिकारी होगा अब मैं अपने राज्य को चिलाती कुमार के लिए कैसे दे सकूँगा ? इस प्रकार कुछ समय तक विचार करते-करते महाराज ने दूसरे निमित्त की परीक्षा करने के लिए अपने पुत्रों को बुलाया और कहा-हे पुत्रो! तुम सब आज फिर मेरी बात को सुनो, सब लोग एक-एक नवीन घड़ा लो और उसको अपनी चतुरता से ओस के जल से मुँह तक भरकर लाओ। महाराज का वचन सुनते ही वे समस्त राजकुमार सबेरा होते ही बड़े उत्साह के साथ ओस के जल से घड़ों को भरने के लिए अनेक प्रकार के तृण युक्त जगहों पर गये और वहाँ पर ओस के जल से भीगे तृणों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े प्रयत्न से तृणों के जल को ग्रहण करने के लिए अलग-अलग बैठ गये। जिस समय वे उस ओस के पानी को नवीन घड़े में भरते थे घड़े के भीतर जाते ही क्षणभर में वह ओस का पानी सूख जाता था। इस तरह ओस के जल से घड़ा भरने के लिए उन्होंने यथाशक्ति बहुत परिश्रम किया और भाँति-भाँति के प्रयत्न किये किन्तु उनमें से एक भी कुमार घड़ा को भर न सका किन्तु एकदम घबराकर सब-के-सब कुमार अपने-अपने स्थानों में चुपचाप बैठ गये। बहुत समय बैठने पर जब उन्होंने यह बात निश्चय समझ ली कि घड़े नहीं भरे जा सकते तब चलाती आदि सब राजकुमार महाराज की इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो लज्जा के मारे मुख नीचे किये हुए अपने-अपने घरों को चले गये परन्तु अत्यन्त बुद्धिमान् कुमार श्रेणिक महाराज की आज्ञा पालन करने के लिए जिस प्रदेश में ओस के जल से भीगे हुए बहुत तृण थे, गया और उन तृणों पर उसने एक कपड़ा डाल दिया। जिस समय वह कपड़ा ओस के जल से भीग गया तब उस भीगे कपड़े को निचोड़-निचोड़कर उस जल से घड़े को अच्छी तरह भरकर वह अपने घर ले आया और ओस के जल से भरे हुए उस घड़े को महाराज उपश्रेणिक के सामने रख दिया। महाराज ने जिस समय कुमार श्रेणिक द्वारा लाये ओस के जल से भरे हुए घड़े को देखा तो

क्षणात्संभृत्य कुंभं तं तृणजेन जलेन च। आगत्य नृपतेः कुंभं ददर्श जलसंभृतम् ॥३८॥
महांतं तं परिज्ञाय राजा चिंतापरोऽभवत्। राज्यभोक्ताऽयमेवात्र मम वाक्यस्य का गतिः ॥३९॥
एकदा तेन सर्वे ते भोजनार्थं च स्वगृहे। आकारिता महाप्रीत्या राजकार्यपरीक्षया ॥४०॥
भोजनार्थं निविष्टेषु तेषु सर्वेषु सादरं। अमत्राणि शुभान्येव मुक्तानि स्वर्णजानि च ॥४१॥
तेभ्यश्च खज्जकव्यूहामोदकालायनश्रियः। पायसं शर्करापूर्णं मंडका घृतमंडकाः ॥४२॥
मुद्गचूर्णानि रम्याणि वरं घृतवरं तथा। वरं दधिवरं सारं नानापक्वान्नराशयः ॥४३॥
पूयव्यूहाः सछिद्राणि माषान्नानि मनोहरं। सुगंधमाज्यवृंदं च नानाव्यंजन राशयः ॥४४॥
ओदनं द्विदलैः पूर्णं तक्रोत्थव्यंजनान्वितं। करंबं लवणैराढ्यं पिच्छलादिदधीद्वतं ॥४५॥
सर्वं भुक्तं च तै र्जिह्वालां पद्यवशगैः पुनः। भुज्यते यावदानंदं भोजनं स्वादुवर्द्धितं ॥४६॥
तावद्भूपाज्ञया मुक्ताः कुक्कुराः बद्धमंडलाः। तत्रागता महाक्रूराः प्रेरिता राजसेवकैः ॥४७॥
दृष्ट्वा तद्भोजनं सारं सुगंधीकृतदिक्चयं। ते दधावुर्यमाकाराः प्राणिनां भीतिदायकाः ॥४८॥
तेषां भोजनपात्राणि तदा तैः परिवव्रिरे। बद्धकक्षैर्महाक्रूरैर्भासमानैर्भयावहैः ॥४९॥
भाजनावेष्टनं दृष्ट्वा चकिताः सूनवोऽखिलाः। पलायनं व्यधुः सर्वे भयावेषित विग्रहाः ॥५०॥
मुक्तभोजनसंपात्रा गताः सर्वे निजं गृहं। विदीर्णास्या दृष्टपूर्वभयाहास्य कृतः स्वयं ॥५१॥

श्रेणिक को अत्यन्त बुद्धिमान् समझकर चिन्ता से व्याकुल हो गये ॥३०-३८॥

और मन में विचार करने लगे कि अवश्य यह श्रेणिक ही राज्य का भोगने वाला होगा, किन्तु मैंने जो यह वचन दे दिया है कि राज्य चिलाती कुमार को ही दिया जायेगा, न जाने इस वचन की क्या गति होगी। इस प्रकार कुमार को उपश्रेणिक दोनों परीक्षा में उत्तीर्ण देखकर पुनः राज्य-कार्य की परीक्षा के लिए महाराज उपश्रेणिक ने श्रेणिक आदि समस्त पुत्रों को भोजन के लिए अपने घर में बुलाया। जिस समय समस्त कुमार एक साथ भोजन करने के लिए बैठ गये तब बड़े आदर के साथ उनके सामने सुवर्णों के बड़े-बड़े थाल रख दिये गये और उन थालों में उनके लिए खाजे, घेवर, मोदक, खीर, मीठा-माड़, घी, मूंग का मिष्ट, स्वादिष्ट चूरा, उत्तम दही और अनेक प्रकार के पके हुए अन्न तथा मीठा भात और भी अनेक प्रकार के भोजन तथा पूआ, मंगोड़े आदिक अनेक मनोहर मिष्ठान्न परोसे गये। जिस समय क्षुधा से पीड़ित तथा स्वाद के लोलुप सब कुमार भोजन करने लगे और भोजन के स्वाद के आनन्द में मग्न हुए, तब महाराज उपश्रेणिक की आज्ञा से राज-सेवकों ने भयंकर कुत्तों को छोड़ दिया फिर क्या था? वे भयंकर कुत्ते सुगन्धित उत्तम भोजन को देखकर उसी ओर झुके और भौंकते हुए समस्त कुत्ते राजकुमारों के भोजन-पात्रों पर बात-ही-बात में टूट पड़े। भोजन-पात्रों के ऊपर उन कुत्तों को टूटते हुए देखकर मारे भय के काँपते हुए राजकुमार अपने-अपने भोजन के पात्रों को छोड़कर एकदम वहाँ से भागे और आपस में हँसी करते हुए तितर-बितर होकर अपने-अपने घरों को चले गये। बुद्धिमान् कुमार श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा कि ये कुत्ते आगे ही बढ़े चले आ रहे हैं और काटने के लिए

श्रेणिकेन तदा सर्वे शुनका हंतुकामुकाः। दृष्ट्वा गता महाबुद्ध्या वारिता भोजनार्थिना ॥५२॥
कुमारोच्छिष्टपात्राणि निक्षिप्य स महामनाः। तान् भुनक्ति स्म दीप्रांगः संप्राप्तानेकपात्रकान् ॥५३॥
श्रुत्वैवं भूपतिर्भूरि चिंताव्याकुलमानसः। कथं क्षिपामि राज्यं वै चिलातीसूनवे शुभम् ॥५४॥
अन्यदा दह्यमानेऽपि नगरे श्रेणिको महान्। सिंहासनातपत्रादि गृहीत्वा वनमाट च ॥५५॥
केचित्कुंतान् समादाय खड्गं वान्ये स्वघोटकान्। केचिद्वर्मादिसंघातं राजपुत्राः वनं गताः ॥५६॥
आकर्ण्येत्थं महीपालस्तथाभूद्व्याकुलांतरः। अन्यदा स्वसुतास्तेनाहूय नैमित्तसिद्धये ॥५७॥
भिन्ने भिन्ने गृहे सर्वे निक्षिप्ता मोदकान्वितैः। करंड़कैर्घटैर्नव्यैर्बद्धवक्त्रैर्जलान्वितैः ॥५८॥
गृहाणां द्वारमापूर्य स्थापितास्ते क्षुधातुराः। तैर्गतेषु च सर्वेषु तैर्गृहीताः करण्डकाः ॥५९॥
उद्घाट्य मुखवस्त्राणि भुक्तं सर्वं यथायथं। तेषां पीतं घटानां च वारि क्षुत् तृट्विहानये ॥६०॥
चित्ताकृतं परिज्ञाय भूभृतःश्रेणिकः स्वयं। अनुद्घाट्य मुखं तस्य गृहीत्वा स्वकरण्डकं ॥६१॥

उद्यत हैं तब उसने अपनी बुद्धि से उन सब कुत्तों को दूर हटाया और दूसरे-दूसरे कुमारों की पत्तलों को उन कुत्तों के सामने फेंककर उन्हें बहुत दूर भगा दिया और आनन्द से भोजन करने लग गया ॥३९-५३॥

इस बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक फिर अत्यन्त चिन्ता-सागर में निमग्न हो गये और विचारने लगे कि मैं अब इस उत्तम राज्य को चिलाती कुमार को किस रीति से प्रदान करूँ ॥५४॥ एक समय जब नगर में भयंकर आग लगी तथा ज्वाला से समस्त नगर जलने लगा और नगर के लोग जहाँ-तहाँ भागने लगे तब कुमार श्रेणिक तो झट सिंहासन, छत्र आदि सामान को लेकर वन को चला गया शेष राजकुमार कोई हाथ में भाला लेकर वन को गया और कोई खंग लेकर, कोई घोड़ा आदि लेकर वन को गये। इस बात को सुनकर फिर भी महाराज उपश्रेणिक मन में अत्यन्त दुःखित हुए तथा सोचने लगे कि चिलाती पुत्र किस रीति से इस राज्य का भोगने वाला बने ॥ ५५-५७ ॥

ज्योतिषी के बतलाये हुए इतनी परीक्षाओं में कुमार श्रेणिक को उत्तीर्ण देख महाराज उपश्रेणिक को संतोष न हुआ अतएव उन्होंने ज्योतिषी के बतलाये हुए अन्तिम निमित्त की परीक्षा के लिए फिर किसी समय अपने राजकुमारों को बुलाया तथा प्रत्येक घर में महाराज उपश्रेणिक ने अत्यन्त मधुर लड्डुओं से भरे हुए एक-एक पिटारे का मुख बंद कर रखवा दिया और उसके साथ में अत्यन्त निर्मल जल से भरा हुआ एक-एक नवीन घड़ा भी रखवा दिया। इन सब बातों के पीछे लड्डुओं के खाने के लिए और पानी पीने के लिए समस्त राजकुमारों को महाराज उपश्रेणिक ने आज्ञा भी दी। कुमार श्रेणिक के अतिरिक्त जितने राजकुमार थे सबने उन लड्डुओं से भरे हुए पिटारे को एकदम हाथ में लेकर बिना विचारे ही शीघ्र खोल डाला और अपनी भूख की शान्ति के लिए लड्डू खाना प्रारम्भ कर दिया तथा प्यास लगने पर घड़ों के मुँह खोलकर उनसे पानी पिया परन्तु कुमार श्रेणिक जो उन सब कुमारों में अत्यन्त बुद्धिमान् था झट महाराज के मन का तात्पर्य समझ

आंदोल्येतस्ततस्तं सोऽपातयच्चूर्णमुत्तमं। भुनक्ति स्म च तच्चूर्णमाकंठं तृप्तिदायकं ॥६२॥
घटाब्दहिर्गतं नीरं पिबति स्म कुमारकः। घस्त्रत्रयं स्थितस्तत्र निर्णाशित क्षुधाभयः ॥६३॥
निष्कासिताः पुनः सर्वे दृष्टं तादृग्विधं कृतं। तस्यैव राज्यचिह्नानि बभूवुः सकलानि च ॥६४॥
राज्यार्हमुत्तमं धीरं विशिष्टवृषमंडितं। श्रेणिकं तं परिज्ञाय हृदीत्यचिंतयत्तरां ॥६५॥
कथं दास्यामि राज्यं मे चिलातीसूनवे वरं। निमित्ताद्राज्ययोग्योयं भविता सुकृतत्वतः ॥६६॥
कथं रक्ष्यं मया वाक्यं पूर्वदत्तं स्वसूनवे। यस्य पुण्यं भवेदग्र्यं तस्य राज्यं न संशयः ॥६७॥
नरेण चिंत्यते चान्यद्दैवेन क्रियतेऽन्यथा। दैवाधीनेषु कार्येषु को हर्षः क्व विषादता ॥६८॥
इति चिंताप्रपन्नेन सुमतिर्मतिसागरः। मंत्रिणोऽन्ये तदा राज्ञा कारिताः कार्यसिद्धये ॥६९॥
भो! धीमंतो महामात्याश्चिंतास्ति मम मानसे। कथं निवर्त्यतेऽस्माभिः परासर्वांगशोषिका ॥७०॥
सुमतिर्मतिमान् प्राह श्रुत्वा वाक्यं प्रभोः परम्। भो राजन् भो महीनाथ नमिताखिलभूपते ॥७१॥

पिटारे के मुख को बिना उघाड़े ही उसको लेकर इधर-उधर हिलाने लगा और इस प्रकार उस पिटारे से निकले हुए चूर्ण को खाकर उसने अपनी क्षुधा की शान्ति की तथा जहाँ पर घड़ा रखा था वहाँ जो जल घड़े से बाहर इकट्ठा हुआ था उसी से अपनी प्यास बुझाई किन्तु घड़े के मुख को खोलकर पानी नहीं पिया ॥५८-६३॥

अनंतर महाराज उपश्रेणिक ने समस्त राजकुमारों को अपने-अपने घर जाने के लिए आज्ञा दी। परीक्षा से राज्य की प्राप्ति के सब चिह्न धीर-वीर भाग्यशाली कुमार श्रेणिक में देखकर महाराज उपश्रेणिक अपने मन में इस प्रकार चिंता करने लगे कि ज्योतिषी के बतलाये निमित्तों से कुमार श्रेणिक सर्वथा राज्य के योग्य सिद्ध हो चुका अब मैं किस रीति से चिलाती पुत्र को राज्य दूँ ? मैं पहले यह वचन दे चुका हूँ कि यदि राज्य दूँगा तो चिलाती को ही दूँगा किन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये हुए निमित्तों से राजकुमार श्रेणिक ही उपयुक्त ठहरता है अब मैं पहले दिये हुए अपने वचन की कैसे रक्षा करूँ ? हाँ, यह बात बिलकुल सही है कि जिसका भाग्य बलवान् होता है उसको राज्य मिलता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इस प्रकार भयंकर चिन्ता-सागर में गोता लगाते हुए महाराज उपश्रेणिक ने अत्यन्त बुद्धिमान् सुमति तथा मतिसागर नाम के मंत्रियों को तथा इनसे अतिरिक्त अन्य मंत्रियों को भी बुलाया और उनसे इस प्रकार अपने मन का भाव कहा हे मंत्रियो! आप सब लोग अत्यन्त बुद्धिमान् तथा श्रेष्ठ हैं। मेरे मन में एक बड़ी भारी चिंता है जिससे मेरा सारा शरीर सूखा जाता है उस चिंता की निवृत्ति किस रीति से होगी इस पर विचार करो ॥६४-७०॥

महाराज की इस विचित्र बात को सुनकर अन्य मंत्रियों ने तो कुछ भी उत्तर न दिया पर अत्यन्त बुद्धिमान् सुमति नाम के मंत्री ने कहा। हे प्रभो! हे राजन्! हे समस्त पृथ्वी के स्वामी! हे समस्त वैरियों के मस्तकों को नीचे करने वाले! महाभाग! आप सरीखे नरेन्द्रों को किस बात की

घोटकाः संति राजेन्द्र जितेंद्रसुतुरंगमाः। दारयंतः खुरैर्भूमिं बहवः प्रभुभक्तिकाः ॥७२॥
दंतिनो दंतखड्गेन दारयंतः स्ववैरिणाः। अंजनाभा महाकाया वर्त्तंते भूपमंदिरे ॥७३॥
पदातयः परं प्रीता रथालिंगितदीप्तिकाः। आसते बहवः स्वामिंस्त्वद्गृहे स्वामिभक्तिकाः ॥७४॥
न देशे वैरिणः केऽपि दायादानं ह्यनाज्ञकाः। पुत्रा अवशिनो नोन राज्ञ्यः कौटिल्यसंयुताः ॥७५॥
कुतश्चिंचता प्रभोश्चिते कथनीयं प्रभो लघु। तत्कारणं च निःशेषं तच्चिंताहानये नृप ॥७६॥
राज्ञि चिंताकुले सर्वे लोकाः पौराश्च मंत्रिणः। बोभूयंते सचिंता हि यथा राजा तथा प्रजाः ॥७७॥
इत्याकर्ण्यागदीद्राजा वचनं स्वमनोगतं। भो मंत्रिन् सुमते नास्ति चिंता देशादि संभवा ॥७८॥
किन्तु राज्यकृते चिंता कस्मिन्राज्यं क्षिपाम्यहं। मंत्री प्राह प्रदातव्यं श्रेणिकाय शुभाय च ॥७९॥
राजाऽगदीद्वचो धीमन् मया पूर्वं वनांतरे। तिलकवती राज्ञ्या तस्या दत्तं राज्यं च सूनवे ॥८०॥

चिन्ता हो सकती है। हे प्रभो, देवों के घोड़ों को भी अपने कला-कौशल से जीतने वाले अनेक घोड़े आपके यहाँ मौजूद हैं, जो कि अपने खुरों के बल से तमाम पृथ्वी का चूर्ण कर सकते हैं और आपकी भक्ति में सदा तत्पर रहते हैं। अपने दाँतरूपी खंगों से तमाम पृथ्वी को विदारण करने वाले अंजन पर्वत के समान लम्बे-चौड़े आपके यहाँ अनेक हाथी मौजूद हैं। हे राजेन्द्र! आपके मन्दिर में भलीभाँति आपकी आज्ञा के पालन करने वाले अनेक पदाति सेना भी मौजूद है और रथी शूरवीर भी आपके यहाँ बहुत हैं जो कि संग्राम में भली-भाँति आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं ॥७१-७३॥

आपको किसी वैरी की भी चिन्ता नहीं है क्योंकि आपके देश में आपका कोई वैरी भी नजर नहीं आता आपके धन तथा राज्य को कोई बाँटने वाला (दयाद) भी नहीं है और आपके पुत्र भी आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं। आपके राज्य में कोई आपका विरोधी कुटिल भी दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर हे प्रभो! आपके मन में किस बात की चिंता है? आप उसे शीघ्र प्रकाशित करें उसके दूर करने के लिए अनेक उपाय मौजूद हैं उसकी शीघ्र ही निवृत्ति हो सकती है। यदि आप इस समय उसको नहीं बतलायेंगे तो ठीक नहीं क्योंकि राजा के चिन्ताग्रस्त होने से पुरवासी मंत्री आदिक सब ही चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं उनको भी दुःख उठाना पड़ता है क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात् जिस प्रकार का राजा हुआ करता है उसकी प्रजा भी उसी प्रकार की हुआ करती है।

इस प्रकार अत्यन्त बुद्धिमान् सुमति नामक मंत्री की इस बात को सुन महाराज उपश्रेणिक बोले कि हे सुमते! मुझे देश आदि अथवा पुत्र आदि की ओर से कुछ भी चिंता नहीं है, किन्तु चिंता मुझे इस बात की है कि मैं इस राज्य को किस पुत्र को प्रदान करूँ। मंत्री ने उत्तर दिया ॥७४-७९॥

हे अत्यन्त बुद्धिमान् महाराज! आपका सुयोग्य पुत्र कुमार श्रेणिक है उसी को बेधड़क राज्य दे दीजिए। मंत्री की इस बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक ने कहा-हे मंत्रिन्! जिस समय मेरे शत्रु द्वारा भेजे हुए घोड़े ने मुझे वन में गड्ढे में पटक दिया था उस समय यमदण्ड नामक भिल्ल

नैमित्तिको मया पृष्टस्तेनाऽभाषि निमित्ततः। श्रेणिकस्य महाराज्यं किं करोम्यधुना वद ॥८१॥
यदि मे वचनं याति धिग् धिग् मे जीवितं वरं। कृतं सुकृतमाप्नोति निष्फलत्वं न संशयः ॥८२॥
सप्तधातुमयो देहो निस्सारः शुभवर्जितः। तत्रास्ति वचनं सारं जीवितादस्थिरात्पुनः ॥८३॥
सारं वचनमेवात्र वदंत्यार्या न संशयः। वचो न रक्षितं येन सुकृतं तेन हारितम् ॥८४॥
शरीरं नश्वरं विद्धि जीवितं क्षणचंचलम्। अस्थिराः संपदो लोके स्थिरमेकं वचो मतम् ॥८५॥
इति मत्वा त्वया मंत्रिन् मम वाक्यं प्रमाणताम्। नेतव्यं येन मे जन्म सार्थकत्वं समाश्रयेत् ॥८६॥
मतिसागर इत्याख्यदाकर्ण्य वचनं प्रभोः। विषादः कोऽत्र राजेंद्र का चिंताल्पविचारणे ॥८७॥
चिंतयामि यदा राजन् स्वर्गराज्यस्य विक्रियां। करोमि धरणस्यापि को विचारोऽत्र स्वल्पके ॥८८॥
देशाद्बहिर्गतं राजन् करोमि श्रेणिकं सुतम्। त्याज्या चिंता त्वया धीमन्ननया चिंतया किमु ॥८९॥

राजा ने वन में मेरी सेवा की थी तथा उसकी पुत्री तिलकवती ने अपनी अतुलनीय सेवा से एक तरह मुझे पुनः जीवित किया था। अकस्मात् उसी पुत्री के साथ मेरा विवाह हो गया। विवाह के समय तिलकवती के पिता ने यह मुझसे वचन लिया था कि यदि आप इस पुत्री के साथ अपना विवाह करना चाहते तो मुझे यह वचन दे दीजिए कि इससे जो पुत्र होगा वही राज्य का अधिकारी होगा, नहीं तो मैं अपनी इस पुत्री का विवाह आपके साथ नहीं करूँगा। मैंने उस तिलकवती के सौंदर्य एवं गुणों पर मुग्ध होकर उसके पिता को उस प्रकार का वचन दे दिया था कि इसी के पुत्र को राज्य दूँगा किन्तु मुझे राज्य किसको देना चाहिए, यह बात जिस समय ज्योतिषी से पूछी तो उसने अपनी ज्योतिष विद्या से यही कहा कि इस महाराज्य का अधिकारी कुमार श्रेणिक ही है ॥८०-८२॥

अब बताइये, ऐसी दशा में मैं क्या करूँ और राज्य किसको दूँ? यदि मैं चलाती पुत्र को राज्य न देकर कुमार श्रेणिक को राज्य प्रदान करूँ और अपने वचन का ख्याल न रखूँ तो संसार में मेरा जीवन सर्वथा निष्फल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि यदि मैं अपने वचन का पालन न कर सकूँगा तो मेरा पहले कमाया हुआ सब पुण्य भी बिना प्रयोजन का है क्योंकि मल-मूत्र आदि सात धातुओं से बना हुआ यह शरीर पुण्य रहित निस्सार है अर्थात् किसी काम का नहीं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि चंचल जीवन की अपेक्षा इस शरीर में सत्य वचन ही सार है अर्थात् जो कहकर वचन का पालन करता है वही मनुष्य आर्य है और उत्तम है किन्तु जो अपने वचन को पालन नहीं करता है वह उत्तम नहीं क्योंकि जिस मनुष्य ने संसार में अपने वचन की रक्षा नहीं की उसने उपार्जन किये हुए पुण्य का सर्वथा नाश कर दिया और यह बात भी है कि संसार में शरीर सर्वथा विनाशीक है जीवन बिजली के समान चंचल है और सब प्रकार की सम्पदाएँ भी पलभर में नष्ट होने वाली हैं, यदि स्थिर है तो एक वचन ही है ऐसा सब स्वीकार करते हैं। ऐसा समझकर हे मंत्रिन्! सुमते मैंने जो वचन कहा है उस वचन पर तुम्हें भली-भाँति विचार करना चाहिए जिससे कि संसार में मेरा जीवन सार्थक समझा जावे निरर्थक नहीं। इस

श्रुत्वेति वचनं भूपस्तुतोष शुभवादतः। कुरु कार्यमिदं मंत्रिन्नो विलंबो विधीयतां ॥९०॥
इत्यादेशान्महामंत्री विचार्य निजमानसे। चिरं जगाम सामीप्ये श्रेणिकस्य महामनाः ॥९१॥
दृष्ट्वा तं श्रेणिको धीमान् ददौ मानं मुदा तदा। तौ पप्रच्छतुरन्योन्यं कुशलं स्नेहपूर्वकम् ॥९२॥
क्षणमास्थाय मंत्री स प्रणम्य वचनं जगौ। कुमारं तं महास्नेहगिरा मंत्रादिकार्यवित् ॥९३॥
भो कुमार! हितं वाक्यं शृणुत्वं मे हितावहम्। कोपोऽभूदपराधः किं करिष्यसि भूपतेः ॥९४॥
राज्ञः कोपे च भो पुत्र! न स्थातव्यं त्वया क्षणं। आकर्ण्ये कृपां मे पुत्रः कोऽपराधो मया कृतः ॥९५॥
मंत्र्युवाच महाभाग भुक्ते कुक्कुरवृंदके। अन्ये पुत्राः गताः सर्वे त्वया भुक्तं कथं वद ॥९६॥
दोषोऽयं दृश्यते पुत्र राज्ञः कोपोपदीपनः। समीचीनः स किं भुंक्ते श्वास्पर्शान्नीचहेतुकान् ॥९७॥

प्रकार जब महाराज उपश्रेणिक ने कहा तब मतिसागर नामक मन्त्री बोला कि हे महाराज! इस थोड़ी-सी बात के विचारने में आप क्यों चिन्ता करते हैं ? क्योंकि चिन्ता स्वर्ग-राज्य की लक्ष्मी को विकार युक्त बना सकती है फिर इस थोड़ी-सी बात के लिए चिन्ता करना क्या बड़ी बात है? मैं अभी कुमार श्रेणिक को देश से बाहर निकाले देता हूँ आप चिन्ता छोड़िए इस चिन्ता में क्या रखा है। मतिसागर मन्त्री की अपने अनुकूल इस बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उस मन्त्री से यह बात भी कहते हुए कि ॥८३-९०॥

हे मन्त्रिन्! इस कार्य को तुम शीघ्र करो इसमें देरी करना ठीक नहीं है इस प्रकार महाराज उपश्रेणिक की आज्ञा को सिर पर धारण कर वह मतिसागर नाम का मन्त्री कुमार श्रेणिक के समीप में गया ॥९१॥

जिस समय वह कुमार के पास गया तो अपने पास बुद्धिमान् मतिसागर मन्त्री को आते देखकर अत्यन्त चतुर कुमार श्रेणिक ने उसका बड़ा भारी सम्मान किया और परस्पर बड़े स्नेह से उन दोनों ने कुशल भी पूछा थोड़ी देर तक कुमार श्रेणिक के पास बैठकर तथा कुमार को भली-भाँति प्रणाम कर मन्त्री मतिसागर ने यह वचन कहा कि-हे कुमार आप मेरे मनोहर तथा हितकारी वचन को सुनिए आपके अपराध से महाराज उपश्रेणिक को बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ है वे आप पर सख्त नाराज हैं न जाने वे आपको क्या दण्ड देगे ? और क्या अहित न कर दें क्योंकि राजा के कुपित होने पर आपको यहाँ पर नहीं रहना चाहिए मन्त्री मतिसागर के इस प्रकार अश्रुतपूर्व वचन सुनकर कुमार श्रेणिक ने उत्तर दिया कि ॥९२-९५॥

कृपाकर आप बतावें, मेरा क्या अपराध हुआ है? इस प्रकार कुमार के बोलने पर मन्त्री मतिसागर ने उत्तर दिया कि जिस समय तुम सब कुमारों के भोजन करते, कुत्ते छोड़े गये थे और जिस समय समस्त पात्रों को झूठा कर दिया था, उस समय तुमसे भिन्न सब कुमार तो भोजन छोड़कर चले गये थे और यह कहो तुम अकेले क्यों भोजन करते रह गये थे? इसलिए ऐसा मालूम होता है कि महाराज की नाराजगी का यही कारण है और यह बात ठीक भी है क्योंकि

श्रुत्वा वाक्यं प्रहस्येत्थं जगाद शुभया गिरां। यत्नतो रक्षितं भोज्यं मया बुद्ध्या श्ववांचनात् ॥९८॥
ये रक्षितुं न शक्या वै भोज्यपात्रं कथं च ते। रक्षंति राज्यसंतानमहो! मंत्रिन्नते मतिः ॥९९॥
कथं कुप्यति भूमीशो यो न रक्षति केतनं। स बली रक्षणीयः स निष्कास्योन्यः कथं नयः ॥१००॥
न्यायोपेतं वचः प्राप्य जानन्नपि पुनर्जगौ। सचिवः सर्वकार्याणि कुमारं तं शुभावहं ॥१०१॥
न्यायान्याय विचारं त्वं मा विधेहि विचक्षण। राज्ञः कोपाद् द्रुतं याहि देशान्मा तिष्ठ मंदिरे ॥१०२॥
कुलजः कुलहीनः स्यान्न्यायाढ्यो न्यायवर्जितः। पंडितोऽपंडितो जीवो राज्ञः कोपाद्भवेल्लघु ॥१०३॥
भो श्रेणिक विचारोऽत्र न कर्त्तव्यो विभावनं। नो विधेयं प्रगंतव्यं त्वया देशात्शुभावहात् ॥१०४॥
दिनानि कतिचित्स्थित्वान्यत्र राजसुत त्वया। आगन्तव्यं पुनः राज्यकृते राज्यं तव प्रभो ॥१०५॥
दुरंतं राजकोपं च विज्ञायाशर्म्मपीडितः। मात्रादिकं च न विज्ञाप्य निर्गतो राजपत्तनात् ॥१०६॥

नीचता का कारण कुत्तों से छुआ हुआ भोजन अपवित्र भोजन ही कहलाता है मन्त्री मतिसागर की इस बात को सुनकर और कुछ हँसकर कुमार ने मनोहर शब्दों में उत्तर दिया कि ॥९६-९७॥

हे मन्त्रिन्! कुत्तों को बुद्धिपूर्वक हटाकर मुझे यत्न से भली प्रकार रक्षित भोजन करना ही योग्य था इसीलिए मैंने ऐसा किया था क्योंकि जो कुमार अपने भोजन पात्रों की, न कुछ बलवान् कुत्तों से भी रक्षा नहीं कर सकते वे कुमार राज-सन्तान अर्थात् राज्य की क्या रक्षा कर सकते हैं। इसलिए जो आपने यह बात कही है कि तुमने कुत्तों का छुआ हुआ भोजन किया इसलिए महाराज तुम पर नाराज हैं यह बात तुम्हें बुद्धिमान् नहीं सूचित करती। कुमार के इस प्रकार न्याययुक्त वचन सुनकर समस्त दुष्कार्यों को भली प्रकार जानकर भी वह मंत्री फिर अतिशय बुद्धिमान् श्रेणिक कुमार से बोला ॥९८-१००॥

हे बुद्धिमान् कुमार! तुम्हें इस समय न्याय एवं अन्याय के विचारने की कोई आवश्यकता नहीं। महाराज का क्रोध इस समय अनिवार्य और आश्चर्यकारी है अब तुम यही काम करो कि थोड़े दिन के लिए इस देश से चले जाओ और राजमन्दिर में न रहो क्योंकि यह नियम है कि संसार में राजा के क्रोध के सामने कुलीन भी नीच कुल में उत्पन्न हुआ कहलाता है। नीतियुक्त अनीतियुक्त कहा जाता है और पंडित भी वज्रमूर्ख कहा जाता है। प्यारे कुमार श्रेणिक यदि तुम राज्य ही प्राप्त करना चाहते हो तो न तो तुम्हें देश से अलग होने में किसी बात का विचार करना चाहिए और न किसी प्रकार की भावना ही करनी चाहिए किन्तु जैसे बने वैसे इस समय शीघ्र ही इस देश से तुम्हें चला जाना चाहिए। हे कुमार परदेश में कुछ दिन रहकर फिर तुम। इसी देश में आ जाना पीछे राज्य आपको जरूर ही मिलेगा क्योंकि राज्य आपका ही है ॥१०१-१०५॥

मंत्री मतिसागर के ऐसे कपट भरे वचन सुनकर राजा का क्रोध परिणाम दुःख देने वाला है इस बात को जानकर और अपनी माता आदि को भी न पूछकर, अत्यन्त दुःखित हो कुमार

गूढवेषधरैः पंच सहस्त्रसुभटैः स्वयं। मागधप्रेषितैः सोऽगादजानंस्तद्भटादिकं ॥१०७॥
तदेंद्राणी महामाता विललाप चिरं हृदि। हा पुत्र! हा महाभाग! हा पद्मदलनेत्रभृत् ॥१०८॥
हा कामपाश हा दीर्घपुण्य हा शुभलक्षण। हा गजेंद्रकरायत्तकर हा कोकिलध्वने ॥१०९॥
हा पद्मवक्त्र हा रम्य ललाटतट पट्टक। हा कंदर्पसमानांग हा मारसमविभ्रम ॥११०॥
हा सुंदरशुभाकार! हा नेत्रप्रिय तृप्तिद। हा शुभंकर! हा राज्यभारोद्धरण हा प्रिय ॥१११॥
हा हा मां दुःखिनीं मुक्त्वा क्व गतः सुंदराकृते। क्व तिष्ठसि महापुत्र! वने व्याघ्राहिसंकुले ॥११२॥
ईदृशा सुपुत्रेण वियोगः केन हेतुना। ममाभूत्किं मया पूर्वभवे दुष्कृतमाकृतं ॥११३॥
अमुत्र किं मया मात्रा साकं पुत्रो वियोजितः। जिनाज्ञालंघिता किंवा किं शीलं मर्दितं मया ॥११४॥
सरः सेतुविनाशो वा किं कृतः पूर्वजन्मनि। अगालितेन तोयेन वस्त्रप्रक्षालनं कृतम् ॥११५॥
किं वा दावानलेनैव संदग्धं वनमद्भुतं। व्रतभंगः कृतः किंवा रात्रौ भुक्तं मया किम् ॥११६॥

श्रेणिक राजगृह नगर से निकल पड़े तथा महाराज उपश्रेणिक द्वारा भेजे हुए रक्षा के बहाने से गूढ़ वेष-धारण करने वाले पाँच हजार जासूस योद्धाओं के साथ-साथ एकदम नगर से बाहर हो गये ॥१०६-१०७॥

कुमार की माता महारानी इन्द्राणी के कान तक यह बात पहुँची कि कुमार श्रेणिक को देश निकाला हुआ है, सुनते ही वह इस प्रकार भयंकर रुदन करने लगी, हा पुत्र! हा महाभाग! हे कमल के समान नेत्रों को धारण करने वाले! हा कामदेव के समान! हा अत्यन्त पुण्यात्मा! हा अत्यन्त शुभ लक्षणों को धारण करने वाले! हा गजेन्द्र की सूँड के समान लम्बे-लम्बे हाथों के धारक! हा कोकिल के समान प्यारी बोली के बोलने वाले! हा कमल के समान उत्तम मुख के धारक! हा उत्तम एवं ऊँचे ललाट से शोभित! हा कामदेव के समान मनोहर शरीर के धारक! हा कामदेव के समान विलासी! ॥१०८-११०॥

हा सुन्दर! हा शुभाकर! हा नेत्रप्रिय! हा सन्तोष के देने वाले! हा शुभ! हा राज्य के भार को धारण करने में शूरवीर! हा प्रिय! हा सुन्दर आकृति के धारण करने वाले कुमार! मुझ दुःखिनी माँ को छोड़कर तू कहाँ चला गया? जो वन अनेक प्रकार के भयंकर सिंह-व्याघ्रों से भरा हुआ है उस वन में तू कहाँ पर होगा ?

हाय पूर्वभव में मैंने ऐसा कौन-सा घोर पाप किया था, जिससे इस भव में मुझे ऐसे उत्तम पुत्ररूपी रत्न का वियोग सहना पड़ा। हाय क्या पूर्व भव में मैंने किसी माता से पुत्र का वियोग करा दिया था अथवा श्री जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का मैंने उल्लंघन किया था या मैंने अपने शील का मर्दन किया था? व्यभिचार का आश्रय किया था अथवा मैंने किसी तालाब का पुल नष्ट किया था या मलिन जल से मैंने वस्त्र धोये थे ? किंवा अग्नि से मैंने किसी उत्तम वन को भस्म किया था या मैंने व्रत का भंग कर दिया था! अथवा मैंने रात में भोजन किया था अथवा मुझसे किसी दिगम्बर मुनि की निन्दा हो गई थी! किंवा मैंने किसी से द्रोह किया था या पर-वचन की

मुनिनिंदा कृता किंवा परद्रोहः कृतः किम्। परमर्मान्वितं वाक्यमुक्तं किंवा मया सखि ॥११७॥
इहाकारि मया पापं किं वा परभवे महत्। न वेद्मीति कृतालापा रोदितिस्म मुहुर्मुहुः ॥११८॥
नगराश्च तदा सर्वे हाहाकारं व्यधुः शुचा। अज्ञानेनैव राज्ञायं देशान्निर्घाटितः शुभः ॥११९॥
सौभागी राज्ययोग्योऽयं दाता भोक्ता गुणाग्रणीः। निर्द्धाट्यते कथं राज्ञा बुद्धित्यक्तसुचेतसा ॥१२०॥
इतिशोकाकुलं जातं पुरं सांतः पुरं वरम्। निर्गमे श्रेणिकस्यैव तत्किं नाजनि दुष्कृतं ॥१२१॥
अथ श्रेणिकभूपालो गच्छन्मार्गे विषण्णधीः। दुःखपूराढ्यवक्त्राब्जशिंचतयामास मातरम् ॥१२२॥
एकाकी स शनैर्मार्गं गमयन्मति मे दुरः। निर्जनामटवीं पश्यत्केकिकेकाविराजितां ॥१२३॥
दूराद् दर्शशालाढ्यं नंदिग्रामं मनोहरम्। केतुमालासमालीढ गृहराजी विराजितम् ॥१२४॥
शनैः शनै र्महाधीरः प्राप्य तस्य प्रतोलिकां। तस्थौ तत्र क्षणं पश्यन् द्वारशोभामपूर्विकां ॥१२५॥
ततः प्रविश्य तं ग्रामं संप्रापद्राजमंडपम्। स्त्रग्घंटातोरणोद्भासि विकासितसुसंपदम् ॥१२६॥
वयो ज्येष्ठं गुणाकीर्णमिंद्रदत्तं मनोहरम्। अपश्यच्छ्रेष्ठिनं तत्र महाप्रीतिकरं परम् ॥१२७॥

मैंने अवज्ञा कर दी थी ? अथवा मैंने इस भव में पाप किया है? जिससे मुझे ऐसे उत्तम पुत्ररत्न से जुदा होना पड़ा।

इस प्रकार बारम्बार कुमार श्रेणिक की माता इन्द्राणी का करुणाजनक भयंकर रुदन सुनकर समस्त नगर में हा-हाकार मच गया। समस्त पुरवासी लोग करुणाजनक स्वर से कुमार श्रेणिक के लिए रोने लगे और परस्पर कहने लगे कि राजा ने जो कुमार को नगर से निकाल दिया है तो अज्ञान से ही निकाला है क्योंकि बड़े खेद की बात है कि कुमार श्रेणिक तो अद्वितीय भाग्यवान् सर्वथा राज्य के योग्य, अद्वितीय दाता और भोक्ता था बिना विचारे महाराज उपश्रेणिक ने उसे कैसे नगर से निकाल दिया इस प्रकार कुमार श्रेणिक के नगर से चले जाने पर अत्यन्त उन्नत कोलाहलयुक्त नगर भी शान्त हो गया। कुमार के शोक से समस्त पुरवासी दुःख-सागर में गोता लगाने लगे। वह कौन-सा दुःख न था जो कुमार के वियोग में पुरवासियों को न सहना पड़ा हो ॥१११-१२१॥

इधर पुर तो कुमार के शोक-सागर में मग्न रहा उधर कुमार श्रेणिक मार्ग में जाते-जाते कुछ दूर चलकर अत्यन्त दुःखित एवं अपमानजन्य दुःख के प्रवाह से जिनका मुख फीका हो गया है, माँ को स्मरण करने लगे तथा और भी आगे कुछ धीरे-धीरे चलकर बुद्धिमान् कुमार श्रेणिक मयूर शब्दों से शोभित किसी निर्जन अटवी में जा पहुँचे। वहाँ से अनेक प्रकार के धान्यों से शोभित कोई मनोहर नंदिग्राम उन्हें दीख पड़ा। महाधीर-वीर कुमार धीरे-धीरे उसी नगर की ओर रवाना होकर उस नगर के द्वार पर आ पहुँचे। द्वार की अपूर्व शोभा निरखते हुए वहाँ पर ठहर गये पीछे उस नगर में प्रवेश कर कुमार श्रेणिक अनेक प्रकार के माला, घण्टा, तोरण आदिकर शोभित, अत्यन्त मनोहर, श्रेष्ठ सम्पत्ति के धारक राजमन्दिर के पास पहुँचे और वहाँ उन्होंने अत्यन्त वृद्ध नाना प्रकार के गुणोंकर मण्डित, मनोहर, अतिशय प्रीति करने वाले, उत्कृष्ट, किसी इन्द्रदत्त नाम के सेठ को देखा और उससे कहा ॥१२२-१२७॥

सोऽवादीन्माम भो श्रेष्ठिन्मे हि साकं मयाद्रुतं। नंदिग्रामाधिपो विप्रो यत्रास्ते तत्र निश्चितं ॥१२८॥
अटावो भुक्तिसंसिद्ध्या इत्युदीर्य गिरां शुभा। श्रेणिकेंद्रादिदत्तौ तौ गतौ विप्रस्य सन्निधिं ॥१२९॥
भो विप्र! नंदिनाथ त्वमावाभ्यां देहि वल्लभं। त्वमसि राजसेवाढ्य उपश्रेणिकमानभृत् ॥१३०॥
भोजनार्थं सुधान्यं चा यच्छ विप्र वरं द्रुतम्। आवां राजनरौ ज्ञेयौ राजकार्यं विचक्षणौ ॥१३१॥
राजकार्यस्य संसिद्ध्यै वटंतावत्र चागतौ। त्वमसि राज्यकार्यार्थी राजदत्तपुरोपभुग् ॥१३२॥
आकर्ण्य वचनं विप्रः कोपारुणितलोचनः। अवादीदिति कोपाढ्यः परवंचनलालसः ॥१३३॥
को राजा कौ युवामत्रागतौ केन च हेतुना। जलादिकं न दास्यामि राज्ञोऽन्यस्य च का कथा ॥१३४॥
गच्छतं गच्छतं क्षिप्रं युवां मम मंदिरात्। न स्थातव्यं क्षणं राजपुरुषौ चेत्तर्हि मे किमु ॥१३५॥
कोपकम्पितगात्रः स श्रेणिको वचनं जगौ। भो भिक्षुक दयाहीनं पश्चाद् बुद्धे शुभातिग ॥१३६॥
वचनस्य विचारं ते करिष्यामि न संशयः। किमत्र बहूनोक्तेन यत्किंचित्ते भविष्यति ॥१३७॥
इत्युदीर्य गतस्तेन साकं बौद्धमठं प्रति। तत्रापश्यन्महाबौद्धान् रंक्ताम्बर धरान्वरान् ॥१३८॥
प्रबुद्धय राजपुत्रं तं तैर्जगुर्लक्षणानि च। राज्यार्हानिविलोक्याशु ज्ञात्वा राज्यार्हमंजसा ॥१३९॥

हे श्रेष्ठिन्! आप यहाँ न बैठिये, मेरे साथ आइये, यहाँ पर कोई नन्दिग्राम का स्वामी ब्राह्मण निश्चय से रहता है। हम दोनों भोजन की प्राप्ति के लिए भ्रमण कर रहे हैं आइये उसके पास चलें वह हमें अवश्य भोजनादि देगा। ऐसा कहकर कुमार श्रेणिक और सेठी इन्द्रदत्त दोनों उस ब्राह्मण के पास गये और उससे कहा कि–हे विप्र! नन्दिनाथ तू महाराज उपश्रेणिक के सम्मान का पात्र राज्य-सेवा के योग्य है और तू राज्य-कार्य के लिए महाराज द्वारा दिये हुए माल का मालिक है इसलिए हम दोनों को पीने के लिए कुछ जल और भोजन के लिए कुछ धान्य दे क्योंकि राज्य के कार्य में चतुर हम दोनों राजदूत हैं और भ्रमण करते-करते यहाँ पर आ पहुँचे हैं। कुमार श्रेणिक के इस प्रकार वचन सुनकर क्रोध से नेत्रों को लाल करता हुआ एवं सदा पर के ठगने में तत्पर उस ब्राह्मण ने क्रोध से उत्तर दिया ॥१२८-१३३॥

कहाँ के राजसेवक! कौन ? किस कारण से कहाँ से यहाँ आ गये ? मैं तुम्हें पीने के लिए पानी तक न दूँगा भोजनादिक की तो बात ही क्या है जाओ-जाओ शीघ्र ही तुम मेरे घर से चले जाओ जरा भी तुम यहाँ पर मत ठहरो यदि तुम राजसेवक हो तो भी मुझे कोई परवाह नहीं। ब्राह्मण के इस प्रकार मूर्खता-भरे वचन सुनकर कोप से जिनका गात्र काँप रहा है कुमार श्रेणिक ने कहा–अरे दयाहीन भिक्षुक हम कौन हैं? तुझे इस समय कुछ भी मालूम नहीं तुझे पीछे मालूम होगा। तेरे ऐसे दया रहित वचनों पर मैं पीछे विचार करूँगा जो कुछ तुझे उस समय दण्ड दिया जायेगा। इस समय उसके कहने की विशेष आवश्यकता नहीं। ऐसा कहकर कुमार श्रेणिक और सेठी इन्द्रदत्त जहाँ बौद्ध संन्यासी रहते थे वहाँ गये और वहाँ पर उन्होंने लाल-वस्त्रों को धारण करने वाले अनेक बौद्ध संन्यासियों को देखा। कुमार श्रेणिक के लक्षणों को राजा के योग्य देखकर, यह राजकुमार है इस बात को जानकर और यह शीघ्र ही राजा होगा यह भी समझकर उनमें से एक संन्यासी ने राजकुमार श्रेणिक से पूछा ॥१३४-१३९॥

भो पुत्र! मगधाधीश! क्व यासि वदतां वरं। किमर्थमागतस्त्वं भो एकाकी वद मां प्रति ॥१४०॥
राजकोपादिकं सर्वं देशान्निःसरणं तथा। आख्यत् स श्रेणिकस्तान् वैवृत्तांतं पूर्वसंभवं ॥१४१॥
बौद्धाचार्यस्ततोऽवोचद् गृहाण वरभोजनम्। पुनर्स्मद्वचो राजन् शृणु त्वद्धितकारणम् ॥१४२॥
नीवृत्तो मगधस्य त्वं राज्यभागी भविष्यसि। संदेहो नात्र कर्त्तव्यो मद्वाक्ये निश्चयं कुरु ॥१४३॥
बौद्धं धर्ममतो राजन् गृहाण सुखसिद्धये। यतो राज्यस्य संसिद्धिर्भविष्यति तव स्फुटं ॥१४४॥
व्रतेन चोपवासेन नोकार्यं सिद्धयति स्फुटं। बौद्धो धर्मो विधातव्यस्त्वया राज्यस्य सिद्धये ॥१४५॥
को धर्म इति संप्रश्ने भगवान्वचनं जगौ। सुगतोऽति महादेवो विश्वविज्ञानपारगः ॥१४६॥
चतुरार्यसत्यरूपस्य तत्त्वस्य कथकः स्वयं। स एव सेव्यो नान्यस्तु क्षणक्षयविवेदकः ॥१४७॥
विज्ञानं वेदना राजन् संस्कारो रूपनाम भाक्। संक्षेति पंचधा दुःखं विद्धि लोकत्रयात्मकं ॥१४८॥
क्षण क्षयात्मको लोको नश्वरो न स्थिरा मतिः। यद्भाति शाश्वतं चित्ते स्वप्नप्राख्यं च तन्मतं ॥१४८॥
तत्त्वं गद्गदितं सत्यं शौद्धोदनिमतो वृषः। अंगीकार्यस्त्वया शीघ्रं पितृराज्यप्रलब्धये ॥१५०॥

हे मगध देश के स्वामी! महाराज उपश्रेणिक के पुत्र बुद्धिमान् कुमार श्रेणिक! तुम कहाँ जा रहे हो? अकेले यहाँ पर आप कैसे आये ? कुमार ने उत्तर दिया-राजा ने क्रोध कर हमें देश से निकाल दिया है। फिर बौद्ध संन्यासियों के आचार्य ने कहा-हे कुमार! अब आप भोजनादि कीजिए फिर मेरे हितकर वचनों को सुनिये। कुमार! आप कुछ दिन बाद नियम से मगध देश के राजा होवेंगे इसमें आप जरा भी सन्देह न करें। मेरे वचनों पर आप विश्वास कीजिए और आप सुख की प्राप्ति के लिए शीघ्र ही बौद्ध धर्म को ग्रहण कीजिए। इस बौद्ध धर्म की कृपा से ही आपको निस्सन्देह राज्य की प्राप्ति होगी। विश्वास कीजिए व्रतों के करने से तथा उपवासों के आचरण करने से हमारे समस्त कार्यों की सिद्धि होती है हमारा यह उपदेश है कि आप राज्य की प्राप्ति के लिए निश्चल रीति से बौद्ध धर्म को धारण करें ॥१४०-१४५॥

हे कुमार! किसी समय जब संसार में यह प्रश्न उठाया था कि धर्म क्या है ? उस समय समस्त विज्ञान के पारगामी महादेव भगवान् बुद्ध ने यह वचन कहा था कि हे चतुरार्य! जो धर्म वास्तविक रीति से सच्चे आत्म के स्वरूप को बतलाने वाला है और समस्त पदार्थों के क्षणिकत्व को समझाने वाला है वही धर्म वास्तविक धर्म है एवं वही सेवन करने योग्य है उससे भिन्न कोई भी धर्म सेवने योग्य नहीं। हे राजकुमार! विज्ञान, वेदना, संस्कार, रूप, नाम ये पाँच प्रकार की संज्ञाएँ ही तीनों लोक में दुःख स्वरूप हैं पाँच प्रकार के विज्ञान आदिक मार्ग, समुदाय और मोक्ष ये तत्त्व हैं अष्टांग मोक्ष की प्राप्ति के लिए इन्हीं तत्त्वों को समझना चाहिए। यह समस्त लोक क्षणभंगुर नाशवान् है कोई पदार्थ स्थिर नहीं। चित्त में जो पदार्थ सदा काल रहने वाला नित्य मालूम पड़ता है वह स्वप्न के समान भ्रम स्वरूप है तथा जो ज्ञान समस्त प्रकार की कल्पनाओं से रहित निर्भ्रान्त अर्थात् भ्रम भिन्न और निर्विकल्प हो, वही प्रमाण है किन्तु सविकल्पक ज्ञान प्रमाण नहीं है वह मृगतृष्णा के समान भ्रम जनक ही है। जिन तत्त्वों का वर्णन बौद्धधर्म में किया

राज्यवांछा भवेच्चित्ते तर्हि धर्मं च सौगतं। गृहाण मित्र! विद्धि त्वं मित्रधर्मान्न चापरं ॥१५१॥
इतिवाक्य प्रबंधेनाग्रहीद्धर्मं स सौगतं। प्रणम्य तत्पदद्वंद्वं साक्षात्सौगतधर्मभाग् ॥१५२॥
ततःस्नानान्नपानाद्यैरध्वदुःखं च मानसम्। अत्यजत् तेन साकं स श्रेणिकः शुद्धमानसः ॥१५३॥
दिनानि कतिचित्तत्र तेनामा श्रेणिकः स्वयं। स्थित्वा चचाल संदुष्टचेता बौद्धवृषोद्यतः ॥१५४॥
श्रुतवृत्तांतकेनैव श्रींद्रदत्तेन श्रेष्ठिना। ज्ञात्वायं पुण्यवान्नित्यं चेले तेन विराजितः ॥१५५॥
पश्यंतौ वनवीथीं तौ कदाचिद्गिरिकंदरं। कदाचित्केकिनां नृत्यं चेलतुः परमोत्सवौ ॥१५६॥
मार्गातिक्रमणात्तौद्वौ श्रमाक्रांतौ बभूवतुः। श्रमाक्रांतस्तदा प्राह श्रेणिको वरया गिरा ॥१५७॥
हे मातुल! श्रमाक्रांता वावां जातौ च सत्पथि। जिह्वारथं च तद्धान्यै याव आरुह्य सत्वरं ॥१५८॥
स श्रुत्वा विस्मयीभूत्त्वाऽचिंतयच्चेति मानसे। न दृष्टो न श्रुतो लोके रसज्ञारथ उन्नतः ॥१५९॥
आरोहणं कथं तत्र ग्रथिलोऽयं नरः स्फुटं। वितर्क्येति निजे चित्ते तूष्णीत्वेन स्थितो वणिक् ॥१६०॥

है वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। इसलिए यदि तुम अपने पिता के राज्य की प्राप्ति के लिए उत्सुक हो मगध देश के राजा बनना चाहते हो तो आप समस्त इष्ट पदार्थों का सिद्ध करने वाला बौद्ध धर्म शीघ्र ही ग्रहण करें। यदि आपको राजा बनने की इच्छा है तो आप बौद्ध धर्म को ही अपना मित्र बनायें क्योंकि इस धर्म से बढ़कर दुनिया में दूसरा कोई भी मित्र नहीं है। बौद्धाचार्य के इन वचनों ने कुमार श्रेणिक के पवित्र हृदय पर पूरा प्रभाव जमा दिया, कुमार श्रेणिक ने बौद्धाचार्य के कथनानुसार बौद्धधर्म धारण किया एवं उस बौद्धाचार्य के चरणों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बौद्धधर्म के पक्के अनुयायी बन गये। अतिशय निर्मल चित्त के धारक कुमार श्रेणिक ने उसी बौद्धाश्रम में इन्द्रदत्त सेठी के साथ-साथ स्नान, अन्न, पानादि से मार्ग की थकावट दूर की तथा राज्य की ओर से जो उनका अपमान हुआ था और उस अपमान से जो उनके चित्त पर आघात हुआ था। उस आघात को भी वे भूलने लगे और उस बौद्धाचार्य के साथ कुछ दिन पर्यन्त वहीं पर रहे। अनन्तर अब यहाँ पर अधिक रहना ठीक नहीं यह विचार कर, अतिशय हर्षित चित्त, बौद्ध धर्म के सच्चे अनुयायी कुमार श्रेणिक उस स्थान से चले। यह समाचार सेठी इन्द्रदत्त ने भी सुना सेठी इन्द्रदत्त भी यह जानकर कि कुमार श्रेणिक अत्यन्त पुण्यात्मा है कुमार के पीछे-पीछे चल दिये। इस प्रकार वन-मार्गों को देखते हुए, अनेक प्रकार की पर्वत-गुफाओं को निहारते हुए, मत्त मयूरों के नृत्य को आनन्दपूर्वक देखते हुए, वे दोनों महोदय जब कुछ दूर तक गये तब कुमार श्रेणिक ने अति मधुर वाणी से सेठी इन्द्रदत्त से कहा ॥१४६-१५७॥

हे श्रेष्ठिन् (मातुल) चलते-चलते इस मार्ग में मैं और आप थक गये हैं इसलिए चलिए जिह्वारूपी रथ पर चढ़कर चलें। कुमार की इस आकस्मिक बात को सुनकर अचम्भे में पड़कर सेठी इन्द्रदत्त ने विचारा कि संसार में कोई जिह्वारथ है यह बात न तो हमने आज तक सुनी और न साक्षात् जिह्वारूपी रथ ही देखा। मालूम होता है यह कुमार कोई पागल मनुष्य है ऐसा थोड़ी देर तक विचार कर सेठी इन्द्रदत्त चुप हो गये उन्होंने कुमार श्रेणिक से बातचीत करना भी बन्द कर दिया एवं दोनों चुपचाप ही आगे को चलने लगे ॥१५८-१६०॥

गच्छंतावग्रतो मार्गं शुभचिंतनतत्परौ। ददृशतुर्नदीं रम्यां जलाकीर्णां च तृप्तिदां ॥१६१॥
उपानहौ पदे कृत्वा नद्यां स श्रेणिकोऽविशत्। अंह्वितस्ते वणिग् नद्यां निष्कास्य विशतिस्म च ॥१६२॥
पादत्राणसमायुक्तं जले दृष्ट्वा स मागधं। ग्रथिलं तं निजे चित्ते निश्चिनोतिस्म भूमिस्पृक् ॥१६३॥
अन्येऽहो पुरुषा नीरे समुतार्यांह्रिरक्षणम्। प्रविशंति महामूर्खोऽयं सोपानत् कथं विशेत् ॥१६४॥
मार्गेऽन्यदा च गच्छंतौ श्रमहान्यैस्थितौ वरौ। वृक्षाधः श्रेणिकस्तावत् पार्णं छत्रमकल्पयत् ॥१६५॥
मस्तकोपरि तच्छत्रं कृत्वा तस्थौ महामनाः। संवीक्ष्य चिंतयामासोरुव्याश्चति स्वमानसे ॥१६६॥
दधते तापशांत्यर्थं छत्रमन्ये विचक्षणाः। आतपत्रं वितापेऽयं धत्ते किं नहि मूर्खता ॥१६७॥
अन्यदा नगरं रम्यं नानाजनसमाश्रितम्। दंतिघोटकपश्वाढ्यं दृष्ट्वा पप्रच्छ मागधः ॥१६८॥
भो मामाऽयं शुभो ग्रामो वसते चोद्वसोऽथवा। स्वकौशल्यं प्रकाश्येत्थं निर्जग्मतुस्ततोऽग्रतः ॥१६९॥
एकं नरं शुभाकारं ताडयंतं स्वयोषितं। विलोक्य प्राह भो श्रेष्ठिन् श्रेणिको ज्ञानकोविद ॥१७०॥

थोड़ी दूर आगे जाकर, अपने निर्मल जल से पथिकों के मन तृप्त करने वाली अत्यन्त निर्मल जल से भरी हुई एक उत्तम नदी उन दोनों ने देखी, नदी को देखते ही कुमार श्रेणिक ने तो अपने जूते पहनकर नदी में प्रवेश किया और सेठी इन्द्रदत्त ने पैरों से दोनों जूतों को पहले उतारकर हाथ में ले लिया बाद में नदी में घुसे। मगध देश के कुमार श्रेणिक को जूते पहनकर जब उन्होंने नदी में प्रवेश करते हुए देखा तो सेठी इन्द्रदत्त और भी अचम्भा करने लगे और उनको इस बात का पक्का निश्चय हो गया कि कुमार श्रेणिक जरूर कोई पागल पुरुष है तथा कुमार श्रेणिक के काम से उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि अन्य बुद्धिमान् पुरुष तो यह काम करते हैं कि जल में जूता उतारकर घुसते हैं किन्तु कुमार श्रेणिक ने जूता पहने ही नदी में प्रवेश किया मालूम होता है कि यह साधारण मूर्ख नहीं बड़ा भारी मूर्ख है ॥१६१-१६४॥

इस प्रकार विचार करते-करते सेठी इन्द्रदत्त फिर कुमार श्रेणिक के पीछे-पीछे चले। कुछ दूर चलकर उन्होंने अत्यन्त शीतल छायायुक्त एक वृक्ष देखा मार्ग में धूप आदि से अतिशय श्रान्त कुमार श्रेणिक और सेठी इन्द्रदत्त दोनों ही उस वृक्ष के पास पहुँचे। कुमार श्रेणिक तो उस वृक्ष की छाया में अपने सिर पर छत्री तानकर बैठे और सेठी इन्द्रदत्त छत्री बंद कर। कुमार के बारे में गहरा विचार करने लगे कि संसार में और और मनुष्य तो छत्री को धूप से बचने के लिए सिर पर लगाते हैं किन्तु यह कुमार अत्यन्त शीतल वृक्ष की छाया में भी छत्री लगाये बैठा है यह तो बड़ा मूर्ख मालूम पड़ता है ॥१६५-१६७॥

इस प्रकार विचार करते-करते फिर भी सेठी इन्द्रदत्त कुमार के साथ आगे-आगे चले। आगे चलकर उन्होंने अनेक प्रकार के उत्तमाधम मनुष्यों से व्याप्त, अनेक प्रकार के हाथी, घोड़े आदि पशुओं से भरा हुआ अतिशय मनोहर एक नगर देखा। नगर को देखकर कुमार श्रेणिक ने सेठी इन्द्रदत्त से पूछा कि हे मातुल! कृपा कर कहें कि यह उत्तम नगर बसा हुआ है कि उजड़ा हुआ ? कुमार के इन वचनों को सुनकर सेठी इन्द्रदत्त ने उत्तर नहीं दिया किन्तु अतिशय चतुर कुमार श्रेणिक और इन्द्रदत्त

ताड्यतेऽनेन बद्धा वा मुक्ता वा कथ्यतां द्रुतम्। ग्रथिलत्वेऽस्य च श्रेष्ठी श्रुत्वेति निश्चिकाय तत् ॥१७१॥
अन्यदा मृतमावीक्ष्य नीयमानं जनैर्नरम्। दहनार्थं स प्रपृच्छ वर्णिजं विनयान्वितः ॥१७२॥
पंचत्वं प्राप्तवानद्य पूर्वं वा वद मां प्रति। द्वापरो वर्त्तते चित्ते मामकीने च मातुल ॥१७३॥
सुपक्वं फलितं रम्यं गंधाकृष्टमधुव्रतं। जलार्द्रं फलनम्रांगं शालिवप्रं विलोक्य सः ॥१७४॥
हे श्रेष्ठिन् स्वामिना फलमस्य वै। क्षेत्रस्य भोक्ष्यतेऽभोजि ब्रूहि मां मे मनोगतं ॥१७५॥
उक्तवानिति
बाह्यमानं नरैर्वप्रेहलं प्रेक्ष्य नराधिपः। कतिडालानि वर्त्तंते हले मां वद सत्वरं ॥१७६॥
बदरीवृक्षमावीक्ष्य पृष्टवानिति पुंगवः। वर्त्तंते कंटका वृक्षे कियंतो मातुल ॥१७७॥
जिह्वारथः पादसुरक्षणं च छत्रं तथा ग्रामविनिश्चयश्च।
नारीशवं शालिवनं च डालं कांटक्यवार्त्तेति च कल्पते स्म ॥१७८॥

फिर भी आगे को चल दिये आगे कहीं कुछ ही दूर जाकर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर पुरवासी मनुष्य को अपनी स्त्री को मारते हुए देखा, देखकर फिर कुमार श्रेणिक ने सेठी इन्द्रदत्त से प्रश्न किया कि हे श्रेष्ठिन्! बताइये कि जिस स्त्री को यह सुन्दर मनुष्य मार रहा है वह स्त्री बँधी हुई है अथवा खुली हुई ? कुमार के इस प्रकार के वचन सुनकर इन्द्रदत्त ने विचारा कि यह कुमार अवश्य पागल है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं ॥१६८-१७१॥

इस प्रकार अपने मन में कुमार के पागलपने का दृढ़ विश्वास कर फिर भी दोनों आगे को बढ़े आगे चलते-चलते उन्होंने जिसको मनुष्य जलाने के लिए ले जा रहे थे एक मरे हुए मनुष्य को देखा। मृत मनुष्य को देखकर फिर भी कुमार श्रेणिक को शंका हुई और शीघ्र ही उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त से पूछा कि हे माम! मुझे शीघ्र बतावें कि यह मुर्दा अभी मरा है कि पहले का मरा हुआ है ॥१७२-१७३॥

आगे बढ़कर कुमार श्रेणिक ने भली प्रकार पके हुए फलों से रम्य, फलों की उत्तम सुगन्धि से जिसके ऊपर भौंरा गुंजार कर रहे हैं। जो जल से भीगे हुए फलों से नीचे को नम रहा है एक उत्तम शालिक्षेत्र देखकर कुमार ने फिर सेठी इन्द्रदत्त से प्रश्न किया कि हे माम! शीघ्र बताइए इस क्षेत्र का मालिक इस क्षेत्र के फलों को खावेगा कि खा चुका है ॥१७४-१७५॥

आगे चलकर किसी एक नवीन क्षेत्र में हल चलाता हुआ एक किसान मिला उसको देखकर फिर कुमार श्रेणिक ने प्रश्न किया कि हे श्रेष्ठिन्! जल्दी बताइये इस हल पर हल के स्वामी कितने हैं तथा आगे बढ़कर एक बदरी वृक्ष, दृष्टिगोचर हुआ उसे देखकर फिर भी कुमार ने सेठी इन्द्रदत्त से पूछा कि हे मातुल! कृपा कर मुझे बताइये कि इस बेरिया के पेड़ में कितने काँटे हैं ॥१७६-१७७॥

इस प्रकार कुमार श्रेणिक तथा सेठी इन्द्रदत्त दोनों जनों की जिह्वा रथ, जूता, छत्री, ग्राम का निश्चय, स्त्री, मुर्दा, शालिक्षेत्र, हल, काँटे के विषय में बातचीत हुई। पुण्य के फल से अत्यन्त विशद बुद्धि के धारक कुमार श्रेणिक ने अपने स्नेहयुक्त वचनों से शब्दों के अर्थ को भली-भाँति

इति सुकृतविपाकाद् बुद्धिसारं वचो वै वदति विशदचेता: श्रेणिक: श्रेष्ठिनं तं।
वचननिहित वाच्या गर्भसारानभिज्ञं प्रणयजनकवाक्यं प्रीणितं श्रोत्रपद्मम् ॥१७९॥

नानाशास्त्रकथा प्रवीण हृदयश्चंद्रांगसंगिद्युति:
सश्री मागधसंभवो वरकराकीर्ण: प्रमालिंगित:।
तेनामा पुरमुन्नतं वर सरो वेणादि पद्मं शुभम्।
प्रापत् पुण्यवशोदयाद्वशिवशं कुर्वन्महामेदुर: ॥१८०॥

क्व पत्तनं राजगृहं क्वं मागध:, क्व नंदिवास: क्व च बौद्धसेवनम्।
क्व चेंद्रदत्तेन सहांगमित्रता, न लक्ष्य मेवात्र हि कर्मपाचनम् ॥१८१॥

धर्मतो ह्यशुभकर्मनाशनं धर्मतो हि शुभकर्मसंगम:।
धर्मत: प्रियसमागमो मतो धर्ममेव कुरुतां भवान् जन: ॥१८२॥

इति श्रेणिक भवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभ पुराणे (भट्टारक श्रीशुभचंद्राचार्य विरचिते) श्रेणिकराजगृहान्निर्गमनं नाम तृतीय: सर्ग: ॥३॥

नहीं समझने वाले भी सेठी इन्द्रदत्त के कानों को तृप्त कर दिया और उत्तम बुद्धि को प्रकट करने वाले वचन कहे तथा नाना प्रकार की शास्त्र कथाओं में प्रवीण, चंद्रमा के समान शोभा को धारण करने वाला, तेजस्वी, लक्ष्मीवान्, अपने पुण्य से जितेन्द्रिय पुरुषों को भी अपने अधीन करने वाला, पृथ्वी पर सुन्दर, कुमार श्रेणिक ने सेठी इन्द्रदत्त के साथ उत्तमोत्तम तालाबों से शोभित वेण पद्मनगर में प्रवेश किया ॥१७८-१८०॥

देखो कर्म का फल कहाँ तो मगध देश? कहाँ राजगृह नगर? और नंदिग्राम कहाँ? तथा कहाँ बौद्धमत का सेवन? और कहाँ सेठी इन्द्रदत्त के साथ मित्रता? संसार में कर्मों का फल विचित्र और अलक्ष्य है किन्तु यह नियम है कि जीवों के समस्त अशुभ कार्यों का नाश धर्म से ही होता है, धर्म से ही शुभ कर्मों की प्राप्ति होती है। संसार में धर्म से प्रिय वस्तुओं का समागम होता है इसलिए जिन मनुष्यों की उपर्युक्त वस्तुओं के पाने की अभिलाषा है उन्हें चाहिए कि वे सदा अपनी बुद्धि को धर्म में ही लगावें ॥१८१-१८२॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के जीव श्री महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित कुमार श्रेणिक का राजगृह से निष्कासन कहने वाला तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थः सर्गः

इंद्रदत्तस्ततो वेणा तडागं प्राप्य पत्तनम्। जहर्ष सौधमालाढ्यं कामिनीमुखचंद्रितम् ॥१॥
यत्कामिनीमुखं वीक्ष्य संभिन्नक्षणदातमः। ह्रिया भ्रमति चंद्रोऽयं तदाप्रभृति खे निशि ॥२॥
यत्रत्याश्च जनाः सर्वे पुण्यकर्मरता भृशम्। दानिनो भोगिनो धीरा जिनपूजापरायणाः ॥३॥
ततो दृष्ट्वा बभाणैष पुरं भो राज संभव। किं करिष्यसि मां ब्रूहि कुत्र स्यास्यति निश्चितं ॥४॥
स्थास्यामि वणिजां नाथ तडागे पद्मराजिते। त्वं याहि पत्तने गेहे स्वकीये रंगराजिते ॥५॥
मदाज्ञया विना राजन्न गंतव्यं त्वया क्वचित्। इति तं तत्र संस्थाप्य विशेष नगरं निजं ॥६॥
क्रमान्निजगृहं प्रापदिंद्रदत्तो वणिग्वरः। प्रफुल्लसर्वनेत्रांगो विकसन्मुखपंकजः ॥७॥
कांता पुत्रांगजाभिः स लोक्यमानो मुहुर्मुहुः। सार्थकं सफलं जन्म मेने पूर्ववृषोदयात् ॥८॥

अनंतर जिस समय सेठी इन्द्रदत्त वेणपद्मनगर के तालाब के पास पहुँचे तो वहीं से उन्होंने वेणपद्मनगर को देखा तथा जिस वेणपद्मनगर की स्त्रियों के मुख चन्द्रमा के समान मनोहर, कामी जनों के मन तृप्त करने वाले थे, उनकी मनोहरता के सामने चन्द्रमा अपने को कुछ भी मनोहर नहीं मानता था और लज्जित हो रात-दिन जहाँ-तहाँ घूमता फिरता था तथा जिस नगर के निवासी मनुष्य सदा पुण्य कर्म में तत्पर, दानी, भोगी, धीर-वीर और श्री जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा को भलीभाँति पालन करने वाले थे ऐसे उस सर्वोत्तम नगर की शोभा देखकर वे अति प्रसन्न हुए। कुमार श्रेणिक से कहने लगे-हे कुमार! इस नगर में आप क्या करेंगे ? कहाँ पर निवास करेंगे? मुझे कहें ॥१-४॥

इन्द्रदत्त की यह बात सुनकर कुमार श्रेणिक ने उत्तर दिया कि हे वणिक् स्वामी इन्द्रदत्त! मैं भाँति-भाँति के कमलों से शोभित इसी तालाब के किनारे रहूँगा आप अपने मनोहरपुर में जाकर निवास करें ॥५॥

कुमार के मुख से ऐसे उत्तम वचन सुनकर सेठी इन्द्रदत्त ने फिर कहा कि हे राजकुमार! यदि आप यहाँ रहना चाहते हैं तो मेरा एक निवेदन है, वह यही है कि जब तक मेरी आज्ञा न होवे आप इस तालाब को छोड़कर कहीं न जायें ॥६॥

इन्द्रदत्त के उस प्रकार के वचनों को सुनकर कुमार श्रेणिक तो तालाब के किनारे पर बैठ गये और सेठी इन्द्रदत्त ने अपने नगर की ओर गमन किया। ज्योंही इन्द्रदत्त अपने घर में पहुँचे और जिस समय वे अपने कुटुम्बियों से मिले तो उनको अति आनन्द हुआ, मारे आनन्द के उनके दोनों नेत्र फूल गये, अंग रोमांचित हो गया और मुख भी कांतिमान् हो गया तथा जिस समय स्त्री, पुत्र और पुत्रियों ने उनका सम्मान किया और प्रेम की दृष्टि से देखा तो उन्होंने पूर्वोपार्जित धर्म के प्रभाव से अपना जन्म सार्थक जाना और अपने को कृतकृत्य समझा ॥७-८॥

तस्यास्ति तनुजा रम्या पीनोन्नतपयोधरा। शशांकवदना सारा नंदश्रीः कोकिलस्वना ॥९॥
कंठेन कोकिलध्वानं वक्त्रेण चंद्रदीधितिं। नेत्रेण पद्मपत्रं च करेण पद्मपल्लवम् ॥१०॥
पुनर्भावन ताराभां कचेन नीलसन्मणिम्। गत्या मरालसंरंभास्तनेन हेमकुंभकं ॥११॥
नितंबेन शिलां सारां रूपेण रतिकामिनीं। क्रीडया वर पद्मां च या जिगाय तनुश्रिया ॥१२॥
सा प्रेक्ष्य जनकं कांतं प्रणम्य विनयांकिता। कुशलप्रश्नपूर्वं चावादीद्गंभीर सद्गिरा ॥१३॥
पितः केन जनेनामाऽऽटितस्त्वं किमुच्चकैककः। सहगामी न वीक्ष्येत यतः कश्चिन्नरोत्तमः ॥१४॥
अवगम्य वचः पुत्र्याः प्रहसद्वदनाब्जकः। बभाष तनुजे चैकः सहगामी समस्तिवै ॥१५॥
रूपी युवा गुणाक्रांतः कांतिमंडितविग्रहः। बुद्ध्या जीव समानत्वं यस्ततान महामनाः ॥१६॥
मागधाधिपपुत्रोऽसौ पुत्रिसाकं समाटितः। तवयोग्यवरः किन्तु ग्रथिलो मूर्खतांकितः ॥१७॥
इत्याकर्ण्याह कम्रांगी दंतदीप्पितिदीपिता। कठिनस्तननम्रांगा जनकस्य वचः स का ॥१८॥
तातात्रेहितमस्य त्वं वद त्वत्सार्द्धगामिनः। क्व स्थितस्य च यः किं स यातः कस्मात् सविस्तरं ॥१९॥

महोदय सेठी इन्द्रदत्त के पीन एवं उन्नत स्तनों से शोभित, चन्द्रमुखी कोकिला के समान मधुर बोलने वाली पिकवैनी नन्दश्री नाम की कन्या थी। उस कन्या ने अपने मनोहर कण्ठ से कोकिला को जीत लिया था। वह मुख से चन्द्रमा को, नेत्रों से कमल-पत्र को और हाथ से कमल पल्लव को जीतने वाली थी। उसके केशों के सामने मनोहर नीलमणि भी तुच्छ मालूम पड़ती थी गति से वह हंसिनी की चाल नीची करने वाली थी एवं स्तनों से उसने सुवर्ण कलशों को नितम्बों से उत्तमशिला को, रूप से कामदेव की स्त्री रति को तिरस्कृत कर दिया था। जिस समय इस कन्या ने अपने पिता इन्द्रदत्त को देखा तो शीघ्र ही उसने प्रणाम पूर्वक कुशलक्षेम पूछी तथा कुशलक्षेम पूछने के बाद अपनी मनोहर वाणी से यह कहा कि हे पूज्य पिता! आपके साथ कोई भी उत्तम बुद्धिमान् मनुष्य आया हुआ नहीं दिखता। परदेश से आप किसी मनुष्य के साथ-साथ आये हैं अथवा अकेले ? पुत्री के ऐसे वचन सुनकर उन वचनों के तात्पर्य को भी भली-भाँति समझकर सेठी इन्द्रदत्त ने हर्ष पूर्वक उत्तर दिया कि हे पुत्री! मेरे साथ एक मनुष्य अवश्य आया है और वह अत्यन्त रूपवान्, युवा, गुणी, मनोहर, तेजस्वी और बुद्धिमान् है तथा वह मनुष्य अपने को मगध देश के स्वामी महाराज उपश्रेणिक का पुत्र कुमार श्रेणिक बतलाता है। यद्यपि वह तेरे लिए सर्वथा वर के योग्य है तथापि उसमें एक महाभारी दोष है कि वह विचार रहित वचन बोलने के कारण मूर्ख मालूम पड़ता है ॥९-१७॥

ध्यानपूर्वक पिता के इस प्रकार के वचन सुनकर मनोहरांगी दाँतों की दीप्ति से सर्वत्र प्रकाश करने वाली, कठिन स्तनी नतांगी कुमारी नन्दश्री ने कहा कि हे पिता! कृपाकर आप मुझसे कहें जो मनुष्य आपके साथ आया है उसकी आपने क्या चेष्टा देखी है? उसकी उम्र क्या है ? और किसलिए वह यहाँ पर आया है? ॥१८-१९॥

रराणचेंद्रदत्ताख्यस्तनुजे तस्य वृत्तकम्। विद्धि सर्वं मयाद्यत्वमानंदिग्नामृतः स्फुटं ॥२०॥
मध्ये सभां समायातो नंदिग्रामस्य मां जगौ। मातुलेति वचश्चोक्त्वा को हंसः कः कथं मयि ॥२१॥
मामभूयं च वर्त्तेत रसज्ञारथरोहणम्। कथं भवति भो पुत्र्याऽऽजन्मादृष्टं मृषोद्भवं ॥२२॥
पादत्राणं जले छत्रं महीरुहमहीतले। पुनरुन्नत शालाढ्यं दृष्ट्वा पप्रच्छमुग्धदूहृत् ॥२३॥
वसते चोद्वसंवाहो नगरं नरसंश्रितं। श्रेयस्कारी कथं प्रश्नश्चित्ताह्लादकरः सुते ॥२४॥
ताड्यमानां वधूं वीक्ष्य बद्धा मुक्तेति संजगौ। मृतकं वीक्ष्य चाद्यैव प्राणत्यक्तं पुराथवा ॥२५॥
भोक्ष्यते च पुराभुक्तं शालिवप्रं च पृष्टवान्। हलशाखा च कौलक्य कंटका इति मा वदत् ॥२६॥
अनीदृशा शुभप्रश्नवशात्संलक्षितो मया। ग्रथिलोऽयं न संदेहस्तदा पुत्री वचो जगौ ॥२७॥

पुत्री के इस प्रकार वचन सुनकर सेठी इन्द्रदत्त ने कहा कि हे पुत्री! यदि तेरी लालसा उसके विषय में कुछ जानने की है तो मैं उस मनुष्य के सब वृत्तांत को कहता हूँ, तू ध्यानपूर्वक सुन, मैं लौटकर घर आ रहा था बीच मार्ग में नन्दिग्राम के समीप मेरी उससे भेंट हुई उसी समय से उसने मुझे मामा बना लिया और मार्ग में भी मामा कहकर ही मुझे पुकारा सो यह बता कि कौन ? और कहाँ का रहने वाला तो वह और मैं कहाँ का रहने वाला ? फिर उसने मुझे मामा कहकर क्यों पुकारा? दूसरे कुछ चलकर फिर उसने कहा कि हम दोनों थक गये हैं इसलिए चलो अब जिह्वारूपी रथ पर सवार होकर गमन करें हे पुत्री यह बात बिलकुल उसने मिथ्या कही थी क्योंकि जिह्वारथ संसार में कोई है यह बात आज तक न सुनी न देखी। पुनः कुछ चलकर एक नदी पड़ी उसमें इसने जूते पहनकर प्रवेश किया तथा अत्यन्त शीतल वृक्ष की छाया के नीचे यह छत्री तानकर बैठा तथा आगे चलकर एक अनेक प्रकार के मनोहर घरों से शोभित, मनुष्य एवं हाथी, घोड़ा आदि पशुओं से व्याप्त, एक नगर पड़ा उस नगर को देखकर इसने मुझसे पूछा कि हे मातुल! यह नगर उजड़ा हुआ है कि बसा हुआ ? हे पुत्री! यह प्रश्न भी उसके मन को आनंद देने वाला नहीं हो सकता। आगे चलकर मार्ग में कोई एक मनुष्य किसी स्त्री को मार रहा था उस स्त्री को देखकर फिर उसने मुझसे पूछा कि हे मामा! यह स्त्री बँधी हुई है कि खुली हुई ? उसी प्रकार आगे चलकर एक मरा हुआ मनुष्य मिला उसे देखकर फिर उसने पूछा कि यह आज मरा है अथवा पहले का ही मरा हुआ है? आगे चलकर अतिशय पके हुए उत्तम धान्यों से व्याप्त एक क्षेत्र पड़ा उसे देखकर उसने यह कहा कि हे मामा! इस खेत का मालिक उसके फलों को खावेगा या खा चुका? इसी प्रकार हल चलाते हुए किसी एक किसान को देखकर उसने पूछा कि इस हल पर हल के चलाने वाले कितने मनुष्य हैं ? तथा आगे चलकर एक बेरी का वृक्ष पड़ा उसको देखकर उसने यह कहा कि हे मातुल! इसमें कितने काँटे हैं इत्यादि उसके द्वारा किये हुए अयोग्य, पूर्वापर विचार रहित प्रश्नों से मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह कुमार अवश्य पागल है ॥२०-२७॥

दक्षः स निपुणो ज्ञेयो विज्ञाता ग्रथिलो नहि। यदुक्तं माम इत्येवं त्वां च तद्रम्यमिष्यते ॥२८॥
भागिनेयो महामान्यो भवेल्लोके पुनः श्रृणु। जिह्वारथः प्रकथ्येत कथाकुतूहलादिकम् ॥२९॥
अध्वश्रमापनोदार्थं कथा कथ्येत सज्जनैः। श्रमहानेस्तदा तेन प्रोक्तो जिह्वारथः शुभः ॥३०॥
उपानहौ धृते पादे जले तद्दक्षताकृतां। कंटकोपलसर्पादि न दृश्येत जलेयतः ॥३१॥
शाखिमूले तथा तेनातपत्रं धृतमुन्नतम्। काकादिगूथरक्षार्थं तद्दक्षत्वं न संशयः ॥३२॥
यदुक्तं नगरं रम्यं वसते चोद्वसं तथा। साधार्मिकजनैश्चैत्य चैत्यालययतीश्वरैः ॥३३॥
पूर्णं स्वजनसंपूर्णं तत्संवासिमतं पुनः। अन्यदुद्वसमाविद्धि विकल्पस्तस्य मानसः ॥३४॥

पिता के मुख से कुमार श्रेणिक द्वारा की हुई चेष्टाओं को सुनकर बुद्धिमती नंदश्री ने जवाब दिया कि हे पिता! उस कुमार को जो उपर्युक्त चेष्टाओं से आपने पागल समझ रखा है सो वह कुमार पागल नहीं है किन्तु वह अत्यन्त चतुर एवं अनेक कलाओं में निपुण है ऐसा निःसंशय समझिए क्योंकि जो उस कुमार ने आपको मामा कहकर पुकारा था उसका मतलब यह था कि संसार में भानजा अत्यन्त माननीय एवं प्रिय होता है इसलिए मामा कहने से तो उस कुमार ने आपके प्रेम की आकांक्षा की थी।

जिह्वारथ का अर्थ कथा कौतूहल है। कुमार ने जो जिह्वारथ कहा था वह भी उसका कहना बहुत ही उत्तम था क्योंकि जिस समय सज्जन पुरुष मार्ग में थक जाते हैं उस समय वे उस थकावट को अनेक प्रकार के कथा-कौतूहलों से दूर करते हैं। कुमार का लक्ष्य भी उस समय थकावट के दूर करने के लिए ही था तथा जो कुमार नदी के जल में जूते पहनकर घुसा था वह काम भी उसका एक बड़ी भारी बुद्धिमानी का था क्योंकि जल के भीतर बहुत से कंटक एवं पत्थरों के टुकड़े पड़े रहते हैं, सर्प आदिक भी रहते हैं। यदि जल में जूता पहनकर प्रवेश न किया जाए तो कंटक एवं पत्थरों के टुकड़ों के लग जाने का भय रहता है। सर्प आदि जीवों के काटने का भी भय रहता है। इसलिए कुमार का जल में जूता पहनकर घुसना सर्वथा योग्य ही था तथा हे पिता! कुमार वृक्ष की छाया में जो छत्री लगाकर बैठा था उसका वह कार्य भी एक बड़ी भारी बुद्धिमानी को प्रकट करने वाला था क्योंकि वृक्ष की छाया में जो छत्री लगाकर न बैठे जाने पर पक्षी आदि जीवों की बीट गिरने की सम्भावना रहती है इसलिए वृक्ष की छाया में छत्री लगाकर बैठना भी कुमार का सर्वथा योग्य था तथा अति मनोहर नगर को देखकर कुमार ने जो आपसे यह प्रश्न किया था कि हे मातुल! यह नगर उजड़ा हुआ है कि बसा हुआ ? उसका आशय भी बहुत दूर तक था क्योंकि भली प्रकार बसा हुआ नगर वही कहा जाता है, जो नगर उत्तम धर्मात्मा मनुष्यों से जिन प्रतिबिम्ब, जिन चैत्यालय एवं उत्तम यतीश्वरों से अच्छी तरह परिपूर्ण हो किन्तु उससे भिन्न नगर उजड़ा हुआ कहा जाता है। इसलिए यह नगर बसा हुआ है अथवा उजड़ा हुआ? यह प्रश्न भी कुमार का विचार परिपूर्ण था ॥२८-३४॥

नारीप्रश्नविचारोऽयं कथ्यते तन्मनोगतः। विवाहिता प्रताड्येत बद्धा सा प्रोच्यते जनैः ॥३५॥
मुक्तान्यथा मतान्यच्च मृतप्रश्नविचारणम्। पंचत्वं प्राप्तवान्यस्तु नरो लोके विचक्षणः ॥३६॥
धर्मी दयागुणोपेतो ज्ञानवान् विनयान्वितः। यच्छन् पात्राय संदानं कुर्वन्कीर्त्तिमयं जगत् ॥३७॥
तदानीं स मृतो ज्ञेयः यस्तु दानादिवर्जितः। कदर्यः पापकर्माढ्यो मृतः पूर्वं स भूतले ॥३८॥
भुक्तं च भोक्ष्यते वप्र धान्यं तस्य वितर्कणा। ऋणं पूर्वं विधायोच्चैर्यत्क्षेत्रं क्रियते जनैः ॥३९॥
तद्भुक्तं प्रोच्यते सद्भिरन्यथा भोक्ष्यते पुनः। भो इंद्रदत्त वर्तेते द्वे डाले लांगलस्य च ॥४०॥
कर्कंधुकंटकौ द्वौ च वर्तेत ऋजुवक्रगौ। भो तात तव वाक्यानीमानि वै न भवंत्यहो ॥४१॥
स एष निपुणो ज्ञेयो विद्वज्जनमनोहरः। नानाक्रिया कलापूर्णो नानाशास्त्रपरायणः ॥४२॥

तथा हे पिता! स्त्री को मारते हुए किसी पुरुष को देखकर जो कुमार ने यह स्त्री बँधी हुई है अथवा खुली हुई है ? आपसे यह प्रश्न किया था वह प्रश्न भी उसका अत्युत्तम प्रश्न था क्योंकि बँधी हुई स्त्री विवाहिता कही जाती है और छूटी हुई का नाम अविवाहिता है। कुमार का प्रश्न भी इसी आशय को लेकर था कि यह स्त्री इस पुरुष की विवाहिता है अथवा अविवाहिता है? अतः कुमार का यह प्रश्न भी उसकी चतुरता को जाहिर करता है तथा मरे मनुष्य को देखकर जो कुमार ने यह प्रश्न किया था कि ''यह मरा हुआ मनुष्य आज का मरा हुआ अथवा पहले का मरा हुआ है?'' यह प्रश्न भी उसका बड़ी चतुरता परिपूर्ण था क्योंकि हे पूज्य पिता! जो मनुष्य धर्मात्मा, दयावान्, ज्ञानवान्, विनय से पात्रों को दान देने वाला एवं समस्त जगत् में यशस्वी होता है और वह मर जाता है उसको तो हाल का मरा हुआ कहते हैं और इससे भिन्न जो मनुष्य दान रहित कामी-पापी होता है उसको संसार में पहले से ही मरा हुआ कहते हैं कुमार का यह जो प्रश्न था कि ''यह मरा हुआ मनुष्य हाल का मरा हुआ है अथवा पहले का?'' यह प्रश्न कुमार को अत्यन्त बुद्धिमान् एवं चतुर बतलाता है तथा हे पिता! कुमार ने धान्य परिपूर्ण खेत को देखकर आपसे जो यह पूछा था कि इस क्षेत्र के स्वामी ने इस क्षेत्र के धान्य का उपभोग कर लिया है अथवा करेगा ? वह प्रश्न भी कुमार का बड़ी बुद्धिमानी का था क्योंकि कर्ज लेकर जो खेत बोया जाता है। उसके धान्य का तो पहले ही उपभोग कर लिया जाता है इसलिए वह भुक्त कहा जाता है और जो खेत बिना कर्ज के बोया जाता है उस खेत के धान्य को उस खेत का स्वामी भोगेगा ऐसा कहा जाता है। कुमार के प्रश्न का भी यही आशय था कि यह खेत कर्ज लेकर बोया गया है अथवा बिना कर्ज के? इसलिए इस प्रश्न से भी कुमार की बुद्धिमानी वचनागोचर जान पड़ती है तथा हे तात! कुमार श्रेणिक ने जो यह प्रश्न किया था कि हे मातुल! इस बेर के वृक्ष के ऊपर कितने काँटे हैं? सो उसका आशय यह है कि काँटें दो प्रकार के होते हैं एक सीधे दूसरे टेढ़े। उसी प्रकार दुर्जनों के भी वचन होते हैं इसलिए यह प्रश्न भी कुमार श्रेणिक का सर्वथा सार्थक ही था इसलिए उक्त प्रश्नों से कुमार श्रेणिक अत्यन्त निपुण, विद्वानों के मन को हरण करने वाला, समस्त कलाओं में प्रवीण और अनेक प्रकार के शास्त्रों में चतुर हैं, ऐसा समझना चाहिए ॥३५-४२॥

करिष्याम्यथ भो तात परीक्षां तच्छरीरजां। क्वास्ते वद विचारज्ञः सोऽसाधारणसद्गुणः ॥४३॥
आस्ते बहिस्तडागस्य तटे रूपी युवा स हि। प्रोवाचेति वचः श्रेष्ठी तच्चित्ताकर्षणक्षमम् ॥४४॥
मत्वा स्थितिं कुमारस्य निपुणादिमतीं सखीं। पराभिप्रायसंवेत्रीं सा जगौ निपुणां प्रति ॥४५॥
वयस्ये याहि यत्रास्ते हे दीर्घनखि तत्र सः। आकारणार्थमानंदान्मा विलंबय मत्सखि ॥४६॥
लब्धानुज्ञा वयस्या कृतनेपथ्यमंडना। स्वदीर्घनखरे तैलं चचालादायसुंदरी ॥४७॥
साऽगमद्यत्र स धीमानास्ते तत्र मनोहरः। अपूर्व तं नरं दृष्ट्वा प्राख्यन्मधुरया गिरा ॥४८॥
भो कुमार! महारूपिन्निंद्रदत्तेन त्वं समम्। आयातोऽसि शुभः पूर्णः चंद्रवक्त्रो विचक्षणः ॥४९॥
अबलेशशिवक्त्रेऽहं तेन साकं समागतः। अस्मि कार्यं च यत्तेऽस्ति ब्रूहि नात्रविचारणा ॥५०॥
सा जगाद नराधीश तस्यास्तिशुभपुत्रिका। नंदश्रीः कामकांतेव रूपपानीयनिम्नगा ॥५१॥

हे तात! आप धैर्य रखें कुमार श्रेणिक की बुद्धि की परीक्षा मैं और भी कर लेती हूँ किन्तु कृपाकर आप मुझे यह बतावें अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम विचारों से परिपूर्ण, सर्वोत्तम गुणों का मन्दिर, वह कुमार ठहरा कहाँ है ॥४३-४४॥

नन्दश्री के इस प्रकार संतोष भरे वचन सुनकर इन्द्रदत्त ने उत्तर दिया-हे सुते! जिस कुमार के विषय में तूने मुझे पूछा है अतिशय रूपवान् एवं युवा वह कुमार इस नगर के तालाब के किनारे पर ठहरा हुआ है। पिता के मुख से ऐसे वचन सुनते ही कुमार को तालाब के किनारे ठहरा हुआ जानकर नन्दश्री शीघ्र ही भागती-भागती जो पर मनुष्य के मन के अभिप्रायों के जानने में अतिशय प्रवीण थी ऐसी अपनी प्यारी सखी निपुणमती के पास गई और निपुणमती के पास पहुँच कर यह कहा कि हे लम्बे-लम्बे नखों को धारण करने वाली प्रिय सखी निपुणमती! जहाँ पर अत्यन्त रूपवान् कुमार श्रेणिक बैठे हैं वहाँ पर तू शीघ्र जा और उनको आनंदपूर्वक यहाँ लिवा ले आ। प्रियतमा सखी! इस बात में जरा विलम्ब न हो। कुमारी नन्दश्री की यह बात सुनकर प्रथम तो निपुणमती सखी ने खूब अपना शृंगार किया। पश्चात् वह नख में तेल भरकर कुमारी की आज्ञानुसार जिस स्थान पर कुमार श्रेणिक विराजमान थे वहाँ पर गई। वहाँ कुमार को बैठे हुए देखकर एवं उनके शरीर की अपूर्व शोभा को निहारकर उसने अति मधुर वाणी में कुमार से कहा-हे कुमार! आप प्रसन्न तो हैं? क्या पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख को धारण करने वाले आप ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ आये हैं ? ॥४५-५०॥

निपुणमती के इस प्रकार चित्ताकर्षक वचन सुन कुमार चुप न रह सके। उन्होंने शीघ्र ही उत्तर दिया कि हे चन्द्रवदनी! अबले! मैं ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ आया हूँ जो कुछ काम होवे बेरोक-टोक आप कहें और किसी बात का विचार न करें ॥५१॥

यत्पयोधरभारेण कृशत्वमगमत्कटि:। तद्रक्षाय नितंबोऽभूत्स्थूल: स्थगितसत्कटि: ॥५२॥
निर्माय विविधां नारीं वेधाविविधकौशलै:। नापश्यत्तत्समानां चान्यां रूपादिसुसंपदा ॥५३॥
मुखाद्यंशुवितानैर्या भिनत्ति सकलं तम:। पूर्णचंद्रकरप्रख्यै: कामिचेतोब्ज का शकै: ॥५४॥
यद्दीप्रनखनक्षत्रैर्मनोव्योमविकासितम्। नानाचिंताप्रविस्तीर्णं कामिनां मदगामिनां ॥५५॥
तयेदं प्रेषितं तैलमभ्यंगाय शुभावहम्। सुगंधाकृष्टषट्पादं नखपूरं सुखाप्तये ॥५६॥
स्नात्वा सुखं त्वया राजन्नागंतव्यं गृहे वरे। इंद्रदत्तस्य चाढ्यस्य नानाशोभापरायणे ॥५७॥
नखपूरं तत: प्रेक्ष्य तैलं चित्ते व्यचिंतयत्। किमिदं किमिदं तैलं स्वल्पं स्नानानियोगकं ॥५८॥
लक्ष्येतेदं सुदाक्षिण्यकृतेन निश्चितं मया। प्रेक्ष्यतं तैलमाशक्तं षट्पदै: स्वल्पमास्वनै: ॥५९॥
पदांगुष्टेन जंबाले चकार विवरं शुभम्। सलिलै: पूरयामास विज्ञानांबुधिपारग: ॥६०॥
ततो दीर्घं नखीं प्राह सीमंतिनि! जले शुभम्। तैलं निक्षिप शीघ्रेण कठिनोन्नतचूचके ॥६१॥
तया तदाज्ञया तत्र क्षिप्तं तत्स्नानसिद्धये। हसंत्या मानसे चित्रं पश्यंत्या स्नेहसंभवं ॥६२॥

कुमार के इस प्रकार आनन्दप्रद एवं मनोहर वचन सुन निपुणमती ने उत्तर दिया-हे कुमार! जिस सेठ इन्द्रदत्त के साथ आप आये हैं उसी सेठ की अपने रूप से रति को भी तिरस्कार करने वाली सर्वोत्तम नन्दश्री नाम की पुत्री है। उस पुत्री का कटिभाग दोनों स्तनों के भार से अत्यन्त कृश है। अतिशय कृश कटिभाग की रक्षार्थ उसके दो स्थूल नितम्ब हैं, जो कि अत्यन्त मनोहर हैं। भाँति-भाँति के कौशलों से अनेक स्त्रियों का विधाता ब्रह्मा भी इस नन्दश्री की रूप आदि सम्पदा देखकर इसके समान दूसरी किसी भी स्त्री को उत्तम नहीं मानता है। उसका मुख कामी जनों के चित्तरूपी रात्रि-विकासी कमलों को विकार करने वाला एवं समस्त अन्धकार के नाश करने वाला पूर्ण चन्द्रमा है और वह अतिशय देदीप्यमान नखों से शोभित है। हे कुमार! उसी समस्त कामी जनों के चित्त को हरण करने वाली कुमारी नन्दश्री ने, अपनी सुगंधि से भ्रमरों को लुभाने वाला सर्वोत्तम एवं आनन्द का देने वाला यह नखभर तेल मेरे द्वारा आपके लगाने के लिए भेजा है। हे महाभाग! जितनी जल्दी हो सके इसको लगाकर आप सुखपूर्वक स्नान करें तथा मेरे साथ अनेक प्रकार की शोभाओं से व्याप्त सेठी इन्द्रदत्त के घर शीघ्र चले ॥५२-५८॥

जिस समय कुमार ने निपुणमती के वचन सुने और जब नखभर तेल देखा तो उनके मन में गहरी चिन्ता हो गई। वे मनोमन यह कहने लगे कि यह न कुछ तेल है इसको सर्वांग में लगा कर स्नान कैसे किया जा सकता है? मालूम होता है सुगन्ध के लोभी भ्रमरों से चुम्बित एवं उत्तम, यह थोड़ा तेल मेरी बुद्धि की परीक्षा के लिए कुमारी नन्दश्री ने भेजा है तथा ऐसा क्षणिक भली प्रकार विचार कर गुरुओं के भी गुरु कुमार ने अपने पाँव के अँगूठे से जमीन में एक उत्तम गड्ढा खोदा और मुँह तक उसको जल से भरकर दीर्घ नख धारण करने वाली सखी निपुणमती से कहा कि हे उन्नत स्तनी सुभगे! तू इस जल के भरे हुए गड्ढे में नख में भरे हुए तेल को डाल दे ॥५९-६२॥

गम्यमानां तग: प्रेक्ष्य बभाण वचनं नृप:। क्वास्ते तन्मंदिरं बाले बद विज्ञानकोविदे ॥६३॥
सबालाभरणं कार्णं प्रदर्श्य विनयोन्नता। सागता मंदिरे रम्ये विकसन्नयनोत्पला ॥६४॥
अचीकथत्कृत: सर्वं तज्जंनंदश्रियं च सा। आकर्ण्येति जगौ तन्वीजनकं विस्मिताशयं ॥६५॥
धीरोऽयं तात विज्ञेयो गुणी विज्ञानपारग:। यच्चेतसि जगत्सर्वं प्रफुल्येत न संशय: ॥६६॥
कोविदत्वं कलावित्त्वं समस्ति न च संशय:। आकारणीय एवात्र त्वया तूर्णं सपुण्यधी: ॥६७॥
जिह्वारथादि वाक्यै: स चिक्रीड महता त्वया। प्रकटीकृतमेवात्र दाक्षिण्यं तेन वा त्वयि ॥६८॥
ग्रथिलत्वं न मूर्खत्वं न तस्मिन् शुभशंकिन:। गुणा: किन्तु च वर्तंते स्वभावोत्था: मनोहरा: ॥६९॥
अथ स श्रेणिको धीमांस्तैलाभ्यंगं चकार वै। स्नात्वा जलाशये बुद्ध्या स्निग्धतैलावमिश्रितान् ॥७०॥

कुमार श्रेणिक की इस प्रकार आज्ञा पाते ही अति स्नेह की दृष्टि से कुमार की ओर देखकर और मनोमन में अति प्रसन्न होकर निपुणमती ने जल से भरे हुए उस गड्ढे में तेल छोड़ दिया और अनेक प्रकार की कलाओं में प्रवीण वह चुपचाप अपने घर की ओर चल दी। निपुणमती को इस प्रकार जाते हुए देखकर कुमार ने पूछा कि हे अबले! सेठी इन्द्रदत्त का घर कहाँ और किस जगह पर है ? किन्तु कुमार के इस प्रकार के उत्तम प्रश्न को सुनकर भी निपुणमती ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और विनय युक्त वह निपुणमती के कान में स्थित ताल-वृक्ष के पते का भूषण दिखाकर चुपचाप चली गई ॥६३-६५॥

कुमार के चातुर्य के देखने से प्रफुल्लित कमलों के समान नेत्रों से शोभित सखी निपुणमती ने शीघ्र ही अत्यन्त मनोहर सेठी इन्द्रदत्त के घर में प्रवेश किया और कुमारी नन्दश्री के पास जाकर जो-जो कुमार श्रेणिक का चातुर्य उसने देखा था सब कह सुनाया। कुमारी नन्दश्री निपुणमती से कुमार के चातुर्य की प्रशंसा सुनकर शीघ्र ही अपने पिता के पास गई और जो कुमार श्रेणिक का चातुर्य उसके पिता का आश्चर्य का करने वाला था उसे सेठी इन्द्रदत्त को जा सुनाया और यह कहा कि हे तात! कुमार श्रेणिक अत्यन्त गुणी हैं, ज्ञानवान् हैं, समस्त जगत् के चातुर्यों में प्रवीण हैं, कोकशास्त्र के भी ज्ञाता हैं और अनेक प्रकार की कलाओं को भी जानने वाले हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इसलिए आप कुमार के पास जायें और शीघ्र ही यहाँ पर उनको लेकर आवें। आप उन्हें पागल न समझें क्योंकि जिस समय आप कुमार के साथ-साथ आये थे उस समय जिह्वारथ आदि वाक्यों से कुमार क्रीड़ा करते हुए आपके साथ में आये थे और उन वाक्यों से कुमार ने अपना चातुर्य आपको बतलाया था। उनमें स्वाभाविक, मनोहर एवं अनेक प्रकार के कल्याणों को करने वाले अनेक गुण विद्यमान हैं ॥६६-७०॥

कचानंजनतामस्यषट्पदाभांश्च सज्जलान्। चकार विधिवत्पूर्णस्नानो निर्जितमन्मथः ॥७१॥
निर्जगाम ततः स्वैरं पुरं नाकपुरप्रभम्। क्वास्ते तन्मंदिरं रम्यं न वेद्मीति व्यतर्कयत् ॥७२॥
इतस्ततो गृहान् सर्वान्प्रेक्ष्यमाणश्च वीथिकाम्। अटन् सस्मार संकेतं निपुणादिमतीकृतम् ॥७३॥
तया मे दर्शिकर्णश्व तालद्रुमदलान्वितः। मेने तालद्रुमाकीर्णं गृहं तस्य न संशयः ॥७४॥
इति चिंतयता तेनादर्शि तालद्रुमांकितं। वेश्माऽबोधिततस्तस्येदं च सप्तसुभूमकं ॥७५॥
तावन्नंदश्रिया तस्य परीक्षाकृत एव च। जंबालो वि च कल्ये वै जानुदघ्नोऽतिदूरतः ॥७६॥
पंकस्योपरि पाषाणाः क्षुद्राः अंह्रिस्थितिकृते। मोचयांचक्रिरे सिद्धकौतुकाच्च तया स्थिराः ॥७७॥
ग्रावोपरि निजौ पादौ धरिष्यति यदा तदा। भविष्यति वयस्ये वै पतनं तस्य धीमतः ॥७८॥
पश्यामि तस्य कौशल्यं निजनेत्रेण भो सखि। हसिष्यामि सुपातेन कुमारं तं शुभावहम् ॥७९॥

इधर कुमार के विषय में नन्दश्री तो यह कह रही थी उधर कुमार ने निपुणमती के चले जाने पर पहले तो उस तेल से अपने शरीर का अच्छी तरह मर्दन किया। अंजन के समान काले बालों में उसे अच्छी तरह लगाया और इच्छापूर्वक उस तालाब में स्नान किया पीछे वहाँ से नगर की ओर चल दिये। स्वर्गपुर के समान उत्तम शोभा धारण करने वाले उस पुर में घुसकर वे यह विचारने लगे कि सेठी इन्द्रदत्त का घर कहाँ ? और किस ओर है? मुझे किस मार्ग से सेठी इन्द्रदत्त के घर जाना चाहिए। इसी विचार में वे इधर-उधर बहुत घूमे। अनेक घर देखे। बहुत सी गलियों में भ्रमण किया किन्तु इन्द्रदत्त के घर का उन्हें पता न लगा अंत में घूमते-घूमते जब वे श्रांत हो गये और ज्योंही उन्होंने श्रम दूर करने के लिए किसी स्थान पर बैठना चाहा त्योंही उन्हें निपुणमती के इशारे का स्मरण आया। वे अपने मन में विचार करने लगे कि जिस समय निपुणमती तालाब से गई थी उस समय मैंने उसे पूछा था कि सेठी इन्द्रदत्त का घर कहाँ है ? उस समय उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया था किन्तु ताल-वृक्ष के पत्ते से बने हुए भूषण से मंडित वह अपना कान दिखाकर ही चली गई थी इसलिए जान पड़ता है कि जिस घर में ताल का वृक्ष हो निःसंशय वही सेठी इन्द्रदत्त का घर है। अब कुमार ताल-वृक्ष सहित घर का पता लगाने लगे। लगाते-लगाते उन्हें एक ताल-वृक्ष से मंडित सतखना महल नजर पड़ा तथा लालसा पूर्वक वे उसी की ओर झुक पड़े ॥७१-७६॥

इधर कुमार के आने का समय जानकर कुमार की और भी बुद्धि की परीक्षा के लिए कुमारी नन्दश्री ने द्वार के सामने घुटने पर्यंत कीचड़ डलवा रखी थी ? और उसमें एक-एक पैर के फासले से एक-एक ईंट भी रखवा दी थी तथा अपनी प्रिय सखी से वह यों अपना विचार प्रकट कर रही थी कि हे आलि! अब मैं कुमार की बुद्धि की परीक्षा जब स्वयं अपने नेत्रों से कर लूंगी तब मैं उस कुमार के साथ अपने विवाह की प्रतिज्ञा करूँगी ॥७७-७९॥

कुतूहलमयांतस्थायावदास्तेति सुंदरी। तावद् बुद्ध्या च गंभीर आजगाम कुतूहली ॥८०॥
द्वारे विलोकयामास जंबालं जानुमात्रकम्। अस्थिरक्षुद्रपाषाणस्थगितं बहुलं परम् ॥८१॥
अहो न दृश्यते क्वापि जंबालः पत्तनेऽखिले। अत्र कस्मात्समायातस्तत्कालादिविना पुनः ॥८२॥
कौशल्येन कृतं वेद्मि पंकं नंदिश्रिया तया। पाषाणमोचनं चापि मम पाताय केवलम् ॥८३॥
यदि गच्छामि पाषाणमार्गे स्यात्पतनं मम। हसिष्यंति तथा लोका अहो! दुःखं हि हास्यजम् ॥८४॥
अत एमि सुजं वालेवां हृः पंकावलेपने। को दोषो मम जायेत वितर्क्येति चिरं हृदि ॥८५॥
पंकेऽगमत्तदा धीमान् बुद्धिभारसमर्थितः। तादृशं तं पुनर्वीक्ष्य विस्मिताभूत्सुकामिनी ॥८६॥
पंकावलिप्तपादोऽसौ प्रागमत्प्रांगणे ततः। जलमंजलिदध्नं सा प्रेषयामास तं प्रति ॥८७॥
पादप्रक्षालनायैव दृष्ट्वा नीरं सविस्मितः। क्वेदं नीरं क्व पादस्य कर्दमः क्व विनाशनं ॥८८॥
वेणुवीरणमादाय करस्पर्शनयोगतः। न्यवारयत्स जंबालं समस्तं बुद्धितोनृपः ॥८९॥

नन्दश्री की यह बात सुनकर कुमार के बुद्धि-चातुर्य को देखने के लिए वह निपुणमती सुन्दरी भी उसके पास बैठ गई। इस प्रकार अनेक कथा-कौतूहलों को करती हुई वे दोनों कुमार के आगमन का इंतजार कर रही थीं कि इतने में कुमार श्रेणिक भी दरवाजे के पास आ पहुँचे। आते ही जब उन्होंने द्वार पर घोंटूपर्यंत भरी हुई कीचड़ देखी और उस कीचड़ के ऊपर एक-एक पैर के फासले से रखी हुई ईंटें भी जब उनकी नजर में पड़ीं तो यह विचित्र दृश्य देखकर वे एकदम दंग रह गये और अपने मन में विचार करने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि नगर-भर में और कहीं पर भी कीचड़ देखने में नहीं आई। कीचड़ वर्षाकाल में होती है। वर्षा का मौसम भी इस समय नहीं। फिर इस द्वार के सामने कीचड़ कहाँ से आई ? मालूम होता है कि नन्दश्री ने मेरी बुद्धि की परीक्षा के लिए यह द्वार पर कीचड़ भरवाई है और कीचड़ के मध्य में ईंट रखवाई हैं। दूसरा कोई भी प्रयोजन नजर नहीं आता। मुझे अब इस घर के भीतर जाना आवश्यक है यदि मैं इन ईंटों पर पाँव रखकर भीतर जाता हूँ तो अवश्य गिरता हूँ और कीचड़ में गिरने पर मेरी हँसी होती है। हँसी संसार में अत्यन्त दुःख की देने वाली है इसलिए मुझे कीचड़ में होकर ही जाना चाहिए यदि मेरे पाँव कीचड़ में जाने से लिथड़ भी जायें तो भी मेरा कोई नुकसान नहीं। ऐसा क्षणिक अपने मन में पक्का निश्चय कर अतिशय बुद्धिमान्, भली प्रकार लोक-चातुर्य में पंडित, कुमार श्रेणिक ने, उस कीचड़ में होकर ही महल में प्रवेश किया ॥८०-८७॥

कुमार के इस उत्तम चातुर्य को देखकर कुमारी नन्दश्री दंग रह गई किन्तु कुमार की बुद्धि की परीक्षा का कौतूहल अभी तक उसका समाप्त नहीं हुआ। इसलिए जिस समय कुमार उस कीचड़ को लाँघकर महल में घुसे और जिस समय नन्दश्री ने उनके पाँव कीचड़ से भरे हुए देखे। तो फिर भी उसने किसी सखी द्वारा कीचड़ धोने के लिए एक चुल्लू पानी कुमार के पास भेजा ॥८८-८९॥

निवार्येति स जंबालं सार्द्रौ कृत्वा निजौ क्रमौ। प्रक्षाल्य स्तोकनीरेण शुद्धौ चक्रे शुभौ क्रमौ ॥९०॥
प्रेषिताद्धं जलं तेन पुनरावर्त्त्य सद्धिया। तस्यै दत्तं महाचित्र करं प्रणयकारणम् ॥८१॥
अहो चित्रमहो चित्रमहो कौशल्यमुत्तमं। अहो दाक्षिण्यमत्रास्ते यत्तन्न भुवनत्रये ॥९२॥
अत्यासक्ततया रूपं हृतमानसपद्मया। निवेशितोंऽतर्भवनं तया सोऽनंगसत्प्रभः ॥९३॥
तयाऽभाणि शुभाधीश भोक्तव्यं मम मंदिरे। प्राधूर्णो भव सत्कांत प्रसीदैतत्कृते प्रभो ॥९४॥
अस्मद्दैवप्रसादाद्यै प्रेषितोऽसित्वं महामनाः। प्राधूर्णीभव सत्कुत्य कृपां मे वांछितार्थदः ॥९५॥
दिष्ट्या स्वजनसंयोगो जायते भुवनत्रये। प्राघूर्णयति तं प्राप्य यो न दैवेन वंचितः ॥९६॥
अतः प्रसीद भोज्याय करोमीत्याग्रहं शुभ। इत्यादर सुवाक्यानि श्रुत्वाऽवोचन्नृपात्मजः ॥९७॥
निपुणाश्रूयसे लोके कोविदे चारुलक्षणे। बाले व्रतं मया चक्रे द्येत्थं शृणु शुभांगिके ॥९८॥

कुमार ने जिस समय कुमारी नन्दश्री द्वारा भेजा हुआ थोड़ा-सा पानी देखा तो देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में पुनः विचारने लगे कि कहाँ तो इतना अधिक कीचड़? और यह न कुछ जल ? इससे कैसे कीचड़ धुल सकती है ? तथा श्रेणिक ऐसा विचार कर और एक बाँस की फच्चट लेकर पहले तो उससे उन्होंने पैर में लगे हुए कीचड़ को खुरच कर दूर किया बाद में उस नन्दश्री द्वारा भेजे हुए पानी के कुछ हिस्से में एक कपड़ा भिगोकर उस थोड़े से जल से ही उन्होंने अपने पाँव धो लिए और अपने महनीय बुद्धिबल से अनेक आश्चर्य कराने वाले कुमार ने उसमें से भी कुछ जल बचाकर कुमारी के पास भेज दिया ॥९०-९२॥

कुमार के इस चातुर्य को अपनी आँखों से देख कुमारी नन्दश्री से चुप न रहा गया वह एकदम कहने लगी-अहा जैसा कि कौशल एवं उच्च दर्जे का पांडित्य कुमार श्रेणिक में है वैसा कि कौशल पांडित्य अन्यत्र नहीं तथा ऐसा कहती-कहती अपने रूप से लक्ष्मी को भी नीचे करने वाली, कुमार के गुणों पर अतिशय मुग्ध, कुमारी नन्दश्री ने कामदेव से भी अति मनोहर, कुमार श्रेणिक को भीतर घर में जाकर ठहरा दिया और विनयपूर्वक यह निवेदन भी किया कि हे महाभाग! कृपाकर आज आप मेरे मंदिर में ही भोजन करें। हे उत्तम कांति को धारण करने वाले प्रभो! आज आप मेरे ही अतिथि बनें। मुझ पर प्रसन्न होइये। आर्य प्राज्ञवर हमारे अत्यन्त शुभ भाग्य के उदय से आपका यहाँ पधारना हुआ है। हे मेरी समस्त अभिलाषाओं के कल्पद्रुम! आप मेरे अतिथि बनकर मुझ पर शीघ्र कृपा करें। संसार में बड़े भाग्य के उदय से इष्टजनों का संयोग होता है। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ इष्टजन को पाकर भी उनकी भली प्रकार सेवा-सत्कार नहीं करते उन्हें भाग्यहीन समझना चाहिए इसलिए हे पुण्यात्मन्! भोजन के लिए मेरे ऊपर आप प्रसन्न होवें मैं आपसे भोजन के लिए आदर पूर्वक आग्रह कर रहीं हूँ ॥९३-९८॥

मद्धस्ते तंडुला रम्या वर्त्तंते द्विकषोडश। तैः कृत्वा भोजनं रम्यं नानापक्वान्नसंयुतं ॥९९॥
दधिदुग्ध हविः पूर्णं नानाव्यंजनमुत्कटं। सरसं स्वादु संपूर्णं पूपादिपरिमंडितम् ॥१००॥
यो मे दत्ते मया बाले भुज्यते नान्यथा पुनः। ततः सा विस्मिता प्राह देहि मे तंडुलान्वरान् ॥१०१॥
ततश्चूर्णं विधायोच्चैश्चक्रे साऽदायपूपकान्। निपुणादिमती हस्ते ददौ विक्रयहेतवे ॥१०२॥
गृहीत्वा सा सखी पूपानगमद्धिटसन्निधिं। द्यूतक्रीड़ा प्रदेशे च श्वेतवस्त्राभिमंडिता ॥१०३॥
तदग्रे सा बभाणैवं यूपवृन्दं परोन्नतम्। देवताधिष्ठितं यस्तु गृह्णाति वरभावतः ॥१०४॥
तस्य लाभादिसिद्धिः स्याद्विजयश्च विशेषतः। देवताधिष्ठितं मत्वा श्रुत्वा सर्वे समुद्यताः ॥१०५॥
आदातुं च तदैकस्तु कैतवी बहुवित्ततः। आददे विजयायेदं सापि द्रव्यं समाददे ॥१०६॥
प्रचुरं रित्थमादा य सादान्नंदश्रियै पुनः। सापि नानाविधं चक्रे तेन द्रव्येण वल्लनं ॥१०७॥
ततः स वल्लयांचक्रे ज्ञात्वा वल्लनवृत्तकं। विकचन् दक्षतां स्वस्य पश्यंस्तद्रूपसंपदं ॥१०८॥

कुमारी के ऐसे अतिशय आदर पूर्ण वचन सुन कुमार श्रेणिक ने अपनी मधुर वाणी से कहा, हे सुभगे! संसार में तू अति चतुर सुनी जाती है। हे उत्तम लक्षणों को धारण करने वाली पंडिते! हे बाले! तथा हे मनोहरांगी! मैं भोजन जब करूँगा जब मेरी प्रतिज्ञानुसार भोजन बनेगा। वह मेरी प्रतिज्ञा यही है मेरे हाथ में ये बत्तीस चावल हैं इन बत्तीस चावलों से भाँति-भाँति के पके हुए अन्न से मनोहर भोजन बनाकर दूध, दही, घी आदि से परिपूर्ण और भी अनेक प्रकार के व्यंजनों से युक्त, सरस, स्वादिष्ट, पूआ आदि पदार्थ सहित, उत्तम भोजन जो मुझे खिलावेगा उसी के यहाँ मैं भोजन करूँगा दूसरी जगह नहीं ॥९९-१०२॥

कुमार के ऐसे प्रतिज्ञा परिपूर्ण एवं अपनी परीक्षा करने वाले वचन सुनकर कुमारी प्रथम तो एकदम विस्मित हो गई। बाद में उसने बड़े विनय से कहा कि लाइये, अपने चावलों को कृपा कर मुझे दीजिये। कुमारी के आग्रह से कुमार को चावल देने पड़े तथा कुमार से बत्तीस चावल लेकर उनको कूट-पीसकर कुमारी ने उनके पूए बनाये। उन पूओं को बेचने के लिए अपनी प्रिय सखी निपुणमती को देकर बाजार भेज दिया। कुमारी की आज्ञानुसार सखी उन पूओं को लेकर सफेद वस्त्र पहनकर बाजार की ओर गई और जहाँ पर जुआ खेला जाता था वहाँ पहुँचकर और किसी जुआरी के पास जाकर उन पूओं की उसने इस प्रकार तारीफ करना प्रारम्भ किया कि ये पूए अति पवित्र देवमयी हैं जो भाग्यवान् मनुष्य इनको खरीदेगा उसे अवश्य अनेक लाभ होंगे। सर्व खिलाड़ियों में ये पूए खानेवाला ही विशेष रीति से जीतेगा इसमें संदेह नहीं। निपुणमती के इस प्रकार आश्चर्य-भरे वचनों पर विश्वास कर एवं उन पूओं को सब ही देवमयी जानकर जुआरियों के मन में उनके खरीदने की इच्छा हुई और खेल में विजय एवं अधिक धन की आशा से उनमें से एक जुआरी ने मुँह माँगी कीमत देकर पूओं को तत्काल खरीद लिया और कीमत अदा कर दी, कीमत का रुपया लेकर और कुमार की प्रतिज्ञानुसार भोजन के लिए उसे पर्याप्त जानकर निपुणमती ने उसी समय नन्दश्री को जाकर चुपचाप दे दिया ॥१०३-१०८॥

नागपत्राणि सा तस्मै खदिरादिसुसारकैः। प्रचुरेण च चूर्णेन ददौ युक्तानि संमुदा ॥१०९॥
घोंटाफल सुखंडानि प्रचुराणि दग्धचूर्णकैः। अंगुल्या चित्रयन्भूमिं वाचयन्कृतकौतुकं ॥११०॥
चर्बयन् संत्यजन् धीमान् कषायं दग्धचूर्णकैः। अंगुल्या चित्रयन्भूमिं वाचयन्कृतकौतुकम् ॥१११॥
सर्वं योग्यं यदाजातं नागवल्लीदलानि सः। तदा चखाद प्रागल्भाद्दर्शयन् वक्त्ररागतां ॥११२॥
ततोऽतिहृष्टा संसक्ता पश्यंती कृतकौतुकं। तस्मिन् बभूव नंदश्री राजहंसीव हंसके ॥११३॥
अथो तदनु सा बाला प्रवालं वक्रछिद्रितं। तस्मै ददौ गुणं चैकं प्रवेशाय विनिश्चितं ॥११४॥
विलोक्य दुर्घटं कार्यं वितर्क्य हृदि तत्क्षणम्। चकार तत्प्रवेशायोद्यमं संसक्त मानसः ॥११५॥
गुडं डवरकाग्रे स विलिप्य तत्र छिद्रके। यावद्याति स्वशक्त्या च प्रविविश्य च सद्गुणं ॥११६॥
मुक्तं प्रवालमापूर्णं रम्यं पिपीलिकागृहे। सगुणं स तदा ताभिराकृष्टो गुडबुद्धितः ॥११७॥
ततस्तस्या अदाद्धीमान् प्रवालं च गुणान्वितं। विलोक्य हृष्टचेतस्काऽभून्नंदश्री परोन्नता ॥११८॥
शरेण कामजेनैव विद्धाऽभून्मदनाकुला। तद्गुणेन च तद्बुध्या तद्रूपाखिलसंपदा ॥११९॥
तदंगजं तदाज्ञाय जनको भूतसंपदः। विवाहार्थं कृतोद्योगो बभूव वणिजां पतिः ॥१२०॥

जिस समय नन्दश्री ने पूओं की कीमत को देखा तो उसको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने भाँति-भाँति के मधुर भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। जिस समय वह भोजन बना चुकी उसने भोजन के लिए कुमार को बुला भी लिया। भोजन का बुलावा सुन नन्दश्री का रूप देखने के अति लोलुपी, अपने मन में अति प्रसन्न, कुमार पाकशाला में चट जा धमके। कुमारी ने कुमार को देखते ही आदरपूर्वक आसन दिया और प्रेमपूर्वक भोजन कराना आरम्भ कर दिया। कभी तो वह कुमारी भोजन में मग्न कुमार को खैरि आदि पदार्थों के उत्तम रसों से परिपूर्ण, अनेक मसालों से युक्त, अति मधुर बेरों के टुकड़ों को खिलाती हुई और कभी अपनी चतुरता से भाँति-भाँति के फलों का उसने भोजन कराया तथा कभी-कभी उसने दूध, दही मिश्रित नाना प्रकार के व्यंजन बनाकर कुमार को खिलाये एवं कुमार भी उसके चातुर्य पर विचार करते-करते भोजन करते रहे तथा जिस समय कुमार भोजन कर चुके उस समय कुमार ने पान खाया। इस प्रकार कुमार के चातुर्य से अति प्रसन्न, उनके गुणों में अतिशय आसक्त, कुमारी नन्दश्री जिस प्रकार राजकुमार के पास बैठी हुई राजहंसी शोभित होती है कुमार के समीप में बैठी हुई अत्यन्त शोभित होने लगी। इन समस्त बातों के बाद कुमारी के मन में फिर कुमार की बुद्धि की परीक्षा का कौतूहल उठा उसने शीघ्र एक अति टेड़े छेद का मूंगा कुमार को दिया और उसमें डोरा पोने के लिए निवेदन किया, कुमारी द्वारा दिये हुए इस कार्य को कठिन कार्य जान क्षण-भर तो कुमार उसके पोने के लिए विचार करते रहे पीछे भली प्रकार सोच-विचार कर उस डोरे के मुख पर थोड़ा गुड़ लपेट दिया और अपनी शक्ति के अनुसार मूंगा के छेद में उसको प्रविष्ट कर चींटियों के बिल पर उसे जाकर रख दिया। गुड़ की आशा से जब चींटियों ने डोरे को खींचकर पार कर दिया तब डोरा पार हुआ जानकर कुमार श्रेणिक ने मूंगे को लाकर नन्दश्री को दे दिया। कुमारी नन्दश्री कुमार श्रेणिक

विवाहाय महान्यासो मंडपस्य महोन्नतेः। बभूव घंटिकाध्वान बधिरीकृत दिक्चयः ॥१२१॥
केतुमाला समाकीर्णः शुभतोरणराजितः। चंद्रोपककलाकीर्णः शुभंयुः शुभनिस्वनः ॥१२२॥
भेरीणां च महानादाः शंखकाहल निस्वनाः। आनकानां शुभानादा बभूवुर्दुंदुभिस्वनाः ॥१२३॥
नानाजनसमक्षं वै विवाहवरमंगलम्। तयोरजनि संप्रीत्या परया संपदा सह ॥१२४॥
मांगल्यसंशिनः सर्वे मागधा मगधेशिनः। ऐश्वर्यशांसि संप्राप्त भूमंडलानि सत्वरं ॥१२५॥

इति विवाह विशेष विमोहितो ऽजनि जनोवररूपज संपदा।
गुणगणाऽहतमानसकस्तयोः प्रकटिताखिल तद्गुणमंडनः ॥१२६॥
निरूप्य रूपं वरजं विशालकं वदंति लोका इति पुण्यसत्फलं।
अहोगतिः सुंदर रूप संगति रहो ध्वनिः पुण्यनृणां च शासनः ॥१२७॥
अहो मुखं चंद्र समानदीधिति तन्नेत्रयुग्मं नलिनायतं परम्।
ललाटपट्टं क्व च दीर्घतां गतम्। वरस्य पुण्यं प्रबलं भुवि स्मृतम् ॥१२८॥

का यह अपूर्व चातुर्य देख अति प्रसन्न हुई उसका मन कुमार में आसक्त हो गया। यहाँ तक कि कुमार के श्रेष्ठ गुणों से, उनकी रूप-सम्पदा से कामदेव भी बुरी रीति से उसे सताने लग गया ॥१०९-१२०॥

सेठी इन्द्रदत्त को यह पता लगा कि कुमारी नन्दश्री कुमार श्रेणिक पर आसक्त है। कुमार श्रेणिक को वह अपना वल्लभ बना चुकी। शीघ्र ही राजा के समान सम्पत्ति के धारक इन्द्रदत्त ने कुमारी के विवाहार्थ बड़े आनंद से उद्योग किया ॥१२१॥

कुमार कुमारी के विवाह का उत्सव नगर में बड़े जोर-शोर से प्रारम्भ हुआ समस्त दिशाओं को गुंजायमान करने वाले घंटे बजने लगे। नगर अनेक प्रकार की ध्वजाओं से व्याप्त, मनोहर तोरणों से शोभित, कल्याण को सूचन करने वाले शुभ शब्दों से युक्त काहल आदि बाजे बजने लगे। नगाड़ों के शब्द भी उस समय खूब जोर-शोर से होने लगे। समस्त जनों के सामने भाँति-भाँति की शोभाओं से मंडित कुमार-कुमारी का विवाह-मंडप प्रीतिपूर्वक बनाया गया। बंदीगण कुमार श्रेणिक के यश को मनोहर पद्यों से रचना कर गान करने लगे। कुमार श्रेणिक और कुमारी नन्दश्री के विवाह के देखने से दर्शक जनों को वचनागोचर आनंद हुआ। उन दोनों के रूप देखने से दोनों के गुणों पर मुग्ध दोनों की सब लोग मुक्त कण्ठ से तारीफ करने लगे। दंपती का रूप देख समस्त लोग इस भाँति कहने लगे कि आश्चर्यकारी इनकी गति है तथा आश्चर्यकारी इनका रूप और मधुर वचन हैं ये सब बात पूर्व पुण्य से प्राप्त हुई हैं ॥१२२-१२७॥

नन्दश्री को देखकर अनेक मनुष्य यह कहने लगे कि चन्द्र के समान कांति को धारण करने वाला तो यह नन्दश्री का मुख है। फूले कमल के समान इसके दोनों नेत्र हैं और अत्यन्त विस्तीर्ण इसका ललाट है। कुमार श्रेणिक का संसार में अद्भुत पुण्य मालूम पड़ता है जिससे कि इस कुमार

नंदश्रिया किं कृतमद्यजन्मनि तपोव्रतं शीलभरः शुभावहः।
परेऽथवा दानसमूहकः कृतो, यतोऽनया वीरवरोऽवलंभितः ॥१२९॥
इति कृतवृषपाकाल्लोकशंसां समाप्तौ जनयत इति मोदं दंपती प्रौढरंगौ।
उरूजयुगलकस्याऽनंदभारांगपूर्त्ते र्जननसुखसमुद्रे मग्नदेहौ सुरगहौ ॥१३०॥

इति श्रेणिकभवानुबद्ध भविष्यत् पद्मनाभ पुराणे भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचिते श्रेणिक नन्दश्री विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः।

को ऐसे स्त्री-रत्न की प्राप्ति हुई है तथा कुमार को देखकर लोग यह कहने लगे कि इस नन्दश्री ने पूर्वजन्म में क्या कोई उत्तम तप किया था ? अथवा किसी उत्तम व्रत को धारण किया था ? वा इष्ट पदार्थों के देने वाले पात्रों में पवित्र दान किया था ? जिससे इसको ऐसे उत्तम रूपवान्, गुणवान् पति की प्राप्ति हुई।

इस प्रकार धर्म के प्रभाव से समस्त लोक द्वारा प्रशंसित, अतिशय हर्षित चित अत्यन्त दीप्तियुक्त देह के धारक, वे दोनों स्त्री-पुरुष भली-भाँति सुख का अनुभव करने लगे ॥१२८-१३०॥

इस प्रकार होने वाले श्री पद्मनाभ भगवान् के जीव महाराज श्रेणिक का भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित कुमारी नन्दश्री के साथ विवाह-वर्णन करने वाला चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।
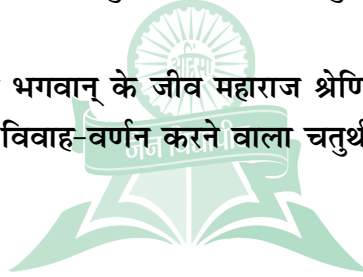
पंचमः सर्गः

सुधर्मात्सुखमापन्नौ तौ यस्माद्धर्ममुत्तमं। तं स्तुवे भूतसंसिद्धयै शुभपाकविधायिनं ॥१॥
अथ स श्रेणिको धीमान् कांतया रमते सुखं। पक्व मालूरसंपीन पयोधर शुभश्रिया ॥२॥
कदाचिद्वनदेशेषु कदाचिन्निम्नगातटे। सौधोत्संगे कदाचिच्च ह्यनया रेमे स पुण्यतः ॥३॥
तद्रम्यदेहसंस्पर्शादवाप रसमुल्वणम्। स यथानिधिसंसर्गात्कदर्यो विकचेक्षणः ॥४॥
साऽपि तत्करसंस्पर्शादाजन्माप्राप्तमुल्वणं। लेभे शर्मा तनुप्रौढं पद्मिनीवार्कसंकरात् ॥५॥
चुंबनोत्थं सुभावोत्थं रूपवीक्षणजं कदा। रतिजं हास्यजं शर्मस्तनस्पर्शनसंभवं ॥६॥
क्रीडोद्भवं कदाचित्स कथाकौतुक संभवं। तस्याः प्रापन्मनोऽभीष्टं करणोत्थं च मानसं ॥७॥
इति शर्माब्धिमध्यस्थौ वित्तः कालं गतं न हि। दंपती रूढ संक्रीडौ व्रीडाभूषौ प्रियस्मरौ ॥८॥

जिस उत्तम धर्म की कृपा से संसार में उन दोनों दंपति को अतिशय सुख मिला। धर्मात्मा पुरुषों को अनेक विभूति देने वाले उस परम पवित्र धर्म को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार विवाह के अनन्तर कुमार श्रेणिक ने पके हुए ताल-फल के समान उत्तम स्तनों से मण्डित, मन को भली प्रकार सन्तुष्ट करने वाली, कान्ता नन्दश्री के साथ क्रीड़ा करना प्रारम्भ कर दी। कभी तो कुमार उसके साथ मनोहर उद्यानों के लता-मण्डपों में रमने लगे। कभी उन्होंने नदियों के तट अपने क्रीड़ा-स्थल बनाये तथा कभी-कभी वे उत्तम स्तनों से विभूषित नन्दश्री के साथ महल की अटारियों में क्रीड़ा करने लगे। जिस प्रकार दरिद्री पुरुष खजाना पाकर अति मुदित हो जाता है और उसे अपने तन-बदन का भी होशोहवास नहीं रहता उसी प्रकार कुमार उस नन्दश्री के देह-स्पर्श से अतिशय आनन्द-रस का अनुभव करने लगे। मनोहरांगी नन्दश्री भी सूर्य की किरण-स्पर्श से जैसे कमलिनी आनन्दित होती है उसी प्रकार कुमार के हाथ के कोमल स्पर्श से अनन्य प्राप्त सुख का आस्वादन करने लगी। कभी तो वे दोनों दंपती चुम्बनजन्य सुख का अनुभव करने लगे और कभी स्वाभाविक रस का आस्वादन करने लगे तथा कभी-कभी दोनों ने परस्पर रूप-दर्शन एवं रति से उत्पन्न आनन्द का अनुभव किया और कभी हास्योत्पन्न रस पिया। कभी-कभी स्तन-स्पर्श से उत्पन्न एवं कथा-कौतूहल से जनित सुख का भी उन्होंने भोग किया। इस प्रकार मानसिक, कायिक, वाचनिक अभीष्ट सुख को अनुभव करने वाले, भाँति-भाँति की क्रीड़ाओं में मग्न, सुख-सागर में गोते मारने वाले, कुमार श्रेणिक और नन्दश्री को जाते हुए काल का पता भी न लगा ॥१-८॥

तस्या वृषविपाकेन भ्रूणोऽभूत्सुंदराकृतेः। ततो वृद्धिं समापन्न उदरस्थः शुभान्वितः ॥९॥
तत्प्रभावात्तदंगेऽभूत्पांडुत्वं सर्गसुंदरे। चूचकाग्रे च कृष्णत्वं पयोधरमुखस्थिते ॥१०॥
भूषणानि न रोचंते तस्यै गर्भप्रभावतः। विनक्षत्रा निशांते द्यौः शुशुभे च विभूषणा ॥११॥
गतेर्मंदत्वमुद्भूतं तुच्छान्नरुचिसंगता। निर्निमित्ताज्जुगुप्सा च तस्या अंगे बभूव च ॥१२॥
इत्यभूवन् सुचिह्नानि गर्भजानि तदंगके। दंतिनो गतिमापन्ने वक्त्रचंद्रविराजते ॥१३॥
पुनर्दोहलको जातस्तस्याश्चेतसि सद्गतेः। सप्ताऽहो रात्रपर्यंताऽभयरूपावसूचकः ॥१४॥
तमप्राप्ता स्वचित्तेऽभूद्व्याकुला क्षीणविग्रहा। विभूषा च सुवल्ली वा प्राप्तनीरा विपत्रिका ॥१५॥
तादृशां तां विलोक्याशु श्रेणिको व्याकुलोऽभवत्। कुतः शर्मसमुत्पन्नमस्या अंगेस्फुरत्प्रभे ॥१६॥
अपृच्छत्स ततो रम्यां तां खिन्नादिसुकारणम्। कांते! केनेदृशा जाता विच्छाया क्षीणविग्रहा ॥१७॥
दुर्घटं दोहदं मत्वा सान वक्ति यदा तदा। वाचिता कथमप्येषाऽगदीद्वाक्यं मनोगतं ॥१८॥

कुछ दिन बाद के उत्तम गुणयुक्त कुमार के साथ क्रीड़ा करते-करते रानी नन्दश्री के धर्म के प्रभाव से गर्भ रह गया तथा सुन्दर आकार का धारक शुभ लक्षणों कर युक्त वह उदर में स्थित जीव दिनोंदिन बढ़ने लगा। गर्भ के प्रभाव से रानी नन्दश्री के अतिशय मनोहर अंग पर कुछ सफेदी छा गई। स्तनों के अग्रभाग (चूचुक) काले पड़ गये ॥९-१०॥

उसे किसी प्रकार के भूषण भी नहीं रुचने लगे तथा भूषण रहित वह ऐसी शोभित होने लगी जैसा नक्षत्रों के अस्त हो जाने पर प्रभात शोभित होता है एवं गर्भ के भार से नन्दश्री की गति भी अधिक मंद हो गई। भोजन भी बहुत कम रुचने लगा और उसको अपने अंग में ग्लानि भी होने लगी एवं मतवाले हाथी के समान गमन करने वाली, मुखरूपी चन्द्रमा से शोभित, मनोहरांगी नन्दश्री के अंग में गर्भ से होने वाले मनोहर चिह्न भी प्रगटित होने लगे। कदाचित् नन्दश्री को सात दिन पर्यंत अभयदान का सूचक उत्तम दोहला हुआ। अपनी घर की स्थिति देख उस दोहला की पूर्ति अति कठिन जानकर वह भारी चिंता करने लगी और जैसे पानी के अभाव से उत्तम लता कुम्हला जाती है उसी प्रकार उसके अंग भी चिंता से सर्वथा कुम्हलाने लगे ॥११-१५॥

किसी समय कुमार श्रेणिक की दृष्टि नन्दश्री पर पड़ी, उदास एवं कान्ति रहित रानी नन्दश्री को देख उन्हें अति दुःख हुआ। वे अपने मन में विचार करने लगे अतिशय मनोहर एवं देदीप्यमान सुन्दरी नन्दश्री के शरीर में अति बाधा देने वाला यह दुःख कहाँ से टूट पड़ा। इसकी यह दशा क्यों और कैसे हो गई? ऐसा विचार कर उन्होंने पास जाकर नन्दश्री से पूछा-हे प्रिये! जिस कारण से आपका शरीर सर्वथा खिन्न, कृश और फीका पड़ गया है वह कौन-सा कारण है मुझे कहो ॥१६-१७॥

कुमार के ऐसे हितकारी एवं मधुर वचन सुनकर और दोहले की पूर्ति सर्वथा कठिन समझ कर पहले तो नन्दश्री ने कुछ भी उत्तर न दिया किन्तु जब उसने कुमार का आग्रह विशेष देखा तो

कथं करोमि भो कांत! कृपां सप्तदिनावधिम्। दोहलकोद्भवां लज्जामंतः खिन्नास्मि भूपते ॥१९॥
आकर्ण्य वचनं तस्या जगौ गंभीरवाचया। खेदं मा कुरु भोकांतेऽभव मा क्षीणविग्रहा ॥२०॥
पूरयिष्यामि चित्तस्थं मा कृथास्तं तवाऽधुना। दुःखं यथा कथंचिद्वै वृथा विज्ञानकोविदे ॥२१॥
आश्वास्येति जगामैष तां शुभां कलभाषिणीं। नदीतटे स्थितो यावत्तदुपायं विचिंतयन् ॥२२॥
तावत्तन्नगरे शस्य वसुपालस्य भूपतेः। निर्गतः स्तंभमुन्मूल्य दंतीतुंगः सुदंतुरः ॥२३॥
भंजयन् गृहद्वाराणि खंडयन् स्तंभसंततिं। छिंदयन् जनमग्रस्थं भिंदयन्वृक्षमालिकां ॥२४॥
उन्मीलयल्लतागेहमुत्क्षिपन् पांशुनिर्भरं। अंकुशादीन् समुल्लंघ्य वार्यमाणोऽपि सज्जनैः ॥२५॥
चीत्कारेणैव बधिरीकुर्वंश्च सकलं जगत्। आकारयन् दिशां नाथान्करोत्क्षेपेण वो मदात् ॥२६॥
व्याकुलीकृत्य सर्वं च पुरं हा हारवाकुलम्। निर्जगाम पुरान्नद्यां यत्रास्ते श्रेणिको नृपः ॥२७॥
आगच्छन्तं नृपो वीक्ष्य दंतिनं पर्वतप्रभं। महामद समालीढ मुत्तस्थे युद्धसिद्धये ॥२८॥
सनह्य सन्मुखीभूत्वा कार्य्यवाक्यप्रबंधतः। युद्धं चकार भूपालस्तेनामा जनवीक्षितः ॥२९॥

वह कहने लगी-हे कांत! मैं क्या करूँ मुझे सात दिन पर्यंत अभय नामक दान का सूचक दोहला हुआ है। इस कार्य की पूर्ति अति कठिन जान मैं खिन्न हूँ। मेरी खिन्नता का दूसरा कोई भी कारण नहीं। प्रियतमा नन्दश्री के ऐसे वचन सुन कुमार ने गम्भीरतापूर्वक कहा ॥१८-१९॥

प्रिये! इस बात के लिए तुम जरा भी खेद न करो। मत व्यर्थ खेद कर अपने शरीर को मत सुखाओ। सुव्रते! मैं शीघ्र ही तुम्हारी इस अभिलाषा को पूर्ण करूँगा। चतुरे! जो तुम इस कार्य को कठिन समझ दुःखित हो रही हो एवं अपने शरीर को बिना प्रयोजन सुखा रही हो सो सर्वथा व्यर्थ है तथा मधुर भाषिणी एवं शुभांगी नन्दश्री को ऐसा आश्वासन देकर भली प्रकार समझा बुझाकर कुमार श्रेणिक किसी वन की ओर चल पड़े और वहाँ पर किसी नदी के किनारे बैठी नन्दश्री की इच्छा पूर्ण करने के लिए विचार करने लगे ॥२०-२१॥

उस समय उसी नगर के राजा वसुपाल का ऊँचे-ऊँचे दाँत को धारण करने वाला एक मतवाला हाथी नगर से बड़े झपाटे से बाहर निकला तथा प्रत्येक घर के द्वार को तोड़ता हुआ, बहुत से नगर के खम्भों को उखाड़ता हुआ, अनेक प्रकार के वृक्षों को नीचे गिराता हुआ, उत्तमोत्तम लता-मण्डपों को निर्मूल करता हुआ, अनेक सज्जन वीरों द्वारा रोकने पर भी नहीं रुकता हुआ, अनेक चीत्कार से समस्त दिशाओं को बधिर करता हुआ एवं अपनी सूँड़ को ऊपर उठा दिग्गजों को भी मानो युद्ध करने के लिए ललकारता हुआ और समस्त नगर को व्याकुल करता हुआ वह मत्त हाथी उसी नदी की ओर झपटा जहाँ कुमार बैठे थे।

जिस समय पर्वत के समान विशाल, अति मत्त, अपनी ओर आता हुआ, वह भयंकर हाथी कुमार की नजर में पड़ा तो कुमार शीघ्र ही उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये तथा उस

करमुष्ट्यादि घातेन संकृत्य व्याकुलात्मकं। द्विरदं विमदं राजाऽचिरेण वशमानयत् ॥३०॥
वशीभूतं गजं मत्वा रुरोह नृपनंदनः। जयारवस्तदा चक्रे लोकैः कंपितविग्रहैः ॥३१॥
अहोवीर्यमहोवीर्यं रूपं च नवयौवनं। इंद्रदत्तस्य जामातुः शक्तिर्लोकोत्तरा मता ॥३२॥
जनिर्जेतुमशक्योऽयं द्विरदो मदमेदुरः। वशीकृतो महाबुद्ध्याऽनेन पुण्यप्रभावतः ॥३३॥
इति पुण्यजनारावैः स्तूयमानो गजोद्धतः। संभ्रमेण नृपागारं प्राविशत्केतुराजितं ॥३४॥
दंत्यारूढं महाकारमसाधारणसद्गुणम्। नृपस्तं श्रेणिकं वीक्ष्य तुतोष निजमानसे ॥३५॥
अवादीन्नृपतिः प्रीत्या मुदा तं नृपनंदनं। भो वीराणां महावीर नानापुण्यफलोपभुक् ॥३६॥
याचय स्वमनोऽभीष्टं वरं सत्फलमंडितं। ददामि तेऽद्य सद्रूप गुणमालामनोहर ॥३७॥
अहंकारवशादेष तथापि न च याचते। किंचित्संवाह्यमानोऽपि जनैर्विस्मितचित्तकैः ॥३८॥
इंद्रदत्तस्तदा ज्ञात्वा तच्चित्तस्थं पुनर्जगौ। भो भूप! वरमस्मै त्वं यदि दित्ससि निश्चितं ॥३९॥

मतवाले हाथी के सम्मुख जाकर अनेक प्रकार से उसके साथ युद्ध कर, मुक्कों से मार-मारकर उसे मद रहित कर दिया और निर्भयतापूर्वक क्रीड़ार्थ उसकी पीठ पर चट सवार हो राजद्वार की ओर चल दिये ॥२२-३०॥

मतवाले हाथी पर बैठे हुए कुमार को देखकर हाथी के कर्मों से भयभीत, कुमार का हाथी के साथ युद्ध देखने वाले, कुमार की वीरता से चकित, अनेक मनुष्य जय-जय करने लगे एवं परस्पर एक-दूसरे से यह भी कहने लगे सेठी इन्द्रदत्त के जमाई का पराक्रम आश्चर्य कारक है। रूप और नवयौवन भी बड़ा भारी प्रशंसनीय है। शक्ति भी लोकोत्तर मालूम पड़ती है। देखो जिस मत्त हाथी को बलवान् से बलवान् भी कोई मनुष्य नहीं जीत सकता था उस हाथी को इस कुमार ने अपने बुद्धि, बल और पुण्य के प्रभाव से बात-की-बात में जीत लिया तथा इधर मनुष्य तो इस भाँति पवित्र शब्दों से कुमार की स्तुति करने लगे उधर गज से भी अतिशय पराक्रमी कुमार ने अनेक प्रकार की नीली-पीली ध्वजाओं से शोभित क्रीड़ा पूर्वक नगर में प्रवेश किया ॥३१-३५॥ सुन्दर आकार के धारक असाधारण उत्तम गुणों से मण्डित कुमार श्रेणिक को हाथी पर चढ़े हुए देखकर महाराज वसुपाल मन में अति हर्षित हुए और बड़ी प्रीति एवं हर्ष से उन्होंने कुमार से कहा। हे वीरों के सिरताज! हे अनेक पुण्य फलों के भोगने वाले! कुमार जिस बात की तुम्हें इच्छा हो शीघ्र ही मुझे कहो। हे उत्तमोत्तम गुणों के भंडार कुमार! शक्त्यनुसार मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा किन्तु महाराज के सन्तोष भरे वचन सुनकर अन्य मनुष्यों द्वारा कुछ माँगने के लिए प्रेरित भी कुमार ने लज्जा एवं अहंकार से कुछ भी जवाब नहीं दिया, महाराज के सामने वे चुपचाप ही खड़े रहे। सेठी इन्द्रदत्त भी ये सब बातें देख रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही कुमार के मन के भाव को समझ लिया और इस भाँति महाराज से निवेदन किया महाराज! यदि आप कुमार के काम को देखकर प्रसन्न हुए हैं और उनकी अभिलाषा पूर्ण करना चाहते हैं तो एक काम करें सात दिन तक इस नगर और देश में सब जगह पर आप अभयदान की ड्योंढी पिटवा दें। सेठी इन्द्रदत्त के ऐसे

सप्तघस्त्रं महादानमभयाख्यं पुरे वरे। देशे सर्वत्र देहित्वं घोषणापूर्वकं वरं ॥४०॥
संतुष्टमनसा तेन तत्तथा प्रतिपद्य च। चक्रे सर्वत्र तद्घोषो दान सूचक उन्नतः ॥४१॥
तदा सदोहदा राज्ञी परिपूर्णमनोरथा। रेजे नवीनसंकाया वल्लीव नवपर्णिका ॥४२॥
सानंदा सा ततो नंदा पूर्णमासा मृगेक्षणा। शुभे लग्ने शुभे वारे सुनक्षत्रे सुवासरे ॥४३॥
शुभयोगे सुतं जज्ञे विकसत्कुमुदेक्षणं। नंदश्री नंदरोमांचा संत्रस्त सुमृगीदृशा ॥४४॥
कामिनी कलगीतानि वंदिवृंदश्रुतिस्वनाः। पंचशब्दमहानादा बभूवुस्तद्गृहांगणे ॥४५॥
दीनानाथजनेभ्यश्च ददौ दानं स्वहर्षतः। स्वजनेभ्यश्च संतोषादिंद्रदत्तस्य मागधः ॥४६॥
स्वजनैश्च ततः सर्वैस्तस्य चक्रे सुदानतः। अभयादिकुमाराख्या महता संभ्रमेण च ॥४७॥
एधते कलया घस्त्रे घस्त्रे मंडितदीधितिः। रम्यो दोषाकरश्चंद्रो यथा कुमुदकारकः ॥४८॥

कुमार के अनुकूल वचन सुन राजा वसुपाल अति संतुष्ट हुए और उन्होंने बेधड़क कह दिया। आपने जो कुमार के अनुकूल कहा है वह मुझे मंजूर है। मैं सात दिन तक नगर एवं देश में सब जगह अभयदान के लिए तैयार हूँ तथा ऐसा कहकर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अभयदान के लिए नगर एवं देश में सर्वत्र डंका भी पिटवा दिया ॥३६-४१॥

रानी नन्दश्री ने यह बात सुनी कि कुमार की वीरता पर मोहित होकर महाराज वसुपाल ने सात दिन तक अभयदान देना स्वीकार किया है। सुनते ही वह अपने मनोरथ को पूर्ण हुआ समझ, बहुत प्रसन्न हुई और जैसी नवीन लता दिनोंदिन प्रफुल्लित होती जाती है वैसी वह भी दिनों-दिन प्रफुल्लित होने लगी। शुभ लग्न, शुभ वार, शुभ नक्षत्र, शुभ दिन एवं शुभयोग में किसी समय रानी नन्दश्री ने अतिशय आनंदित पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर मुख का धारक, कमल के समान मनोहर नेत्रों से युक्त, उत्तम पुत्र को जन्म दिया। पुत्र की उत्पत्ति व आनंद के कारण रानी नन्दश्री का शरीर रोमांचित हो गया और वह सुख सागर में गोता लगाने लगी ॥४२-४४॥

सेठ इन्द्रदत्त के घर नन्दश्री से धेवता हुआ है, यह समाचार सारे नगर में फैल गया। सेठ इन्द्रदत्त के घर कामिनी मनोहर गीत गाने लगी। बन्दीजन पुत्र की स्तुति करने लगे। पुत्र के आनंद में मनोहर शब्द करने वाले अनेक बाजे भी बजने लगे। बालक के गर्भस्थ होने पर नन्दश्री को अभयदान का दोहला हुआ था इसलिए उस दिन को लक्ष्य कर सेठ इन्द्रदत्त के कुटुम्बी मनुष्यों ने बालक का नाम अभयकुमार रख दिया एवं जैसा रात्रि-विकासी-कमलों को आनन्द देने वाला चन्द्रमा दिनों-दिन बढ़ता चला जाता है वैसा ही अतिशय देदीप्यमान शरीर का धारक समस्त भूमण्डल को हर्षायमान करने वाला वह कुमार भी दिनों-दिन बढ़ने लगा। कुटुम्बीजन दूधपान आदि से बालक की सेवा करने लगे। आनन्द से खिलाने लगे इसलिए उस बालक से उसके माता-पिता को और भी विशेष हर्ष होने लगा। कुछ दिन बाद अभयकुमार ने अपनी बालक अवस्था छोड़ कुमार-अवस्था में पदार्पण किया और उस समय तेजस्वी कुमार अभय ने थोड़े ही

पय: पानादिभिर्बालो लाल्यमानो निजैर्जनै:। तन्वन् पित्रोर्मुदं स्फीतं ववृधे बुद्धिभूषित: ॥४९॥
कुमारत्वं समासाद्य पठत्शास्त्राण्यनेकश:। लीलया स महातेजा: स्वल्पकालेन बुद्धिमान् ॥५०॥
तनुजेनेति संशर्मश्रिया नंदश्रिया समम्। बभुजेऽतनु स श्रीमान् गतं कालं न वेत्ति च ॥५१॥
अथ राजगृहे रम्ये पत्तने धृतसत्तमे। उपश्रेणिकभूपालो मत्वास्यायु: क्षयं कुत: ॥५२॥
चलातीसूनवे राज्यं ददौ सामंतसेवित:। परया संपदा साकं चक्रवर्त्तिसमश्रिया ॥५३॥
तत: कतिपयैर्घस्त्रै: पंचत्वमगमन्नृप:। तदा लोका: शुचं तीव्रं चक्रिरे रावपूरिता: ॥५४॥
इंद्राणी प्रमुखा राज्यो वक्त्रफूत्कारपूरिता:। अकुर्वन् विविलापं च दीर्घकंठोत्थरोदना: ॥५५॥
अथ राज्यं शुभप्राज्यं पालयामास तत्सुत:। सामंतामात्य पौरैश्च सेव्यमानोऽति दुष्टधी: ॥५६॥
अन्यायेन विना वित्तं परकीयं समाहरत्। सेवकानां नृपो वृत्ती र्विलुलोप स लोभयुक् ॥५७॥

काल में अपने बुद्धिबल से बात-ही-बात में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। वह असाधारण विद्वान् हो गया। इस प्रकार कुमार श्रेणिक के साथ रानी नन्दश्री नाना प्रकार के भोग-विलास करने लगी एवं कुमार भी कान्ता नन्दश्री के साथ भाँति-भाँति के भोग भोगने लगे तथा भोग विलासों में मस्त, वे दोनों दंपती जाते हुए काल की भी परवा नहीं करने लगे ॥४५-५१॥

इधर कुमार श्रेणिक तो सेठ इन्द्रदत्त के घर नन्दश्री के साथ नाना प्रकार के भोग भोगते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। उधर महाराज उपश्रेणिक अतिशय मनोहर, अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम शोभा से शोभित राजगृह नगर में आनन्दपूर्वक अपना राज्य कर रहे थे। अचानक ही जब उनको यह पता लगा कि अब मेरी आयु में बहुत ही कम दिन बाकी हैं-मेरा मरण अब जल्दी होने वाला है। शीघ्र ही उन्होंने चक्रवर्ती के समान उत्कृष्ट, बड़े-बड़े सामंतों से सेवित, विशाल राज्य को चिलाती पुत्र को दे दिया तथा राज्य-कार्य से सर्वथा ममता रहित होकर पारमार्थिक कर्मों में वे चित्त लगाने लगे। कुछ दिनों के बाद आयु-कर्म के समाप्त होने पर महाराज उपश्रेणिक का शरीरांत हो गया। उनके मर जाने से सारे नगर में हा-हाकार मच गया। पुरवासी लोग शोक-सागर में गोता लगाने लगे। अंत:पुर की रानियाँ भी महाराज का मरण-समाचार सुन करुणाजनक रुदन करने लगीं। जितने भी सौभाग्य चिह्न हार आदिक थे सब उन्होंने तोड़कर फेंक दिये और महाराज के मरण से सारा जगत् उन्हें अन्धकारमय सूझने लगा। महाराज उपश्रेणिक के बाद रहा-सहा भी अधिकार राजा चिलाती को मिल गया। महाराज उपश्रेणिक के समान वह भी मगध देश का महाराज कहा जाने लगा किन्तु राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ राजा चिलाती ने सामंत, मंत्री, पुरवासी जनों से भली प्रकार सेवित होने पर भी राज्य में अनेक प्रकार के उपद्रव करने प्रारंभ कर दिये। कभी तो वह बिना ही अपराध के धनिकों के धन जब्त करने लगा और कभी प्रजा को अन्य प्रकार के भयंकर कष्ट पहुँचाने लगा। जिनके आधार पर राज्य चल रहा था उन राज सेवकों की आजीविका भी उसने बंद कर दी। राज्य में इस प्रकार भयंकर अन्याय देख पुरवासी एवं देशवासी मनुष्य त्रस्त होने लगे और खुले मैदान उनके मुख से ये ही शब्द सुनने में आने लगे-राजा चलाती बड़ा भारी

नरं यथाकथंचिच्च दृष्ट्वा हंति च पापधीः। आचारानैक्यसंत्यक्तोऽनभिज्ञः क्षितिपालने ॥५८॥
अन्यायवर्त्मवृत्तित्वं तस्य मत्वा च मंत्रिणः। इत्यालोचं व्यधुश्चित्ते राज्यरक्षणसिद्धये ॥५९॥
अहो! न वेत्त्ययं राज्यस्थितिं लोभाकुलात्मकः। प्रतापत्यक्तसद्देहो वृषांशपरिवर्जितः ॥६०॥
कथं रक्षति सद्राज्यं लोपयन्भटवृत्तिकं। श्रेणिकोऽतः समाकार्यो मगधस्थितिहेतवे ॥६१॥
इति चित्ते विचिंत्याशु मंत्रिणो दूतमुत्तमं। प्रेषयामासुराकार्य पत्रं दत्वातिगूढतः ॥६२॥
वेणातटं स वेगेन संप्राप्य वरलेखकं। तस्मै ददौ त्वया शीघ्रमेतव्यमिति सूचनं ॥६३॥
उदंतं दूततो मत्वा तज्जं लेखाद्विशेषतः। जहर्ष श्रेणिकश्चित्ते को न तुष्यति लाभतः ॥६४॥
इंद्रदत्तं ततः प्राप्य स्वसुरं प्रीतिपूर्वकम्। अनमल्लब्धसंतोषः क्षणं स्थित्वा व्यजिज्ञपत् ॥६५॥
आगतं राज्यसंसिद्धयै पत्रं संदर्श्य सद्गिरा। जगावटन संसिद्धया इति स विनयान्वितः ॥६६॥

पापी है, अन्यायी है और राज्य-पालन करने में सर्वथा असमर्थ है। राजा का इस प्रकार नीच बर्ताव देख राजमंत्री भी दाँतों में उंगली दबाने लगे। राज्य को सँभालने के लिए उन्होंने अनेक उपाय सोचे किन्तु कोई भी उपाय कार्यकारी नजर न पड़े। अंत में विचार करते-करते उन्हें कुमार श्रेणिक की याद आई। याद आते ही चट उन्होंने सलाह की-राजा चलाती पापी, दुष्ट एवं राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ है। यह इतने विशाल राज्य को चला नहीं सकता। इसलिए कुमार श्रेणिक को यहाँ बुलाना चाहिए और किसी रीति से उन्हें मगध देश का राजा बनाना चाहिए ॥५२-६१॥

समस्त पुरवासी एवं मंत्री आदिक कुमार के गुणों से भली-भाँति परिचित थे इसलिए यह उपाय सबको उत्तम मालूम हुआ एवं तदनुसार एक दूत जो कि राज्य-कार्य में अति चतुर था,शीघ्र ही कुमार के पास भेज दिया और ब्योरेवार एक पत्र भी उसे लिखकर दे दिया। जहाँ कुमार श्रेणिक रहते थे, दूत उसी देश की ओर चल दिया और कुछ दिन पर्यंत मंजिल-दर-मंजिल चलकर कुमार के पास जा पहुँचा। कुमार को देखकर दूत ने विनय से नमस्कार किया और उनके हाथ में पत्र देकर जबानी भी यह कह दिया कि हे कुमार! अब तुम्हें शीघ्र मेरे साथ राजगृह नगर चलना चाहिए ॥६२-६३॥

दूत के मुख से ऐसे वचन सुनकर एवं पत्र पढ़कर उसके वचनों पर सर्वथा विश्वास कर, कुमार श्रेणिक अपने मन में अति प्रसन्न हुए। मारे हर्ष के उनका शरीर रोमांचित हो गया तथा पत्र हाथ में लेकर वे सीधे सेठ इन्द्रदत्त के समीप चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त को नमस्कार किया और यह समाचार सुनाया कि हे महनीय! राजगृहपुर से एक दूत आया है उसने यह पत्र मुझे दिया है इस समय वहाँ जाना अधिक आवश्यक जान पड़ता है कृपाकर आप मुझे वहाँ जाने के लिए शीघ्र आज्ञा दें। बिना आपकी आज्ञा के मैं वहाँ जाना ठीक नहीं समझता ॥६४-६६॥

एकाएक कुमार के मुख से ऐसे वचन सुन सेठ इन्द्रदत्त आश्चर्य-सागर में निमग्न हो गये। अब कुमार यहाँ से चले जायेंगे, यह जान उन्हें बहुत दुःख हुआ। किन्तु कुमार ने उन्हें अनेक

स्वसुराद्य मया रम्ये पुरे गम्यं तवाज्ञया। संतोष्य वाक् प्रबंधेन स्वसुरं शुद्धचेतसं ॥६७॥
गत्वा ततोऽतिरम्यां तां द्वितीयप्राणसन्निभां। रम्यप्रणयसंकोपां स जगाविती पत्रजं ॥६८॥
भो प्रिये! वल्लभे! कांते! रम्ये चंद्रानने शुभे! गजगामिनि माराढ्ये मन्मनः पद्मवासिनि ॥६९॥
मद्राज्यं मत्क्रमायातं मज्जनकक्षितिहेतुतः। मद्भ्रात्ररक्षणीयं च दुःखी भवति सत्प्रभं ॥७०॥
तस्य रक्षण संसिद्ध्या एषितव्यं मयाधुना। यावद्राज्यस्य संसिद्धिर्न भवेन्मम सुंदरि ॥७१॥
स्थातव्यं सहपुत्रेण त्वया तावत्पितृगृहे। आकारणं करिष्यामि राज्यसिद्धौ तव स्फुटं ॥७२॥
इति कांतां सवाष्पांतां पूर्णचंद्राननां परां। आश्वास्य गमनौत्सक्यं धत्तेयावन्महामनाः ॥७३॥
पंचाशच्छतसंख्याढ्याः स्थायिनो गुप्तिरूपतः। प्रेषितास्तेन साकं च राज्ञा पूर्वं तदाखिलाः ॥ ७४॥
बभूवुः सेवकाः सर्वे प्रकटाश्चापरे पुनः। अंगीकृताः प्रभुत्वेन राजांते तत्समीपगाः ॥७५॥
जायां वस सुतां तत्रास्थाप्याश्वास्य पुनः पुनः। सुभटै र्निर्जगामाशु स श्रेणिकमहीश्वरः ॥७६॥
परया संपदा सत्रं वर्द्धमानैश्च सेवकैः। चचाल शकुनैः सारैः सूचित्तोदर्कसत्फलः ॥७७॥
मगधं नीवृतं प्राप्तं घस्त्रैः कतिपयैः पुनः। राज्यर्द्धि समभूताढ्यः श्रेणिको धरणीधरः ॥७८॥

प्रकार से आश्वासन दे दिया। इसलिए वे शांत हो गये और उन्हें जबरन कुमार को जाने के लिए आज्ञा देनी पड़ी। सेठ इन्द्रदत्त से आज्ञा लेकर कुमार प्रियतमा नन्दश्री के पास गये। उससे भी उन्होंने इस प्रकार अपनी आत्मकहानी प्रारम्भ कर दी। हे प्रिये! हे वल्लभे! हे मनोहरे! हे चन्द्रमुखी! हे गजगामिनी! मेरे परम्परा से आया हुआ राज्य है अचानक मेरे पिता के शरीरांत हो जाने से मेरा भाई उस राज्य की रक्षा कर रहा है किन्तु प्रजा उसके शासन से संतुष्ट नहीं है। इसलिए अब मुझे राजगृह जाना जरूर है। हे सुंदरी! जब तक मैं वहाँ न पहुँचूँगा, राज्य की रक्षा भली प्रकार नहीं हो सकेगी। इस समय मैं तुझसे यह कहे जाता हूँ जब तक मैं तुझे न बुलाऊँ अभयकुमार के साथ तू अपने पिता के घर ही रहना। राज्य की प्राप्ति होने पर तुझे मैं नियम से बुलाऊँगा इसमें सन्देह नहीं।

अचानक ही कुमार के ऐसे वचन सुनकर रानी नन्दश्री की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। मारे दुःख के, कमल के समान फूला हुआ भी उसका मुख कुम्हला गया और कुमार को कुछ भी जवाब न देकर वह निश्चल काष्ठ की पुतली के समान खड़ी रह गई। किन्तु उसकी ऐसी दशा देख कुमार ने उसको बहुत-कुछ समझा दिया और संतोष देने वाले प्रिय वचन कहकर शांत कर दिया। इस प्रकार प्रियतमा नन्दश्री से मिलकर कुमार वहाँ से चल दिये और राजगृह जाने के लिए तैयार हो गये। कुमार जा रहे हैं सेठ इन्द्रदत्त को यह पता लगा तो उन्होंने कुमार को न मालूम पड़े इस रीति से पाँच हजार बलवान् योद्धा कुमार के साथ भेज दिये एवं पाँच हजार सुभटों के साथ कुमार श्रेणिक ने राजगृह नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। जिस समय वे मार्ग में जाने लगे। उस समय उत्तमोत्तम फलों के सूचक उन्हें अनेक शकुन हुए और मार्ग में अनेक वन-उपवनों को निहारते हुए कुमार श्रेणिक मगध देश के पास जा पहुँचे ॥६७-७८॥

कुमार श्रेणिक मगध देश में आ गये यह समाचार सारे देश में फैल गया। समस्त सामन्त, मन्त्री एवं अन्यान्य देशवासी मनुष्य बड़े विनय भाव से कुमार श्रेणिक के पास आये और भक्तिपूर्वक

आगतं ते परिज्ञाया जग्मुः सन्मुखमुन्नताः। सर्वे सामंतमंत्राद्या मुक्त्वा तं न्यायवर्जितं ॥७९॥
वीताश्च दंतिनो रम्या वीतसंख्याः स्फुरत्प्रभाः। रथाः पदातयो संख्याः परिचेलुस्तदा नृपं ॥८०॥
तदानकमहाध्वानैः स्थाययामासुरुत्तमं। राज्ये ते श्रेणिकं धीरं नमुस्तत्पदपंकजम् ॥८१॥
ततः क्रमेण संप्रापद्राजगृहसमीपतां। नृपोऽमात्य सुसामंतपरिचर्य्यं सुशासनः ॥८२॥
सेनां तस्य दुरंतां च चलातीतुच्छसेनकः। अशक्यां जेतुमालोक्य विररामाजितस्तदा ॥८३॥
ततः श्रेणिक वाक्येन गृहीत्वाऽखिलसंपदां। भयात्पल्लीं समासेदे दुर्गां सः पुण्यतः क्षयात् ॥८४॥
शुभ्रातपत्र संछिन्न मित्र मंडल उन्नतः। ततः करि वरारूढः स चचालेद्ध पत्तनम् ॥८५॥
कामिनी कर संक्रांत सशब्दस्वर्णदण्डकैः। चलच्चामरवृंदैश्च क्षीरोदधिजलप्रभैः ॥८६॥
वीज्यमानोऽतिपुण्यांकः प्रतापाहस्करः प्रभः। सामंतराजमुकुटमणिघृष्टपदाब्जकः ॥८७॥
वंदिवृंदमुखोद्गीत यशाः स्फीत शुभायुतः। वाद्यवादकवृंदेन विकासितसमागमः ॥८८॥
तदानकादि सध्वाना कारितास्तत्पुरांगनाः। चेलुर्वीच्य इवाब्धेश्च विलोकनकृते मुदा ॥८९॥
भोजनस्थं पतिं मुक्त्वा काचिद्धावति वीचिवत्। मंथनोज्झितकर्मान्या तद्गुणा हतमानसा ॥९०॥

नमस्कार किया। कुछ समय वहाँ ठहरकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप कर कुमार फिर आगे को चल दिये। मेरु पर्वत के समान लम्बे-चौड़े हाथी, अनेक बड़े-बड़े रथ और पयादे कुमार के पीछे-पीछे चलने लगे। कुमार के आगमन के उत्सव में सारा देश बाजों की आवाज से गूंज उठा एवं कुछ दिन और चलकर कुमार राजगृह नगर के निकट पहुँच गये। इधर राजा चिलाती को यह पता लगा कि अब श्रेणिक यहाँ आ गये हैं। उनके साथ विशाल सेना है, समस्त देशवासी और नगरवासी मनुष्य भी कुमार श्रेणिक के ही अनुयायी हो गये हैं। मारे भय के वह तो काँपने लगा तथा अब मैं लड़कर कुमार श्रेणिक से विजय नहीं पा सकता यह भली प्रकार सोच-विचारकर अपनी कुछ संपत्ति लेकर किसी किले में जा छिपा ॥७९-८४॥

उधर सूर्य के समान प्रतापी, बड़े-बड़े सामंतों से सेवित पुण्यात्मा जिनके ऊपर क्षीर समुद्र के समान सफेद चमर ढुल रहे हैं, जिनका यश चारों ओर बंदीजन गान कर रहे हैं, कुमार श्रेणिक ने बड़े ठाट-बाट से नगर में प्रवेश किया। नगर में घुसते ही बाजों के गंभीर शब्द होने लगे। बाजों की आवाज सुन जैसे समुद्र से तरंग बाहर निकलती हैं, नगर की स्त्रियाँ महाराज के देखने के लिए घरों से निकलकर भागी। कोई स्त्री अपने स्वामी को चौके में ही बैठा छोड़ उसे बिना भोजन परोसे ही कुमार को देखने के लिए घर से भागी। कोई स्त्री मट्ठा बिलोड़ रही थी, कुमार के दर्शन की लालसा से उसने मट्ठा बिलोड़ना छोड़ दिया। कोई-कोई तो कुमार को देखने में इतनी लालायित हो गई कि श्रृंगार करते समय उसने ललाट का तिलक आँखों में लगा लिया और आँखों का काजल ललाट पर आँज लिया एवं बिना देखे-भाले ही घर से भागी तथा किसी स्त्री ने सिर के भूषण को गले में पहनकर, गले के भूषण को सिर में पहनकर ही कुमार को देखने के लिए दौड़ना शुरू कर दिया और कोई स्त्री हार को कमर में पहनकर और करधनी को गले में डालकर ही दौड़ी। कोई स्त्री अपने काम में लग रही थी जिस समय सखियों ने उससे कुमार को देखने के

काचिद्दधाति तिलकं भाले सज्जलकज्जलैः। तिलकद्रव्यमाशेषं नयने तूर्णिता सती ॥९१॥
चूडामणिं च कंठेऽधान्मूर्द्धिन ग्रैवेयकं तथा। काचिद्हारं कटिदेशे मेखलां कंठमंडले ॥९२॥
सखीभिः प्रेरिता काचिद्विदधाति विपर्ययम्। कंचुकं कोकिलध्वाना काचित्पतति सस्पृहा ॥९३॥
रुदंतं स्वसुतं हित्वा गृह्णाति परजं सुतम्। काचिच्च मुखतांबूलं निक्षिपंती हि गच्छति ॥९४॥
स्तनाच्छादन वस्त्रेण जघनं संदधाति च। अवस्त्रप्रकटोद्भूत स्तनद्वंद्वा सुसुंदरी ॥९५॥
काचिद्रूपं समावीक्ष्य स्वागत्य वरमंदिरे। स्थूलत्वेन पदं गंतुमशक्ता वृद्धतो जगौ ॥९६॥
अनीदृशं महारूपं भूपतेरस्ति भो सखि। अनीदृशा विभूतिश्च वृद्धा वादीत्तदाशुभं ॥९७॥
दर्शयस्व नृपं मेऽद्य गृहीत्वा याहि मां सखि। अन्यथा निष्फलं जन्म मामकीनं जगत्त्रये ॥९८॥
श्रुत्वेति तां गृहीत्वा सा वृद्धां हस्ते विनिर्गता। स्थूलत्वतः पदं यातुमक्षमा पतिता भुवि ॥९९॥
सापि वृद्धां विमुच्याशु पुनरीक्षणहेतवे। निर्जगाम स्वबाहुभ्यां पातयंती पुरःस्थितां ॥१००॥
गृहमागत्य काचिच्च पुनर्याति गुणाकुला। अस्थिरांह्रिः करोत्क्षेपात्काचिद्धावत्यनुप्रभुं ॥१०१॥
विलपंतीं विमुच्याशु स्थूलां च शकटावहाम्। तरुण्यञ्चंचला यांति स्तनभारोद्धरा अपि ॥१०२॥
तद्विभूतिं समावीक्ष्य वदंति वरयोषितः। धन्यास्य जननी लोके ययायं जठरे धृतः ॥१०३॥
यस्याः स्तन्यं पपौ सोऽयं सा धन्या भुवने सखि। अन्यच्च श्रूयते मित्रे पुरे वेणातटे वरे ॥१०४॥
इंद्रदत्तस्य संजातां नंदश्रीं परिणीतवान्। अयं पुण्यफलालीढः सा धन्या योषितां गणे ॥१०५॥

लिए आग्रह किया तो वह एकदम भागी, जल्दी में उसे चोली के उल्टे-सीधे का भी ज्ञान नहीं रहा। वह उल्टी चोली पहनकर ही कुमार को देखने लगी तथा कोई स्त्री तो कुमार को देखने के लिए इतनी बेसुध हो गई कि अपने बालक को रोता हुआ छोड़कर दूसरे बालक को ही गोद में लेकर भागी तथा कोई स्त्री जो कि नितम्ब के भार से सर्वथा चलने के लिए असमर्थ थी दूसरी स्त्रियों के मुख से ही कुमार की तारीफ सुन अपने को धन्य समझा। कोई वृद्धा जो कि चलने के लिए सर्वथा असमर्थ थी, दूसरी स्त्रियों को कहने लगी कि हे बेटा! किसी रीति से मुझे भी कुमार के दर्शन करा दे मैं तेरा यह उपकार कदापि नहीं भूलूँगी तथा कोई-कोई स्त्री तो कुमार को देख ऐसी मत्त हो गई कि कुमार के दर्शन की भूल में दूसरी स्त्रियों पर गिरने लगी और जिस ओर कुमार की सवारी जा रही थी, बेसुध हो उसी ओर दौड़ने लगी तथा किसी-किसी स्त्री की तो ऐसी दशा हो गई कि एक समय कुमार को देख घर आकर भी वह कुमार को देखने के लिए भागी। अनेक उत्तम स्त्रियाँ तो कुमार को देख ऐसा कहने लगी कि संसार में वह स्त्री धन्य है जिसने इस कुमार को जना है और अपने स्तनों का दूध पिलाया है तथा कोई-कोई ऐसा कहने लगी-हे आले! यह बात सुनने में आई है कि इन कुमार का विवाह वेणुतट नगर के सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नन्दश्री के साथ हो गया है। संसार में वह नन्दश्री धन्य है तथा कोई-कोई यह भी कहने लगी कि कुमार श्रेणिक के संबंध से रानी नन्दश्री के अभय कुमार नाम का उत्तम पुत्र भी उत्पन्न हो गया है इत्यादि पुरवासी स्त्रियों के शब्द सुनते हुए कुमार श्रेणिक नीली-पीली ध्वजाओं तोरणों से शोभित राजमंदिर के पास जा पहुँच ॥८५-१०९॥

ययास्यांगेन संयोगो भोगोद्दीपनतत्परः। लेभे हस्तावलेपश्च सा योषिद्धन्यतां गता ॥१०६॥
अन्यच्च श्रूयते मित्रेऽस्ययोगाच्चतया पुनः। तनुजो जनितानंदो लब्धो रूपविशारदः ॥१०७॥
इत्यादि शुभशंसां स लेभे नारीनराच्छुभात्। जयारवादिकान्नादान्नंदिताऽखिल सज्जनाः ॥१०८॥
ततः क्रमात्पुरं सर्वं केतुबद्धं सतोरणम्। समीक्ष्य प्राप्तवान् रम्यं सुंदरं राजमंदिरं ॥१०९॥
मात्रादिकं प्रणम्याशु रेजे राजालिमंडितः। राजा राजितधामाऽसौ विनष्टप्रभुशात्रवः ॥११०॥

इतिवृषपरिपाकात् प्राप्तराज्यादिभूति र्निखिलजन सुमान्यो मानितानेकवृद्धा।
अहितहतविलासो वासितानेकवासो विशदनयविलासी भासितांगः स भाति ॥१११॥
समस्ति पूर्वं वणिजां गृहोदरे स्थितिः प्रणष्टाखिल दुःखदुर्विधौ।
तथा वराज्यं क्व च तस्य भूपते रहो विलासः सुकृतस्य दृश्यतां ॥११२॥

धर्माद्धीधन संगमोनर भुवां धर्मात्कुले जन्म च धर्माद्भूतिरनाद्यनंत सहिता धर्मात्सुराज्ये स्थितिः।
धर्मान्नाकमहेंद्रता शुभगता धर्मात्सुखं शाश्वतम् धर्मात्सुंदर पुत्रसंतति रहो मत्वा कुरुध्वं वृषम् ॥११३॥

इति श्रेणिक भवानुबद्ध भविष्यत्पद्मनाभ तीर्थंकरपुराणे भट्टारक श्रीशुभचंद्राचार्य विरचिते श्रेणिकराज्यलाभवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥५॥

राजमंदिर में प्रवेश कर कुमार ने अपनी पूज्य माता आदि को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अन्य जो परिचित मनुष्य थे, उनको भी यथायोग्य मिले। कुछ दिन बाद मंत्रियों की अनुमति पूर्वक कुमार का राज्याभिषेक किया गया। कुमार श्रेणिक अब महाराज श्रेणिक कहे जाने लगे तथा अनेक राजाओं से पूजित, अतिशय प्रतापी, समस्त शत्रुओं से रहित महाराज श्रेणिक मगध देश का नीतिपूर्वक राज्य करने लग गये। इस प्रकार अपने पूर्वोपार्जित धर्म के माहात्म्य से राज्य-विभूति को पाकर समस्त जनों से मान्य अनेक उत्तमोत्तम गुणों से भूषित, नीतिपूर्वक राज्य चलाने वाले, अतिशय देदीप्यमान शरीर के धारक, महाराज श्रेणिक अति आनंद को प्राप्त हुए ॥११०-१११॥

जीवों का संसार में यदि परम मित्र है तो धर्म है। देखो कहाँ तो महाराज श्रेणिक को राजगृह नगर छोड़कर सेठ इन्द्रदत्त के यहाँ रहना पड़ा था और कहाँ फिर उसी मगध देश के राजा बन गये। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे किसी अवस्था में धर्म को न छोड़ें क्योंकि संसार में मनुष्यों को धर्म से उत्तम बुद्धि की प्राप्ति होती है। धर्म से ही अविनाशी सुख मिलता है। देवेन्द्र आदि उत्तम पदों की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है और धर्म की कृपा से ही उत्तम कुल में जन्म मिलता है ॥११२-११३॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले भगवान् श्री पद्मनाभ के जीव महाराज श्रेणिक को राज्य की प्राप्ति बतलाने वाला भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित पंचम सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठ सर्गः

बोधिबोधित सत्तत्वं सत्वानुग्राहकं स्तुवे। अंतिमं तीर्थकर्तारं राज्ञे तत्वार्थदायकम् ॥१॥
अथ संप्राप्तराज्योऽसौ प्रतिपक्षविवर्जितः। महद्भिर्महितां महीं पाति षाड्गुण्य मंडितः ॥२॥
उक्तं च—

संधिश्च विग्रहो यानमासनं संभ्रमस्तथा।
द्वेधीभावश्च संप्रोक्ताः षड्गुणाः क्षितिपाश्रिताः।

तस्मिन्राज्यं शुभप्राज्यं पातितानीतयोऽभवन्। भयं नानारिसंभूतं नो बभूव खलु भृशं ॥३॥
क्षणिकोद्दीपनं तत्त्वं दधच्चित्ते च दुर्दमं। सर्वज्ञं सुगतं देवं चतुरार्यप्ररूपकम् ॥४॥
अथैकदा समायातः खेचरो द्योतयन् दिशं। समितौ भूभुजं नत्वा वचोऽवादीन्नभस्तलात् ॥५॥
शृणु देवेहरूप्याद्रौ दक्षिणश्रेणि संस्थिता। केरला नगरी तत्र मृगांकोऽस्ति खगाधिपः ॥६॥
रूपादिगुणसंपूर्णा जायास्य मालती लता। स्वसा मे स्वगते रद्रिसहस्रशृंगवासिनः ॥७॥
तयोर्विलासवत्याख्या सुतास्ति शुभलक्षणा। सयौवनां नृपो वीक्ष्य तां मुनिं पृष्टवान्मुदा ॥८॥

केवलज्ञान की कृपा से समस्त जीवों को यथार्थ उपदेश देने वाले, परम दयालु, भली प्रकार पदार्थों के स्वरूप को प्रकाश करने वाले, अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार हो। अनन्तर इसके समस्त शत्रुओं से रहित, प्रजा के प्रेमपात्र, अनेक उत्तमोत्तम गुणों से मंडित, वे महाराज श्रेणिक अच्छी प्रकार नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उनके राज्य करते समय न तो राज्य में किसी प्रकार की अनीति थी और न किसी प्रकार का भय ही था किन्तु प्रजा अच्छी तरह सुखानुभव करती थी। पहले महाराज बौद्धमत के सच्चे भक्त हो चुके थे। इसलिए वे उस समय भी बुद्ध देव का बराबर ध्यान करते रहते थे और बुद्धदेव की कृपा से ही अपने को राजा हुआ समझते थे ॥१-४॥

किसी समय महाराज राजसिंहासन पर विराजमान होकर अपना राज्य-कार्य कर रहे थे। अचानक ही एक विद्याधर जो कि अपने तेज से समस्त भूमण्डल को प्रकाशमान करता था सभा में आया और महाराज श्रेणिक को विनयपूर्वक नमस्कार कर यह कहने लगा ॥५॥

हे देव! इसी जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में एक केरला नाम की प्रसिद्ध नगरी है। उस नगरी का स्वामी विद्याधरों का अधिपति राजा मृगांक है। राजा मृगांक की रानी का नाम मालती लता है जो कि समस्त रानियों में शिरोमणि एवं रूपादि उत्तमोत्तम गुणों की खान है और महारानी मालती लता से उत्पन्न अनेक शुभ लक्षणों से युक्त विलासवती नाम की उसके एक पुत्री है। किसी समय पुत्री विलासवती को यौवनावस्था में देख राजा मृगांक को उसके लिए योग्यवर की चिन्ता हुई वे शीघ्र ही किसी दिगम्बर मुनि के पास गये और उनसे इस प्रकार विनय-भाव से पूछा ॥६-८॥

अस्याः कोऽत्रवरो भावी मुनिः श्रुत्वेति संजगौ। मह्यां राजगृहे भूपः श्रेणिको भविता वरः ॥९॥
श्रुत्वेति भवते दातुमीहते यावदुन्नतः। तां हंसद्वीपतस्तावद्याचते स्म महाबलः ॥१०॥
नायं दत्ते मुनेर्वाक्यात्तावदागत्य वेष्टिता। सा पुरी रत्नचूड़ेन वर्त्तते बलशालिना ॥११॥
विद्यावचनतश्चेत्थं ज्ञात्वा संगच्छता मया। वीक्ष्यास्थानं तवायातः कथनाय यथाकुरु ॥१२॥
श्रुत्वेति गंतुमुद्युक्तं भूपं वीक्ष्य खगो जगौ। क्व भवान् पूः क्व मार्गः क्वागम्यो भूचारिणां सदा ॥१३॥
तदा जंबूकुमाराख्यो जिनमत्याः सुतो नृपात्। गृहीत्वा देशममुना गतस्तत्र नभोद्धतः ॥१४॥

हे प्रभो! हे मुने! आप भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकालवर्ती पदार्थों के भली प्रकार जानकार हैं। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो आपकी दृष्टि से बाह्य हो। कृपाकर मुझे यह बतावें कि पुत्री विलासवती का वर कौन होगा ?

राजा मृगांक के ऐसे विनय-भरे वचन सुन मुनिराज ने कहा-राजन्! इसी द्वीप में अतिशय उत्तम एक राजगृह नाम का नगर है! राजगृह नगर के स्वामी, नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने वाले, महाराज श्रेणिक हैं। नियम से उन्हीं के साथ यह पुत्री विवाही जायेगी ॥९॥

मुनिराज के ऐसे पवित्र वचन सुन एवं उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर, राजा मृगांक अपने घर लौट आये और हे महाराज श्रेणिक! तब से राजा मृगांक ने आपको देने के लिए ही उस पुत्री का दृढ़ संकल्प कर लिया। अनेक बार मनाही करने पर भी हंसद्वीप का स्वामी राजा रत्नचूल यद्यपि उस पुत्री के साथ जबरन विवाह करना चाहता है। राजा मृगांक से जबरन विलासवती को छीन लेने के लिए रत्नचूल ने अपनी सेना के द्वारा चारों ओर से नगरी को भी घेर लिया है तथापि राजा मृगांक उसे पुत्री देना नहीं चाहता। मैंने ये बातें प्रत्यक्ष देखी हैं मैं यह समाचार आपको सुनाने आया हूँ, अधिक समय तक मैं यहाँ ठहर भी नहीं सकता। अब आप जो उचित समझे, सो करें ॥१०-१२॥

विद्याधर जम्बूकुमार के वचन सुनते ही महाराज चुपचाप न बैठ सके। उन्होंने केरला नगरी को जाने के लिए शीघ्र ही तैयारी कर दी एवं सेनापति को बुला उसे सेना तैयार करने के लिए आज्ञा भी दे दी। जम्बू कुमार का उद्देश्य यह न था कि महाराज श्रेणिक केरला नगरी चलें और न वह महाराज को लेने के लिए राजगृह ही आया था किन्तु उसका उद्देश्य केवल महाराज की विवाह-स्वीकारता का था। जिस समय उसने महाराज को सर्वथा चलने के लिए तैयार देखा तो वह इस रीति से विनय से कहने लगा।

हे महाराज! कहाँ तो आप ? और कहाँ केरला नगरी ? आप भूमिगोचरी हैं। वहाँ आपका जाना कठिन है। आप यहीं रहें। मुझे जल्दी जाने की आज्ञा दें तथा ऐसा कहकर वह शीघ्र ही आकाश-मार्ग से चल दिया और शीघ्र केरला नगरी में पहुँच गया ॥१३-१४॥

श्रेणिकोऽपि बलेनामागतो विंध्याटवीं यदा। कुरलाचलमासाद्य स्थितो विश्राममाश्रितः ॥१५॥
रत्नचूलं बलं वीक्ष्य जंबूस्तदा भुवं श्रितः। द्वाः स्थं निवेद्य संप्रापत् किंचित्कार्यकृतेखगं ॥१६॥
श्रेणिकाय प्रदत्ता सा पुरा संयाच्यते कथं। खग न्याय वता सोऽपि तत्रेति वचनं जगौ ॥१७॥
तदा तस्याभवद्रोषो युद्धं जातं तयोः पुनः। सहस्राष्टकमाहत्य रत्नचूलं बबंध सः ॥१८॥
मृगांकं कथयामास श्रेणिकागमनादिजाम्। वार्ता पुनर्विमुच्याशु बद्धं रत्नशिखं मुदा ॥१९॥
मृगांकरत्नचूलाभ्यां विमानैः शतपंचभिः। कन्यां तां स समादायागमद्गगनमार्गतः ॥२०॥
कुरलाचलसंरूढं नृपं ते वीक्ष्य सस्मिताः। समुत्तीर्य प्रणेमुस्ते वाचालाः कुशलादिभिः ॥२१॥
महोत्सवैः समं कन्या मुपयेमे नृपाधिपः। अन्यां नृपकुलोद्भूतां वधूं च वरपुण्यतः ॥२२॥

इधर महाराज श्रेणिक ने भी केरला नगरी जाने के लिए प्रस्थान कर दिया एवं ये तो कुछ दिन मंजिल-दर-मंजिल कर विंध्याचल की अटवी में पहुँच कुरलाचल के पास ठहर गये। उधर विद्याधर जम्बू कुमार ने केरला नगरी में पहुँचकर रत्नचूल की सेना को ज्यों-की-त्यों नगरी घेरे हुए देखा और किसी कार्य के बहाने से रत्नचूल के पास जा उसने यह प्रतिपादन किया ॥१५-१६॥

हे राजन् रत्नचूल! यह विलासवती तो मगधेश्वर महाराज श्रेणिक को दी जा चुकी है। आप न्यायवान् होकर क्यों राजा मृगांक से विलासवती के लिए जोरावरी कर रहे हैं। आप सरीखे नरेशों का ऐसा बर्ताव शोभा जनक नहीं।

रत्नचूल का काल तो सिर पर मँडरा रहा था। भला वह नीति एवं अनीति पर विचार करने कब चला? उसने जम्बू कुमार के वचनों पर रत्ती-भर भी ध्यान नहीं दिया और उल्टा नाराज होकर जम्बू कुमार से लड़ने के लिए तैयार हो गया। जम्बू कुमार भी किसी कदर कम न था वह भी शीघ्र युद्धार्थ तैयार हो गया और कुछ समय पर्यंत युद्ध कर जम्बू कुमार ने रत्नचूल को बाँध लिया। उसकी आठ हजार सेना को काट-पीटकर नष्ट कर दिया एवं उसे राजा मृगांक के चरणों में डालकर जो कुछ वृत्तांत हुआ था सारा कह सुनाया तथा यह भी कहा कि महाराज श्रेणिक भी केरला नगरी की ओर आ रहे हैं ॥१७-१९॥

जम्बूकुमार का यह असाधारण कृत्य देख राजा मृगांक अति प्रसन्न हुए। उन्होंने जम्बूकुमार की बारम्बार प्रशंसा की एवं जम्बूकुमार की अनुमतिपूर्वक राजा मृगांक ने राजा रत्नचूल एवं पाँच सौ विमानों के साथ कन्या विलासवती को लेकर राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया। महाराज श्रेणिक तो कुरलाचल की तलहटी में ठहरे ही थे। जिस समय राजा मृगांक के विमान कुरलाचल की तलहटी में पहुँचे जम्बूकुमार की दृष्टि राजा श्रेणिक पर पड़ गई। महाराज को देख राजा मृगांक सबके साथ शीघ्र ही वहाँ उतर पड़े। उन सबने भक्तिभाव से महाराज श्रेणिक को नमस्कार किया और परस्पर कुशल पूछने लगे तथा कुशल पूछने के बाद शुभ मुहूर्त में कन्या विलासवती का महाराज श्रेणिक के साथ विवाह भी हो गया ॥२०-२२॥

तयोः प्रीतिं विधायासौ सर्वान्संप्रेष्यमानितान्। उत्पताकं पुरं प्रापत्सहजंबूकुमारकः॥ २३॥
तया विलासवत्या सोऽन्याभिर्भोगं बुभुंज च। कुमारं मानयन् जंबूं विशिष्टं चरमांगकं ॥२४॥
अथैकदा महीनाथः सस्मार द्विजनायकं। नंदिग्राम परारामं पराभवमनुत्तरम् ॥२५॥
अहो! विप्रस्य दुष्टत्वं खलत्वं खलचेष्टितम्। लोभित्त्वं निर्दयत्त्वं च पश्य पश्य विशर्मदं ॥२६॥
परेषां सगृहं धान्यं धनं चेलं चतुष्पदम्। उपानहं च दासेयं दासीं गृह्णन्ति लंपटाः ॥२७॥
अब्धिवन्नवसंतोषो विप्राणां दुष्टचेतसाम्। गृह्णतां गृह्णतां वित्तं परकीयं सुवर्त्तते ॥२८॥
आदत्ते ताम्रपत्रेण परोत्थं पापमुन्नतम्। हिंसापरांगनाजातं दुष्टं वा विप्रचेष्टितम् ॥२९॥

विवाह के बाद राजा मृगांक ने केरला नगरी की ओर लौटने के लिए आज्ञा माँगी एवं चलने के लिए तैयार भी हो गये महाराज श्रेणिक ने उन्हें सम्मान पूर्वक विदा कर दिया तथा स्वयं भी विद्याधर जम्बूकुमार के साथ राजगृह आ गये। राजगृह आकर महाराज श्रेणिक ने विद्याधर जम्बूकुमार का बड़ा भारी सम्मान किया और नवोढ़ा विलासवती के साथ अनेक भोग भोगते हुए वे सुखपूर्वक रहने लगे ॥२३-२४॥

किसी समय महाराज आनंद से बैठे हुए थे। अकस्मात उन्हें नन्दिग्राम के निवासी विप्र नन्दिनाथ का स्मरण आया। महाराज श्रेणिक का जो कुछ पराभव उसने किया था, वह सारा पराभव उन्हें साक्षात्सरीखा दिखने लगा। वे मन में ऐसा विचार करने लगे देखो नन्दिनाथ की दुष्टता, नीचता एवं निर्दयपना राजगृह से निकलते समय जब मैं नन्दिग्राम में जा पहुँचा था उस समय विनय से माँगने पर भी उसने मुझे भोजन का सामान नहीं दिया था। यदि मैं चाहता तो उससे जबरन खाने-पीने के लिए सामान ले सकता था किन्तु मैंने अपनी शिष्टता से वैसा नहीं किया था और दीन वचन बोलता रहा था। मुझे जान पड़ता है जब उसने मेरे साथ ऐसा क्रूरता का बर्ताव किया है तब वह दूसरों की आबरू उतारने में कब चूकता होगा ? राज्य की ओर से जो उसे दानार्थ द्रव्य दिया जाता है। नियम से उसे वहीं गटक जाता है। किसी को पाई-भर भी दान नहीं देता। अब राज्य की ओर से जो उसे सदावर्त देने का अधिकार दे रखा है उसे छीन लेना चाहिए और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को जो नन्दिग्राम दे रखा उसे वापस ले लेना चाहिए। मैं अब अपना बदला बिना लिए नहीं मानूँगा। नन्दिग्राम में एक भी ब्राह्मण को नहीं रहने दूँगा तथा क्षणिक ऐसा विचार कर शीघ्र ही महाराज श्रेणिक ने एक राज सेवक बुलाया और उसे यह कह दिया जाओ अभी तुम नन्दिग्राम चले जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों से कह दो शीघ्र ही नन्दिग्राम खाली कर दे ॥२५-२७॥

सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद और अथर्ववेद ऐसे चार प्रकार के वेद हैं उनसे ऐसा कहा गया है कि लोभ के वजह से ब्राह्मणो! दूसरों के ऐश्वर्य तुम ग्रहण करो क्योंकि दुष्ट अभिप्राय वाले ब्राह्मणों को कदापि परसम्पत्ति ग्रहण किये बिना उनको संतोष नहीं होता जैसे अनेक तरंगों से क्षोभित समुद्र को कभी भी शांति नहीं मिलती तद्वत् परस्त्री संयोग से उत्पन्न होने वाला जो पाप

विप्रतारण वाक्येन वेदेन घ्नंति वाडवा:। जंतूनिति पठंतश्च विचारा तत्परा: खला: ॥३०॥
ब्रह्मणे ब्राह्मणं हन्यादिंद्राय क्षत्रियं तथा। मरुद्भयो वणिजं हन्यात्तमसं शूद्रमालभेत् ॥३१॥
चौरमुत्तमसं दद्यात्सूर्याय भ्रूणसंयुता। अलभेत स्त्रियं रम्यामिति वाक्यानि क: पठेत् ॥३२॥
मद्यमांसाशनं वेदवाक्यात्कुर्वंति वाडवा:। तैलाभ्यंगित गात्रं च भुंजते परयोषितं ॥३३॥
इति युक्त्यक्षमं येषां शासनं वर्त्तते भुवि। कथं भुंजंति मे ग्रामं खलास्ते पापपंडिता: ॥३४॥
निष्काशयामि तान् विप्रानिदानीं पापकोविदान्। इत्यातर्क्य चिरं चित्ते आदिदेश नृपो भटान् ॥३५॥
ग्रहार्थं नंदिपुर्याश्च विप्र निष्काशनाय च। तदाशुश्राव तन्मंत्री सर्वं भटविसर्जनम् ॥३६॥

साक्षात् हिंसा जनक होने से वह पाप जीव को नरक में पटक देता है ऐसा जैनागम कहता है। ऐसा मिथ्या दुष्ट ब्राह्मणों का कथन सुना जाता है और उन दुर्जनों के वेद-वाक्य से ही सिद्ध होता है कि होमादिक में पशुओं को बलि देना चाहिए इससे बलि देने वालों को स्वर्ग मिलेगा इत्यादि और ब्राह्मणों से ब्राह्मण को मारा जाता है तथा इन्द्र से क्षत्रिय को मारा जाता है ऐसा वेद वाक्य दुष्ट ब्राह्मणों से पठन-पाठन किया जाता है तथा पवन कुमार से वैश्य को मारना चाहिए और सूर्य को अर्घ्य चढ़ाना नमस्कार करना इत्यादि ऐसा अश्लील वाक्यों का प्रयोग वेद में देखा जाता है ॥२८-३२॥

और वेद-वाक्य से शराब-पान तथा मांस-सेवन, परस्त्री का संग तथा तैल मर्दनादि प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार ब्राह्मणों का शासन युक्तियों से रहित होने से नहीं माना जाता है। इस दुनिया में बरतने वाले ऐसे पापाचारी नन्दिग्राम के ब्राह्मण मेरे नन्दिग्राम को कैसे सेवन कर सकते हैं ? इस प्रकार महाराज श्रेणिक मन्त्रियों को कह रहे है ॥३३-३४॥

इधर महाराज ने तो नन्दिग्राम के विप्रों को निकालने के लिए आज्ञा दी। उधर मंत्रियों के कान तक भी यह समाचार जा पहुँचा। वे दौड़ते-दौड़ते तत्काल ही महाराज के पास आये और विनय से कहने लगे। राजन् आप यह क्या अनुचित काम करना चाहते हैं? इससे बड़ी भारी हानि होगी। पीछे आपको पछताना पड़ेगा। आप भली प्रकार सोच-विचार कर काम करें। मंत्रियों के ऐसे वचन सुन महाराज के नेत्र और भी लाल हो गये। मारे क्रोध के उनके नेत्रों से रक्त की धारा-सी बहने लगी और गुस्से में भरकर वे यह कहने लगे ॥३५॥

हे राजमंत्रियो सुनो! नन्दिग्राम के विप्रों ने मेरा बड़ा पराभव किया है। जिस समय मैं राजगृह से निकल गया था उस समय मैं नन्दिग्राम में जा पहुँचा था। नन्दिग्राम में पहुँचते ही भूख ने मुझे बुरी तरह सताया। मुझे और तो वहाँ भूख की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं सूझा। मैं सीधा नन्दिनाथ के पास गया और मैंने विनय से भोजन के लिए उससे कुछ सामान माँगा किन्तु दुष्ट नन्दिनाथ ने मेरी कभी प्रार्थना न सुनी वह एकदम मुझ पर नाराज हो गया। दो-चार गालियाँ भी दे मारीं। मुझे उस समय अधिक दु:ख हुआ था इसलिए अब मैं उनसे बिना बदला लिए न

अभ्येत्य नृपनाथं तं प्रणम्येति वचो जगौ। विधीयते च किं राजन्नित्याकर्ण्य नृपो जगौ ॥३७॥
विनाश्येत मया ग्रामो नंदिनामा च वाडवैः। रक्षितः पूर्ववैरेण चित्तशल्यविधायिना ॥३८॥
इत्यमात्यो वचः श्रुत्वा बभाष धरणीपतिम्। राजन्याये प्रवर्त्तव्यं मार्गे देवाधितिष्ठति ॥३८॥
न्याये मार्गे प्रवर्त्तन्ते भूभृतो भुवने सदा। ते वर्द्धते धनैः साकं देशैश्च नगरादिभिः ॥४०॥
अन्यायेन धनी लोके तदा चौरः सुखी भवेत्। अन्यायाद्देशनाशश्च लोकानां प्रभयस्तथा ॥४१॥
यथा सस्यानि पाल्यानि वृत्त्यादिभिः कृषीवलैः। तथा नृपैः प्रजाः सर्वा भयात्पाल्याः प्रयत्नतः ॥४२॥
न्यायवान् भूपतिर्लोके तदा लोकाश्च न्यायिनः। अन्यायवति भूपाले न्यायत्यक्ता जनाः स्मृताः ॥४३॥
अतो न्यायं व्यवस्थाप्य निः काश्या वाडवास्त्वया। श्रुत्वेति तं नृपोऽवोचत् साधु साधु त्वयोदितं ॥४४॥
ततो दोषाय भूतेन मेषोनंदिपुरं प्रति। प्रस्थापितो जनैः साकमिति वाक्यं वदैर्वरैः ॥४५॥
तद्रक्षकास्तदा मेषं जग्मुरादाय तत्पुरम्। दृष्ट्वा तत्र द्विजा वाचो जगुरित्थं नयोद्यताः ॥४६॥

छोड़ूँगा। उन्हें नन्दिग्राम से निकालकर मानूँगा। इस प्रकार महाराज के वचन सुनकर और महाराज का क्रोध अनिवार्य है यह भी समझकर, मंत्रियों ने विनय से कहा ॥३६-३७॥

राजन् इस समय आप भाग्य के उदय से उत्तम पद में विराजमान हैं। आप सभी के स्वामी कहे जाते हैं। आपको कदापि अन्याय मार्ग में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। संसार में राजा न्यायपूर्वक राज्य का पालन करते हैं। उन्हें कीर्ति धन आदि की प्राप्ति होती है। उनके देश एवं नगर भी दिनोंदिन उन्नत होते चले जाते हैं ॥३८-४०॥

हे प्रजापालक! अन्याय से राज्य में पापियों की संख्या अधिक बढ़ जाती है, देश का नाश हो जाता है। समस्त लोक का प्रलय होना भी शुरू हो जाता है। हे महाराज! जिस प्रकार किसान लोग खेत में स्थित धान्य की बाढ़ आदि प्रयत्नों से रक्षा करते हैं। उसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि वह न्याय पूर्वक बड़े प्रयत्न से राज्य की रक्षा करें। हे दीनबंधु! संसार में राजा के न्यायवान् होने से समस्त लोक-न्याय वाला होता है। यदि राजा ही अन्यायी होवे तो कभी भी उसके अनुयायी लोग न्यायवान् नहीं हो सकते। वे अवश्य अन्याय मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं। कृपानाथ! यदि आप नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को नन्दिग्राम से निकालना ही चाहते हैं तो उन्हें न्याय-मार्ग से ही निकालें। न्याय-मार्ग के बिना आश्रय किये आपको ब्राह्मणों का निकालना उचित नहीं ॥४१-४३॥

मंत्रियों के ऐसे नीति युक्त वचन सुन महाराज श्रेणिक का क्रोध शांत हो गया। कुछ समय पहले जो महाराज ब्राह्मणों को बिना विचारे ही निकालना चाहते थे। वह विचार उनके मस्तक से हट गया। अब उनके चित्त में ये संकल्प-विकल्प उठने लगे। यदि मैं यों ही ब्राह्मणों को निकाल दूँगा तो लोग मेरी निंदा करेंगे। मेरा राज्य भी अनीति-राज्य समझा जायेगा। इसलिए प्रथम ब्राह्मणों को दोषी सिद्ध कर देना चाहिए। पश्चात् उन्हें निकालने में कोई दोष नहीं तथा महाराज ने ब्राह्मणों को दोषी बनाने के अनेक उपाय सोचे। उन सबमें प्रथम उपाय यह किया था कि एक बकरा मँगवाया और कई-एक चतुर सेवकों को बुलाकर एवं बकरा सौंपकर, यह आज्ञा दी। जाओ, इस

मेषोऽयं प्रेषितो राज्ञा विप्रा अस्मै निरन्तरं। देयो ग्रासः प्रयत्नेन कृशः पुष्टश्च वा यदि ॥४७॥
भविष्यति तदानूनं भवतां ग्रामनाशनम्। इत्युक्त्वा तं विमुच्याशु गतास्ते मेषरक्षकाः ॥४८॥
किं कुर्मोऽत्र वयं विप्रा दुर्द्धरे कार्य एव हि। कृशः स्यादथवा पुष्टः कथं तिष्ठति तादृशः ॥४९॥
इति चिंताप्रपन्नास्ते यावत्तिष्ठंति दुःखिताः। अथ वेणातटे श्रेष्ठी मत्वा राज्यं च भूपतेः ॥५०॥
तुतोषाथेंद्रदत्तोऽसौ तद्ध्यानंदश्रिया सह। अभयादिकुमारेण चचाल सह संपदा ॥५१॥
ततः क्रमात्समासेदे नंदिग्रामं सवाडवं। तस्थौ भोजनसंसिद्ध्यै श्रेष्ठीः श्रेष्ठः क्रियादिभिः ॥५२॥
तदाभयकुमारश्च स्वजनैः परिवारितः। ईक्षणायै पुरं प्राप्तः ददर्शाखिलवाडवान् ॥५३॥
चिंतापन्नं द्विजाधीशं तावद्वीक्ष्य बभाष सः। विप्र! चिंता कुतश्चित्ते वर्त्तते देहदाहिका ॥५४॥
ततो भूसुरनाथश्च संजगौ वचनं वरम्। मेषप्रस्थापनं चिंताकारणं हरणं पुरः ॥५५॥

बकरे को शीघ्र ही नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दे दो। उनसे यह कहना कि यह बकरा महाराज श्रेणिक ने भेजा है। इसे खूब खिलाया-पिलाया जाये किन्तु इस बात पर ध्यान रहे। न तो यह दुबला होने पावे और न आबाद (मोटा) ही होवे। यदि वह दुबला हो गया या आबाद हो गया तो तुमसे नन्दिग्राम छीन लिया जायेगा और तुम्हें उससे जुदा कर दिया जायेगा ॥४४-४८॥

महाराज के ऐसे आश्चर्यकारी वचन सुन सेवकों ने कुछ भी तीन-पाँच न की। वे बकरे को लेकर शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर चल दिये तथा नन्दिग्राम में पहुँचकर बकरा ब्राह्मणों के सुपुर्द कर दिया और जो कुछ महाराज का संदेशा था वह भी साफ-साफ कह सुनाया। महाराज का यह विचित्र संदेशा सुन नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के होश उड़ गये। वे अपने मन में विचार करने लगे। यह बला कहाँ से आ पड़ी। महाराज के प्रति हमसे कोई अपराध हुआ नहीं है ॥४९॥

उन्होंने हमारे लिए ऐसा संदेशा क्यों कर भेज दिया ? हे ईश्वर! यह बात कठिन आ अटकी। कमती-बढ़ती खिलाने से या तो यह बकरा घट जायेगा या मोटा हो जायेगा। इसका एक-सा रहना असम्भव है। मालूम होता है अब हमारा अंत आ गया है ॥५०॥

इधर ब्राह्मण तो ऐसा विचार करने लगे। उधर वेणतट में सेठी इन्द्रदत्त को यह पता लगा कि कुमार श्रेणिक अब मगध देश के महाराज बन गये हैं। शीघ्र ही वे नन्दश्री और अभय कुमार को लेकर राजगृह की ओर चल दिये और नन्दिग्राम के पास आकर ठहर गये। सेठी इन्द्रदत्त आदि तो भोजनादि कार्य में प्रवृत्त हो गये और नवीन पदार्थों के देखने के अति प्रेमी अभयकुमार नन्दिग्राम देखने के लिए चल दिये। उन्हें आते देख परिवार के मनुष्यों ने बहुत-कुछ मनाही की किन्तु अभय कुमार के ध्यान में एक न आई। शीघ्र ही नन्दिग्राम में प्रवेश कर दिया। मध्य नगर में पहुँचते ही दैव से उनकी मुलाकात नन्दिनाथ से हो गई उसे चिंता से व्याकुल एवं म्लान देख अभयकुमार ने चटधर पूछा ॥५१-५४॥

हे विप्रों के सरदार! आपका मुख क्यों फीका हो रहा है! आप किस उधेड़-बुन में लगे हुए हैं। इस नगर में सर्व मनुष्य चिंताग्रस्त ही प्रतीत होते हैं। यह क्या बात है ? अभयकुमार के ऐसे

तदाकर्ण्याह तनयो मागधस्य मुदा हसन्। मा कुरुध्वं व्यथां विप्रा हरिष्याम्यसुखं तव ॥५६॥
इति संधार्य विप्रांस्तांश्चक्राणस्तदुपायकम्। स्तंभंतं द्वीपिनोर्मध्ये बंधयामास कोविदः ॥५७॥
चारयन्विविधं भक्षं यदा स्थूलः प्रपश्यति। तदा व्याघ्रं कृशी स्याच्च भयात्पक्षावधिं स्थितः ॥५८॥
न स्थूलं न कृशं मेषं प्रेषयामास भूपतिम्। तादृशं तं नृपो वीक्ष्य विस्मितोऽभूत्स्वमानसे ॥५९॥
तदा विघ्नं गतं वीक्ष्य विप्राः संतुष्टमानसाः। बभूवुर्जनितानंदा। अभयाद्भय वर्जिताः ॥६०॥
विप्राः समेत्य तत्पादौ प्रणम्य च पुनः पुनः। भो कुमार! महाराज! सुभग प्रियकारक ॥६१॥

उत्तम वचन सुन और वचनों से उसे बुद्धिमान् भी जान, नन्दिनाथ ने विनम्र वचनों में उत्तर दिया। महानुभाव! राजगृह के स्वामी महाराज श्रेणिक ने एक बकरा हमारे पास भेजा है। उन्होंने यह कड़ी आज्ञा भी दी है कि नन्दिग्राम के निवासी विप्र इस बकरे को खूब खिलावें-पिलावें किन्तु यह बकरा एक-सा ही रहे। न तो मोटा होने पावे और न पतला होने पावे। यदि यह बकरा दुर्बल हो गया अथवा पुष्ट हो गया तो नन्दिग्राम छीन लिया जायेगा। हे अभयकुमार! महाराज की इस आज्ञा का पालन हमसे होना कठिन जान पड़ता है। इसलिए इस गाँव के निवासी हम सब ब्राह्मण चिंता से व्यग्र हो रहे हैं ॥५५-५६॥

नन्दिनाथ के ऐसे विनय युक्त वचन सुनने से अभयकुमार का हृदय करुणा से द्रवीभूत हो गया। उन्होंने इस काम को कुछ काम न समझ ब्राह्मणों को इस प्रकार समझा दिया। हे विप्रो! आप इस कार्य के लिए किसी बात की चिंता न करें। आप धैर्य रखें। आपके इस विघ्न को दूर करने के लिए मैं भी उपाय सोचता हूँ तथा ऐसा विश्वास देकर वे भी उस चिन्ता को दूर करने का स्वयं उपाय सोचने लगे। कुमार की बुद्धि तो अगम्य थी, उक्त विघ्न दूर करने के लिए उन्हें शीघ्र ही उपाय सूझ गया। उन्होंने शीघ्र ही ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा-हे विप्रो! तुम एक काम करो बीच गाँव में एक खम्भा गड़वाओ। उससे कहीं से लाकर एक बाघ बाँध दो। जिस समय चराने से बकरा मोटा मालूम पड़े धीरे से उसे बाघ के सामने लाकर खड़ा कर दो। विश्वास रखो इस रीति से वह बकरा न बढ़ेगा और न घटेगा। कुमार की युक्ति ब्राह्मणों के हृदय में जम गई। उन्होंने शीघ्र ही कुमार की आज्ञानुसार वह काम करना प्रारंभ कर दिया। प्रथम तो वे दिन-भर खूब बकरे को चरावें और पश्चात् शाम को उसे बाघ के सामने ले जाकर खड़ा कर दें। इस रीति से उन्होंने कई दिन तक किया। बकरा वैसे-का-वैसा ही बना रहा तथा जैसा राजगृह नगर से आया था वैसा ही ब्राह्मणों ने जाकर उसे महाराज की सेवा में हाजिर कर दिया ॥५७-५९॥

विघ्न के हट जाने पर इधर ब्राह्मणों ने तो यह समझा कि कुमार की कृपा से हमारा विघ्न टल गया, हम बच गये। वे बारंबार कुमार की प्रशंसा करने लगे तथा अभयकुमार के पास आकर वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे-हे दिव्य पुरुष! हे पुण्यात्मन्! हे समस्त जीवों पर दया करने

अतो यज्जीवितं राजन्मेनेऽहं प्रीतिमंडितः। त्वत्तः कृपापराद्बुद्धिबोधिताखिलसंस्थिते: ॥६२॥
अकारणजगद्बंधुरसि त्वं भुवनत्रये। तादृशं नास्ति लोकेऽस्मिन् यादृशं त्वयि सौहृदं ॥६३॥
परोपकृतये रक्ताः संतः संति स्वभावतः। मेघा इव सदा स्निग्धाः सदार्द्रा जगदुन्नताः ॥६४॥
कृपां कुरु प्रसीद त्वं तिष्ठ तिष्ठ ममालये। यावन्न याति मे विघ्नः तुष्टो भव मनोपरि ॥६५॥
गते त्वयि कथं राजन् स्थास्यामि नृपकोपतः। आकोपशांतिमत्रत्वमतस्तिष्ठ पुरे मम ॥६६॥
इतिसंप्रार्थितः सोऽपि तथेति प्रतिपन्नवान्। प्रायेण स्वाजनं चित्तं परोपकृतये रतम् ॥६७॥
अथ स श्रेणिको भूपः संप्रापद्रोषमुत्तमम्। कथं निःकाशनं कुर्मो विप्राणां बुद्धिशालिनाम् ॥६८॥
वचो हरं पुनः राजाप्रेषयामास वाडवम्। स समेत्येति सद्वाचो जगाद विनयान्वितः ॥६९॥
कर्पूरवापिका विप्रा नेतव्या राजमंदिरम्। इति राज्ञश्च निर्देशो भवतामन्यथा हतिः ॥७०॥

वाले कुमार! यह हमारा भयंकर विघ्न आपकी कृपा से शांत हुआ है। आपके सर्वोत्तम बुद्धिबल से ही इस समय हमारी रक्षा हुई है। आपके प्रसाद से ही हम इस समय आनंद का अनुभव कर रहे हैं। आपने हमें अपना समझ जीवनदान दिया है। यदि महाराज की आज्ञा का पालन नहीं होता तो न मालूम महाराज हमारी क्या दुर्दशा करते—हमें क्या दण्ड देते ? ॥६०-६३॥

हे कृपानाथ कुमार! हम आपके इस उपकार के बदले में क्या करें ? हम तो सर्वथा असमर्थ हैं और आप समस्त लोक के बिना कारण बंधु हैं। हे कुमार! जैसी आपके चित्त में दया है। संसार में वैसी दया कहीं-नहीं जान पड़ती। हे महोदय! आप संसार में अलौकिक सज्जन हैं। आप मेघ के समान हैं क्योंकि जिस समय मेघ परोपकारी, स्नेह (जल) युक्त, आर्द्र एवं उन्नत होते हैं। उसी प्रकार आप भी परोपकारी हैं ॥६४॥ समस्त जनों पर प्रीति के करने वाले हैं। आपका भी चित्त दया से भीगा हुआ है और आप जगत् में पवित्र हैं। हे हमारे प्राणदाता कुमार! आपकी सेवा में हमारा यह सविनय निवेदन है। जब तक राजा का कोप शांत न हो, महाराज हमारे पर संतुष्ट न हों आप इस नगर को ही सुशोभित करें। आप तब तक इस नगर से कदापि न जाएँ। यदि आप यहाँ से चले जायेंगे तो महाराज हमें कदापि यहाँ नहीं रहने देंगे ॥६५-६६॥

इधर तो नन्दिनाथ एवं अन्य विप्रों की इस प्रार्थना ने कुमार अभय के चित्त पर प्रभाव जमा दिया उन्हें जबरन प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी और ब्राह्मणों पर दया कर नन्दिग्राम में कुछ दिन ठहरना भी निश्चित कर लिया। उधर जिस समय महाराज ने बकरे को ज्यों-का-त्यों देखा। वे गहरी चिंता में पड़ गये। अपनी प्रयत्न की सफलता न देख उन्हें अति क्रोध आ गया। वे सोचने लगे-जब नन्दिग्राम में ब्राह्मण इतने बुद्धिमान् हैं तब उनको कैसे नन्दिग्राम से निकाला जाये ? तथा क्षणिक ऐसा सोचकर शीघ्र ही उन्होंने फिर एक दूत बुलाया और उससे यह कहा— तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के निवासी ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मण शीघ्र एक बावड़ी राजगृह नगर पहुँचा दें नहीं तो उनको कष्ट का सामना करना पड़ेगा ॥६७-७०॥

वापिकानयनं लोके न श्रुतं श्रूयते नहि। कथं कुर्मो वयं विप्रा निर्नाशिनस्वपत्तना: ॥७१॥
पुन: कुमार सान्निध्यं प्रापुस्ते बुद्धिवंचिता:। किं कुर्म इति सत्प्रश्ने कुमारो वचनं जगौ ॥७२॥
यूयं चिंतां जहीताशु निद्रालौभूपतौ पुन:। प्रेषणं संविधातव्यं दीर्घिकाया महीभृतम् ॥७३॥
तत: स्वपत्तनेऽन्यस्मिन् पुरे वृषभसत्कुलम्। लुलाया: करभा गावो महष्यि: पशवोऽखिला: ॥७४॥
यावन्त: पत्तने संति तावतां युगकंधरे। यानवक्त्रं विधातव्य मा राजगृहमंदिरात् ॥७५॥
आपत्तनं पशुश्रेणिं युगरूपेण चक्रिके। निद्रालुं भूपतिं मत्वा ते गता तत्र वाडवा: ॥७६॥
ततस्तूर्यादि सन्नादै: कुर्वंतो व्याकुलं जगत्। शयिते भूपतौ सर्वे प्रविष्टा राजकेतनम् ॥७७॥
निद्राकांतं नृपं सर्वेऽवोचन् राजन् सुवापिका। आनीता मंदिरे रम्ये यथाज्ञा क्रियते द्विजै: ॥७८॥
निद्रालुना तदा राज्ञा बभाषे वचनं शनै:। तत्रैव स्थापनीया सा गम्यतां सत्वरं गृहात् ॥७९॥

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत चला और नन्दिग्राम में पहुँचकर शीघ्र ही उसने ब्राह्मणों से कहा–हे विप्रो! महाराज ने नन्दिग्राम से एक बावड़ी राजगृह नगर मंगाई है। आप लोगों को यह कड़ी आज्ञा दी है कि आप उसे शीघ्र पहुँचा दें नहीं तो तुम्हें नन्दिग्राम से जाना पड़ेगा। दूत के मुख से महाराज की ऐसी कठिन आज्ञा सुन, नन्दिग्राम निवासी विप्र दाँतों में उँगली दबाने लगे। वे विचार करने लगे कि अबकी महाराज ने कठिन अटकाई। बावड़ी का जाना तो सर्वथा असम्भव है। मालूम होता है महाराज का कोप अनिवार्य है। अब हमें नन्दिग्राम में रहना कठिन जान पड़ता है तथा क्षणिक ऐसा विचार कर वे सब मिलकर अभयकुमार के पास गये और सारा समाचार उन्हें जाकर कह सुनाया ॥७१-७२॥

ब्राह्मणों के मुख से बावड़ी का भेजना सुनकर और नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मणों को चिंता से ग्रस्त देखकर, अभयकुमार ने उत्तर दिया। हे विप्रो! यह कौन बड़ी बात है आप क्यों इस छोटी-सी बात के लिए चिंता करते हैं ? आप किसी बात से जरा भी न घबराये। यह विघ्न शीघ्र ही दूर हो जायेगा। आप एक काम करें, आपके गाँव में जितने घर, बैल एवं भैंसें हों उन सबको इकट्ठा करो। सबके कंधों पर जुआ रखवा दो और नन्दिग्राम से राजगृह तक उनको लगातार लगा दो। जिस समय महाराज अपने राजमंदिर में गाढ़ी निद्रा में सोते हों। बेधड़क हल्ला करते हुए राजमंदिर में घुस जाओ और खूब जोर से पुकार कर कहो कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाये हैं। जो उन्हें आज्ञा होय सो किया जाये। बस महाराज के उत्तर से ही आपका यह विघ्न टल जायेगा ॥७३-७८॥

कुमार की यह युक्ति सुन ब्राह्मणों ने गाँव के समस्त बैल एवं भैंसा एकत्रित किये। उनके कंधों पर जुआ रख दिया और उन्हें नन्दिग्राम से राजमंदिर तक जोत दिया। जिस समय महाराज गाढ़ी निद्रा में बेसुध सो रहे थे। राजमंदिर में बड़े जोर का हल्ला करना प्रारंभ कर दिया और महाराज के पास जाकर यह कहा–महाराजाधिराज! नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाये हैं। अब उन्हें जो आज्ञा हो, सो करें। उस समय महाराज के ऊपर निद्रा देवी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा हुआ

ततः पशून् समादाय विप्रा जग्मुर्निजं पुरम्। तदाद्यभयतस्तुष्टा मन्यमाना स्वजीवितं ॥८०॥
अहोबुद्धि-रहोबुद्धिरभयस्य जगत्त्रये। अतिलोके गुणोपेतो शंसामिति व्यधुर्द्विजाः ॥८१॥
जजागार क्षणाद्भूपो वदन्निति क्व वापिका। आनीयतां तदा प्राह कश्चिद्द्वो मगधाधिप ॥८२॥
आनीता वापिका विप्रै र्निशायां भवता पुनः। उक्तं स्थाप्या च तत्रैव तैस्तथाकारि भूपते ॥८३॥
निद्रायाश्चेष्टितं सर्वं नान्यस्य भुवि वर्त्तते। निद्रेयं महती पीड़ा प्राणिनां सातबाधिका ॥८४॥
यद्वदंति सदाचार्यास्तत्सत्यं सत्यमेव च। जेयं शयनमानित्यं पुरुषैर्हितकांक्षिभिः ॥८५॥
निद्रांतः करणाद्देही किं न कुर्यात् शुभाशुभं। अजेयं शयनं लोके क्षुधेव न च संशयः ॥८६॥

था। निद्रा के नशे में उन्हें अपने तन-बदन का भी होश-हवास नहीं था इसलिए जिस समय उन्होंने ब्राह्मणों के वचन सुने तो बेसुध में उनके मुख से धीरे से ये ही शब्द निकल गये कि जहाँ से बावड़ी लाये हो, वहीं पर बावड़ी ले जाकर रख दो और राजमंदिर से शीघ्र ही चले जाओ। बस फिर क्या था ? ब्राह्मण तो यह चाहते ही थे कि किसी रीति से महाराज के मुख से हमारे अनुकूल वचन निकलें। जिस समय महाराज से उन्हें अनुकूल जवाब मिला तो अपार हर्ष से उनका शरीर रोमांचित हो गया। वे उछलते-कूदते तत्काल ही नन्दिग्राम को लौट गये और वहाँ पहुँचकर, विघ्न की शांति से अपना पुनर्जीवन समझ, वे सुख सागर में गोता मारने लगे तथा अभयकुमार के चातुर्य पर मुग्ध होकर उनके मुख से खुले मैदान ये ही शब्द निकलने लगे कि अभयकुमार की बुद्धि अत्युत्तम और आश्चर्य करने वाली है। इनका हरेक विषय में पांडित्य सबसे चढ़ा-बढ़ा है। सौजन्य आदि गुण भी इनके लोकोत्तर हैं इत्यादि ॥७९-८१॥

इधर अपने भयंकर विघ्न की शांति हो जाने से विप्र तो नन्दिग्राम में सुखानुभव करने लगे। उधर राजगृह नगर में महाराज श्रेणिक की निद्रा की समाप्ति हो गई। उठते ही उनके मुँह से यही प्रश्न निकला कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण जो बावड़ी लाये थे वह बावड़ी कहाँ है ? शीघ्र ही मेरे सामने लाओ-महाराज के वचन सुनते ही पहरेदार ने जवाब दिया-महाराजाधिराज! नन्दिग्राम के ब्राह्मण रात को बावड़ी उठाकर लाये थे। जिस समय उन्होंने आपसे निवेदन किया था कि बावड़ी कहाँ रख दी जाये? उस समय आपने यही जवाब दिया था कि जहाँ से लाये हो, वहीं ले जाकर रख दो और शीघ्र राजमंदिर से चले जाओ इसलिए हे कृपानाथ! वे बावड़ी को पीछे ही लौटा ले गये ॥८२-८३॥

पहरेदार के ये वचन सुन अत्यधिक क्रोध के कारण महाराज श्रेणिक का शरीर भभकने लगा। वे बारंबार अपने मन में ऐसा विचार करने लगे कि संसार में जैसी भयंकर चेष्टा निद्रा की है वैसी भयंकर चेष्टा किसी की नहीं। यदि जीवों के सुख पर पानी फेरने वाली है तो यह पिशाचिनी निद्रा ही है। परमर्षियों ने जो यह कहा है कि जो मनुष्य हित के आकांक्षी हैं अपनी आत्मा का हित चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस निद्रा को अवश्य जीतें सो बहुत ही उत्तम कहा है क्योंकि जिस समय पिशाचिनी यह निद्रा जीवों के अंतरंग में प्रविष्ट हो जाती है। उस समय बिचारे प्राणी

कृत्याकृत्यं न जानाति हेयाहेयं शुभाशुभम्। पापापापं खलान्यं च निद्रादष्टो जनो भुवि ॥८७॥
घर्घराकलितः कंठो वेष्टनारक्षणं तथा। स्वेदो गमनभंगोऽत्र निद्रा च मरणायते ॥८८॥
वितर्क्येति चिरं राजा क्रोधोद्दीप्तो बभाण च। गजदेहतुलामानमानयध्वं च सत्वरम् ॥८९॥
मानं न दीयते चेद्भो गंतव्यं नगराद् द्रुतम्। इत्यादिष्टा बभूवुस्ते गजप्रेषणपूर्वकम् ॥९०॥
तदुपायमजानंतो व्याकुला गतमानसाः। कुमारसन्निधिं प्रापुर्वाचालाः किं कथं किमु ॥९१॥
मा बिभ्यतु र्भवंतो वै करोम्यत्र प्रतिक्रियाम्। इत्याश्वास्य स विप्रांस्तानुद्ययौ तत्कृते पुनः ॥९२॥

इसके वश हो अनेक शुभ-अशुभ कर्म संचय कर मारते हैं और अशुभ कर्मों की कृपा से उन्हें नरकादि घोर दुःखों का सामना करना पड़ता है। वास्तव में यह निद्रा क्षुधा के समान है क्योंकि जिस प्रकार क्षुधा का जीतना कठिन है। उसी प्रकार इसी निद्रा का जीतना भी अति कठिन है। क्षुधा से पीड़ित मनुष्य को जिस प्रकार यह विचार नहीं रहता कौन धर्म अच्छा है कौन बुरा है। संसार में मुझे कौन वस्तु ग्रहण करने योग्य है एवं कौन त्यागने योग्य है। उसी प्रकार निद्रा-पीड़ित मनुष्य को भी अच्छे-बुरे एवं हेय उपादेय का विचार नहीं रहता एवं जैसा क्षुधा पीड़ित मनुष्य पाप-पुण्य की कुछ भी परवा नहीं करता। वैसी निद्रा-पीड़ित मनुष्य को भी पाप-पुण्य की कुछ भी परवाह नहीं रहती तथा यह निद्रा एक प्रकार का भयंकर मरण है क्योंकि मरते समय कफ के रुक जाने पर जैसा कि कंठ में धड़-धड़-सा होने लग जाता है। निद्रा के समय में भी उसी प्रकार धड़-धड़ शब्द होता है। मरणकाल में संसारी जीव जिस प्रकार खाट आदि पर सोता है उसी प्रकार निद्रा काल में भी बेहोशी से खाट आदि पर सोता है ॥८४-८८॥

मरणकाल में जैसा मनुष्य के अंग पर पसीना चिपक जाता है वैसा निद्रा के समय भी अंग पर पसीना आ जाता है एवं मरण समय में जिस प्रकार जीव जरा भी नहीं चल सकता शांत पड़ जाता है। निद्राकाल में भी उसी प्रकार जीव जरा भी नहीं चल सकता किन्तु काठ की पुतली के समान बेहोश पड़ा रहता है इसलिए यह निद्रा अति खराब है तथा क्षणिक ऐसा विचार कर देदीप्यमान शरीर से शोभित महाराज श्रेणिक ने फिर से सेवकों को बुलाया और उनसे कहा कि जाओ और शीघ्र ही नन्दिग्राम के ब्राह्मणों से कहो। महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के विप्र एक हाथी का वजन कर शीघ्र ही मेरे पास भेज दें ॥८९॥

महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक चला और नन्दिग्राम में जाकर उसने ब्राह्मणों से जो कुछ महाराज की आज्ञा थी, सब कह सुनाई तथा यह भी कह सुनाया कि महाराज की इस आज्ञा का पालन जल्दी हो। नहीं तो आपको जबरन नन्दिग्राम खाली करना पड़ेगा। सेवक के मुख से महाराज की आज्ञा सुनते ही नन्दिग्राम निवासी विप्रों के मुख फीके पड़ गये। मारे भय के उनका गात्र काँपने लग गया। वे अपने मन में सोचने लगे कि बावड़ी का विघ्न टल जाने से हमने तो यह सोचा था कि हमारे दुःखों की शांति हो गई। अब यह मुसीबत फिर से कहाँ से आ टूटी ? तथा कुछ देर ऐसा विचार कर वे बुद्धिशाली अभयकुमार के पास गये और उनसे इस रीति से

गंभीरे जलधिप्रख्ये परागपरिपूरिते। कासारे वेशयामास नावं गजसमन्वितां ॥९३॥
कासारे तारयन्नावं द्विपभार विभूषिताम्। यावन्मग्ना व्यधान्तत्र संज्ञां विज्ञानपारगः ॥९४॥
निःकाश्ययानपात्रं स पूरयामास प्रस्तरैः। पुनस्तत्तारयामास तावन्मग्नं चकार सः ॥९५॥
ततो निक्षिप्य पाषाणांस्तत ऊर्द्धवप्रमाणकैः। प्रमीय तद्गुरुत्वं च तेनाकथि सुबुद्धितः ॥९६॥
ततो निरूपयामास भूपतेस्तत्प्रमाणकम्। अजेया बुद्धितो विप्रा इति शंसां चकार सः ॥९७॥
अन्यदा खादिरं काष्टं हस्तमात्रं विवल्कलं। प्रेषयामास भूपालो विप्रान्प्रतिजनैः सह् ॥९८॥
अस्याधस्तन भागः कः उपरित्योऽयमेव कः। द्वावंशौ कथनीयौ भो इति निर्देशपूर्वकम् ॥९९॥

विनयपूर्वक कहा माननीय कुमार! अबकी महाराज ने बड़ी कठिन अटकाई है। अबकी बार उन्होंने हाथी का वजन माँगा है भला हाथी का वजन कैसे, किस रीति से हो सकता है? मालूम होता है महाराज अब हमें छोड़ेंगे नहीं। ब्राह्मणों के ऐसे दीनतापूर्वक वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया आप इस जरा-सी बात के लिए क्यों इतने घबराते हैं ? मैं अभी इसका प्रतिकार करता हूँ तथा ब्राह्मणों को इस प्रकार आश्वासन दे वे शीघ्र ही तालाब के किनारे गये। तालाब के पास जाकर उन्होंने एक नौका मंगाई और ब्राह्मणों द्वारा एक हाथी मँगवाकर उस नाव में हाथी खड़ा कर दिया। हाथी के वजन से जितना नाव का हिस्सा डूब गया उस हिस्से पर कुमार ने एक लकीर खींच दी एवं हाथी को नाव से बाहर कर उसमें उतने ही पत्थर भरवा दिये। जिस समय पत्थर और हाथी का वजन बराबर हो गया तो कुमार ने पत्थरों को भी नाव से निकलवा लिया तथा उन पत्थरों के बराबर दूसरे बड़े-बड़े पत्थर कर महाराज श्रेणिक की सेवा में भिजवा दिये और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की ओर से यह निवेदन कर दिया कि कृपानाथ! आपने जो हाथी का वजन माँगा था सो यह लीजिए ॥९०-९७॥

जिस समय महाराज श्रेणिक ने हाथी के वजन के पत्थर देखे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में विचारने लगे कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण अधिक बुद्धिमान् हैं। उनका चातुर्य एवं पांडित्य ऊँचे दर्जे पर चढ़ा हुआ है। ये किसी रीति से भी जीते नहीं जा सकते तथा क्षणिक अपने मन में ऐसा भली प्रकार विचार कर महाराज ने फिर सेवकों को बुलाया और एक हाथ प्रमाण की एक निखोल खैर की लकड़ी उन्हें दें यह कहा कि जाओ, इस लकड़ी को नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दे आओ। उनसे कहना महाराज ने यह लकड़ी भेजी है। कौन-सा तो इसका निचला भाग है और कौन-सा इसका ऊपर का भाग है ? यह परीक्षा कर शीघ्र ही महाराज के पास भेज दो। नहीं तो तुम्हें नन्दिग्राम से निकाल दिया जायेगा। महाराज की आज्ञा पाते ही दूत राजगृह नगर से चला और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को लकड़ी देकर उसने कहा कि राजगृह के स्वामी महाराज श्रेणिक ने यह लकड़ी भेजी है। इसका कौन सा तो अगला भाग है और कौन सा पिछला भाग है ? शीघ्र ही परीक्षा कर भेज दो। यदि नहीं बता सको तो नन्दिग्राम छोड़कर चले जाओ ॥९८-९९॥

इति संप्राप्य संदेशं शक्रागम्यं नरैः किमु। गम्यं विप्रा बभूवुस्ते संचिताः कल्मषाननाः ॥१००॥
कुमारशरणं श्रेयं मनीषाश्रमकारणम्। इति संचिंत्य जग्मुस्ते सविधिं तस्य बुद्धये ॥१०१॥
मत्वाखिलं ततो वृत्तमभयो वचनं जगौ। न भेतव्यं भवद्भिश्च करोम्यत्र प्रतिक्रियां ॥१०२॥
इत्युदीर्य समाश्वास्य समादायेध्मसत्करे। जगाम वाडवैः सत्रं परीक्षायै सरस्तटे ॥१०३॥
मुमोच सलिले काष्टं वहमाने चचाल तत्। मूलभागं पुरस्कृत्याभेद्यं बुद्ध्यादिवर्जितैः ॥१०४॥
तौ भागौ स परिज्ञाय कथयामास भूपतेः। वाडवैः स्तूयमानश्च मन्यमानैस्ततः शुभं ॥१०५॥
अन्यदेति निदेशस्तु दत्तो मागधनायकैः। कोपोद्दीपितसद्वक्त्रैर्गंभीरधिषणावृत्तैः ॥१०६॥
यावत्पूरं तिला विप्रै गृह्यंते तत्प्रमाणकं। तावत्पूरं च तेषां वै देयं तैलं मुदाद्रुतम् ॥१०७॥
आकर्ण्येति जगुर्विप्राः किं चिकीर्षति भूपतिः ? निर्देशो दुर्द्धरस्तेन कथं दीयेत शक्त्यगः ॥१०८॥

दूत के मुख से जब महाराज का यह संदेशा सुनने में आया तो नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के मस्तक घूमने लगे। वे सोचने लगे यह मुसीबत तो सबसे कठिन आकर टूटी। इस लकड़ी में यह बताना बुद्धि के बाह्य है कि कौन सा भाग इसका पिछला है और कौन सा अगला है? इसका उत्तर जाना महाराज के पास कठिन है। अब हम किसी कदर नन्दिग्राम में नहीं रह सकते तथा क्षणिक ऐसे संकल्प-विकल्प कर अति व्याकुल हो, वे कुमार के पास गये। महाराज का सारा संदेशा कुमार को कह सुनाया और यह खैर की लकड़ी भी उनके सामने रख दी। ब्राह्मणों को म्लान चित्त देख और उस खैर की लकड़ी को निहार कुमार ने उत्तर दिया आप महाराज की इस आज्ञा से जरा भी न डरें। मैं अभी इसका प्रतीकार करता हूँ तथा सब ब्राह्मणों को इस प्रकार दिलासा देकर कुमार किसी तालाब के किनारे गये। तालाब में कुमार ने लकड़ी डाल दी। जिस समय वह लकड़ी अपने मूल भाग को आगे कर बहने लगी। शीघ्र ही उन्होंने उसका पीछे-आगे का भाग समझ लिया एवं भली प्रकार परीक्षा कर किसी ब्राह्मण के हाथ उसे महाराज श्रेणिक की सेवा में भेज दिया। लकड़ी को ले ब्राह्मण राजगृह नगर गया और कुमार की आज्ञानुसार उसने लकड़ी का नीचा-ऊँचा भाग महाराज की सेवा में विनयपूर्वक जा बताया ॥१००-१०५॥

जिस समय महाराज ने लकड़ी को देखा तो मारे क्रोध से उनका तन-बदन जल गया। वे सोचने लगे कि मैं ब्राह्मणों पर दोषारोपण करने के लिए कठिन-से-कठिन उपाय कर चुका। अभी ब्राह्मण किसी प्रकार दोषी सिद्ध नहीं हुए हैं। नन्दिग्राम के ब्राह्मण बड़े चालाक मालूम पड़ते हैं। अब इनको दोषी बताने के लिए कोई दूसरा उपाय सोचना चाहिए तथा क्षणिक ऐसा विचार कर उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उसके हाथ में कुछ तिल देकर यह आज्ञा दी कि तुम नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों को तिल देकर यह बात कहो कि महाराज ने ये तिल भेजे हैं। जितने ये तिल हैं इनकी बराबर शीघ्र ही तेल राजगृह पहुँचा दो नहीं तो तुम्हारे हक में अच्छा न होगा। महाराज की आज्ञानुसार दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया और तिल ब्राह्मणों को दे दिये तथा यह भी कह दिया कि जितने ये तिल हैं महाराज ने उतना ही तेल मँगाया है। तेल शीघ्र भेजो

ततोऽभयकुमारो सा वाश्वास्य निजबुद्धितः। वाडवानिति जग्राह पूरयित्वा च दर्पणम् ॥१०९॥
तिलान् संपीड्य तैलं च निःकाश्य वरबुद्धितः। तैलमादर्शपूरं च प्रेषयामास भूपतिम् ॥११०॥
रुषाऽन्यदेति भूपेश इत्यादेशं ददौ पुनः। भो विप्राः प्रेषणीयं च भोज्ययोग्यं पयः शुभम् ॥१११॥
गवादिपशु वर्जं च द्विपदत्यक्तकं तथा। नालिकेरादि वर्जं च प्रीतिदं प्रचुरं तथा ॥११२॥
श्रुत्वेति वाडवाः सर्वे बुद्धिलाभाय तं श्रिताः। स समुद्धीर्य तान् बुद्ध्या गरिष्टप्रतिमः सदा ॥११३॥
आनयामास क्षीरार्थं शालीनां कणिशानि च। यंत्रे निः पीड्य निः काश्य क्षीरं गोक्षीरसत्प्रभां ॥११४॥
प्रपूर्य नृपतिं वेगाद्भटान् दुग्धावभासिनः। प्रेषयामास बुद्धींद्रो मागधांगसमुद्भवः ॥११५॥

नहीं तो नन्दिग्राम छोड़ना पड़ेगा।

दूत के मुख से ऐसे वचन सुन ब्राह्मण बड़े घबराये। वे सीधे अभयकुमार के पास गये और विनयपूर्वक यह कहा–महोदय कुमार! महाराज ने ये थोड़े–से तिल भेजे हैं। इनकी बराबर ही तेल माँगा है। क्या करें? यह बात अति कठिन है। तिलों के बराबर तेल कैसे भेजा जा सकता है? मालूम होता है अब महाराज छोड़ेंगे नहीं ॥१०६–१०९॥

ब्राह्मणों को इस प्रकार हताश देख कुमार ने फिर उन्हें समझा दिया तथा एक दर्पण मँगाया और दर्पण पर तिलों को पूर कर ब्राह्मणों को आज्ञा दी कि जाओ इनका तेल निकलवा लाओ। जिस समय कुमार की आज्ञानुसार ब्राह्मण तेल पेरकर ले आये। तो उस तेल को कुमार ने तिलों की बराबर ही दर्पण पर पूर दिया और महाराज श्रेणिक की सेवा में किसी मनुष्य द्वारा भिजवा दिया ॥११०॥ तिलों के बराबर तेल देख महाराज चकित रह गये। फिर उनके हृदय समुद्र में विचार तरंग उछलने लगीं। वे बारम्बार नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के बुद्धिबल की प्रशंसा करने लगे। अब महाराज को क्रोध के साथ–साथ नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की बुद्धि–परीक्षा कौतूहल–सा हो गया। उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने भोजन के योग्य दूध मँगाया है। उनसे यह कह देना कि वह दूध गाय–भैंस आदि चौपायों का न हो और न दुपायों का हो। नारियल आदि पदार्थों का भी न हो किन्तु इनसे अतिरिक्त हो, मीठा हो, उत्तम हो और बहुत–सा हो ॥१११–११३॥

महाराज की आज्ञानुसार दूत फिर नन्दिग्राम को गया महाराज ने जैसा दूध लाने के लिए आज्ञा दी थी। वही आज्ञा उसने नन्दिग्राम के विप्रों के सामने जाकर कह सुनायी और यह भी सुना दिया कि महाराज का क्रोध तुम्हारे ऊपर बढ़ता ही चला जाता है। महाराज आप लोगों पर बहुत नाराज हैं। दूध शीघ्र भेजो नहीं तो तुम्हें नन्दिग्राम में नहीं रहने देंगे ॥११४॥

दूत के मुख से यह संदेशा सुन विप्रों के मस्तक चक्कर खाने लगे। विचारने लगे कि दूध तो गाय, भैंस, बकरी आदि का ही होता है। इसके अतिरिक्त किसी का दूध आज तक हमने सुना ही नहीं है। महाराज ने जो किसी अन्य ही चीज का दूध मँगाया है सो उन्हें क्या सूझी है? क्या वे अब हमारा सर्वथा नाश ही करना चाहते हैं तथा क्षणिक ऐसा विचार कर वे अति व्याकुल हो

आदिदेशान्यदाधीश इति तान् द्विजनायकान्। एक एव सुयोद्धव्यः कुर्कुटो मे समीपतः ॥११६॥
कुमार बुद्धितो विप्रा जग्मूराजगृहम् पुरम्। सादर्शास्ते हसंतश्च गृहीत्वा चरणायुधम् ॥११७॥
ततो भूपति सांनिध्ये युयोध चरणायुधः। दृष्टतत्प्रतिबिंबोऽसौ मुकुरे क्रोधतस्तदा ॥११८॥

दौड़ते-दौड़ते अभयकुमार के पास गये और महाराज का सब संदेशा कुमार के सामने कह सुनाया तथा कुमार से यह भी निवेदन किया कि हे महानुभाव कुमार! अबकी बार महाराज की आज्ञा बड़ी कठिन है क्योंकि दूध तो गाय, भैंस, बकरी आदि का ही हो सकता है, इनके अतिरिक्त दूध हो ही नहीं सकता। यदि हो भी तो वह दूध नहीं कहा जा सकता। महाराज ने अब यह दूध नहीं माँगा है हम लोगों के प्राण माँगे हैं।

ब्राह्मणों के वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया-आप क्यों घबराते हैं ? गाय, भैंस, बकरी आदि से अतिरिक्त का भी दूध होता है। मैं अभी उसे महाराज की सेवा में भिजवाता हूँ। आप जरा धैर्य रखें तथा ऐसा कहकर कुमार ने शीघ्र ही कच्चे धान्यों की बालें मँगवाई और उनसे गौ के समान ही उत्तम दूध निकलवाकर कई घड़े भरकर तैयार कराये एवं वे घड़े महाराज श्रेणिक की सेवा में राजगृह नगर भेज दिये ॥११५॥

दूध के भरे हुए घड़ों को देख महाराज आश्चर्य-समुद्र में गोता लगाने लगे। नन्दिग्राम के विप्रों की बुद्धिबल की ओर ध्यान दे उन्हें दाँतों तले उंगली दबानी पड़ी। वे बार-बार यह कहने लगे कि नन्दिग्राम के विप्रों का बुद्धिबल है कि कोई बलाय है ? मैं जिस चीज को परीक्षार्थ उनके पास भेजता हूँ। फौरन वे उसका जवाब मेरे पास भेज देते हैं। मालूम होता है उनका बुद्धिबल इतना बढ़ा-चढ़ा है कि उन्हें सोचने तक की भी जरूरत नहीं पड़ती। अस्तु, अब मैं उन्हें अपने सामने बुलाकर उनकी परीक्षा करता हूँ। देखें, वे कैसे बुद्धिमान् हैं ? तथा क्षणिक ऐसा अपने मन में दृढ़ निश्चय कर महाराज ने शीघ्र ही एक सेवक को बुलाया और उससे यह कहा-तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के विप्रों से कहो कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के विप्र को मेरे सामने आकर एक मुर्गे को लड़ावें। यदि वे ऐसा न करें तो नन्दिग्राम खाली कर चले जाये ॥११६॥

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत फिर चल दिया और नन्दिग्राम में पहुँच उसने विप्रों से जाकर यह कहा कि आप लोगों के लिए महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के विप्र राजगृह नगर आयें और हमारे सामने एक ही मुर्गे को लड़ावें। यदि यह बात उनको नामंजूर हो तो वे शीघ्र ही नन्दिग्राम को खाली कर चले जायें ॥११७॥

दूत के वचन सुन विप्र फिर घबराकर अभयकुमार के पास गये और महाराज का सारा संदेशा उनके सामने निवेदन कर दिया तथा यह भी कहा-महनीय कुमार! अबकी बार महाराज ने हमें अपने सामने बुलाया है। अबकी हमारे ऊपर अति भयंकर विघ्न मालूम पड़ता है। विप्रों के ऐसे वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया आप खुशी से राजगृह नगर जायें। आप किसी बात से घबराये

चरणाहतिमाकुर्वन् वक्त्रघातं च दर्पणे। वैरिणं मन्यमानः स स्थितं दीर्घं युयोध च ॥११९॥
दृष्ट्वा तदाननं भूभृद्विस्मितोऽभूत्स्वमानसे। दत्तोऽन्यदा निदेशस्तु विप्राणां भूभृता हठात् ॥१२०॥
बालुकावेष्टनं शीघ्रमानेतव्यं द्विजाधिपैः। अन्यथा ग्रामतो नाशो भवतां नात्र विचारणा ॥१२१॥
अभयाद् बुद्धिमासाद्य जग्मुस्ते राजसन्निधिम्। आदाय बालुकावृंदं प्रणम्येति वचो जगुः ॥१२२॥
बालुकावेष्टनं भूपभांडागारस्थमुत्तमम्। देयं तेन प्रमाणेन क्रियते तत्समं पुनः ॥१२३॥
भूपोऽगदीद्वचो विप्रा नास्ति तद्वेष्टनं मम। भांडालये तदा प्रोचुर्युक्तं ह्युक्तं द्विजानृप ॥१२४॥

नहीं वहाँ जाकर एक काम करें, मुर्गे को अपने सामने खड़ा कर एक दर्पण उसके सामने रख दें। जिस समय वह मुर्गा दर्पण में अपनी तस्वीर देखेगा। अपना बैरी दूसरा मुर्गा समझ वह फौरन लड़ने लग जायेगा और आपका काम सिद्ध हो जायेगा ॥११८॥

कुमार के मुख से यह युक्ति सुनकर मारे हर्ष के विप्रों का शरीर रोमांचित हो गया। एक मुर्गा लेकर वे शीघ्र ही राजगृह नगर की ओर चल दिये। राजमंदिर में पहुँचकर उन्होंने भक्तिपूर्वक महाराज को नमस्कार किया तथा उनके सामने उन्होंने मुर्गा छोड़ दिया और उसके आगे एक दर्पण रख दिया जिस समय असली मुर्गे ने दर्पण में अपनी तस्वीर देखी तो उसने उसे अपना बैरी असली मुर्गा समझा और वह चोंच मार-मारकर उसके साथ अति आतुर हो युद्ध करने लग गया ॥११९॥

अकेले ही मुर्गे को युद्ध करते हुए देख महाराज चकित रह गये। उन्होंने शीघ्र ही मुर्गे की लड़ाई समाप्त करा दी तथा विप्रों को जाने के लिए आज्ञा दे दी। जिस समय विप्र चले गये तब महाराज के मन में फिर सोच उठा। वे विचारने लगे कि विप्र बड़े बुद्धिमान् हैं। उनको अब किस रीति से दोषी बनाया जाये ? कुछ समझ में नहीं आता तथा क्षणिक ऐसा विचार कर उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उससे कहा कि तुम शीघ्र नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के विप्रों से कहो कि महाराज ने बालू की रस्सी मँगाई है, शीघ्र तैयार कर भेजो नहीं तो अच्छा न होगा ॥१२०-१२१॥

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया तथा नन्दिग्राम में पहुँच कर उसने विप्रों के सामने महाराज श्रेणिक का सारा संदेशा कह सुनाया ॥१२२॥

दूत द्वारा महाराज की यह आज्ञा सुन विप्रों के तो बिलकुल छक्के छूट गये। वे भागते-भागते अभयकुमार के पास पहुँचे तथा अभयकुमार के सामने सारा संदेशा निवेदन कर उन्होंने कहा—पूज्य कुमार! अबकी बार महाराज ने यह क्या आज्ञा दी है। इसका हमें अर्थ ही नहीं मालूम हुआ। हमने तो आज तक न बालू की रस्सी सुनी और न देखी ॥१२३॥

विप्रों द्वारा महाराज की आज्ञा सुन कुमार ने उत्तर दिया कि आप किसी भी बात से घबराइये नहीं। इसका उपाय यही है कि आप लोग अभी राजगृह नगर जाएँ और महाराज के सामने यह

भावत्के यद्गृहे नास्ति तन्नास्ति भुवनत्रये। अतो वृथा न दातव्यो देशो दैवावघातकः ॥१२५॥
वाक्प्रबंधेन भूपालमिति संजित्य वाडवाः। प्राप्य स्वपत्तनं वेगान्नेमुस्तत्पादपंकजम् ॥१२६॥
अन्यदा क्षितिपालश्च चुकोप पूर्वजं स्मरन्। ददामि तादृशादेशं कर्त्तुं कैश्चिन्न शक्यते ॥१२७॥
घटे घटप्रमाणं च कूष्मांडफलमुत्तमं। आानेतव्यं द्विजाधीशा नो चेद् ग्रामाद् बहिर्गतिः ॥१२८॥

निवेदन करें। श्री राजाधिराज! आपके भण्डार में कोई दूसरी बालू की रस्सी हो तो कृपाकर हमें देवें, जिससे हम वैसी ही रस्सी आपकी सेवा में लाकर हाजिर कर दें। यदि महाराज मना करें कि हमारे यहाँ वैसी रस्सी नहीं है तो उनसे आप विनयपूर्वक अपने अपराध की क्षमा माँग लीजिए और यह प्रार्थना कर दीजिए कि हे महाराज! कृपाकर ऐसी अलभ्य वस्तु की हमें आज्ञा न दिया करें। हम आपकी दीन प्रजा हैं ॥१२४॥

कुमार की यह युक्ति सुनकर विप्रों को अति हर्ष हुआ। वे अत्यन्त आनंदित हो उछलते-कूदते शीघ्र ही राजगृह नगर जा पहुँचे। राजमंदिर में प्रवेश कर उन्होंने महाराज को नमस्कार किया और विनयपूर्वक यह निवेदन किया श्रीमहाराज! आपने हमें बालू की रस्सी के लिए आज्ञा दी है। हमें नहीं मालूम होता हम कैसी रस्सी आपकी सेवा में ला हाजिर करें। कृपया हमें कोई दूसरी बालू की रस्सी मिले तो हम वैसी ही आपकी सेवा में हाजिर कर दें। अपराध क्षमा हो ॥१२५॥

विप्रों की बात सुन महाराज ने उत्तर दिया। हे विप्रो! मेरे यहाँ कोई भी बालू की रस्सी नहीं। बस, फिर क्या था! महाराज के मुख से शब्द निकलते ही विप्रों ने एक स्वर हो इस प्रकार निवेदन किया-

हे कृपानाथ! जब आपके भंडार में भी रस्सी नहीं है तो हम कहाँ से बालू की रस्सी बना कर ला सकते हैं। प्रभो! कृपया हम पर ऐसी अलभ्य वस्तु के लिए आज्ञा न भेजा करें। आपकी ऐसी कठोर आज्ञा हमारा घोर अहित करने वाली है। हम आपके ताबेदार हैं, आप हमारे स्वामी हैं तथा इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर विप्र राजमंदिर से चले गये किन्तु विप्रों के विनय करने पर भी महाराज के कोप की शांति न हुई। विप्रों के चले जाने पर उन्हें फिर नन्दिग्राम के अपमान का स्मरण आया। उनके शरीर में फिर क्रोध की ज्वाला छटकने लगी ॥१२६॥

वे विचारने लगे कि विप्र किसी प्रकार दोषी नहीं बन पाये हैं। नन्दिग्राम के विप्र बड़े चालाक मालूम पड़ते हैं। अस्तु, मैं अब उनके पास ऐसी आज्ञा भेजता हूँ जिसका वे पालन ही न कर सकें तथा क्षणिक ऐसा विचार, महाराज ने शीघ्र ही एक दूत बुलाया और उसे यह आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के विप्रों को कहो कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के विप्र एक कूष्मांड (पेठा) मेरे पास लावें। वह कूष्मांड घड़े में भीतर हो और घड़े की बराबर हो। कमती-बढ़ती न हो। यदि वे इस आज्ञा का पालन न करें तो नन्दिग्राम को छोड़ दे ॥१२७-१२८॥

ददाविति तदादेशं वाडवानां नराधिपः। आकर्ण्य वाडवा जग्मुरभयस्य समक्षतां ॥१२९॥
त्राहि त्राहि कृपाधीश! लाहि लाह्यभयं द्विजान्। पाहि पाहि नृप क्रोधात्ख्याहि ख्याहि शुभं शुभम् ॥१३०॥
प्रमीमांस्य चिरं चित्ते प्रदीदांस्य मम व्ययाम्। प्रशीशांस्य धिया चित्तं प्रवीभत्स्य नृपोद्भवम् ॥१३१॥
कुरु प्रतिक्रियां राजन् जीवने वाडवस्य च। गंभीरत्वं समुद्रस्याचलत्वं मंदरस्य च ॥१३२॥
विद्वत्त्वं देवजीवस्य भानोस्त्वयि प्रतापता। आधिपत्यं सदा जिष्णो र्हिमांशोः सौम्यता पुनः ॥१३३॥
न्यायत्वं रामदेवस्य पुष्पबाणस्य रूपिता। बुद्धित्वं ज्ञानिनः स्वामिन् समस्ति शुभशासन ॥१३४॥
अतः प्रसीद धीरत्वं कुरु चिंतां मम प्रभो। अतः प्रभृति बुद्धीश त्वत्तो जीवितमुल्वणं ॥१३५॥
घटे कूष्माडसंरोपं कुरु जीवनहेतवे। त्वत्समो नास्ति सद्बंधुर्भुवने रक्षणोद्यतः ॥१३६॥
श्रुत्वेति तत्प्रशंसां स जगाद वचनं घनम्। न भेतव्यं करोम्यत्रोपायं शर्माकिरं परम् ॥१३७॥

इधर महाराज की आज्ञा पाकर दूत तो नन्दिग्राम की ओर रवाना हुआ। उधर जब विप्रों को बालू की रस्सी महाराज के यहाँ से न मिली तो अपना विघ्न टल जाने से वे खूब आनंद से नन्दिग्राम में रहने लगे और बार-बार अभयकुमार की बुद्धि की तारीफ करने लगे किन्तु जिस समय दूत फिर से नन्दिग्राम पहुँचा और ज्यों ही उसने विप्रों के सामने महाराज की आज्ञा कहनी प्रारम्भ की। सुनते ही विप्र घबरा गये। महाराज की आज्ञा के भय से उनका शरीर थर-थर काँपने लगा। वे अपने मन में विचारने लगे। हे ईश्वर! यह विपत्ति फिर कहाँ से आ टूटी! हम तो अभी महाराज से अपना अपराध क्षमा कराकर आये हैं। क्या हमारे इतने विनय-भाव से भी महाराज का हृदय दया से न पसीजा ? अब हम अपने बचने का क्या और कैसा उपाय करें? तथा क्षणिक ऐसा विचार कर वे कुमार के सामने इस प्रकार रुदन पूर्वक चिल्लाने लगे ॥१२९-१३०॥

हे वीरों के सिरताज कुमार! अबकी बार महाराज ने हमारे ऊपर अति कठिन आज्ञा भेजी है। हे कृपानाथ! इस भयंकर विघ्न से हमारी शीघ्र रक्षा करो। हम विप्रों के इस भयंकर दुःख का जल्दी निवारण करो। हे दीनबंधु! इस भयंकर कष्ट से आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। आप ही हमारे दुःख पर्वत के नाश करने में अखंड वज्र हैं। महनीय कुमार! लोक में जिस प्रकार समुद्र की गम्भीरता, मेरु पर्वत का अचलपना, देवजीत की विद्वत्ता, सूर्य का प्रतापीपना, इन्द्र का स्वामीपना, चन्द्रमा की मनोहरता, राजा रामचन्द्र की न्यायपरायणता, कामदेव की सुन्दरता आदि बातें प्रसिद्ध हैं। उसी प्रकार आपकी सुजनता और विद्वत्ता प्रसिद्ध है ॥१३१-१३४॥

इस समय हम घोर चिंता से व्यथित हो रहे हैं। हे जीवन नाथ! हम सब लोगों का जीवन आपके ही आधार हैं। त्रिलोक में आपके समान हमारा कोई बन्धु नहीं है ॥१३५॥

विप्रों को इस प्रकार करुणापूर्वक रुदन करते हुए देख अभयकुमार का चित्त करुणा से गद्गद् हो गया। उन्होंने गम्भीरता पूर्वक विप्रों से कहा-विप्रों! आप क्यों मामूली-सी बात के लिए इतना घबराते हैं। मैं अभी इसका उपाय करता हूँ। जब तक मैं यहाँ पर हूँ तब तक आप किसी प्रकार से राजा की आज्ञा का भय न करें तथा विप्रों को इस प्रकार समझाकर अभय कुमार

वल्लीस्थितं घटे सूक्ष्मं स्थापयित्वा च तत्फलं। तत्प्रमाणं विबुध्याशु प्रेषयामास भूपतिम् ॥१३८॥
संदृश्य भूपतिः सर्वं कौतुकान्वितमानसः। व्यतर्कयन्निजे चित्ते विकसत्पद्म सन्निभे ॥१३९॥
कोऽप्यस्ति बुद्धिसंदाता किं वा विप्राश्च धीधनाः। न विद्मश्चरितं सारं सार्वबुद्धिभरक्षमं ॥१४०॥
तेऽर्थं पूर्वं न जानंति पश्चात्सर्गत्वकिंचन। पाठकानार्थवेत्तारो विप्राः पश्चिमबुद्धयः ॥१४१॥
विज्ञानं शक्रराजस्य किं वा चंद्रमसः पुनः। यक्षराजस्य किं दाहो स्तर्यस्य धरणस्य वा ॥१४२॥
न विप्राणामियं बुद्धि र्निश्चयेन च निर्धियाम्। किं चिंतया? परीक्षामि बुद्धिहेतुं सुयत्नतः ॥१४३॥
बुद्धिदायकसन्मर्त्यवीक्षणाय नराधिपैः। संप्रेषिता नरास्तेऽपि चेलुस्तन्नगरं वरं ॥१४४॥
तदा बटुकवृंदैश्च सेव्यमानोऽभयो महान्। क्रीड़ायै तद्वनं धीमानाजगाम मनोहरम् ॥१४५॥
नानाशालसमाकीर्णं किलकोकिलनिस्वनम्। जंबूनारिंगजं बीर कंकेल्लिकदलीभरम् ॥१४६॥

ने एक घड़ा मँगाया और उसमें बेल सहित कुष्मांड फल को रख दिया। अनेक प्रयत्न करने पर कई दिन बाद कुष्मांड घड़े के बराबर बढ़ गया और कुमार ने घड़े सहित ज्यों का त्यों उसे महाराज की सेवा में भिजवा दिया एवं वे आनंद से रहने लगे ॥१३६-१३८॥

महाराज ने जैसा कुष्मांड माँगा था वैसा ही उनके पास पहुँच गया। अबकी बार कुष्मांड देखकर तो महाराज के सोच का पारावार न रहा। वे बारम्बार सोचने लगे हैं! यह बात क्या है? क्या नन्दिग्राम के ब्राह्मण ही इतने बुद्धिमान् हैं ? या इनके पास कोई और ही मनुष्य बुद्धिमान् रहता है? नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का तो इतना पांडित्य नहीं हो सकता क्योंकि जब से इनको राज्य की ओर से स्थिर आजीविका मिली है तब से ये लोग निपट अज्ञानी हो गये हैं। इनकी समझ में साधारण से साधारण बात तो आती ही नहीं फिर इनके द्वारा मेरी बातों का जवाब देना तो बहुत ही कठिन बात है। जो-जो काम मैंने नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के पास भेजे हैं। सबका जवाब मुझे बुद्धिपूर्वक ही मिला है। इसलिए यही निश्चय होता है। नन्दिग्राम में अवश्य कोई असाधारण बुद्धिधारक ब्राह्मणों से अन्य ही मनुष्य है। जिस पांडित्य से मेरी बातों का जवाब दिया गया है। न मालूम वह पांडित्य इन्द्रदेव का है? या चन्द्रदेव का है ? अथवा सूर्यदेव या यक्षराज का है ? नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का तो किसी प्रकार वैसा पांडित्य नहीं हो सकता। अस्तु, यदि नन्दिग्राम के ब्राह्मण ही इतने बुद्धिमान् हैं तो अभी मैं उनकी बुद्धि की फिर परीक्षा किये लेता हूँ ॥१३९-१४३॥

तथा इस प्रकार क्षणिक अपने मन में पक्का निश्चय कर महाराज ने शीघ्र ही कुछ शूरवीर योद्धाओं को बुलाया और उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम लोग अभी नन्दिग्राम जाओ और नन्दिग्राम में जो अधिक बुद्धिमान् हो शीघ्र ही उसे तलाश कर आकर कहो। महाराज की आज्ञा पाते ही योद्धाओं ने शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर गमन कर दिया तथा नन्दिग्राम के किसी मनोहर वन में वे अपनी भूख की शांति के लिए ठहर गये ॥१४४॥

वह वन अति मनोहर था। उसमें जगह-जगह पर अनार, नारंगी, संतरा, जामुन, कंकेली, केला, लौंग आदि उत्तमोत्तम फल वृक्षों पर फलते थे। नींबू आदि सुगंधित फलों की सुगंधि से

लांगलीबीजपूराढ्यं घोटादाडिम लिंबुकं। केतकीरक्तषट्पादध्वनद्ध्वानं संचूतकम् ॥१४७॥
तत्र रम्ये फलाकीर्णे जंबूशाखिनि चोन्नते। फलाशनकृते धीमानारुरोह सह द्विजैः ॥१४८॥
नृप वीक्ष्य कौमार आटतसत्प्रभप्रभून्। अमीभिर्न च वक्तव्यं भो बटुका इत्यवारयत् ॥१४९॥
ततस्ते तत्र राजीया आगत्य क्षुत्कुलाकुलाः। वृक्षाधः कलवृंदानि बटुकांस्तान् ययाचिरे ॥१५०॥
तदाऽभयो वचोऽवादीद्राजीयाः पुरुषोत्तमाः। फलेच्छा भवतां चित्ते समस्ति शुभशालिनां ॥१५१॥
मयोष्णानि प्रदीयं ते शीतलानि फलानि वा। भवद्भयः कथनीयं मे यादृशानि द्रुतं नराः ॥१५२॥
रोचंते ते वचः श्रुत्वा चिंतयन्निति मानसे। उष्णानि शीतलान्येव फलानि प्रभवंति किं ॥१५३॥
अनुदृष्टानि शीतानि फलानि प्रचुराणि च। न श्रुतानि न दृष्टानि कोष्णान्यपि जगत्त्रये ॥१५४॥
एकस्मिन्नथ वृक्षे च शीतान्युष्णानि किं ननु। भवंति विफलं वाक्यमेषां मन्यामहे वयं ॥१५५॥

सदा यह वन व्याप्त रहता था। उसके ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर कोयल आदि पक्षीगण अपने मनोहर शब्दों से पथिकों के मन हरण करते थे और केतकी वृक्षों पर भ्रमर गुंजार करते थे। इसलिए हमेशा नन्दिग्राम के बालक उस वन में क्रीड़ार्थ जाया करते थे ॥१४५-१४६॥

रोज की तरह उस दिन भी बालक क्रीड़ार्थ वन में आये। दैवयोग से उस दिन विप्रों के बालकों के साथ अभयकुमार भी थे ये सब-के-सब हँसते-खेलते किसी जामुन के वृक्ष पर चढ़ गये और आनंद से जामुन फलों को खाने लगे। बालकों को इस प्रकार जामुन के पेड़ पर चढ़े राज सेवकों ने देखा तथा वे सब यह समझ कि हम इन बालकों से कुछ फल लेकर अपनी भूख शान्त करेंगे शीघ्र ही उस वृक्ष की ओर झुक पड़े ॥१४७-१४८॥

इधर अभयकुमार ने जब राजसेवकों को अपनी ओर आते हुए देखा। तो वे तो अन्य बालकों से यह कहने लगे-देखो भाई, ये राजसेवक अपनी ओर आ रहे हैं ॥१४९॥

तुममें कोई भी इनके साथ बातचीत न करें। जो कुछ जवाब-सवाल करूँगा सो मैं ही इनके साथ करूँगा और उधर राजसेवक जामुन के वृक्ष के नीचे चट आ कूदे और बालकों से कुछ फलों के लिए उन्होंने प्रार्थना भी की ॥१५०॥

राजसेवकों की फलों के लिए प्रार्थना सुन अभयकुमार ने सोचा। यदि इनको यों ही फल दे दिये जायेंगे तो कुछ मजा न आवेगा। इनको छकाकर फल देना ठीक होगा। इसलिए प्रार्थना के बदले में उन्होंने यही जवाब दिया ॥१५१-१५२॥

राजसेवको! तुमने फल माँगे सो ठीक है। जितने फलों की तुम्हें इच्छा हो, उतने ही फल दे सकता हूँ किन्तु यह कहो कि तुम ठण्डे फल लेना चाहते हो या गरम ? क्योंकि मेरे पास फल दोनों तरह के हैं। कुमार के ऐसे विचित्र वचन सुन समस्त राजसेवक एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। उन्होंने विचारा कि क्या केवल गरम और केवल ठण्डे भी फल होते हैं ? हमें तो यह बात आज तक सुनने में नहीं आयी कि फल गरम भी होते हैं। जितने फल खाये हैं सब ठण्डे ही खाये

वितर्क्येति चिरं चित्ते राजीयाः पुरुषा जगुः। उष्णानि तानि देयानि भो अस्मभ्यं त्वयाधुना ॥१५६॥
ततः पक्वानि संगृह्य कानि चित्तानि सत्करे। ईषद्विमर्द्य संजल्पन्निति निक्षिप्तवान् स च ॥१५७॥
भो नरा नितरां दूरे स्थेयं स्थेयं प्रयत्नतः। वालुकायां च वृक्षाधः पतितानि फलानि वै ॥१५८॥
ततस्ते बालुका मध्यात्तान्यादाय फलानि च। बालुकानाश सिद्ध्यर्थं फूत्कुर्वंति नरोत्तमाः ॥१५९॥
फूत्कुर्वतस्तदालोक्य नरान् स प्राह कौतुकी। फूत्कुर्वंति नरा दूरं सोष्णानि फल चान्यथा ॥१६०॥
उष्णत्वाद्धवतां श्मश्रु दाहो नूनं भविष्यति। आकर्ण्य ह्रेपयामासु रिति ते वचनं जगुः ॥१६१॥
शीतानि देहि रम्याणि फलानि सरसानि च। ततो दत्तानि तेनैव तेभ्यो लज्जित मानसाः ॥१६२॥
ततो व्याघुट्य ते सर्वे प्रणिपत्य नराधिपम्। कुमारस्य स्वरूपं चाशेषं भेणुर्नृ पोत्तमम् ॥१६३॥
ततो विज्ञाय भूमीशस्तस्वरूपं सुधीधनं। शंसां चक्रे मनीषायास्तस्य संतुष्टचेतसः ॥१६४॥

हैं और ठण्डे ही फल सुने हैं, एक। दूसरे, एक वृक्ष पर गरम और ठण्डे दो प्रकार के फल हों यह सर्वथा विरुद्ध जान पड़ता है तथा क्षणिक ऐसा दृढ़ निश्चय कर और कुमार को अब उत्तर देना जरूर है, यह समझ उन्होंने कहा–महोदय कुमार! हमें आपके वचन अति प्रिय मालूम पड़ते हैं। कृपाकर लाइए हमें गरम ही फल दीजिए। राजसेवकों के ये वचन सुन कुमार ने कुछ फल तोड़े और उन्हें आपस में घिसकर बालू में दूर पटक दिया और कह दिया–देखो, फल वे पड़े हैं, उठा लो। कुमार की आज्ञा पाते ही जिधर फल पड़े थे, राजसेवक उसी ओर दौड़े। ज्यों ही उन्होंने बालू से फल उठाकर फूँकना चाहा त्यों ही कुमार ने कहा–देखो! फल होशियारी से फूँकना, ये फल गरम हैं। जो बिना विचारे फूँका तो तुम्हारी सब दाढ़ी–मूँछ जल जायेंगी।

कुमार के ऐसे वचन सुनते ही राजसेवक अपने मन में बड़े लज्जित हुए। वे बार–बार टकटकी लगाकर कुमार की ओर देखने लगे। कुमार की इस चतुरता को देखकर राजसेवकों ने निश्चय कर लिया कि हो न हो यही सबमें चतुर जान पड़ता है ? महाराज की बातों का उत्तर भी इसी ने दिया होगा ? ॥१५३–१६२॥

तथा कुमार की रूप–संपत्ति उन्होंने देख यह भी निश्चय कर लिया कि यह कोई अवश्य राजकुमार है। यह बालक ब्राह्मण नहीं हो सकता क्योंकि जितने भी बालक यहाँ पर हैं सबसे तेजस्वी, प्रतापी एवं राज लक्षणों से मंडित यही जान पड़ता है। उपस्थित बालकों में इतना तेज किसी के चेहरे पर नहीं जितना इस बालक के चेहरे पर दिखाई देता है एवं किसी से यह भी जानकारी प्राप्त की कि यह कुमार महाराज श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार है। राजसेवकों ने नन्दिग्राम जाने का विचार यहीं समाप्त कर दिया। वे लज्जित एवं आनंदित हो राजगृह की ओर ही लौट पड़े और महाराज को नमस्कार कर अभयकुमार की जो–जो चेष्टा उन्होंने देखी थीं सब कह सुनायीं।

दत्तोऽन्यदा महादेशो राज्ञेत्यानयनकृते। तत्शेमुषीपरीक्षायै सस्मयेन स्वभावतः ॥१६५॥
मार्गमुन्मार्गमावर्ज्याहोरात्रं च त्वया शुभ। तृप्तत्वं च क्षुधार्त्तत्वं वीताद्यारोहणं तथा ॥१६६॥
पादचालनमावर्ज्यागंतव्यं मम पत्तने। इत्याकर्ण्य समेत्यैवा भूवन् विप्राः समाकुलाः ॥१६७॥
ततोऽभयकुमारेण निषिद्धा भयतो द्रुतम्। मा कुरुध्वं भयं विप्राः करिष्यामि यथातथम् ॥१६८॥
शकटस्य ततो क्षेषु सिक्यानि च विबंध्य सः। तत्र प्रविश्य संध्यायां भुंजयन् हरिमंथकान् ॥१६९॥

सेवकों द्वारा अभयकुमार का समस्त वृत्तांत सुन, उन्हें बुद्धिमान् एवं रूपवान् भी निश्चय कर, महाराज श्रेणिक को अति प्रसन्नता हुई अत्यधिक आनंद के कारण उनके नेत्रों से आनंदाश्रु झरने लगे। मुख कमल के समान विकसित हो गया तथा वे विचार करने लगे कि मेरा अनुमान कदापि असत्य नहीं हो सकता। मुझे दृढ़ विश्वास था, नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की बुद्धि ऐसी विशाल नहीं हो सकती। जरूर उनके पास कोई-न-कोई चतुर मनुष्य होना चाहिए भला कुमार अभय के सिवाय इतनी बुद्धि की तीक्ष्णता किसमें हो सकती है ? तथा क्षणिक ऐसा विचार कर उन्होंने अभयकुमार को बुलाने के लिए कुछ राजसेवकों को बुलाया और उनको आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और अभयकुमार से कहो कि महाराज ने आपको बुलाया है तथा यह भी कहना कि आपके लिए महाराज ने यह भी आज्ञा दी है कि कुमार न तो मार्ग से आवे और न उन्मार्ग से आवे। न दिन में आवे, न रात में आवे भूखे भी न आवे, अफरे पेट भी न आवे। न किसी सवारी में आवे और न पैदल आवे। किन्तु राजगृह नगर शीघ्र ही आवे महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर चल दिये एवं कुमार के पास पहुँचकर, उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर महाराज का जो-कुछ संदेशा था, सब कुमार को कह सुनाया ॥१६३-१६७॥

अबकी बार महाराज ने अभयकुमार के ऊपर भी कठिन संदेशा अटकाया है और उन्हें राजगृह नगर बुलाया है। यह समाचार सारे नन्दिग्राम में फैल गया। समाचार सुनते ही समस्त ब्राह्मण हाहाकार करने लगे। भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्पों ने उनके चित्त को अपना स्थान बना लिया। क्षण-क्षण अब उनके मन में यह चिन्ता घूमने लगी कि अब हम किसी रीति से बच नहीं सकते ॥१६८॥

अब तक जो हमारे जीवन की रक्षा हुई है, सो इसी कुमार की असीम कृपा से है। यदि यह कुमार न होता तो अब तक कब का हमारा विध्वंस हो गया होता। अबकी राजा ने कुमार को बुलाया यह बड़ा अनर्थ किया। हे ईश्वर! हमने किस भव में ऐसा प्रबल पाप किया था। जिसका फल हम दुःख-ही-दुःख भोग रहे हैं। भो ईश्वर! अब तो हमारी रक्षा कर तथा इस प्रकार रोते-चिल्लाते हुए वे समस्त ब्राह्मण अभयकुमार की सेवा में गये और ऊँचे स्वर से उनके सामने रोने लगे। विप्रों की ऐसी दुःखित अवस्था देख कुमार ने कहा-ब्राह्मणो! आप क्यों इतना व्यर्थ खेद करते हो। राजा ने जिस आज्ञा से बुलाया है। मैं वैसे ही जाऊँगा। मैं आप लोगों का पूरा-पूरा

सिक्याधः स्थितपादश्चामयाम नृपपत्तनम्। सकौतुकैर्महाविप्रैर्महोत्सवशतैः समम् ॥१७०॥
पौराश्च कामिनीचारा आजन्मादृष्टकौतुकम्। इतस्ततः पर्यटंत ईक्षंते नृपदेहजम् ॥१७१॥
सायं ततो महाभूत्या मातामहसमं मुदा। अगमद्राजसमितौ कुमारो मार विभ्रमः ॥१७२॥
ततो भूपं प्रणम्याशु समालिंग्य पुनः पुनः। सस्नेहं वचनालापं स चक्रे विनयान्वितः ॥१७३॥
दापयित्त्वा च विप्राणामभयं भयवर्जितः। अभयोऽभयसंरक्तो व्यक्तबुद्धिर्विचक्षणः ॥१७४॥
राज्ञाभाणि कुमार त्वं गंभीरो धीधनाकुलः। नास्तीदृशी महाबुद्धिर्भुवने यादृशी त्वयि ॥१७५॥
मेषश्वदीर्घिका दंती काष्ठं तैलं पयोंडजः। बालुकावेष्टनं कुंभ कूष्मांडाख्यमहाफलम् ॥१७६॥
अहोरात्रविवर्जं वै तत्तु सर्वं त्वयि स्थितं। महाबुद्धौ नरेऽन्यस्मिन् स्वप्नेऽपि विद्धि दुर्लभं ॥१७७॥

ख्याल रखूँगा। किसी तरह की आप चिंता न करें तथा विप्रों को इस प्रकार धैर्य बँधाकर कुमार ने शीघ्र ही एक रथ मँगाया और उसके मध्य में एक छींका बँधवाकर तैयार करवा दिया।

जिस समय दिन समाप्त हो गया। दिन का अंत रात का प्रारंभ संध्याकाल प्रकट हो गया। कुमार ने राजगृह की ओर रथ हँकवा दिया। चलते समय रथ का एक चक्र (पहिया) मार्ग में चलाया गया और दूसरा उन्मार्ग में। कुमार ने चलते समय (हरिमंथक)चना का भोजन किया एवं छींके पर सवार हो कुमार अनेक विप्रों के साथ आनंदपूर्वक राजगृह नगर जा पहुँचे ॥१६९-१७०॥

महाराज श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार राजगृह आ गये। यह समाचार सारे नगर में फैल गया। समस्त पुरवासी लोग कुमार के दर्शनार्थ राजमार्ग पर एकत्रित हो गये। नगर की स्त्रियाँ कुमार को टकटकी लगाकर देखने लगीं। कुमार के आगमन-उत्सव में सारा नगर बाजों से गूंजने लग गया। बंदीगण कुमार की बिरदावली बखानने लगे और पुरवासी लोग कुमार को देख उनकी भाँति-भाँति रीति से प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार राजमार्ग से जाते हुए, पुरवासी जनों से भली-भाँति स्तुत, कुमार अभय राजमंदिर के पास जा पहुँचे। रथ से उतर कुमार ने अपने नाना इन्द्रदत्त के साथ राजसभा में प्रवेश किया और सभा में महाराज को सिंहासन पर विराजमान देख अति विनय से नमस्कार किया। महाराज के चरण स्पर्श किये एवं प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने लगे। कुमार के साथ नंदिग्राम के विप्र भी थे। महाराज से उनका अपराध क्षमा कराया। उन्हें अभय दान दिला संतुष्ट किया एवं उन्हें आनंदपूर्वक नन्दिग्राम में रहने के लिए आज्ञा दे दी ॥१७१-१७४॥

कुमार के इस विनय-बर्ताव से एवं लोकोत्तर चातुर्य से महाराज श्रेणिक को अति प्रसन्नता हुई। कुमार की बिना प्रशंसा किये उनसे न रहा गया। वे इस प्रकार कुमार की प्रशंसा करने लगे। भो कुमार! जैसा ऊँचे दर्जे का पांडित्य आपमें मौजूद है वैसा पांडित्य कहीं पर नहीं। महाभाग! बकरा, बावड़ी, काष्ठ, तेल, दूध, बालू की रस्सी, कुष्मांड, रात-दिन आदि रहित इत्यादि प्रश्नों के जवाब का सामर्थ्य आपकी बुद्धि में ही था। भला ऐसी विशाल बुद्धि अन्य मनुष्य में कहाँ से हो सकती है? इत्यादि अनेक प्रकार से अभयकुमार की तारीफ कर महाराज ने उनके साथ अधिक

तदुक्तं—

मेषश्च वापी करि काष्टतैलं क्षीरांडजं वालुक वेष्टनं च।
घटस्थकूष्मांडफलं शिशूनां दिवानिशावर्जसमागतं च ॥१७८॥

अन्योन्य प्रेमबद्धौ जनकवरसुता वापतु स्नेहसारम् चक्राते मध्यसारां विहितशुभशतां सत्कथां ग्रंथ्यमानं। रेजाते तौ सुचंद्रादिनकिरणसमौ नीतिधामप्रपन्नौ रेमाते वाक्प्रबंधै सुघटितविषयै र्नाशिता नीतिमार्गैः ॥१७९॥

शास्त्रज्ञता धर्मबलेन जीवे मेधाविता धर्मबलेन चैव।
स्वसंगताधर्मबलेन लोके संजायते पुण्यवतां विशोके ॥१८०॥
क्व गांभीर्यमौदार्यमशौर्यसारं क्व बुद्धित्वमिद्धत्त्वमलब्धिपारम्।
क्व रूपित्वमाप्तत्वमासूक्तिधृत्वं तयोरस्ति संन्यस्त वस्तुत्वसत्वम् ॥१८१॥

इति श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत् श्री पद्मनाभ तीर्थंकर पुराणे मुमुक्षु श्री शुभचन्द्राचार्य विरचितेऽभय-कुमारस्यनगरसमागमः षष्ठः सर्गः ॥६॥

स्नेह जताया। दोनों पिता-पुत्र अनेक उत्तमोत्तम पुरुषों की कथा कहने लगे। आपस में वार्तालाप करते हुए, एक स्थान में स्थित, दोनों महानुभावों ने सूर्य-चन्द्रमा की उपमा को धारण किया। महाराज श्रेणिक ने सेठी इन्द्रदत्त का भी अति सम्मान किया एवं मधुरभाषी, सोच-विचार कर कार्य करने वाले, कुमार और महाराज आनंदपूर्वक राजगृह नगर में सुखानुभव करने लगे। धर्म का माहात्म्य अचिंतनीय है क्योंकि इसकी कृपा से संसार में जीवों को उत्तमोत्तम बुद्धि की प्राप्ति होती है। उत्तम संपत्ति मिलती है। तेजस्वीपना, सम्मान, गंभीरता आदि उत्तमोत्तम गुणों की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है। महाराज श्रेणिक एवं कुमार अभय ने पूर्व भव में कोई अपूर्व पुण्य संचय किया था इसलिए उन्हें इस जन्म में गंभीरता, शूरता, उदारता, बुद्धिमत्ता, तेजस्वीपना, सम्मान, रूपवान्पना आदि उत्तमोत्तम गुणों की प्राप्ति हुई। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे हरेक अवस्था में इस परम प्रभावी धर्म का अवश्य आराधन करें ॥१७५-१८१॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के भवांतर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित अभयकुमार का राजगृह में आगमन-वर्णन करने वाला षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तमः सर्गः

ज्ञानभूषाय सिद्धाय नमः स्यान्मूर्ध्निवातके। त्रिलोकस्य स्थितायैव तद्गुणाप्तिकृते पुनः ॥१॥
ततो राज्ञा महादेवी पट्टोनंदश्रियः शुभः। बबंधे संभ्रमेणैव दुंदुभ्यानकवादतः ॥२॥
अभयाय कुमाराय युवराज्यं ददौ मुदा। प्राधान्यं च नराधीशः सर्वसामंतसाक्षिकं ॥३॥
जगद्बौद्धमयं कुर्वंश्चिंतयंस्तद्गुणादिकम्। श्रेणिकोऽभयपुत्रेण रराज जितशात्रवः ॥४॥
भगवंतं गुरुं कृत्वा जठराग्निं मदोद्धतम्। चतुरार्यमयं तत्त्वं पूजयामास भूपतिः ॥५॥
अभयो बुद्धिकौशल्यं काशांचक्रे निरन्तरम्। नानानीतिं भयन्यायी विन्यायपथवर्जितः ॥६॥
अथेत्य पुण्यवान् श्रेष्ठी समुद्रादिसुदत्तकः। द्वे भार्ये स्तः शुभे तस्य वसुदत्ता वरानना ॥७॥
वसुमित्रा शुभा पत्नी द्वितीया सुंदराकृतिः। मित्रायां च सुतो जातो दैवयोगाद्वराननः ॥८॥
कुतश्चिद्ग्रामतः श्रेष्ठी निवासाय समागमत्। स्त्रीभ्यां पुत्रेण साकं च पुरे तत्र सुमंदिरे ॥९॥

ज्ञानरूपी भूषण के धारक, तीनों लोक के मस्तक पर विराजमान श्री सिद्ध भगवान् को उनके गुणों की प्राप्त्यर्थ मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अनंतर इसके बाद महाराज श्रेणिक ने रानी नन्दश्री को नन्दिग्राम से बुला महादेवी का पद प्रदान किया–उसे पटरानी बनाया तथा अभयकुमार को युवराज–पद दिया। अभयकुमार का बुद्धिबल और तेजस्वीपना देख समस्त सामंतों की सम्मति पूर्वक महाराज ने उन्हें सेनापति का पद भी दे दिया एवं बुद्धदेव के गुणों में दत्तचित्त महाराज श्रेणिक ने किसी बौद्ध–संन्यासी को गुरु बनाया और उसकी आज्ञानुसार वे आनंदपूर्वक चतुरार्यमय तत्त्व की पूजन करने लगे तथा अपने राज्य को निष्कंटक राज्य बना अभयकुमार के साथ लोकोत्तर सुख अनुभव करने लगे ॥२–५॥

अभयकुमार अतिशय बुद्धिमान् थे। बुद्धिपूर्वक राज्य–कार्य करने से उनका चातुर्य और यश समस्त संसार में फैल गया। कुमार की न्यायपरायणता देख समस्त प्रजा मुक्त कंठ से उनकी तारीफ करने लगी एवं कुमार की नीति–निपुणता से राज्य में किसी प्रकार की अनीति नजर न आने लगी। मगध देश की प्रजा आनंदपूर्वक रहने लगी ॥६॥

मगध देश में महान् संपत्ति का धारक कोई समुद्रदत्त नाम का सेठ निवास करता था। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। समुद्रदत्त की बड़ी स्त्री का नाम वसुदत्ता था और उसकी दूसरी स्त्री जो अतिशय रूपवती थी, वसुमित्रा थी। उन दोनों में वसुदत्ता के कोई संतान न थी। केवल छोटी स्त्री वसुमित्रा के एक बालक था ॥७–८॥

कदाचित् घर में विपुल धन रहने पर भी सेठ समुद्रदत्त को धन कमाने की चिंता हुई। वे शीघ्र ही अपनी दोनों स्त्री और पुत्र के साथ विदेश को निकल पड़े। अनेक देशों में घूमते–घूमते वे राजगृह नगर आये और वहाँ पर सुखपूर्वक धन का उपार्जन करने लगे व आनंदपूर्वक रहने लगे ॥९॥

ततः सुखेन तत्रास्थाद्धनेभ्यो धनकांक्षिणे। यच्छन् धनं च कुर्वाणो धर्मधन निबंधनम् ॥१०॥
लाल्यते पाल्यते पुत्रो द्वाभ्यां स्त्रीभ्यां निरंतरम्। प्राप्यते स्तन्यमुत्संगे ध्रियते सममोहकः ॥११॥
दत्ते दैवादियोगेन मृतेऽभूत्कलहस्तयोः। वित्तपुत्रकृते नित्यं संबद्धबहुकोपयोः ॥१२॥
वसुदत्ता वचो वक्ति पुत्रोऽयं मे न चान्यथा। वसुमित्रा तथा वक्ति तयो द्वेषो बभूव च ॥१३॥
नगरश्रेष्ठिभिर्लोकै र्वार्यमाणेन तिष्ठतः। ततस्ते भूपतिं प्राप्याऽचीकथतां मनोगताम् ॥१४॥

दुर्दैव की महिमा अपार संसार में जो घोर-से-घोर दुःख का सामना करना पड़ता है, इसी की कृपा है। इस निर्दयी दुर्दैव को किसी पर दया नहीं। श्रेष्ठी समुद्रदत्त आनंदपूर्वक निवास करते थे। अचानक ही उन्हें काल ने ग्रसित किया। समुद्रदत्त को पुत्र व स्त्रियों से स्नेह छोड़ना पड़ा। समुद्रदत्त के मरने के बाद उनकी स्त्रियों को अपार दुःख हुआ किन्तु किया क्या जाए ? दुर्दैव के सामने किसी की भी तीन-पाँच नहीं चलती। जब तक सेठ समुद्रदत्त जीवित थे तब तक तो वसुदत्ता एवं वसुमित्रा में प्रगाढ़ प्रेम रहा। समुद्रदत्त के सामने यह विचार स्वप्न में भी नहीं आता था कि कभी इन दोनों में झगड़ा होगा। सेठजी के मरणोपरांत ये उनकी बुरी तरह अवहेलना करेंगी? पुत्र के ऊपर भी उन दोनों का बराबर प्रेम था। पुत्र की खास माँ वसुमित्रा जिस प्रकार पुत्र पर अधिक प्रेम रखती थी। उससे भी अधिक वसुदत्ता का था। यहाँ तक कि समान रीति से पुत्र के लालन-पालन करने से किसी को यह पता भी नहीं लगता था कि पुत्र वसुदत्ता का है या वसुमित्रा का बालक को भी कुछ पता नहीं लगता था। वह दोनों को ही अपनी माँ मानता था। किन्तु ज्यों ही सेठ समुद्रदत्त का शरीरांत हुआ वसुदत्ता और वसुमित्रा में झगड़ा होना प्रारंभ हो गया। कभी तो उन दोनों की लड़ाई धन के लिए होने लगी और कभी पुत्र के लिए। वसुदत्ता तो यह कहती थी यह पुत्र मेरा है और उसकी बात को काटकर वसुमित्रा यह कहती थी-यह पुत्र मेरा है। गाँव के सेठ साहूकारों ने भी यह बात सुनी। वे सेठ समुद्रदत्त की आबरू का ख्याल कर उनके घर आये। सेठ साहूकारों ने बहुत-कुछ उन स्त्रियों को समझाया। उन्हें सेठ समुद्रदत्त की प्रतिष्ठा का भी स्मरण दिलाया। किन्तु उन मूर्ख स्त्रियों के ध्यान पर एक बात न चढ़ी। धन-संबंधी झगड़ा छोड़ वे पुत्र के लिए अधिक झगड़ा करने लगीं। पुत्र का झगड़ा देख सेठ-साहूकारों की नाक में दम आ गया। वे जरा भी इस बात का फैसला न कर सके कि वह पुत्र वास्तव में किसका था? तथा इस रीति से उन दोनों स्त्रियों में दिनों-दिन द्वेष वृद्धिंगत होता चला गया ॥१०-१३॥

कदाचित् उन स्त्रियों के मन में न्याय-सभा में जाकर न्याय कराने की इच्छा हुई-उन्हें इस प्रकार दरबार में जाते देख फिर गाँव के बड़े-बड़े मनुष्य सेठ समुद्रदत्त के घर आये। उन्होंने फिर उन स्त्रियों को इस रीति से समझाया-देखो, तुम बड़े घराने की स्त्रियाँ हो। तुम्हारा कुल उत्तम है। तुम्हें इस बात के लिए दरबार में जाना नहीं चाहिए। यदि तुम दरबार में बिना विचारे चली

राज्ञा निवार्यमाणे तेन वित्तश्च परस्परम्। भेदं कर्त्तुं न शक्नोति विवादस्य नृपस्तयोः ॥१५॥
आदिदेश ततो भूपः कुमारं मंत्रिसत्यदम्। तद्भेदनकृते सोऽपि यतते बहुचेष्टितैः ॥१६॥
भेदयन्नपि तद्भेदं कर्तुं विविधवेष्टितैः। नाशक्तः स यदा तावद् बालं भूमौ न्यविक्षिपत् ॥१७॥
आकृष्य छुरिकां धीमान् करेण कृतकौतुकः। बालस्योपरि संस्थाप्य तामित्याह वचस्तके ॥१८॥
उभाभ्यामर्द्धमर्द्धं च शिशो र्दास्यामि निश्चितं। विवादहानये बाले विवादः कोऽत्र निर्णये ॥१९॥
वसुमित्रा ततो वादीदित्थं मा कुरु सज्जन। देहि त्वं वसुदत्तायै मामकीनः सुतो न हि ॥२०॥
अस्यास्तनुजैवायमस्मिन् स्नेहप्रदर्शनात्। नान्यथेति विवेदासौ बुद्धितः शिशुमातरं ॥२१॥

जाओगी तो समस्त लोक तुम्हारी निंदा करेगा। तुम्हें निर्लज्ज कहेगा एवं पश्चात् तुम्हें बहुत-कुछ पछताना पड़ेगा किन्तु उन मूर्ख स्त्रियों ने एक न मानी। निर्लज्ज हो, वे सीधी दरबार को चल दी और महाराज के सामने जो-कुछ उन्हें कहना था, साफ-साफ कह सुनाया ॥१४-१५॥

स्त्रियों की यह विचित्र बात सुन महाराज श्रेणिक चकित रह गये। उन्होंने वास्तव में यह पुत्र किसका है ? इस बात के जानने के लिए अनेक उपाय सोचे किन्तु कोई उपाय सफल न जान पड़ा। उन्होंने स्त्रियों को बहुत-कुछ समझाया। लड़ाई करने के लिए भी रोका किन्तु उन स्त्रियों ने एक न मानी। महाराज ने जब स्त्रियों का हठ विशेष देखा। समझाने पर भी जब वे न समझीं। तब उन्होंने शीघ्र ही युवराज अभयकुमार को बुलाया और जो हकीकत उन स्त्रियों की थी, सारी कह सुनायी।

महाराज के मुख से स्त्रियों का यह विचित्र विवाद सुन कुमार को भी दाँत तले उँगली दबानी पड़ी किन्तु उपाय से अति कठिन काम भी अति सरल हो जाता है, यह समझ उन्होंने उपाय करना प्रारंभ कर दिया।

कुमार ने उन दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाया। प्रिय वचन कह उन्हें अधिक समझाने लगे किन्तु वह पुत्र वास्तव में किसका था, स्त्रियों ने पता न लगने दिया। किसी समय कुमार ने एक-एक कर उन्हें एकांत में भी बुलाकर पूछा किन्तु वे दोनों स्त्रियाँ पुत्र को अपना-अपना ही बतलाती रहीं। विवाद-शांति के लिए कुमार ने और भी अनेक उपाय किये किन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। अन्त में उनको अधिक गुस्सा आ गया। उन्होंने बालक शीघ्र ही जमीन पर रखवा लिया और अपने हाथ में एक तलवार ले, उसे बालक के पेट पर रख कुमार ने स्त्रियों से कहा स्त्रियो! आप घबराये नहीं, मैं अभी इस बालक के दो टुकड़े कर आपका फैसला किये देता हूँ। आप एक-एक टुकड़ा ले अपने घर चली जायें ॥१६-१९॥

मातृस्नेह से बढ़कर दुनिया में स्नेह नहीं। चाहे पुत्र कुपुत्र हो जाए, माता कुमाता नहीं होती। पुत्र भले ही उनके लिए किसी काम का न हो। माता कभी भी उसका अनिष्ट चिंतन नहीं करती सदा माता का विचार यही रहता है। चाहे मेरा पुत्र कुछ भी न करे किन्तु मेरी आँखों के सामने

ज्ञात्वा प्रकथ्य लोकानां जनन्यादिककारणम्। निश्चित्य वसुदत्तां न ददौ तस्यै लघीयसे ॥२२॥
इत्यादि बहुसन्नीतिं कुर्वाणो बुद्धितः सुधीः। न्यायं प्रवर्त्तयामास नगरे मागधोद्भवः ॥२३॥
अथान्यदा कुटुंबीचायोध्यायां वसते मुदा। बलभद्राभिधो न्यायी भद्रातस्य सुभामिनी ॥२४॥
रूपाढ्या चंद्रवक्त्रा सा तन्वंगी कठिनस्तनी। मृगेक्षणी शुभाकारा वर्त्तते कोकिलस्वना ॥२५॥
वसंतः क्षत्रियः कश्चित्पुरे तत्रास्ति चोन्नतः। दयिता माधवी तस्य रूपादि गुणवर्जिता ॥२६॥
एकदा स वसंतश्च प्रेक्ष्य भद्रां मनोहराम्। ताडयामास कामांधः स्मरबाणेन मोहितः ॥२७॥
महादाहस्तदा जातस्तदंगे स्मरसंभवः। चंदनद्रवशुभ्रांशु पद्मकर्पूरसज्जलैः ॥२८॥
न शाम्यति सुवस्त्रैश्च हारैर्मलयचंदनैः। प्राप्नोत्यधिकतां दाहस्तैलेनेव धनंजयः ॥२९॥

प्रति समय बना रहे। इसलिए जिस समय सेठानी वसुमित्रा ने अभयकुमार के वचन सुने। मारे भय के उसका शरीर थर्राने लगा। पुत्र के टुकड़े सुन उसके नेत्रों से अविरल अश्रुओं की धारा बहने लगी। उसने शीघ्र ही विनयपूर्वक कुमार से कहा–महाभाग कुमार! इस दीन बालक के आप टुकड़े न करें आप यह बालक वसुदत्ता को दे दें। यह बालक मेरा नहीं वसुदत्ता का ही है। वसुदत्ता का इसमें अधिक स्नेह है, बालक की खास माता वसुमित्रा के ऐसे वचन सुन कुमार ने चट जान लिया कि इस बालक की माँ वसुमित्रा ही है ॥२०–२२॥

समस्त मनुष्यों के सामने यह बात प्रकट कर कुमार ने सेठानी वसुमित्रा को बालक दे दिया और वसुदत्ता को राज्य से निकाल दिया। इस प्रकार अपने बुद्धिबल से नीतिपूर्वक राज्य करने वाले अभयकुमार ने महाराज श्रेणिक का राज्य धर्म–राज्य बना दिया और कुमार आनंद पूर्वक रहने लगे ॥२३–२४॥

इसी अवसर में अतिशय सच्चरित्र कोई बलभद्र नाम का गृहस्थ अयोध्या में निवास करता था। उसकी स्त्री भद्रा जो कि अतिशय रूपवती, चन्द्रमुखी, तन्वंगी, कठिनस्तनी, पिकवैनी, अति मनोहरा थी। उसी नगर में अतिशय धनवान् एक बसंत नाम का क्षत्रिय भी रहता था। उसकी स्त्री का नाम माधवी था किन्तु वह कुरूपा अधिक थी। कदाचित् भद्रा अपने घर की छत पर खड़ी थी। दैवयोग से बसंत की दृष्टि भद्रा पर पड़ी। भद्रा की खूबसूरती देख बसंत पागल–सा हो गया। सारी होशियारी उसकी किनारा कर गई। कामदेव के तीक्ष्ण बाण बसंत के शरीर का भेदन करने लग गये। उसका दिनोंदिन कामजनित संताप बढ़ता ही चला गया। दाह की शांति के लिए उसने चन्दन–रस, चन्द्रकिरण, कमल कर्पूर, उत्तम शीतल जल आदि अनेक पदार्थों का सेवन किया किन्तु उसके दाह की शांति किसी कदर कम न हुई किन्तु जैसे अग्नि पर घृत डालने से उसकी ज्वाला और भी अधिक बढ़ती जाती है। उसी प्रकार शीतल वस्त्र फूल–माला मलय चंदन उस उल्लू बसंत का मन्मथ संताप दिनोंदिन बढ़ता ही चला गया। भद्रा के बिना उसे समस्त संसार शून्य–ही–शून्य प्रतीत होने लगा। भद्रा की चिंता में बसंत की सारी भूख–प्यास एक ओर किनारा कर गई ॥२५–२९॥

ततोऽवसरमासाद्य प्रेषयामास दूतिकाम्। वसंतो विह्वलीभूतो गतस्तापक्षुधादिकः ॥३०॥
सा दूती तां समासाद्य प्रोवाच वचनैः शुभेः। भो भद्रे त्वं कथं नित्यं बलिभद्रेण तिष्ठसि ॥३१॥
कुरूपी कुत्सितः सोऽपि कर्षणोद्यत मानसः। मेनेऽहं दुर्द्धरं योगं तव तेन कुरूपिणा ॥३२॥
त्वत्समा सुंदरा नारी भुवने नास्ति सुंदरि। त्वन्नाथ सदृशो लोके कुदेही नास्ति निश्चितं ॥३३॥
अन्यस्यासदृशो नाथश्चेत्सा दूरं विहाय तं। प्रयात्यत्र कथं त्वं भो स्थास्यसि प्रमदोत्तमे ॥३४॥
ततोभद्रा वचोऽवादीत्किं करोमि सुमित्रके। साह भद्रेवसंतोऽस्ति प्रभुः परमसुंदरः ॥३५॥
त्वया समं कृतस्नेहः सोऽपि मोहवशीकृतः। तेन सत्रं यथेष्टं त्वं रमयस्व सुखाप्तये ॥३६॥
तथेति प्रतिपद्यासौ वंचयित्वानिजं पतिं। कुर्वंती कलहं धाम्नि भर्त्रा पापपरायणा ॥३७॥
केदारमन्यदा भद्रा गच्छंती दृष्ट्वान्मुनिं। बालार्कदीधितिं रूपं रंजिताखिलभूतलं ॥३८॥
मूर्तिभूतं तथा मारं कुमारं लक्षणान्वितं। प्रणम्याग्रे स्थिता बाला कुर्वंती कामवेदनां ॥३९॥

कदाचित् अवसर पाकर बसंत ने एक चतुर दूती बुलाई और अपनी सारी आत्म कहानी उसे कह सुनाई एवं शीघ्र ही उसे अपना संदेशा कह भद्रा के पास भेज दिया। बसंत की आज्ञा अनुसार दूती शीघ्र ही भद्रा के पास गई। भद्रा को देख दूती ने उसके साथ प्रबल हितैषिता दिखाई एवं मधुर शब्दों में उसे इस प्रकार समझाने लगी- हे भद्रे! संसार में तू रमणी-रत्न है। तेरे समान रूपवती स्त्री दूसरी नहीं किन्तु खेद है, जैसी तू रूपवती, गुणवती चतुर है। वैसा ही तेरा पति कुरूपवान्, निर्गुण एवं मूर्ख किसान है। प्यारी बहिन! अति कुरूप बलभद्र के साथ, मैं तेरा संयोग अच्छा नहीं समझती। मुझे विश्वास है कि बलभद्र सरीखे कुरूप पुरुष से तुझे कदापि संतोष नहीं होता होगा? ॥३०-३२॥

तुम सरीखी सुन्दर किसी दूसरी स्त्री का यदि इतना बदसूरत पति होता तो वह कदापि उसके साथ नहीं रहती। उसे सर्वथा छोड़कर चली जाती। न मालूम तू क्यों इसके साथ अनेक क्लेश भोगती हुई रहती है? दूती की ऐसी मीठी बोली ने भद्रा के चित्त पर पक्का असर डाल दिया। भोली भद्रा दूती की बातों में आ गई, वह दूती से कहने लगी बहन! मैं क्या करूँ ? स्वामी तो मुझे ऐसा ही मिला है। मेरे भाग्य में तो यही पति था। मुझे रूपवान् पति मिलता कहाँ से ? तथा ऐसा कह भद्रा का मुख भी कुछ म्लान हो गया। भद्रा की ऐसी दशा देख दूती मन में अति प्रसन्न हुई किन्तु अपनी प्रसन्नता प्रकट न कर वह भद्रा को इस प्रकार समझाने लगी-भद्रे बहन! तू क्यों इतना व्यर्थ विवाद करती है। इसी नगरी में एक बसंत नाम का क्षत्रिय पुरुष निवास करता है। बसंत अति रूपवान्, गुणवान् एवं धनवान् है। वह तेरे ऊपर मोहित भी है। तू उसके साथ आनंद से भोगों को भोग। तुझ सरीखी रूपवती के लिए संसार में कोई चीज दुर्लभ नहीं ॥३३-३६॥

दूती के ऐसे वचन सुने तो भद्रा के मुँह में पानी आ गया। उस मूर्खा ने यह तो समझा नहीं कि इस दुष्ट बर्ताव से क्या हानियाँ होंगी। वह शीघ्र ही बसंत के घर जाने के लिए राजी हो गई तथा किसी दिन दाँव पाकर बसंत के घर चली भी गई और उसके साथ भोग-विलास करने शुरू

भद्राप्राह यते केन तपस्येत निरंतरं। भोक्तव्यमैंद्रियं सौख्यं भवशाखिमहाफलं ॥४०॥
रूपं तवेदृशं ज्ञानिन् वयो बाल्यं शुभावहम्। हिमांशुवदनं तेऽस्ति वपुः सर्वगुणाकरम् ॥४१॥
भुक्ष्वं भोगाननौपम्यान् कुमारत्वे स्त्रिया समां। पुनर्गृहाण वृद्धत्वं तपः स्वर्मोक्षसिद्धये ॥४२॥
आकिर्ण्येति वचो धीमानवधिज्ञानलोचनः। गुणादिसागरः प्राह संबोधनकृते मुनिः ॥४३॥
रे बाले मा कृथाश्चैत्तं विकारं रागदीपनं। भंक्तुं वांछसि सच्छीलं तत्पापं वेत्सि किं नहि ॥४४॥
अशीलतो महापापमशीलान्नरकेस्थितिः। अशीलाद्वेदना तीव्रा निःशीलात् संसृतिभ्रमः ॥४५॥
अशीलात्कुलनाशश्चापकीर्तिश्च विशीलनात्। अशीलात्शोकसंतापोऽशीलाद्राज्ञदश्च साध्वसं ॥४६॥
अतो जहि शुभे बाले निःशिलत्वं सुखाप्तये। शीलतो नाकिनाथत्वं कुरु शीले मतिं परां ॥४७॥

कर दिये। व्यसन का चसका बुरा होता है। भद्रा को व्यसन का चसका बुरा पड़ गया। वह अपने भोले पति को बातों में लगा प्रतिदिन बसंत के घर जाने लगी। बसंत पर अभिमान कर उसने अपने पति का अपमान करना भी प्रारंभ कर दिया। अनेक प्रकार की कलह करनी भी उसने घर में शुरू कर दी और अपने सामने किसी को वह बड़ा भी नहीं समझने लगी।

भद्रा का पति बलभद्र किसान था। कदाचित् भद्रा को कार्यवश खेत पर जाना पड़ा। दैवयोग से मार्ग में भद्रा की भेंट मुनि गुणसागर से हो गई। मुनि गुणसागर को अति रूपवान्, सूर्य के समान तेजस्वी, युवा एवं अनेक गुणों के भंडार देख भद्रा काम से व्याकुल हो गई। काम के गाढ़े नशे में आकर उसको यह भी न सूझा कि यह कौन महात्मा हैं ? वह शीघ्र ही काम से व्याकुल हो मुनिराज के सामने बैठ गई और कामजन्य विकारों को प्रकट करती हुई इस प्रकार कहने लगी– साधो! यह तो आपका उत्तम रूप ? और यह अवस्था एवं सौंदर्य ? आपको इस अवस्था में किसने दीक्षा की शिक्षा दे दी ? ॥३७-३९॥

इस समय आप क्यों यह शरीर सुखाने वाला तप कर रहे हैं। इस समय तप करने से शरीर सुखाने के सिवाय दूसरा कोई फायदा नहीं हो सकता। इस समय तो आपको इंद्रिय-सम्बन्धी भोग भोगने चाहिए। जिस मनुष्य ने संसार में जन्म धारण कर भोगविलास नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया मुने! यदि आप मोक्ष को जाने के लिए तप ही करना चाहते हैं तो कृपाकर वृद्धावस्था में करना ? इस समय आपकी छोटी उम्र है। आपका मुख चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं मनोहर है। आपका रूप भी अधिक उत्तम है। इसलिए आपकी सेवा में यही मेरी सविनय प्रार्थना है कि आप किसी उत्तम रमणी के साथ उत्तमोत्तम भोग भोगें और आनन्दपूर्वक किसी नगर में निवास करें ॥४०-४३॥

मुनिराज गुणसागर तो अवधि-ज्ञान के धारक थे। भला वे ऐसी निकृष्ट भद्रा सरीखी स्त्रियों की बातों में कब आने वाले थे। जिस समय मुनिराज ने भद्रा के वचन सुने। शीघ्र ही उन्होंने भद्रा के मन के भाव को पहचान लिया एवं वे उसे आसन्नभव्य समझ इस प्रकार उपदेश देने लगे– बाले! तू व्यर्थ राग के उत्पन्न करने वाले कामजन्य विकारों को मत कर। क्या इस प्रकार के

विहायान्यधवं बाले कुरु धर्म पतिव्रतं। संसारसातने दक्षं गुणलक्षं सुलक्षणम्॥४८॥
चपलं मानसं बाले निरुध्य मधुसंगतं। स्थापस्व निजे कांते भवशीलादिसंगता॥४९॥
तदा सा स्मयसंदर्भा स्मेराक्षी वचनं जगौ। सच्चरित्रं मदाकूतं कथं वेत्सि महामुने॥५०॥
ततो बभाण योगींद्रः शृणु बाले मनोगतं। वेद्म्यहं ज्ञानयोगेन कोऽत्रास्ति तव विस्मयः॥५१॥
ततस्तद्वचसा बाला शीलं जग्राह वंदितं। इंद्रचंद्रनरेंद्राद्यैः प्रणम्य मुनिसत्तमं॥५२॥
जगाम मंदिरं हृष्टा कृतशीलपरिग्रहा। दधती मोहमानंदं बलिभद्रे निजे धवे॥५३॥

दृष्टविकारों से तू अपना परम पावन शीलव्रत नष्ट करना चाहती है? क्या तू इस बात को नहीं जानती शील नष्ट करने से किन-किन पापों की उत्पत्ति होती है? शील के न धारण करने से किन-किन घोर दुःखों का सामना करना पड़ता है? भद्रे! जो जीव अपने शीलरूपी भूषण की रक्षा नहीं करते वे अनेक पापों का उपार्जन करते हैं। उन्हें नरकादि दुर्गतियों में जाना पड़ता है एवं वहाँ पर कठिन-से-कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं तथा भद्रे! शील के न धारण करने से संसार में भयंकर वेदनाओं का सामना करना पड़ता है। कुशीली जीव अज्ञानी जीव कहे जाते हैं। उनके कुल नष्ट हो जाते हैं। चारों ओर उनकी अपकीर्ति फैल जाती है और अपकीर्ति फैलने पर शोक, संताप आदि व्यथा भी उन्हें सहनी पड़ती हैं। इसलिए यदि तू संसार में सुख चाहती है और तुझे रमणी-रत्न बनने की अभिलाषा है तो तू शीघ्र ही इस खोटे शील का परित्याग कर दे। उत्तम शील-व्रत में ही अपनी बुद्धि स्थिर कर। अपने चंचल चित्त को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग में ला एवं अपने पवित्र पतिव्रत-धर्म का पालन कर। हे बाले! जो स्त्रियाँ संसार में भली प्रकार अपने पतिव्रत-धर्म की रक्षा करती हैं, उनके लिए अति कठिन बात भी सर्वथा सरल हो जाती है। अधिक क्या कहा जाये पतिव्रत धर्म-पालन करने वाली स्त्रियों का संसार भी सर्वथा छूट जाता है। उन्हें किसी प्रकार की सुसंगति का सामना नहीं करना पड़ता॥४४-५०॥

महामुनि गुणसागर के उपदेश का भद्रा के चित्त पर पूरा प्रभाव पड़ गया। कुछ समय पहले जो भद्रा का चित्त कुशील में फँसा हुआ था, वह शीलव्रत की ओर लहराने लगा। मुनिराज के वचन सुनने से भद्रा का चित्त मारे आनंद के व्याप्त हो गया। शरीर में रोमांच खड़े हो गये एवं गद्गद् कंठ से उसने मुनिराज से निवेदन किया-प्रभो! मेरे चित्त की वृत्ति कुशील की ओर झुकी हुई है यह बात आपको कैसे मालूम हो गई ? किसी ने आपसे कहा भी नहीं ? कृपाकर इस दासी पर अनुग्रह कर शीघ्र बताइए।

भद्रा के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने उत्तर दिया-भद्रे! तेरे चरित्र के विषय में मुझसे किसी ने भी कुछ नहीं कहा किन्तु मेरी आत्मा के अन्दर ऐसा उत्तम ज्ञान विराजमान है, जिस ज्ञान के बल से मैंने तेरे मन का अभिप्राय समझ लिया है। ज्ञान की शक्ति अपूर्व है इस बात में तुझे जरा भी संदेह नहीं करना चाहिए।

मुनिराज के ज्ञान की अपूर्व महिमा सुन भद्रा को अति आनंद हुआ। मुनिराज की आज्ञा

कुर्वंती जिनधर्मंच पालयंती शुभं व्रतं। सा संबोध्य धवं दक्षा ग्राहयामास सद्व्रतं ॥५४॥
ततस्तौ समसच्चित्तौ कुर्वंतौ जिनसद्वृषम्। गमयंतौ निजं कालं शर्मणाव्रतभूषितौ ॥५५॥
प्रार्थयंस्तां वसंतश्च प्रेषयन् दूतिकां निजाम्। दर्शयंल्लोभ संतानं कुर्वन्विविधविक्रियां ॥५६॥
सा धिक्कारादिकं कृत्वा नावलोकयति स्वयं। सन्मुखं कथयंतीति गृहीतं च मया व्रतम् ॥५७॥
रे पापिन् व्रतहीनस्त्वं न करोमि त्वया समम्। संगमं प्राणनाशेप्यभिलाषं मा कृथा वृथा ॥५८॥
ततोऽभेद्यां परिज्ञाय वसंतो विधिवंचितः। उपायं चिंतयंश्चित्ते शीलखंडनहेतवे ॥५९॥

अनुसार जिस शील से देवेन्द्र, नरेन्द्र आदि उत्तमोत्तम पद प्राप्त होते हैं वह शीलव्रत शीघ्र ही उसने धारण कर लिया एवं समस्त मुनियों में उत्तम, जीवों को कल्याण-मार्ग का उपदेश देने वाले मुनिराज गुणसागर को नमस्कार कर वह शीघ्र ही अपने घर आ गई ॥५१-५४॥

उत्तम उपदेश का फल भी उत्तम ही होता है। बसंत की बातों में फँसकर जो भद्रा ने बसंत को अपना लिया था और अपने पति का अनादर करना प्रारंभ कर दिया था। भद्रा की वह प्रकृति अब न रही। पाप से भयभीत हो भद्रा ने बसंत से अब सर्वथा सम्बन्ध तोड़ दिया। उस दिन से बसंत उसकी दृष्टि में कालाभुजंग सरीखा झलकने लगा। अब वह अपने पति की तन-मन से सेवा करने लगी। अपने स्वामी के साथ स्नेह का व्यवहार करने लगी। भद्रा का जैन धर्म पर अगाध प्रेम हो गया। अपने सुख का महान् कारण जैन धर्म ही उसे जान पड़ने लगा तथा जैन धर्म पर उसकी यहाँ तक गाढ़ भक्ति हो गई कि उसने अपने पति को भी जैनी बना लिया एवं वे दोनों दंपती आनंदपूर्वक अयोध्या नगरी में रहने लगे।

भद्रा ने जिस दिन से शीलव्रत को धारण किया उसी दिन से वह बसंत के घर झाँकी तक नहीं। इस रीति से जब कई दिन बीत गये बसंत को बिना भद्रा के बड़ा दुःख हुआ। वह विचार करने लगा-भद्रा अब मेरे घर क्यों नहीं आती ? जो वह कहती थी सो ही मैं करता था। मैंने कोई उसका अपराध भी तो नहीं किया ? तथा क्षणिक ऐसा विचार कर उसने भद्रा के समीप एक दूती भेजी। दूती के द्वारा बसंत ने बहुत-कुछ भद्रा को लोभ दिखाये। अनेक प्रकार के अनुनय भी किये किन्तु भद्रा ने दूती की बात तक भी न सुनी। मौका पाकर बसंत भी भद्रा के पास गया किन्तु भद्रा ने बसंत को भी यह जवाब दे दिया कि मैं अब शीलव्रत धारण कर चुकी। अपने स्वामी को छोड़कर मैं पर-पुरुष की प्रतिज्ञा ले चुकी। अब मैं कदापि तेरे साथ विषय-भोग नहीं कर सकती। भद्रा की यह बात सुन जब बसंत उसे धमकी देने लगा और उसके साथ व्यभिचारार्थ कड़ाई करने लगा। तब भद्रा ने साफ शब्दों में यह जवाब दे दिया-रे बसंत! तू पापी, नीच, नराधम, व्रतहीन है, मेरे चाहे प्राण भी चले जायें, मैं अब तेरा मुँह तक नहीं देखूँगी। अब तू मेरी अभिलाषा छोड़। अपनी स्त्री में संतोष कर ॥५५-५९॥

सोऽचिंतयन्निजे चित्ते करोमि वशवर्त्तिनी। येन केनाप्युपायेनैनां हठाद्विद्ययाथवा ॥६०॥
कापालिको महाभीमो नाना मंत्र क्रियोद्यतः। आजगाम पुरे तत्र सेव्यमानोऽखिलैर्जनैः ॥६१॥
वसंतस्तं परिप्राप्य परिचर्यामचीकरत्। भोजनस्नानपानादि संभवां विभवोद्भवां ॥६२॥
ततः कतिपयैर्घस्त्रै र्विद्यां रूपावसाधिनीं। ययाचे कार्यसिद्ध्यर्थं वसंतस्तं मदोद्धतं ॥६३॥
प्रसाधितस्तदा सोऽपि ददौ मंत्रं सुसाधकं। वसंताय ततः सोऽपि विद्यां साधितवान् वने ॥६४॥
वैतालिकां महाविद्यां प्रसाध्य नगराधिपः। चकार विविधं वेषं सूक्ष्मं स्थूलं कृशाकृशं ॥६५॥
अन्यदा बलिभद्रस्य सद्मपार्श्वेर्द्धराजके। चरणायुध आभूय चकारध्वनिमुत्तमं ॥६६॥
शब्दश्रवणतः सोऽपि मत्वा प्रातः कुटुंबिकः। महिष्यादिकमादायागाद्वनं चारणकृते ॥६७॥
बलिभद्रस्य वेषेण समाट तद्गृहं ततः। भद्रा तं वीक्ष्य गत्यादि भेदेनालक्षयत्तदा ॥६८॥
नायं धवो ममायं च वदंती गालिसंततिं। कपाटयुगलं दत्वा विशन्मध्ये गृहं तदा ॥६९॥

भद्रा को इस प्रकार अपने व्रत में दृढ़ देख बसंत की कुछ भी पेश न चली। वह पागल सरीखा हो गया। वह मूर्ख विचारने लगा कि भद्रा को यह व्रत किसने दे दिया ? अब मैं भद्रा को अपनी आज्ञाकारिणी कैसे बनाऊँ ? क्या इसे हठ से दासी बनाऊँ या किसी मंत्र से बनाऊँ ? क्या करूँ ?

पापी बसंत ऐसा अधम विचार कर ही रहा था कि अचानक ही एक महाभीम नाम का मंत्रवादी अयोध्या में आ पहुँचा। सारे नगर में मंत्रवादी का हल्ला हो गया। बसंत के कान तक भी यह बात पहुँची। मंत्रवादी का आगमन सुन बसंत शीघ्र ही उसके पास गया और स्नान, भोजन आदि से बसंत ने यथेष्ट उसकी सेवा की। जब कई दिन इसी प्रकार सेवा करते बीत गये और मंत्रवादी को जब अपने ऊपर बसंत ने प्रसन्न देखा तो उसने अपना सारा हाल मंत्रवादी को कह सुनाया और विनय से बहुरूपिणी विद्या के लिए याचना भी की। बसंत की मंत्र के लिए प्रार्थना सुन एवं उसकी सेवा से संतुष्ट होकर मंत्रवादी महाभीम ने उसे विधिपूर्वक मंत्र दे दिये तथा मंत्र लेकर बसंत किसी वन में चला गया और उसे सिद्ध करने लगा।

दैवयोग से अनेक दिन बाद बसंत को मंत्र सिद्ध हो गया। अब मंत्र बल से वह छोटे-बड़े शरीर धारण करने लगा एवं अनेक प्रकार की चेष्टा करनी भी उसने प्रारंभ कर दी।

कदाचित् उसके सिर पर फिर भद्रा का भूत सवार हो गया। किसी दिन वह अचानक ही मुर्गे का रूप धारण कर बलभद्र के घर के पास चिल्लाने लगा। मुर्गे की आवाज से यह समझ कि सबेरा हो गया, अपने पशुओं को लेकर बलभद्र तो अपने खेत की ओर रवाना हो गया और उस पापी बसंत ने मुर्गे का रूप बदल शीघ्र ही बलभद्र का रूप धारण किया और धृष्टतापूर्वक बलभद्र के घर में घुस गया।

सुशीला भद्रा की दृष्टि नकली बलभद्र पर पड़ी। चाल-ढाल से उसे चट मालूम हो गया कि यह मेरा पति बलभद्र नहीं तथा उसने गाली देनी भी शुरू कर दी किन्तु उस नकली बलभद्र

तदा कलकलो यज्ञे बलभद्रादिका नराः। आजग्मुर्नागरा लोका वीक्षणाय च कौतुकं ॥७०॥
उभौ तौ सदृशाकारौ भेत्तुं शक्तौ न सज्जनैः। संकेतादिकसर्वस्वं कथयंतौ सवाक्यकौ ॥७१॥
अशक्तौ भेत्तुमाज्ञाय तौ जनाराजमंदिरे। अभयां तं समापन्नास्ताभ्यां तन्न्यायसिद्धये ॥७२॥
अभयेन सभामध्ये दृष्टौ स श्रेणिकेन च। दृष्टिस्वर विवादैश्चालक्ष्यौ संकेतदर्शनैः ॥७३॥
ततोऽभयकुमारेण लक्षितावपि यत्नतः। शक्यौ यथा कथंचिच्च ज्ञातुं तौ न समायतौ ॥७४॥
ततोऽपवरकांतस्तौ प्रवेश्यद्वारमुन्तम्। दापयित्त्वा क्वोऽवादीदभयो भयवर्जितः ॥७५॥
हलिना वुभयोर्मध्ये कुंचिका विवरे च यः। निःसरत्येव स स्वामी भद्राया नात्र संशयः ॥७६॥
ततो मूलहली चित्ते चितयन्निति क्षिप्रधीः। निःसारः क्वाहमेवात्र क्व भद्रा क्व मम गृहम् ॥७७॥
तदाकारधरस्तावत्कथ्यमाने स्वहर्षतः। विवरे निर्गतो वेगाज्जग्राहासौ च तत्करं ॥७८॥
असत्योयमसत्योयं सत्यः सत्यो गृहे स्थितः। असत्यं तं प्रपीड्याशु ज्ञात्वा वृत्तांतमंजसा ॥७९॥

ने कुछ भी परवा न की। वह निर्लज्ज किवाड़ बंद कर जबरन उसके घर में घुस पड़ा। नकली बलभद्र का इस प्रकार धृष्टतापूर्वक बर्ताव देख भद्रा चिल्लाने लगी। नकली बलभद्र एवं भद्रा का झगड़ा भी बड़े जोर-शोर से होने लगा। झगड़े की आवाज सुन आसपास के सब भद्रा के घर आ कर इकट्ठे हो गये। असली बलभद्र के कान तक भी यह बात पहुँची। वह भी दौड़ता-दौड़ता शीघ्र अपने घर आया और अपने समान दूसरा बलभद्र देख आपस में झगड़ा करने लगा। दोनों बलभद्रों की चाल-ढाल, रूप-रंग देख पास-पड़ोसी मनुष्यों के होश उड़ गये। सब के सब दाँतों तले उँगली दबाने लगे तथा अनेक उपाय करने पर भी उनको जरा भी इस बात का पता न लगा कि इन दोनों में असली बलभद्र कौन है ? ॥६०-७२॥

जब पुरवासी मनुष्यों से असली बलभद्र का फैसला न हो सका तो वे दोनों बलभद्रों को लेकर राजगृह अभयकुमार की शरण में आये और उनके सामने सब समाचार निवेदन कर दोनों बलभद्रों को खड़ा कर दिया।

दोनों बलभद्रों की शक्ल, रूप-रंग एक-सा देख अभयकुमार भी चकराने लगे। असली बलभद्र को जानने के लिए उन्होंने अनेक उपाय किये किन्तु जरा भी उन्हें असली बलभद्र का पता न लगा। अन्त में सोचते-सोचते उनके ध्यान में एक विचार आया। दोनों बलभद्रों को बुला उन्हें शीघ्र ही एक कोठे में बंद कर दिया और भद्रा को सभा में बुलाकर एवं एक तुंबी अपने सामने रखकर दोनों बलभद्रों से कहा-

सुनो भाई दोनों बलभद्रो! तुम दोनों में से कोठे के छिद्र से न निकलकर जो इस तुंबी के छिद्र से निकलेगा, वही असली बलभद्र समझा जायेगा और उसे ही भद्रा मिलेगी।

कुमार की यह बात सुन असली बलभद्र को तो बड़ा दुःख हुआ, उसे विश्वास हो गया कि भद्रा अब मुझे नहीं मिल सकती क्योंकि मैं तुंबी के छेद से निकल नहीं सकता किन्तु जो नकली

निर्द्धाटितो निजाद्देशाद्बलभद्राय संददौ। भद्रां गृहं शुभं वित्तमभयो निजबुद्धितः ॥८०॥
इत्यादि न्यायवारेण प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये। अभयो बुद्धिनाथत्वं तवा नो वृषधारकः ॥८१॥
अनीदृशी महाबुद्धिःसर्वदानंददायिका। अभये वर्त्तते नित्यमिति लोका जगुस्तदा ॥८२॥
अन्यदा मुद्रिकां कूपे पतितां वीक्ष्य भूमिपः। जगावत्र स्थितः पुत्रानय वेण्वादिना विना ॥८३॥
ततोऽभयो विमृश्याशु कूपे पानीयवर्जिते। चिक्षेप गोमयं तत्र निमग्ना मुद्रिका ततः ॥८४॥
शुष्कं गोमयमाजातं कालेन कियता पुनः। परिज्ञाय जलेनेमं पूरयामास भूपजः ॥८५॥
आकंठं पूरिते कूपे वारिणा तरितं तदा। तदंगीकृतं मूर्द्धस्थं तेन कूपस्य सापि च ॥८६॥
इत्यादि कौतुकं धीमान् दर्शयन्नखिले जने। रराज गुरुवत्प्राज्ञोऽभयः श्रेणिकपूजितः ॥८७॥

बलभद्र था कुमार के वचन से मारे हर्ष के उसका शरीर रोमांचित हो गया। उसने चट तुंबी के छिद्र से निकल आनंदपूर्वक भद्रा का हाथ पकड़ लिया।

नकली बलभद्र की यह दशा देख सभा-भवन में बड़े जोर-शोर से हल्ला हो गया। सबके मुख से ये ही शब्द निकलने लगे कि यही नकली बलभद्र है। असली बलभद्र तो कोठरी के भीतर बैठा है एवं अपनी विचित्र बुद्धि से अभयकुमार ने नकली बलभद्र को मार-पीटकर नगर से बाहर भगा दिया और असली बलभद्र को कोठे से बाहर निकाल एवं उसे भद्रा देकर अयोध्या जाने की आज्ञा दी ॥७३-८१॥

इस प्रकार पक्षपात रहित न्याय करने से अभयकुमार की कीर्ति चारों ओर फैल गई। उनकी न्यायपरायणता देख समस्त प्रजा मुक्तकंठ से तारीफ करने लगी एवं अभयकुमार आनंद से राजगृह में रहने लगे।

किसी समय महाराज श्रेणिक की अँगूठी किसी कुएँ में गिर गई। कुएँ में अँगूठी गिरी देख महाराज ने शीघ्र ही अभयकुमार को बुलाया और यह आज्ञा दी-

प्रिय कुमार! अँगूठी सूखे कुएँ में गिर गई है। बिना किसी बाँस आदि की सहायता के शीघ्र अँगूठी निकालकर लाओ। महाराज की आज्ञा पाते ही कुमार शीघ्र ही कुएँ के पास गये। कहीं से गोबर मँगाकर कुमार ने कुएँ में गोबर डलवा दिया। जिस समय गोबर सूख गया कुएँ के मुँह तक पानी से भरवा दिया। ज्यों ही बहता-बहता गोबर कुएँ के मुँह तक आया गोबर में लिपटी अँगूठी भी कुएँ के मुँह पर आ गई तथा उस अँगूठी को लेकर कुमार ने महाराज की सेवा में ला हाजिर की। कुमार का यह विचित्र चातुर्य देख महाराज अति प्रसन्न हुए। कुमार का अद्भुत चातुर्य देख सब लोग कुमार के चातुर्य की प्रशंसा करने लगे। अनेक गुणों से शोभित अभयकुमार को चतुर जान महाराज श्रेणिक भी कुमार का पूरा-पूरा सम्मान करने लगे और उनकी बात-बात में अभय कुमार की तारीफ करनी पड़ी। इस प्रकार अनेक प्रकार के नवीन-नवीन काम करने का कौतूहली, महाराज श्रेणिक आदि उत्तमोत्तम पुरुषों द्वारा मान्य, नीति-मार्ग पर चलने वाला, समस्त दोषों कर

कौतुकावलि विलोलमानसो मानवाधिपति पूजितांह्रिकः।
राजते रमितराजनंदनो नंदनोऽभयकुमार मंत्रिकः ॥८८॥
नानान्यायनिरस्तनीतिरहितो, मार्गः सुमार्गः सुधीः स्वर्गस्वर्गि सुवर्गसर्गसुगुरु, प्रख्यः सुविख्यातमान्।
बुद्ध्या सिद्धितसर्वसिद्धिरभयो भानुप्रभापिंजरो जीयाद्भूतलमंडले नृपकला कांतक्रमं भूषयन् ॥८९॥
बुद्धितो विशदमार्गमंडनं बुद्धितोऽखिलनृपाधिपूजनम्।
बुद्धितो बलकुलालिलिङ्गनं बुद्धितोनयपतित्त्वभाजनम् ॥९०॥
इति श्रेणिक भवानुबद्ध भविष्यत्पद्मनाभपुराणे भट्टारक श्रीशुभचंद्राचार्य विरचिते
अभयकुमारबुद्धि-वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

रहित, बृहस्पति के समान प्रजा को शिक्षा देने वाला, अतिशय आनंदयुक्त, अपने बुद्धिबल से अति कठिन कार्य को भी तुरंत करने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी, राज लक्षणों से विराजमान, युवराज अभयकुमार सबको आनंद देने लगे।

संसार में जीवों को यदि सुख प्रदान करने वाली है तो यह उत्तम बुद्धि ही है क्योंकि इसी की कृपा से मनुष्य सभी का शिरोमणि बन जाता है। उत्तम बुद्धि वाले मनुष्य का राजा भी पूरा-पूरा सम्मान और आदर करते हैं। बड़े-बड़े सज्जन पुरुष उसकी विनय-भाव से सेवा करने लग जाते हैं तथा उत्तम बुद्धि की कृपा से अच्छे-अच्छे नीति आदि गुण भी उस मनुष्य को अपना स्थान बना लेते हैं ॥८२-९०॥

इस प्रकार भविष्यकाल में होने वाले श्रीपद्मनाभ तीर्थंकर के भवांतर के जीव महाराज श्रेणिक के भट्टारक श्रीशुभचन्द्राचार्य विरचित पुत्र अभयकुमार की बुद्धि का वर्णन करने वाला सप्तम सर्ग समाप्त हुआ।

अष्टम: सर्ग:

बुद्धिबोधित बोधांतमुपाध्यायं यतीश्वरं। ध्यायामि ध्यान सिद्ध्यर्थमंगोपांगाप्तये पुन: ॥१॥
अयोध्याया मथो कश्चिद्‌भरतश्चित्रकर्मकृत्‌। पद्मावतीं शुभां देवीं साधयामास मंत्रत: ॥२॥
पद्मादेवी प्रसन्ना तमगदीद्वचनं परम्‌। याचयस्व वरं शीघ्र तदा सोप्यगदीद्वच: ॥३॥
मातर्देवि प्रसन्ना चेत्त्वं मे देहि मनोगतं। लेखयामि च यद्‌रूपं लेखनीयं च पट्टके ॥४॥
तथेति प्रतिपन्ना सा भरतेन तदा पुन:। लेखनी ध्रियते पट्टे धृत्वायद्रूपमुत्तमं ॥५॥
लेख्यते स्वयमेवात्रेतिलब्धवरभाजन:। देशे देशे पुरे ग्रामे स्वकौशल्यं प्रकाशयन्‌ ॥६॥
विजहार महीं रम्यां रंजयन्‌ भूपतिं पतिम्‌। कुर्वंश्चित्रस्य पट्टानि भरतो भारतेऽखिले ॥७॥

अपने पवित्र ज्ञान से समस्त जीवों का अज्ञानांधकार मिटाने वाले, निर्मल ज्ञान के दाता, मुनियों में उत्तम मुनिश्री उपाध्याय परमेष्ठी को अंगोपांग सहित समस्त ध्यान की सिद्धि के लिए मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

उस समय अयोध्यापुरी में कोई भरत नाम का पुरुष निवास करता था। भरत चित्रकला में अति निपुण था। कदाचित्‌ उसके मन में यह अभिलाषा हुई कि यद्यपि मैं अच्छी तरह चित्रकला जानता हूँ किन्तु कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि लेखनी हाथ में लेते ही आप-से-आप पट पर चित्र खिंच जावे। मुझे विशेष परिश्रम न करना पड़े। उस समय उसे और तो कोई तरकीब न सूझी। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसने पद्मावती देवी की आराधना करनी शुरू कर दी। दैवयोग से कुछ दिन बाद देवी भरत पर प्रसन्न हो गई और उसने प्रत्यक्ष हो भरत से कहा–

भक्त भरत! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। जिस वर की तुझे इच्छा हो माँग, मैं देने के लिए तैयार हूँ। देवी के ऐसे वचन सुन भरत अति प्रसन्न हुआ और विनय-भाव से उसने इस प्रकार देवी से निवेदन किया माता! यदि तू मुझ पर प्रसन्न है और मुझे वर देना चाहती है तो मुझे यही वर दे जिस समय मैं लेखनी हाथ में लेकर बैठूँ, उस समय आप से आप मनोहर चित्र पट पर अंकित हो जाएँ मुझे किसी प्रकार का परिश्रम न उठाना पड़े।

देवी ने भरत का निवेदन स्वीकार किया तथा भरत को इस प्रकार अभिलासित वर दे देवी तो अंतर्लीन हो गई और भरत अपने परीक्षार्थ किसी एकांत स्थान में बैठ गया।

ज्योंही उसने पट सामने रख लेखनी हाथ में ली। त्योंही बिना परिश्रम के आप से आप पट पर चित्र खिच गया। चित्र को अनायास पट पर अंकित देख भरत को अति प्रसन्नता हुई। अपने वर को सिद्ध समझ वह अयोध्या से निकल पड़ा एवं अनेक देश, पुर, ग्रामों में अपने चित्रकौशल को दिखाता हुआ, कठिन चित्रों को भी अनायास खींचता हुआ, अपने चित्र-कर्म चातुर्य से बड़े-बड़े राजाओं को भी मोहित करता हुआ वह भरत आनंदपूर्वक समस्त पृथ्वी मंडल पर घूमने लगा ॥१-७॥

अन्यदा सिंधुदेशे च विशाले शालमंडिते। पुरपत्तनखेडाद्रि द्रोणवाहनभूषिते ॥८॥
विशाला नगरी तत्र विशाला शालशोभिता। शास्ता तस्या अभूद्धीमांश्चेटको भटमंडितः ॥९॥
सुभद्रा महिषी तस्य मृगाक्षी पद्मलोचना। चंद्रानना च तन्वंगी पीनोन्नतपयोधरा ॥१०॥
सुधांशुवक्त्रविख्याताः पुत्र्यः सप्ताभवंस्तयोः। प्रियादिकारिणी चाद्या मृगावती वसुप्रभा ॥११॥
प्रभावती तथा ज्येष्ठा चेलना चंदना तथा। जिनधर्मकरारम्या नारीसर्वगुणान्विताः ॥१२॥
भरतः कालयोगेनाजगाम तत्पुरं परम्। पुत्र्याः सप्त च रूपाणि कृत्वा पट्ट शुभानि च ॥१३॥
प्रदर्श्य भूपतिं तेन चित्रकारा जिताः खलु। नृपस्तुतोष तस्मै च ददौ वृत्तिं मनोहराम् ॥१४॥
राजद्वारे विलेख्याशु कन्यारूपाणि शोभया। बबंधः भरतः प्रीत्या पट्टे सप्तविचक्षणः ॥१५॥
वीक्ष्य लोकाः स्मयं जग्मुर्द्वारे ततो जनैर्वरैः। संकार्यसप्तरूपाणि क्षणेन च बबंधिरे ॥१६॥

अनेक पुर एवं ग्रामों से शोभित, वन-उपवनों से मंडित, भाँति-भाँति के धानों से विराजित एक सिंधु देश है। सिंधु देश में अनुपम राजधानी विशालापुरी है। विशालापुरी के स्वामी नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने वाले अनेक विद्वानों से मंडित महाराज चेटक थे। महाराज चेटक की पटरानी का नाम सुभद्रा था जो कि मृगनयनी, चन्द्रमुखी, कृशांगी और कठिन एवं उन्नत स्तनों को धारण करने वाली थी। राजा चेटक की पटरानी सुभद्रा से उत्पन्न मनोहरा, मृगावती, वसुप्रभा, प्रभावती, ज्येष्ठा, चेलना एवं चंदना ये सात कन्याएँ थीं। ये सातों ही कन्या अति मनोहरा थीं। भली प्रकार जैन-धर्म की भक्त थीं। स्त्रियों के प्रधान-प्रधान गुणों से मंडित एवं उत्तम थीं। सातों कन्याओं के रूप-सौंदर्य देख राजा चेटक एवं महारानी सुभद्रा अति प्रसन्न रहते थे ॥८-१२॥

कन्याएँ भी भाँति-भाँति के कला-कौशलों से माता-पिता को सदा संतुष्ट करती रहती थीं।

कदाचित् भ्रमण करता-करता चित्रकार भरत इसी विशाल नगरी में आ पहुँचा। उसने सातों कन्याओं का शीघ्र ही चित्र अंकित किया एवं उसे महाराज चेटक की सभा में जा हाजिर किया और महाराज के पूछे जाने पर उसने अपना परिचय भी दे दिया।

अति चतुरता से पट पर अंकित कन्याओं का चित्र देख राजा चेटक अति प्रसन्न हुए। भरत की चित्र, चित्र-विषयक कारीगरी देख महाराज बार-बार भरत की प्रशंसा करने लगे और उचित पारितोषिक दे राजा चेटक ने भरत को पूर्णतया सम्मानित भी किया।

किसी समय महाराज की प्रसन्नता के लिए भरत ने उन सातों कन्याओं का चित्र राजद्वार में अंकित कर दिया और उसे भाँति-भाँति के रंगों से रंगित कर अति मनोहर बना दिया। चित्र की सुघड़ाई देख समस्त नगर निवासी उस चित्र को देखने आने लगे और उन सातों कन्याओं का वैसा ही चित्र नगर निवासियों ने अपने-अपने द्वारों पर भी खींच लिया एवं कन्याओं के चित्र से अपने को धन्य समझने लगे ॥१३-१६॥

ततः प्रभृति संजातं मिथ्यात्वं सप्तमातृकं। देशे देशे पुरे ग्रामेऽद्यापि तद्वर्त्तते खलु ॥१७॥
ततो भूपतिना दत्ता सिद्धार्थाय मनोहरा। प्रथमा कुंडनाथाय नाथवंशाय रूपिणे ॥१८॥
विषये वत्सनामाख्ये कौशांबीपुरवासिने। सोमवंशे च नाकाय वितीर्णा द्वितीया सुता ॥१९॥
दशार्णविषये दत्ता हेरकच्छपुरेशिने। राज्ञे दशरथायैव सूर्यवंशे च सुप्रभा ॥२०॥
कच्छाख्यविषये दत्ता रोरुखाख्यपुरेशिने। महानुदयने तेन विख्याता च प्रभावती ॥२१॥
तिस्रोऽन्यदा महाकन्याश्चित्रकारं समाप्य च। बभाण तत्र ज्येष्ठा च प्रहस्य कृतकौतुका ॥२२॥
चित्रकृच्चेलनारूपं यथोक्तं चेलवर्जितम्। पट्टके कुरु पश्यामि कलां विज्ञानपारगां ॥२३॥
आकर्ण्येति ततस्तेन गृहीत्वा लेखिनीं वरां। पट्टे पद्माप्रसादेनाऽलेखि रूपं यथाभवं ॥२४॥
गुह्यस्थानादिदेशेषु तिलकादिकलक्षणं। विलिख्य दर्शयामास तद्रूपं मृत्युवर्द्धक ॥२५॥
अजीजनत्तदा पुत्री ज्येष्टा चिंतापरायणा। कथं बुद्धमहोगुप्तं तिलकादिकलक्षणम् ॥२६॥

संसार में जो लोग सात माता कहकर पुकारते हैं और उनकी भक्ति-भाव से पूजा करते हैं। सो अन्य कोई सात माता नहीं। इन्हीं कन्याओं को बिना समझे सात माता मान रखा है। यह सात माता का मिथ्यात्व उसी समय से जारी हुआ है। संसार में अब भी कई स्थानों पर यह मिथ्यात्व प्रचलित है।

सातों कन्याओं में राजा चेटक की चार कन्या विवाहिता थीं। प्रथम कन्या का विवाह नाथवंशीय कुण्डपुर के स्वामी महाराज सिद्धार्थ के साथ हुआ था। द्वितीय कन्या मृगावती नाथवंशीय वत्स देश में कौशांबीपुरी के स्वामी महाराज नाथ के साथ विवाही गई थी तथा तृतीय कन्या जो कि वसुप्रभा थी उसका विवाह राजा चेटक ने सूर्यवंशीय दशार्ण देश में हेरकच्छपुर के स्वामी राजा दशरथ को दी थी एवं चतुर्थ कन्या प्रभावती का विवाह कच्छ देश में रोरूकपुर के स्वामी महाराज महातुर के साथ हो गया था। बाकी अभी तीन कन्या कुमारी ही थीं।

कदाचित् ज्येष्ठा को आदि ले तीनों कन्या चित्रकार भरत के पास गई और उन सबमें बड़ी कुमारी ज्येष्ठा ने हँसी-हँसी में चित्रकार से कहा-भरत! हम जब तुझे उत्तम चित्रकार समझें। कुमारी चेलना का जैसा रूप है, वैसा ही इसका वस्त्र रहित चित्र खींचकर तू हमें दिखावे।

कुमारी चेलना का वस्त्र रहित चित्र खींचना भरत के लिए कौन बड़ी बात थी ? ज्योंही उसने ज्येष्ठा के वचन सुने, चट अपने सामने पट रखकर हाथ में लेखनी ले ली और पद्मावती देवी के प्रसाद से जैसा कुमारी चेलना का रूप था तथा जो-जो उसके गुप्तांगों में तिल आदि चिह्न थे, वे ज्यों-के-त्यों चित्र में आ गये तथा चौखटा वगैरह से उस चित्र को अति मनोहर बना कर, शीघ्र ही उसने ज्येष्ठा को दे दिया ॥१७-२५॥

कुमारी चेलना के चित्र को लेकर प्रथम तो ज्येष्ठा अति प्रसन्न हुई किन्तु ज्योंही उसकी दृष्टि गुप्त स्थानों में रहे तिल आदि चिह्नों पर पड़ी, वह एकदम आश्चर्य-सागर में डूब गई। अब उसके

**अचीकथत्तदा कर्णे जपः कश्चिच्च भूपतेः। तद्वृत्तं स समाकर्ण्य चुकोप मनसा स्मरन्॥२७॥
कम्रलेखी तथाप्यत्रस्थमिदं तिलकं कथं। वेत्त्यहो कारणं किं वा न जानीमो वयं पराः॥२८॥
देवानामपि दुर्लक्ष्यं योगिनामप्यगोचरम्। स्त्रीचरित्रं कथं विद्मो मनुष्याः स्वल्पबुद्धयः॥२९॥
पिशुनोऽयं गतः संगो मुग्धया कन्यया समं। निः काश्योऽतः स्वदेशाच्च विषमो गोत्रपापदः॥३०॥
कुतश्चिद्धरतो मत्वेति क्रुद्धं नरनायकम्। पलायनं व्यधाद्दूरे भयकंपितविग्रहः॥३१॥
ततः क्रमेण संप्राप्तः पुरं राजगृहं स्पृहम्। भरतो रूपमालिख्य चेलिन्याः पट्टके परे॥३२॥
अदर्शयत्सभां तस्थं मागधं मागधैः समम्। आतपत्रप्रभावेन लुप्तचंद्रार्कमंडलम्॥३३॥**

मन में अनेकानेक संकल्प-विकल्प उठने लगे कि बाह्यांगों के चिह्नों की तो बात दूसरी है, इस चित्रकार को गुह्यांगों के चिह्नों का कैसे पता लग गया ? न मालूम यह चित्रकार कैसा है?

इधर ज्येष्ठा तो ऐसा विचार कर रही थी, उधर किसी जासूस को भी इस बात का पता लग गया और चित्रकार की सारी बातें महाराज चेटक से आकर कह दीं।

जासूस के मुख से यह वृत्तांत सुन राजा चेटक अति कुपित हो गये। कुछ समय पहले जो राजा चेटक चित्रकार भरत को उत्तम समझते थे। वही बेचारा चित्रकार जासूस के वचनों से उन्हें काला भुजंग सरीखा जान पड़ने लगा। वे विचारने लगे-बड़े खेद की बात है कि इस नालायक चित्रकार ने कुमारी चेलना का गुप्त स्थान में स्थित चिह्न कैसे जान लिया ? मैं नहीं जान सकता यह बात क्या हो गई ? अथवा ठीक ही है स्त्रियों का चरित सर्वथा विचित्र है। बड़े-बड़े देव भी इसका पता नहीं लगा सकते। अखंड ज्ञान के धारक योगी भी स्त्रियों के चरित्र का पता लगाने में हैरान हैं। तब न कुछ ज्ञान के धारक हम कैसे उनके चरित्र की सीमा पा सकते हैं? हाय मालूम होता है इस दुष्ट चित्रकार ने भोली-भाली कन्या चेलना के साथ कोई अनुचित काम कर डाला। कुल को कलंकित करने वाले इस दुष्ट भरत को अब शीघ्र ही सिंधु देश से निकाल देना चाहिए। अब क्षण-भर भी इसे विशालापुरी में रहने देना ठीक नहीं॥२६-३०॥

इधर महाराज तो चित्रकार के विषय में यह विचार करने लगे। उधर चित्रकार को भी कहीं से यह पता लग गया कि महाराज चेटक मुझ पर कुपित हो गये हैं। मेरा पूरा-पूरा अपमान करना चाहते हैं। वह शीघ्र ही भय के कारण अपना झोली-डंडा ले वहाँ से उठ भागा और कुछ दिन मंजिल-दर-मंजिल कर राजगृह नगर आ गया।

राजगृह नगर में आकर उसने फिर चेलना का चित्रपट बनाया और बड़े विनय से महाराज श्रेणिक की सभा में जाकर उसे भेंट कर दिया। महाराज उस समय अनेक मगध देश के बड़े-बड़े पुरुषों के साथ सिंहासन पर विराजमान थे। उनके चारों ओर कामिनी चमर डुला रही थीं। बंदीजन उनका यशोगान कर रहे थे। ज्योंही महाराज की दृष्टि चेलना के चित्र पर पड़ी। एकदम महाराज चकित रह गये। चेलना की सुव्यक्त तस्वीर देख उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प

वीक्ष्य तां पट्ट संरूढां गूढावयवदायिनीं। करेणाकारयंतीं वानरान्मगधनायकः ॥३४॥
अतर्कयत्तरां चित्ते धमिल्लः कचगुंठितः। कामिनां कामपाशो वा चित्रितोनागसंभवैः ॥३५॥
धम्मिल्ल भुजगो भाति चूड़ामणिसुरत्नकः। कामिनां भीतिदस्तस्याः कौसुंभिक सुचित्रभृत् ॥३६॥
भालं भाभार संभूतं गांगेयतिलकायितम्। नभो वा चंद्रसंकीर्ण धत्ते या मारमंजरी ॥३७॥
यस्या भ्रूभंगतो जातं ऊँकारो जपनाय वा। कामिनां मारदेवस्य साधनाय महाप्रभोः ॥३८॥
कटाक्षक्षेपतो यस्याः कामी बध्नाति संथुरः। पाशतो मृगयूथो वालोकनोद्गीतमोहितः ॥३९॥
सर्वार्थश्रवणायैव श्रवणौ वेधसा कृतौ। सूर्येंदुयुगलाभ्यां वा कुंडलाभ्यां विभूषितौ ॥४०॥
कामिनां कर्षणे मंत्रं नेत्रयुग्मं विभाति च। पद्मपत्रसमं स्फीतं यस्यास्त्रस्तमृगीदृशः ॥४१॥
तांबूलरक्तताकीर्णं सितदंतमयूरवकम्। गंभीरे मेघसद्ध्वानं वक्त्रं व्योमे च राचते ॥४२॥
ग्रीवा यस्याः शुभा रेजे जितनादसुवल्लकी। स्वर्णवर्णात्रिरेखा च वक्त्रधारणस्तंभिका ॥४३॥
यस्या नादेन मन्येऽहं निर्जिता कलकोकिला। धत्ते कृष्णत्वमद्यापि पुरं त्यक्त्वा वनंश्रिता ॥४४॥
शेलायेते स्तनौ तुंगौ यस्यावक्षोवने घने। लसन्मार महासाले विशाले मोहसिंहके ॥४५॥
नाभिपद्माकरे यस्याः स्नाति मोहद्विपः सदा। अधः कचालिमधुपैः सेव्यमानेति निम्नके ॥४६॥

उठने लगे वे विचारने लगे– इस चेलना का केश–वेश ऐसा जान पड़ता है मानो कामी पुरुषों के लिए यह अद्भुत जाल है अथवा यों कहिए चूड़ामणियुक्त यह केश–वेश नहीं है किन्तु उत्तम रत्नयुक्त समस्त जीवों को भय का करने वाला, यह काला नाग है एवं जैसे चंद्रमायुक्त आकाश शोभित होता है उसी प्रकार गांगेय तिलकयुक्त चेलना का यह ललाट है और यह जो भ्रूभंग से इसके ललाट पर ओंकार बन गया है वह ओंकार नहीं है जगद्विजयी कामदेव का बाण है तथा गायन जिस प्रकार मृग को परवश बना देता है। उसी प्रकार इसका कटाक्ष विक्षेप कामी जनों को परवश करने वाले हैं। अहा! इस चेलना के कानों में जो ये दो मनोहर कुण्डल हैं सो कुण्डल नहीं किन्तु इसकी सेवार्थ दो सूर्य–चन्द्र हैं। मृगनयनी इस चेलना के ये कमल के समान फूले हुए नेत्र ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामी जनों को वश में करने वाले मंत्र हैं ॥३१–४१॥

इस मृगाक्षी चेलना का मुख तो सर्वथा आकाश ही जान पड़ता है क्योंकि आकाश में जैसे बादल की ललाई, चन्द्र आदि की किरण एवं मेघ की ध्वनि रहती है। वैसी ही इसके मुख में तो पान की ललाई है। दाँतों की किरण चन्द्रकिरण हैं और इसकी मधुर ध्वनि मेघध्वनि मालूम पड़ती है। इसकी यह तीन रेखाओं से शोभित, सोने के रंग की, मनोहर ग्रीवा है। मालूम होता है कोयल ने जो कृष्णत्व धारण किया है और पुर छोड़ वन में बसी है। सो इस चेलना के कण्ठ के शब्द–श्रवण से ही ऐसा किया है। इस चेलना के दो स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो वक्षःस्थलरूपी वन में दो अति मनोहर पर्वत ही हैं। मालूम होता है इस चेलना के नाभिरूपी तालाब में कामदेव रूपी हाथी गोता लगाये बैठा है नहीं तो रोमावलीरूपी भ्रमर पंक्ति कहाँ से आई ? इसके कमल के समान कोमल कर अति मनोहर दिखाई पड़ते हैं। कटिभाग भी इसका अधिक पतला है। ये इसके

भूषणाढ्यौ करौ रम्यौ कामपाशौ च कामिनां। लसत्कंचुकदीप्ताढ्यौ यस्या रेजतु रुन्नतौ ॥४७॥
सूक्ष्मं कटीतटं यस्याः पादौ पद्मावलंबितौ। पुनर्भूकांति संकीर्णौ भातो भूषणभूषितौ ॥४८॥
अनीदृशस्वरूपेयं किन्नरी यक्षयोषिता। खेचरी रोहिणी वाहो पद्मा पद्मावती पुनः ॥४९॥
पुलोमजाऽथवा देवी रतिर्वा किं सरस्वती। नागकन्या पराकारा सूरकांताऽथवा किमु ॥५०॥
इति चित्ते चिरं राजा संवितर्क्य मुमोह च। प्रतिबिंबसमाकारो बभूव मगधाधिपः ॥५१॥
कस्येयं तनुजा चित्रकृत्का रूपावभासिनी। कथं प्राप्या ततः प्राह भरतो भूपतिं प्रति ॥५२॥
सिंधुदेशे विशालायाः अधीशश्चेटको नृपः। कुमारी तनुजा तस्य चेलना चित्ररोपिता ॥५३॥
जैनं विहाय नान्यस्मै प्रयच्छति सुकन्यकां। कुरुत्वं च यथाशक्ति वाक्यसारा हि मादृशाः ॥५४॥
इत्याकर्ण्य सचिंतोऽभून्नृपः किं कार्यमत्र च। न प्रयच्छति चास्मभ्यं जैनाभावत्वतः पुनः ॥५५॥
बलैरशक्यो युद्धे च किं कर्त्तव्यं मयात्र वै। तर्कयन्निति धून्वन्स शिरोवाष्पं विमुंचयन् ॥५६॥

कोमल चरणों में स्थित नूपुर इसके चरणों की विचित्र ही शोभा बना रहे हैं नहीं मालूम होता ऐसी अतिशय शोभायुक्त यह चेलना कोई किन्नरी है ? वा विद्याधरी है ? किं वा रोहिणी है ? अथवा कमलनिवासिनी कमला है ? या यह इन्द्राणी अथवा कोई मनोहर देवी है ? अथवा इतनी अधिक रूपवती यह नाग-कन्या वा कामदेव की प्रिया रति है ? अथवा ऐसी तेजस्विनी यह सूर्य की स्त्री है तथा इस प्रकार कुछ समय अपने मन में भले प्रकार विचार कर और चेलना के रूप पर मोहित होकर, महाराज ने शीघ्र ही भरत चित्रकार को अपने पास बुलाया और उससे पूछा ॥४२-५१॥

कहो भाई! यह अति सुंदरी चेलना किस राजा की पुत्री है ? किस देश एवं पुर का पालक वह राजा है ? क्या उसका नाम है ? यह कन्या हमें मिल सकती है या नहीं ? यदि मिल सकती है तो किस उपाय से मिल सकती है ? ये सभी बातें स्पष्ट रूप से शीघ्र मुझे कहो। महाराज श्रेणिक के ऐसे वचन सुन भरत ने उत्तर दिया-भो कृपानाथ! यह कन्या राजा चेटक की है। राजा चेटक सिंधु देश में विशालापुरी का पालन करने वाला है। यह कन्या आपको मिल तो सकती है किन्तु राजा चेटक का यह प्रण है कि वह सिवाय जैनी के अपनी कन्या दूसरे राजा को नहीं देता। चेटक जैन धर्म का परम भक्त है। इसलिए यदि आप इस कन्या को लेना चाहते हैं तो आप उसके अनुकूल ही उपाय करें ॥५२-५४॥

भरत के ऐसे वचन सुन महाराज, विचार-सागर में गोता मारने लगे। ये सोचने लगे- यदि राजा चेटक का यह प्रण है कि जैन राजा के अतिरिक्त दूसरे को कन्या न देना तो यह कन्या हमें मिलना कठिन है क्योंकि हम जैन नहीं। यदि बुद्ध मार्ग से इसके साथ जबरन विवाह किया जाए सो भी सर्वथा अनुचित एवं नीति-विरुद्ध है और विवाह इसके साथ करना जरूरी है क्योंकि ऐसी सुंदरी स्त्री दूसरी जगह मिलने वाली नहीं किन्तु किस उपाय से यह कन्या मिलेगी ? यह कुछ ध्यान में नहीं आता तथा ऐसा अपने मन में विचार करते-करते महाराज बेहोश हो गये। चेलना के बिना समस्त जगत् उन्हें अंधकारमय प्रतीत होने लगा। यहाँ तक कि चेलना की प्राप्ति का कोई उपाय न समझ उन्होंने अपना मस्तक तक भी धुन डाला ॥५५-५६॥

तदेत्थं जनकं वीक्ष्य कुमारोऽभयनामभाक्। प्रोवाच राजराजेश! का चिंतास्ति तवेदृशी ॥५७॥
तवाधीनाः जनाः सर्वे नृप आज्ञाविधायिनः। कोशाश्वदंतिपत्तीनां स्वामित्वं प्रचुरं त्वयि ॥५८॥
अंगनारंगसंलीनाः पुत्रा दासेयसन्निभाः। शत्रवो मित्रतापन्ना वर्त्तंते तव शासने ॥५९॥
चिंताहेतुं नराधीश निर्देश्यं मे त्वयाधुना। भविष्यति यथाकार्यं तथा कुर्मो निबंधनं ॥६०॥
ततो यथा कथंचिच्च भूपेनाऽभाणि वृत्तकम्। सर्वं पुत्रानयाराज्यं विना निःफलतांगतं ॥६१॥
निरर्थं जीवितं मेने सर्वं शून्यं बभाति च। चंचलत्वं समापन्नं स्वांतं नेत्रं च चंचलं ॥६२॥
दुश्चलं नृपतिं वीक्ष्य पितृभक्त्या बभाण च। चिंतां विधेहि मा राजन् विदधामि समीहितं ॥६३॥

महाराज को इस प्रकार चिंता-सागर में मग्न एवं दुःखित सुन अभयकुमार उनके पास आये। महाराज की विचित्र दशा देख अभयकुमार भी चकित रह गये। कुछ समय बाद उन्होंने महाराज से नम्रतापूर्वक निवेदन किया-पूज्य पिताजी! मैं आपका चित्त चिंता में अधिक व्यथित देख रहा हूँ। मुझे चिंता का कोई भी कारण नजर नहीं आता। पूज्यपाद! प्रजा की ओर से आपको चिंता हो नहीं सकती क्योंकि प्रजा आपके आधीन और भली प्रकार आज्ञापालन करने वाली है। कोषबल एवं सैन्यबल भी आपको चिंतित नहीं बना सकता क्योंकि न आपके खजाना कम है और न सेना ही। किसी शत्रु के लिए चिंता करना आपको अनुचित है क्योंकि आपका कोई भी शत्रु नजर नहीं आता। आपके शत्रु भी मित्र हो रहे हैं। भो पूज्यवर! आपकी स्त्रियाँ भी एक-से-एक उत्तम हैं। पुत्र आपकी आज्ञा के भली प्रकार पालक और दास हैं इसलिए स्त्री-पुत्रों की ओर से भी आपका चित्त चिंतित नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त और कोई चिंता का कारण प्रतीत नहीं होता फिर आप क्यों ऐसे दुःखित हो रहे हैं। कृपाकर शीघ्र ही अपनी चिंता का कारण मुझे कहें। मैं भी यथासाध्य उसके दूर करने का प्रयत्न करूँगा। अभयकुमार के ऐसे विनय-भरे वचन सुन प्रथम तो महाराज ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वे सर्वथा चुपकी साध गये। किन्तु जब उन्होंने कुमार का आग्रह-विशेष देखा तब वे कहने लगे ॥५७-६०॥

प्यारे पुत्र! चित्रकार भरत ने मुझे चेलना का यह चित्र दिया है। जिस समय से मैंने चेलना की तस्वीर देखी है मेरा चित्त अति चंचल हो गया है। इसके बिना यह विशाल राज्य भी मुझे जीर्ण तृण सरीखा जान पड़ रहा है। इसके पिता की यह कड़ी प्रतिज्ञा है कि सिवाय जैन राजा के दूसरे को कन्या न देना, इसलिए इसकी प्राप्ति मुझे अति कठिन जान पड़ती है। अब इस कन्या की प्राप्ति के लिए प्रयत्न शीघ्र होना चाहिए। बिना इसके मेरा सुखी होना कठिन है।

पिताजी के ऐसे वचन सुन कुमार ने कहा-माननीय पिताजी! इस जरा-सी बात के लिए आप इतने अधीर न हों। मैं अभी इसके लिए उपाय करता हूँ। यह कौन बड़ी बात है? तथा महाराज को इस प्रकार आश्वासन दे कुमार ने शीघ्र ही पुर के बड़े-बड़े जैनी श्रेष्ठी बुलाये और उनसे अपने साथ चलने के लिए कहा तथा कुमार की आज्ञानुसार वे सब कुमार के साथ चलने के लिए राजी भी हो गये।

समुद्धीर्येति भूपालं तत्कार्यकरणोद्यतः। पुरस्थितान् समाहूय जैनान् व्यापार सिद्धये ॥६४॥
स्वयं सार्थाधिपोभूत्वा जैनलोका च मंडितः। चचाल संपदा साकं बलीवर्दैश्च घोटकैः ॥६५॥
नाना सद्वस्तु संपन्नैः वाणिज्यायाभयस्तदा। निर्ययौ सिंधु देशं तं वृद्धबुद्धिविराजितः ॥६६॥
जिनस्नपनपूजादीन् कुर्वंतो जिन बिंबके। सामायिकस्तवारूढा गुरुपंचजयोद्यताः ॥६७॥
जैनत्वेन प्रसिद्धिं ते गताः सर्वत्र निर्वृतिम्। क्रमेण प्रापुरानंदाद्विशालां नगरीं पुराम् ॥६८॥
तद्बाह्योद्यानमासाद्य तस्थुः सर्वे नरोत्तमाः। जैनं धर्मं प्रकुर्वंतः पंचसत्यदपाठकाः ॥६९॥
ततोऽभयकुमारोऽसौ नानारत्नाद्युपायनम्। आदाय सज्जनैः साकं जगाम नृपसंसदि ॥७०॥
प्रमुच्य प्राभृतं धीमान् प्रणम्य नृपचेटकं। संभाष्य पेशलैर्वाक्यैस्तोषयामास भूपतिं ॥७१॥
जपन्यं च नमस्कारंस्तस्थौ भूपस्य सन्निधिं। कुशलप्रश्नपूर्वं चान्योन्यं भेणतुरुन्नतौ ॥७२॥
ततोऽभयो नृपाधीशं संतुष्टं वाससंकृते। ययाचे नृपगेहस्य समीपं वरमंदिरम् ॥७३॥

जब कुमार ने यह देखा कि सब श्रेष्ठी मेरे साथ चलने के लिए तैयार हैं। उन्होंने शीघ्र ही महाराज श्रेणिक से जाने के लिए आज्ञा माँगी तथा हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि जवाहरात और अन्य-अन्य उपयोगी पदार्थ लेकर एवं समस्त सेठों के मुखिया सेठी बनकर अभयकुमार ने शीघ्र ही सिंधु देश की ओर प्रयाण कर दिया ॥६१-६६॥

मायाचारी संसार में विचित्र पदार्थ है। जिस मनुष्य पर इसकी कृपा हो जाती है। उसके लिए संसार में बड़े-से-बड़ा अहित करने में भी सुलभ हो जाता है। मायाचारी निर्भय हो चट अनर्थ कर बैठता है। कुमार ने ज्योंही राजगृह नगर छोड़ा। माया के वे भी बड़े भारी सेवक हो गये। मार्ग में जिस नगर को वे बड़ा नगर देखें फौरन वहाँ ठहर जावें और अन्य सेठों के साथ कुमार भली प्रकार भगवान् की पूजा करें एवं त्रिकाल सामायिक और पंच परमेष्ठी स्तोत्र का पाठ भी करें। क्या मजाल थी जो कोई जरा भी भेद जान जाए ? इस प्रकार समस्त पृथ्वी मंडल पर अपने जैनत्व की प्रसिद्धि करते हुए कुमार कुछ दिन बाद विशाला नगरी में जा पहुँचे और वहाँ के किसी बाग में ठहरकर खूब जोर-शोर से जिनेन्द्र भगवान् के पूजा-माहात्म्य को प्रकट करने लगे।

कुछ समय बाग में आराम कर कुमार ने उत्तमोत्तम रत्नों को चुना और कुछ जैन सेठों को लेकर वे शीघ्र ही राजा चेटक की सभा में गये। महाराज चेटक की सभा में प्रवेश कर कुमार ने राजा को विनय-भाव से नमस्कार किया तथा उनके सामने भेंट रखकर, उनके साथ मधुर-मधुर वचनालाप कर अपने को जैनी प्रकट करते हुए कुमार ने प्रार्थना की ॥६७-७१॥

राजाधिराज! हम लोग जौहरी बच्चे हैं। अनेक देशों में भ्रमण करते-करते यहाँ आ पहुँचे हैं। हमारी इच्छा है कि हम इस मनोहर महल में कुछ दिन ठहरें। हमारे पास मकान का कोई प्रबन्ध नहीं कृपा कर आप राजमंदिर के पास हमें किसी मकान में ठहरने के लिए आज्ञा दें। कुमार का ऐसा अद्भुत वचनालाप एवं विनय-व्यवहार देख राजा चेटक अति प्रसन्न हुए। उन्होंने बिना सोचे-समझे ही कुमार को राजमंदिर के पास रहने की आज्ञा दे दी और कुमार आदि का हद से ज्यादा सम्मान किया ॥७२-७३॥

अदाद्भ पो गृहं तस्मै तत्र तस्थौ च मागधः। जिनार्चां पंडितैः साकं करोतिच्छद्मसंगतः ॥७४॥
पूरयन्महिषीवासं स्तवनैर्जिनसद्गुणैः। विदधाति महारंभं जिनार्चायां च छद्मना ॥७५॥
कदाचिन्नृत्यमत्यंतं कदाचित्स्तवनोत्सवम्। कदाचिन्मंगलोद्गीतिं कदाचिद्वाद्यसंभ्रमं ॥७६॥
कदाचित्स्नपनारंभं पठनं गद्यपद्ययोः। महापुराणसंपाठं कारयामास मागधः ॥७७॥
अन्यदा तादृशं श्रुत्वा ज्येष्ठाद्यातच्च वीक्षितुं। आजग्मुर्निजसाधर्म्यात्परमं तन्निकेतनं ॥७८॥
तदा तास्तत्कृतां पूजां वरशोभासमन्विताम्। पुष्पचंद्रोपकाकीर्णां लसच्चामरघंटिकाम् ॥७९॥
अवलोक्य महाप्रीत्या भेणुस्तत्सत्प्रशंसनम्। धन्या भवंत एवात्र जिनभक्तिपरायणाः ॥८०॥
वणिजो वणिजां नाथास्त्वत्समा जगतीतले। न दृष्टा जिनपूजायां दर्शने वृतबोधके ॥८१॥
को नीवद्भवतां राजा को धर्मस्तस्य भूपतेः। किं वयः किं च सौभाग्यं का भूतिः के गुणाः पुनः ॥८२॥

अब क्या था ? राजा की आज्ञा पाते ही कुमार ने शीघ्र ही अपना सामान राजमंदिर के समीप किसी महल में मँगा लिया एवं उस मकान में मनोहर चैत्यालय बनाकर आनंदपूर्वक बड़े समारोह से जिन-भगवान् की पूजा करनी प्रारंभ कर दी। कभी तो कुमार बड़े-बड़े मनोहर स्तोत्रों में भगवान् की स्तुति करने लगे और कभी उन सेठों के साथ जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करनी प्रारंभ कर दी। कभी-कभी कुमार को पूजा करते ऐसा आनंद आ गया कि वे बनावटी तौर से भगवान् के सामने नृत्य भी करने लगे और कभी उत्तमोत्तम शब्द करने वाले बाजे बजाना भी उन्होंने प्रारंभ कर दिया एवं कभी-कभी कुमार त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र-वर्णन करने वाले पुराण बाँचने लगे। जिस समय वे समस्त भगवान् की पूजा-स्तुति आदि कार्य करते थे। बराबर उनकी आवाज अंतःपुर में जाती थी। राजा की काफी स्त्रियाँ साफ रीति से इनके स्तोत्र आदि को सुनकर वे अपने मन-ही-मन इनकी भक्ति की अधिक तारीफ करती थी ॥७४-७७॥

किसी समय महाराज चेटक की ज्येष्ठा आदि पुत्रियों के मन में इस बात की इच्छा हुई कि चलो इनको जाकर देखें। ये बड़े भक्त जान पड़ते हैं। प्रतिदिन भाव-भक्ति से भगवान् की पूजा करते हैं तथा ऐसा दृढ़ निश्चय कर वे अपनी सखियों के साथ किसी दिन अभयकुमार द्वारा बनाये हुए चैत्यालय में गई और वहाँ पर चमर, चाँदनी, झालर, घंटा आदि पदार्थों से शोभित चैत्यालय देख अति प्रसन्न हुई तथा कुमार आदि को भगवान् की भक्ति में तत्पर देख कहने लगीं-आप लोग श्री जिनेन्द्र देव की भक्ति-भाव से पूजन एवं स्तुति करते हैं इसलिए आप धन्य हैं। इस पृथ्वीतल पर आप लोगों के समान न तो कोई भक्त दीख पड़ता है और न ज्ञानवान् एवं स्वरूपवान् भी दीख पड़ता। कृपाकर आप कहें कौन तो आपका देश है ? कौन उस देश का राजा है ? वह किस धर्म का पालन करने वाला है ? क्या उसकी वय है ? कैसी उसकी सौभाग्य विभूति है ? एवं कौन-कौन गुण उत्तमतया उसमें मौजूद हैं ? राजकन्याओं के मुख से ऐसे वचन का अभयकुमार ने मधुर वचन में उत्तर दिया ॥७८-८२॥

आकर्ण्येति जगौ धीमांस्तदाहरणहेतवे। शृणुध्वं मगधोदेशो ग्रामाराममविमंडितः ॥८३॥
यत्र सर्वत्र देशेषु गृहाजैना यतीश्वराः। वर्त्तंते गणनातीताः सातकुंभ सुकुंभकाः ॥८४॥
शोभा सर्वस्व संपूर्णे तत्र राजगृहं पुरं। विशालशालसंपूर्णं दीर्घखातिकयाशुभं ॥८५॥
सुंभत्सुसातकुंभानामभ्रं लिहाः परोत्तमाः। प्रासादाः संति सर्वत्र यत्र मित्र समप्रभे ॥८६॥
तच्छास्ता श्रेणिको भाति लघीयान्वयसापुनः। गुणैर्गरीयान्विख्यातो ज्यायान् ज्येष्ठैः सुमाननात् ॥८७॥
सार्थवाहा वयं कन्या नानानीवृत्परिभ्रमाः। कलानां प्रेक्षिणो धीरानानाभूपाललोकिनः ॥८८॥
न तादृशो नृपो लोके जिनधर्मेण मंडितः। रूपी गुणी प्रतापी च न दृष्टो नैव दृश्यते ॥८९॥
यत्प्रतापेन भूपाला अन्ये वननिवासिनः। विधाय सप्तभूमांश्च गृहान् शालोपशोभितान् ॥९०॥
अन्येषां तादृशी नैव संपत्तिः कोशसंभवा। वीतदंतिरथाकीर्णा यादृशास्य सुभूभृतः ॥९१॥
किमत्र बहुनोक्तेन तादृशो नरनायकः। धर्मादिगुणसत्सीमा ना भून्नास्तिसुभावुकः ॥९२॥
प्रीता आाकर्ण्य तद्वाक्यं भेणुर्विश्वासितास्तकैः। च्छद्मनान्योन्यमालोक्य तावत्राणींदुभानि च ॥९३॥

राजकन्याओ! यदि आपको हमारा सविस्तार हाल जानने की इच्छा है तो आप ध्यानपूर्वक सुनें, मैं कहता हूँ–अनेक प्रकार के ग्राम, पुर एवं बाग-बगीचों से शोभित, ऊँचे-ऊँचे जिनमंदिरों से व्याप्त, असंख्यात मुनि एवं यतियों का अनुपम विहार स्थान, देश तो हमारा मगध देश है। मगध देश में एक राजगृह नगर है। जो राजगृह नगर बड़े-बड़े सुवर्णमय कलशों से शोभित, अपनी ऊँचाई से आकाश को स्पर्श करने वाले, सूर्य के समान देदीप्यमान अनेक धनिकों के मंदिर एवं जिन-मंदिरों से व्याप्त है और जहाँ की भूमि भाँति-भाँति के फलों से मनुष्यों के चित्त सदा आनंदित करती रहती है। उस राजगृह नगर के हम रहने वाले हैं। राजगृह नगर के स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजा-पालन करने वाले महाराज श्रेणिक हैं। राजा श्रेणिक जैनधर्म के परमभक्त हैं। अभी उनकी छोटी अवस्था है एवं अनेक गुणों के भंडार हैं। राजकन्याओ! हम लोग व्यापारी हैं छोटी-सी उम्र में हम चारों ओर भूमंडल घूम चुके। प्रत्येक कला में नैपुण्य रखते हैं। हमने अनेक राजाओं को देखा किन्तु जैसी जिनेन्द्र की भक्ति, रूप, गुण, तेज महाराज श्रेणिक में विद्यमान है वैसा कहीं पर नहीं क्योंकि ऐसा तो उनका प्रताप है कि जितने भी उनके शत्रु थे सब अपने मनोहर-मनोहर नगरों को छोड़ वन में रहने लगे। कोषबल भी जैसा महाराज श्रेणिक का है शायद ही किसी का होगा। हाथी, घोड़े, पयादे आदि भी उनके समान किसी के भी नहीं। अब हम कहाँ तक कहें। धर्मात्मा, गुणी, प्रतापी जो कुछ हैं सो महाराज श्रेणिक ही हैं। कुमार के मुख से महाराज श्रेणिक को ऐसा उत्तम सुन ज्येष्ठा आदि समस्त कन्याएँ अति प्रसन्न हुई।

अब महाराज श्रेणिक के साथ विवाह करने के लिए प्रत्येक का जी ललचाने लगा। कुमार की तारीफ ने कन्याओं को महाराज श्रेणिक के गुणों के परतंत्र बना दिया अब वे चुपचाप न रह सकीं। उन्होंने शीघ्र ही विनयपूर्वक कुमार से कहा- ॥८३-९२॥

प्रिय वणिक् सरदार! ऐसे उत्तम वर की हमें किस रीति से प्राप्ति हो ? न जाने हमारे भाग्य से इस जन्म में हमारा कौन वर होगा ? श्रेष्ठिवर्य! यदि किसी रीति से आप वहाँ हमें ले चलें तब

कथं संप्राप्यतेऽस्माभिः सार्थनाथवरोत्तमः। न ज्ञायते भविष्णुः को भर्त्तास्माकं विधेर्वशात् ॥९४॥
यदि नेष्यसि नः शीघ्रं त्वं स संप्राप्यते। खलु नान्यथा मागधः कुत्र वयं कुत्र विदेशगाः ॥९५॥
तथा कुरु यथा भावी वरोऽस्माकं महामते। अन्यथा न सुखं निद्रा दुःखं तद्विरहात्पुनः ॥९६॥
ततोऽन्योन्यसमालाएं विधाय विधिकोविदः। आ राजभवनं रम्यां सुरंगां तामकारयत् ॥९७॥
प्राकारां तां परां तस्यां रज्जुबंधं चकार च। आगता रज्जुबंधेन निर्गमाय च कन्यकाः ॥९८॥
ज्येष्टा च चंदना वीक्ष्य तां सुरंगां सुभीषणां। अग्रस्थां तमसा व्याप्तामुपायं हृद्यचिंतयत् ॥९९॥
दुर्मार्गे किमु गम्येत भविता जनहास्यता। पितृकोपस्तथा भावी न गंतव्यं मया स्फुटम् ॥१००॥
चंदनेत्यभणद्वाक्यं मुद्रिका मम विस्मृता। आनयामि द्रुतं तस्मादिति कृत्वा गृहं गता ॥१०१॥
ज्येष्टेति वचनं ब्रूते हारो विस्मारितो मया। संविकल्प्येत्युपायं सा व्याघुट्य स्वगृहं गता ॥१०२॥
चेलिन्या सह सर्वेऽपि निर्जग्मुस्तत्रसोद्यमाः। ततस्तां रथ संरूढां विधायागुः पुरं निजम् ॥१०३॥

तो मगधेश हमारे पति हो सकते हैं क्योंकि कहाँ तो महाराज श्रेणिक और कहाँ हम ? कृपाकर आप कोई ऐसी युक्ति सोचिये, जिसमें मगधेश हमारे स्वामी हों। याद रखिये जब तक महाराज श्रेणिक हमें न मिलेंगे तब तक न तो हम संसार में सुखी रह सकेगी और न हमें निद्रा ही आवेगी, विशेष कहाँ तक कहा जाये महाराज श्रेणिक के वियोग में अब हमें संसार दुःखमय ही प्रतीत होने लगेगा।

कन्याओं के ऐसे लालसा-भरे वचन सुन कुमार अति प्रसन्न हुए। अपने कार्य की सिद्धि जान मारे हर्ष के उनका शरीर रोमांचित हो गया। कन्याओं को आश्वासन दे शीघ्र ही उन्हें वहाँ से चंपत किया और अपने महल से राजमंदिर तक कुमार ने शीघ्र ही एक सुरंग तैयार करने की आज्ञा दे दी। कुछ दिन बाद सुरंग तैयार हो गई। कुमार ने सुरंग के भीतर अपने महल से राजमहल तक एक रस्सी बँधवा दी और गुप्त रीति से कन्याओं के पास भी समाचार भेज दिया ॥९३-९७॥

कुमार की यह युक्ति देख कन्या अति प्रसन्न हुई। किसी समय अवसर पाकर उन तीनों कन्याओं ने सुरंग से जाने का पूरा-पूरा इरादा कर लिया और वे सुरंग के पास आ गई किन्तु ज्यों ही वे तीनों सुरंग में घुसीं सुरंग में अँधेरा देख ज्येष्ठा और चंदना तो एकदम घबरा गई। उन्होंने सोचा हमें इस मार्ग से जाना ठीक नहीं क्योंकि प्रथम तो इसमें गाढ़ अंधकार है इसलिए जाना कठिन है। द्वितीय, यदि हमारे पिता सुनेंगे तो हम पर नाराज होंगे। इसलिए ज्येष्ठा तो अपना हार का बहाना कर वहाँ से लौट आई और चंदना अपनी मुद्रिका का बहाना बनाकर लौटी। अकेली बेचारी चेलना रह गई उसको कुमार ने शीघ्र ही खींच लिया और उसे रथ में बिठाकर तत्काल राजगृह नगर की ओर प्रयाण कर दिया ॥९८-१०२॥

विशाला नगरी से जब रथ कुछ दूर निकल आया। कुमारी चेलना को अपने माता-पिता की हुड़क आई। वह उनकी याद कर रुदन करने लगी किन्तु अभयकुमार ने उसे समझा दिया जिससे उसका रुदन शांत हो गया एवं ये समस्त महानुभाव कुछ दिन बाद आनंदपूर्वक मगध देश में आ

मातृ पित्रादिसंमोहं दधती निजमानसे। उद्धीरिताऽभयेनेव चचाल रथसंगता ॥१०४॥
ततः सत्वरमासाद्य स्वदेशं मगधं शुभम्। सोत्कंठिता बभूवुस्ते विमुक्तभयविग्रहाः ॥१०५॥
आगच्छंतीं समाकर्ण्य श्रेणिकोर्द्धपथं मुदा। आजगाम महाभूत्या सन्मुखं सुखसंगतः ॥१०६॥
विलोक्य तनुजं रम्यं पप्रच्छ पूर्ववृत्तकम्। आालिंगनादिकं प्राप्य तुतोष स्वतुजा समं ॥१०७॥
प्रेक्ष्य चंद्राननां तन्वीं चेलनीं चेलसंगताम्। मृगाक्षीं रतिमापन्नः कदर्यश्च महानिधिं ॥१०८॥
अवीविशत्पुरं राजा जिनदासस्य सद्गृहे। श्रेष्ठिनो धर्मरक्तस्य तां मुमोच शुभाप्तये ॥१०९॥
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभे योगे सुवासरे। क्षणेन तां महीपालोऽवीवरन्मृगलोचनां ॥११०॥
ततः पटहनादेन कुर्वन्भवनमाकुलम्। तया जगाम सद्धाम रत्या वा मीनकेतनः ॥१११॥
प्रेक्षमाणो जनैः सर्वैर्मुखरैर्जयनादतः। मेने जन्म सुसाफल्यं तया भूभृद्विशांपतिः ॥११२॥
ततो ददौ पदं देव्यै महिष्याः स्नापयन्जलैः। दुंदुभ्यानकनादेन ख्यापयंस्तत्पदं नृपः ॥११३॥
निशांते सप्तभूमं च गवाक्षादि सुतोरणम्। स्वर्णजं रत्नसंबद्ध धरं तस्यै गुहं ददौ ॥११४॥
स शर्म नितरां लेभे कथया कथ्यमानया। गतिवीक्षणतश्चैव मुखालोकनतः क्वचित् ॥११५॥
रतिजं हास्यजं शर्म संगजं कुचमर्दनम्। तयोर्नव्यमहारंभयौवनप्रेमबद्धयोः ॥११६॥

पहुँचे। किसी दूत के मुख से महाराज को यह पता लगा कि कुमार आ रहे हैं उनके साथ कुमारी चेलना भी है। शीघ्र ही बड़ी विभूति से वे कुमार के सामने आये। कुमार के मुख से उन्होंने सारा वृत्तांत सुना। कुमार को छाती से लगा महाराज अति प्रसन्न हुए। कुमार के साथ जो अन्यान्य सज्जन थे, उनके साथ भी महाराज ने अधिक स्नेह प्रकट किया। जिस समय मृगनयनी चंद्रवदनी कुमारी चेलना पर महाराज की दृष्टि गई तो उस समय तो महाराज के हर्ष का पारावार न रहा। दरिद्री पुरुष जैसे निधि को देख एक विचित्र आनंदानुभव करने लगता है। चेलना को देख महाराज की भी उस समय वैसी ही दशा हो गई।

इस प्रकार कुछ समय वार्तालाप कर सभी जनों ने राजगृह नगर में प्रवेश किया। महाराज की आज्ञानुसार कुमारी चेलना सेठ इन्द्रदत्त के घर उतारी गई। किसी दिन शुभ मुहूर्त एवं शुभलग्न में महाराज का विवाह हो गया। विवाह के समय समस्त दिशाओं को बधिर करने वाले बाजे बजने लगे। बंदीजन महाराज की उत्तमोत्तम पद्यों में स्तुति करने लगे। महाराज के विवाह से नगर-निवासियों को अति प्रसन्नता हुई। चेलना के विवाह से महाराज ने भी अपने जन्म को धन्य समझा। विवाह के बाद महाराज ने बड़े गाजे-बाजे के साथ रानी चेलना को पटरानी का पद दिया एवं राजमंदिर में किसी उत्तम मकान में रानी चेलना को ठहराकर प्रीतिपूर्वक महाराज उसके साथ भोग भोगने लगे। कभी तो महाराज को रानी चेलना के मुख से कथा-कौतूहल सुन परम संतोष होने लगा, कभी महाराज को रानी चेलना की हंसिनी के समान गति एवं चंद्र के समान मुख देख अति प्रसन्नता हुई, कभी महाराज चेलना के हास्योत्पन्न सुख से सुखी होने लगे, कभी-कभी महाराज को रतिजन्य सुख सुखी करने लगा और कभी चेलना के प्रति अंग की सुघड़ाई महाराज

चंदनैः क्रीड़नैः काव्यै रागकोपोपहापनैः। तौ रेमाते महाप्रीतावभिन्ननिजजीविनौ ॥११७॥
मारोद्दीपनतत्परौ जितसुरौ संसारसाताब्धिगौ प्रेमाबद्ध मनोदृशौ विशदृशाऽभिप्रायमुक्तौ शुभौ।
शक्रक्रीड़न कामिनौ कृत कथा काव्यादिसत्कौशलौ रेजाते वरभोगसंगमविधौ तौ च प्रसिद्धौ सदा ॥११८॥

क्व चेलना चेटकराजपुत्रिका सुमार्गसद्देशनभावसूचिका।
क्व मागधो धर्म विदूरमानसः क्व सिंधुदेशः क्व च राजमंदिरं ॥११९॥
क्व चापहारोऽभयदेवसंकृतः सुचेलनायाः क्व च देशमोचनम्।
कथं विमोहः परभूपसंभवै-र्विधेर्विलासो भुवि दुर्घटो भवेत् ॥१२०॥
करोति मार्गं सुगमं विधिः सताम् ससन्मुखश्चेत् कुरुतेऽन्यथा पुनः।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य वैकुर्यात्प्रयत्नं विधिसिद्धये पुनः ॥१२१॥

इति श्रेणिक भवानुबद्ध भविष्यत्पद्मनाभपुराणे भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचिते चेलना श्रेणिक विवाह वर्णनम् अष्टमः सर्गः॥ ८॥

को सुखी करने लगी। जिस समय राजा रानी पास में बैठते थे, उस समय इनमें और इन्द्र-इन्द्राणी में कुछ भी भेद देखने में नहीं आता था। ये आनंदपूर्वक इन्द्र इन्द्राणी के समान ही भोग-विलास करते थे। रानी चेलना एवं राजा श्रेणिक के शरीर ही भिन्न थे, किन्तु मन उनका एक ही था। लोग ऐसा आपसी घनिष्ठ प्रेम देख दोनों को सुख की जोड़ी कहते थे और बराबर दोनों के पुण्य फल की प्रशंसा करते थे ॥१०३-११८॥

भाग्य की महिमा अनुपम है। देखो कहाँ तो राजा चेटक की पुत्री चेलना? और कहाँ जिनधर्म रहित महाराज श्रेणिक ? कहाँ तो सिंधु देश में विशालपुरी? और राजगृह नगर कहाँ? तथा कहाँ तो अभयकुमार द्वारा चेलना का हरण ? और कहाँ महाराज श्रेणिक के साथ संयोग ? इसलिए मनुष्य को अपने भाग्य पर भी अवश्य भरोसा रखना चाहिए क्योंकि भाग्य में पूर्णतया फल एवं अफल देने की शक्ति मौजूद है। जीवों को शुभ भाग्य के उदय से परमोत्तम सुख मिलते हैं और दुर्भाग्य के उदय से उन्हें दुःखों का सामना करना पड़ता है। नरकादि गतियों में जाना पड़ता है ॥११९-१२१॥

इस प्रकार भविष्यकाल में होने वाले तीर्थंकर पद्मनाभ के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित चेलना के साथ विवाह-वर्णन करने वाला अष्टम सर्ग समाप्त हुआ।

नवमः सर्गः

संसिद्धार्थाः प्रशस्तार्थसन्मुख्यत्वमुपागताः। रत्नत्रयावलिप्ता नः प्रीणंतु शुभसाधवः ॥१॥
अथ सा तद्गृहाचारमेकदा वृषवर्जितम्। हिंस्यहिंसक - भावाद्यं जन्यरक्षणवर्जितम् ॥२॥
कुदेवभक्तिसंरूढं समूढं समदाष्टकम्। जठराग्निकृतावेशं वीक्ष्येति हृद्यचिंतयत् ॥३॥
वंचिता नूनमभयैः प्रतारणपरायणैः। वचोभिर्जिनश्रेयस्कं प्रदर्श्याहं विमानसा ॥४॥
जिनस्य सुकृतं यत्र समस्ति तद्गृहं मतम्। अन्यथा नीडप्रख्यं तत् त्रिवर्गफलवर्जनात् ॥५॥
विभवेन किमत्राहोऽशुभोदर्कदायिना। भोगेन भोगितुल्येन किं साध्यं धर्मवर्जिना ॥६॥
विधनत्वं वरं लोके सवृषस्य च देहिनः। न चक्रवर्तिता रम्या वृषत्यक्ताऽशुभावहा ॥७॥
विधवत्वं वरं मन्ये भर्त्रा मिथ्यात्वचेतसा। समं न क्षणमेकं च वासो विद्वेषकारिणा ॥८॥

कृतकृत्य समस्त कर्मों से रहित होने के कारण परम पूजनीय सम्यग्दर्शनादि तीनों रत्नत्रय से भूषित श्रीसिद्ध भगवान् हमारी रक्षा करें ॥१॥

अनंतर इसके रानी चेलना आनंदपूर्वक महाराज श्रेणिक के साथ भोग-भोग रही थी। अचानक ही जब उसने यह देखा कि महाराज श्रेणिक का घर परम पवित्र जैनधर्म से रहित है। महाराज घर में हिंसा की पुष्ट करने वाले तीन मूढ़ता सहित, ज्ञान-पूजा आदि आठ अभिमान युक्त एवं उभयलोक में दुःख देने वाले बौद्ध धर्म का अधिकतर प्रचार है। तो उसे अति दुःख हुआ। वह सोचने लगी- हाय, पुत्र अभयकुमार ने बुरा किया मेरे नगर में छल से जैन धर्म का वैभव दिखा मुझ भोली-भाली को ठग लिया क्योंकि जिस घर में श्री जिन धर्म की भली प्रकार प्रवृत्ति है। उनके गुणों का पूर्णतया सत्कार है। वास्तव में वही घर उत्तम घर है किन्तु जहाँ जिन धर्म की प्रवृत्ति नहीं है वह घर कदापि उत्तम नहीं हो सकता। वह मानिंद पक्षियों के घोंसले के समान हैं।

यदि मैं महाराज श्रेणिक के इस अलौकिक वैभव को देख अपने मन को शांत करूँ सो भी ठीक नहीं क्योंकि पराभव में मुझे इससे घोरतर दुःखों की ही आशा है अथवा मैं अपने मन को इस रीति से कहलाऊँ कि महाराज श्रेणिक के घर में मुझे अनन्य लभ्य भोग भोगने में आ रहे हैं, यह भी अनुचित है क्योंकि ये भोग मानिंद भयंकर भुजंग के मुझे परिणाम में दुःख ही देंगे। भोगों का फल नरक तिर्यंच आदि गतियों की प्राप्ति है। उनमें मुझे जरूर ही जाना पड़ेगा एवं वहाँ पर घोरतर वेदनाओं का सामना करना पड़ेगा संसार में धर्म होवे धन न होवे तो धर्म के सामने धन का न होना तो अच्छा किन्तु बिना धर्म के अतिशय मनोहर, सांसारिक सुख का केन्द्र चक्रवर्तीपना भी अच्छा नहीं। संसार में मनुष्य विधवापन को बुरा कहते हैं किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। विधवापन सर्वथा बुरा नहीं क्योंकि पति यदि सन्मार्गगामी हो और वह मर जाये तब तो विधवापन बुरा है किन्तु पति जीता हो और वह मिथ्यामार्गी हो तो उस हालत में विधवापना सर्वथा बुरा नहीं है ॥२-८॥

वंध्यात्वं वनेवासः पतनं च दवानले। कालकूटाशनं नीरनाथे झंपा न पापदा ॥९॥
अहिवक्त्रे करोत्क्षेपो मरणं रणमंडले। एतत्सर्वं वरं नैवाश्रेयसं जीवितं क्वचित् ॥१०॥
भुजंगेन समं केलिर्नाशर्मफलदायिका। वृषत्यक्तेन भर्त्रा च नानोत्पत्त्यशुभप्रदा ॥११॥
अहो कष्ट महो कष्टमहोपापं मया कृतम्। अहो अशर्मसंतापोऽहो अहो क्व च धर्मता ॥१२॥
अहो अभयपुत्रेण वंचिता मुग्धमानसा। अबला यत्प्रोच्यते सद्भिस्तत्सत्यं सत्यमेव च ॥१३॥
पर वंचनसंशक्ता नराः प्रायेण पापिनः। धूर्त्ताश्च कथिता शास्त्रे प्रतीत्या सत्यमेव तत् ॥१४॥
इति चित्ते विमृश्याशु तूष्णीत्वं समुपागता। भुनक्ति सा न जल्पादि विदधाति न केनचित् ॥१५॥
कुर्वंती स्वतिरस्कारं पठंती जिनशासनम्। पूजयंती जिनेंद्रं च स्मरंति जनकादिकं ॥१६॥
न पश्यामि न पश्यामि गुरुं निर्ग्रन्थनायकं। पश्यामि जठराग्निं च चिंतयंतीति सा स्थिता ॥१७॥

संसार में बाँझ रहना अच्छा। भयंकर वन का निवास भी उत्तम। अग्नि में जलकर और विष खाकर मर जाना भी अच्छा तथा अजगर के मुख में प्रवेश और पर्वत से गिरकर मर जाना भी अच्छा एवं समुद्र में डूबकर मर जाने में भी कोई दोष नहीं। किन्तु जिन धर्म रहित जीवन अच्छा नहीं। पति चाहे अन्य उत्तमोत्तम गुणों का भंडार हो। यदि वह जिनधर्मी न हो तो किसी काम का नहीं क्योंकि कुमार्गगामी पति के सहवास से, उसके साथ भोग भोगने से दोनों जन्म में अनेक प्रकार के दुःख ही भोगने पड़ते हैं। हाय बड़ा कष्ट है। मैंने पूर्व भव में कौन घोर पाप किया था। जिससे इस भव में मुझे जैनधर्म से विमुख होना पड़ा। हाय अब मेरा एक प्रकार से जैन धर्म से सम्बन्ध छूट-सा ही गया। हे दुर्दैव! तू मुझसे कब-कब के किये गये पापों का बदला ले रहा है। पुत्र अभयकुमार! क्या मुझे भोली बातों में फँसाकर ऐसे घोर संकट में डालना आपको योग्य था ? अथवा कवियों ने जो स्त्रियों को अबला कहकर पुकारा है सो सर्वथा ठीक है। ये बेचारी वास्तव में अबला ही है। बिना समझे-बुझे ही दूसरों की बात पर चट विश्वास कर बैठती है और पीछे पछताती है।

हे दीनबन्धु! जो मनुष्य प्रिय वचन बोल दूसरे भोले जीवों को ठग लेते हैं। संसार में कैसे उनका भला होता होगा ? फुसलाकर दूसरों को ठगने वाले संसार में महापातकी गिने जाते हैं तथा ऐसा चिरकाल पर्यंत विचार कर रानी चेलना ने मौन धारण कर लिया एवं एकांत स्थान में बैठ करुणाजनक रुदन करने लगी। रानी चेलना की ऐसी दशा देख समस्त सखियाँ घबरा गई। चेलना की चिंता दूर करने के लिए उन्होंने अनेक उपाय किये किन्तु कोई भी उपाय सफल नहीं हुआ। यहाँ तक कि रानी चेलना ने सखियों के साथ बोलना भी बन्द कर दिया। वह बारबार अपने जीवन की निन्दा करने लगी। जिनेन्द्र भगवान् की मानसिक पूजा और उनके स्तवन में उसने अपना मन लगाया एवं इस दुःख से बार-बार उसे अपने माता-पिता की याद आई तो वह रोने भी लगी ॥९-१७॥

कुतश्चित्तादृशां श्रुत्वा तां तन्वंगीं मृदुस्तनीं। आजगाम नृपो वेगात् तत्सद्म व्याकुलाशयः ॥१८॥
आहूय तां नृपोऽवादीत् प्रिये त्वं केन हेतुना। दुःखस्थामीदृशां प्राप्ता मच्चित्तोत्क्षेपकारिणीम् ॥१९॥
अतः पूर्वं प्रिये बाले त्वद्वचो नाकृतं मया। अद्यप्रभृति कुर्वेऽहं वचस्ते नियमेन वै ॥२०॥
मद्गृहे येन केनापि कया वा मर्मकृद्वचः। जल्पितं यदि ते ब्रूहि तस्य दण्डं करोम्यहं ॥२१॥
त्वयीदृशि प्रिये नूनं मृतिर्मे नियमाच्छुभे। मत्प्राणार्द्धसमां वेद्मि त्वां मज्जीवगृहोपमां ॥२२॥
दुःखिन्यां त्वयि मे दुःखं दुःस्थितायां च दुःस्थिता। दुःखिन्यां त्वयि मे धाम्नि किंचिन्न स्थितं मम ॥२३॥
अतः कथय मत्प्राणतुल्ये पूर्णेंदुसन्मुखे। प्रसीद मुंच कालुष्यं विधेहि शुभसत्क्रियां ॥२४॥
ततो यथा कथंचिच्च वचोऽभाणितयाशुभम्। नाऽशर्मपरजं राजन् किन्तु धर्मोद्भवं मम ॥२५॥

रानी चेलना की चिंता का समाचार महाराज श्रेणिक के कान तक पहुँचा। अति व्याकुल हो वे शीघ्र ही चेलना के पास आये। चेलना को मौन धारण देख उन्हें अति दुःख हुआ। रानी चेलना के सामने वे विनय भाव से इस प्रकार कहने लगे–प्रिये! आज तुम्हारी अचानक यह दशा कैसे हो गई ? जब मैं तुम्हारे मंदिर में आता था तो तुमको सदा प्रसन्न ही देखता था। मैंने आज तक कभी आपके चित्त पर ग्लानि न देखी और उस समय तुम मेरा पूरा–पूरा सम्मान भी करती थीं। आज तुमने मेरा सम्मान भी बिसार दिया। आज तक मैंने तुम्हारा कोई कहना भी न टाला। जिस समय मैं तुम्हारा किसी काम के लिए आग्रह देखता था फौरन करता था तथापि यदि मुझसे तुम्हारी अवज्ञा हो गई हो तो क्षमा करो अब तुम्हारी अवज्ञा न की जायेगी। मैं तुम्हारा अब कहना मानूँगा। यदि राजमंदिर में किसी ने तुम्हारे प्रति कटुवचन कहे, तुम्हारी आज्ञा नहीं मानी है। सो भी मुझे कहो मैं अभी उसे दण्ड देने के लिए तैयार हूँ। शुभे! मुझसे थोड़ी–सी तो बातचीत करो। मैं तुम्हारी ऐसी दशा देखने के लिए सर्वथा असमर्थ हूँ। तुम्हारी इस अवस्था ने मुझे अर्धमृतक बना दिया है। तुम्हें मैं अपने आधे प्राण समझता हूँ। तू मेरे जीवनरूपी घर के लिए विशाल स्तम्भ है।

शुभानने! तेरी दुःखमय अवस्था मुझे भी दुःखमय बना रही है। तेरे दुःखित होने पर यह समस्त राजमंदिर मुझे दुःखमय ही प्रतीत हो रहा है। पूर्ण चन्द्रानने! तू शीघ्र अपने दुःख का कारण कह शीघ्र ही अपनी मनोमलिनता दूर कर! और जल्दी प्रसन्न हो ॥१८–२४॥

महाराज श्रेणिक के ऐसे मनोहर वचन सुनकर भी प्रथम तो रानी चेलना ने कुछ भी जवाब न दिया किन्तु जब उसने महाराज का प्रेम एवं आग्रह अधिक देखा तब वह कहने लगी–जीवननाथ! इस समय जो आप मुझे चिंता युक्त देख रहे हैं। इस चिंता का कारण न तो आप हैं और न कोई दूसरा मनुष्य है। इस समय मुझे चिंता किसी दूसरे ही कारण से हो रही है तथा वह कारण मेरा जैनधर्म का छूट जाना है। कृपानाथ! जब से मैं इस राजमंदिर में आई हूँ एक भी दिन मैंने इसमें निर्ग्रन्थ मुनि को नहीं देखा! राजमंदिर में उत्तम धर्म की ओर किसी की दृष्टि नहीं। मिथ्या धर्म का अधिकतर प्रचार है। सब लोग बौद्धधर्म को ही अपना हितकारी धर्म मान रहे हैं किन्तु यह उनकी

अधर्मं त्वद्गृहे वीक्ष्य राजन् दुःखं ममाभवत्। न त्वज्जं न च बंधूत्थमाकर्ण्येति नृपो जगौ ॥२६॥
राज्ञि मद्धाम्नि सद्धर्मो वर्त्तते शर्मसाधकः। ताथागतोऽस्ति मे देवो विश्वविज्ञानपारगः ॥२७॥
भगवान्गुरुरेवात्र सेव्यो भूपैर्नरोत्तमैः। तत्सेवया सुखं राज्ञि फलं स्वर्मोक्षसंभवं ॥२८॥
महिषी वचनं प्राह ततो राजन्नराधिप। जिनधर्मं विना धर्मो नाऽन्यो लोकत्रये मतः ॥२९॥
नानाजंतुदयापूर्णः केवलज्ञानिभाषितः। धर्मो नाकं शिवं दत्ते राध्यमानो नरोत्तमैः ॥३०॥
अष्टादशमहादोषकोशमुक्तः शिवप्रदः। केवलज्ञाननेत्राढ्यो देवो लोके विरागद्विट् ॥३१॥
तत्वं वा भाति जीवादिपरीक्षाक्षममुन्नतम्। जिनैरभाणि सन्माननयनिक्षेपनिश्चितम् ॥३२॥
कथंचिन्नित्यतारूढं स्यादनित्यं द्वयं तथा। स्यादवक्तव्यमित्यादिभंगरूढमनंतयुक् ॥३३॥
सर्वथानित्यरूपादि हन्यमानं प्रमाणतः। तत्वमर्थक्रियाभावाद्विचारं सहते न च ॥३४॥

बड़ी भारी भूल है क्योंकि यह धर्म नहीं कुधर्म है। जीवों को कदापि इससे सुख नहीं मिल सकता। रानी चेलना के ऐसे वचन सुन महाराज अति प्रसन्न हुए। उन्होंने इस प्रकार गम्भीर वचनों में रानी के प्रश्न का उत्तर दिया–प्रिये! तुम यह क्या ख्याल कर रही हो? मेरे राजमंदिर में सद्धर्म का ही प्रचार है। दुनिया में यदि धर्म है तो यही है। यदि जीवों को सुख मिल सकता है तो इसी धर्म की कृपा से मिल सकता है। देख! मेरे सच्चे देव तो भगवान् बुद्ध हैं। भगवान् बुद्ध समस्त ज्ञान–विज्ञानों के पारगामी हैं। इनसे बढ़कर दुनिया में कोई देव उपास्य और पूज्य नहीं। जो पुरुष उत्तम पुरुष हैं, अपनी आत्मा के हित के आकांक्षी हैं, उन्हें भगवान् बुद्ध की ही पूजा–भक्ति एवं स्तुति करनी चाहिए क्योंकि हे प्रिये! भगवान् बुद्ध की ही कृपा से जीवों को सुख मिलते हैं और इन्हीं की कृपा से स्वर्ग–मोक्ष की प्राप्ति होती है। महाराज के मुख से इस प्रकार बौद्धधर्म की तारीफ सुन रानी चेलना ने उत्तर दिया ॥२५–२८॥

प्राणनाथ! आप तो बौद्धधर्म की इतनी तारीफ कर रहे हैं सो बौद्धधर्म इतनी तारीफ के लायक है ही नहीं। उससे जीवों का जरा भी हित नहीं हो सकता। दुनिया में सर्वोत्तम धर्म जैनधर्म ही है। जैनधर्म छोटे–बड़े सब प्रकार के जीवों पर दया के उपदेश से पूर्ण है। इसका वर्णन केवली भगवान् के केवलज्ञान से हुआ है। जो भव्य जीव इस परम पवित्र धर्म की भक्तिपूर्वक आराधना करता है। नियम से उसे आराधना के अनुसार फल मिलता है तथा हे कृपानाथ! इस जैनधर्म में क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषों से रहित, समस्त प्रकार के परिग्रहों से विनिर्मुक्त केवलज्ञानी एवं जीवों को यथार्थ उपदेशदाता तो आप्त कहा गया है और भली प्रकार परीक्षित जीव, अजीव, आस्रव आदि सात तत्त्व कहे हैं। प्रमाण, नय, निक्षेप आदि संयुक्त इन सप्त तत्त्वों का वर्णन भी केवली भगवान् की दिव्यध्वनि से हुआ है। ये सातों तत्त्व कथंचित् नित्यत्व और कथंचित् अनित्यत्व इत्यादि अनेक धर्मस्वरूप हैं। यदि एकान्त रीति से ये सर्वतत्त्व सर्वथा नित्य और अनित्य ही माने जाएँ तो इनके स्वरूप का भली प्रकार परिज्ञान नहीं हो सकता और हे स्वामिन्! जो साधु निर्ग्रंथ,

निर्ग्रंथा साधवो जैनाः शर्मादिगुणगुंठिताः। गुरवो रागमोहादि हंतारस्तपसान्विताः ॥३५॥
परीषहसहाः कांतत्यक्तवस्त्रादिविग्रहाः। वंदनीयाः सतां पूज्या नाऽन्ये लोभादिमंडिताः ॥३६॥
अहिंसा परमो धर्मः स्वर्गमोक्षादिसाधकः। अहिंसा परमं ज्ञानमहिंसा परमं तपः ॥३७॥
पूर्वं जीवादिसद्भेदे मत्वा तद्रक्षणं ततः। कार्यं सुकृतसंसिद्ध्यै कांत! स्वस्य हिताप्तये ॥३८॥
न जहामि वृषं जैनं प्राणांते प्राणवल्लभ! धर्मादमुत्र सातं स्याज्जिनधर्मादृते नहि ॥३९॥
निरूप्येति स्थिता राज्ञी तूष्णीगभूयता च सा। बभाण राज्ञि ते राजा रोचते यच्च तत्कुरु ॥४०॥
असातं मा विधेहि त्वं विराम इति भूपतौ। सोत्कंठिता शुभा राज्ञी जिनधर्मं चकार च ॥४१॥
जिनार्चां पूजयामास क्षणेन महता समम्। चतुर्दश्यां कदाचिच्च रात्रिजागरणं व्यधात् ॥४२॥
नृत्येन वाद्यनादेन गीतेन वंशवादनैः। कुर्वंती जिनकल्याणं पठंती सा जिनागमं ॥४३॥
निशांतं जिनसद्धर्ममयं चक्रे स्वबुद्धितः। पंचसन्नुतिवाचालं सद्ध्यापेशलं शुभम् ॥४४॥

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आादि उत्तमोत्तम गुणों के धारी, मिथ्या अन्धकार को हटाने वाले, राग, द्वेष, मोह आदि शत्रुओं के विजयी, बाह्याभ्यंतर दोनों प्रकार के तप से विभूषित भली प्रकार परिषहों के सहन करने वाले एवं नग्न दिगम्बर हैं। वे इस जैनागम में गुरु माने गये हैं।

तथा भो प्रभो! जिससे किसी प्रकार के जीवों के प्राणों को त्रास न हो ऐसा इस जैन सिद्धान्त में अहिंसा परम धर्म माना गया है। इसी धर्म की कृपा से जीवों का कल्याण हो सकता है।

दयासिंधो! यह थोड़ा-सा जैन धर्म का स्वरूप मैंने आपके सामने निवेदन किया है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन सिवाय भगवान् केवली के दूसरा कोई नहीं कर सकता। अब आप ही कहें ऐसे परम पवित्र धर्म का किस रीति से परित्याग किया जा सकता है। मेरा विश्वास है जो जीव इस जैन धर्म से विमुख एवं घृणा करने वाले हैं। वे कदापि भाग्यशाली नहीं कहे जा सकते ॥२९-३९॥

रानी चेलना के मुख से इस प्रकार जैन धर्म का स्वरूप ग्रहण कर महाराज निरुत्तर हो गये। उन्होंने और कुछ न कहकर महारानी से यही कहा-प्रिये! जो तुम्हें श्रेयस्कर मालूम पड़े, वही काम करो किन्तु अपने चित्त पर किसी प्रकार की ग्लानि न लाओ। मैं यह नहीं चाहता कि तुम किसी प्रकार से दुःखित रहो।

महाराज के मुख से ऐसा अनुकूल उत्तर पाकर रानी चेलना अति प्रसन्न हुई। अब रानी चेलना निर्भय हो जैन धर्म की आराधन करने लगी। कभी तो रानी चेलना ने भक्ति-भाव से भगवान् का पूजन करना प्रारंभ कर दिया और कभी वह अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों में उपवास और रात्रि-जागरण भी करने लगी तथा नृत्य और उत्तमोत्तम गद्य-पद्यमय गायनों से भी उसने भगवान् की स्तुति करनी प्रारंभ कर दी। जैनशास्त्रों का वह प्रतिदिन स्वाध्याय करने लगी। रानी चेलना को इस प्रकार धर्म पर आरूढ़ देख समस्त अंतःपुर उसके धर्मात्मापने की तारीफ करने

भगवंतः समाकर्ण्य तथा तं व्याकुलं नृपम्। भेणुः संमर्षसंदीप्ता भोभूभृद्धो विशांपते ॥४५॥
राज्ञ्या विधीयते जैनः स्वयं धर्मः कथंचन। कार्यते चापरेषां वै धर्मो जीवदयामयः ॥४६॥
त्याज्यते सौगतो धर्मः किं कर्त्तव्यं नृपाधिप! अनया कार्यते श्रेयो जैनं वंचनविद्यया ॥४७॥
नृपोऽभाणीन्महाप्रीत्या बोधनीया बुधोत्तमाः। भवद्भिरेषिका तूर्णं नान्यथा धर्मसंस्थितिः ॥४८॥
भो! भूभृद्बोधयिष्यामस्तां शास्त्रादिसुविद्यया। पिटकत्रयवेत्तारो वयं विद्यानुगामिनः ॥४९॥
अभ्येत्य तां ततो बौद्धा मदोद्दीप्ता अवादिषुः। अस्माकीनो वृषः कार्यस्त्वया राज्ञि हिताप्तये ॥५०॥
गुरवो यत्र वर्त्तन्ते भावकाश्चेलवर्जिताः। पशुवल्लंघनारूढा ज्ञानविज्ञान वंचिताः ॥५१॥

लगा। यहाँ तक कि गिनती के ही दिनों में रानी चेलना ने समस्त राजमंदिर जैन धर्ममय कर दिया। कदाचित् बौद्ध साधुओं को यह पता लगा कि रानी चेलना जैनधर्म की परम भक्त है। राजमंदिर को उसने जैनधर्म का परम भक्त बना दिया है और नगर एवं देश में वह जैन धर्म प्रचारार्थ शक्ति-भर प्रयत्न कर रही है। वे शीघ्र ही दौड़ते-दौड़ते राजा श्रेणिक के पास आये और क्रोध में आकर महाराज श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगे ॥४०-४५॥

राजन्! हमने सुना है कि रानी चेलना जैन धर्म की परम भक्त है। वह बौद्ध धर्म को एक घृणित धर्म मानती है। बौद्धधर्म को धरातल में पहुँचाने के लिए वह पूरा-पूरा प्रयत्न भी कर रही है। यदि यह बात सत्य है तो आप शीघ्र ही इसके प्रतीकारार्थ कोई उपाय सोचे नहीं तो बड़े भारी अनर्थ की संभावना है। बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन महाराज ने और तो कुछ भी जवाब न दिया। केवल यही कहा-पूज्यवरो! रानी को मैं बहुत-कुछ समझा चुका। उसके ध्यान में एक भी बात नहीं आती। कृपाकर आप ही उसके पास जायें और उसे समझावें। यदि आप इस बात में विलंब करेंगे तो याद रखिये बौद्धधर्म की अब खैर नहीं। अवश्य रानी बौद्धधर्म को जड़ से उखाड़ने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही है।

महाराज के ऐसे वचनों ने बौद्ध गुरुओं के चित्त पर कुछ शांति का प्रभाव डाल दिया। उन्हें इस बात से सर्वथा दिल में तसल्ली हो गई कि चलो राजा तो बौद्धधर्म का भक्त है तथा उन्होंने शीघ्र ही राजा से कहा-राजन्! आप खेद न करें। हम अभी रानी को जाकर समझाते हैं। हमारे लिए यह बात कौन कठिन है? क्योंकि हम पिटकत्रय आदि अनेक ग्रंथों के भली प्रकार ज्ञाता हैं। हमारी जिह्वा सदा अनेक शास्त्रों का रंग स्थल बनी रहती है और भी अनेक विद्याओं के हम पारगामी हैं। ऐसा कहकर वे शीघ्र ही रानी चेलना के पास आये और इस प्रकार उपदेश देने लगे चेलने! हमने सुना है कि तू जैनधर्म को परम पवित्र धर्म समझती है और बौद्धधर्म से घृणा करती है। सो यह तेरा विचार सर्वथा अयोग्य है। तू यह निश्चय समझ, संसार में जीवों को हित करने वाला है तो बौद्धधर्म ही है। जैनधर्म से कदापि जीवों का कल्याण नहीं हो सकता। देख! ये जितने दिगम्बर मत के अनुयायी साधु हैं सो पशु के समान हैं क्योंकि पशु जिस प्रकार नग्न रहता है उसी

नग्नाः क्षपणका येऽत्र म्रियंतेऽमुत्र जन्मनि। तादृशा एव जायंते नग्ना नात्र विचारणा ॥५२॥
क्षुत् तृषाकुलिता येऽपि क्षुत्तृषाकुलितास्तके। भवंत्यमुत्र भो राज्ञि मान्यंते ते कथं त्वया ॥५३॥
वपंति यादृशं बीजं जनाः क्षेत्रे च तादृशं। तद्वल्लभंते भो राज्ञि! नान्यल्लभ्यं कदाचन ॥५४॥
ये भुंजंतीह सातं च स्त्रीजं भोजनसंभवम्। वस्त्रादिजं सदासारं भुंजंति परजन्मनि ॥५५॥
अतो बौद्धान्गुरून्राज्ञि मानयस्व विदावृतान्। पक्षं क्षापणकं मुक्त्वा परलोकाऽसुखावहम् ॥५६॥
इत्युदीर्य स्थिते बौद्धेऽवादीत्सा मारमंजरी। भवद्भिरित्थमावेदि कथं परभवोद्भवम् ॥५७॥

प्रकार ये भी नग्न फिरते रहते हैं। आहार के न मिलने से पशु जिस प्रकार उपवास करते हैं उसी प्रकार ये भी आहार के अभाव से उपवास करते हैं तथा पशु के समान ये अविचारित और ज्ञान-विज्ञान रहित भी हैं और हे रानी! दिगम्बर साधु-जैसे इस भव में दीन-दरिद्री रहते हैं परजन्म में भी इनकी यही दशा रहेगी। परजन्म में भी इन्हें किसी प्रकार के वस्त्र-भोजनों की प्राप्ति नहीं होगी। वर्तमान में जो दिगम्बर क्षुधा-तृषा आदि से व्याकुल दीखते हैं। परजन्म में भी नियम से ये ऐसे ही व्याकुल रहेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं तथा हे रानी! क्षेत्र में बीज बोने पर जैसा तदनुरूप फल उत्पन्न होता है। उसी प्रकार समस्त संसारी जीवों की दशा है। वे जैसा कर्म करते हैं नियम से उन्हें भी वैसा ही फल मिलता है। याद रखो यदि तुम इन भिक्षुक दिगम्बर दरिद्र मुनियों की सेवा-सुश्रूषा करोगी तो तुम्हें भी इन्हीं के समान परभव में दरिद्र एवं भिक्षुक होना पड़ेगा। इसलिए अनेक प्रकार के भोग भोगने वाले, वस्त्र आदि पदार्थों से सुखी, बौद्ध साधुओं की ही तू भक्तिपूर्वक सेवा कर। इन्हें ही अपना हितैषी मान जिससे परभव में तुझे अनेक प्रकार के भोग भोगने में आवें।

पतिव्रते! अब तुझे चाहिए कि तू शीघ्र ही अपने चित्त से जैन मुनियों की भक्ति निकाल दे। बुद्धिमान् लोग कल्याण-मार्गगामी होते हैं। सच्चा कल्याणकारी मार्ग भगवान् बुद्ध का ही है। बौद्ध गुरुओं का ऐसा उपदेश सुन रानी चेलना से न रहा गया। बड़ी गंभीरता एवं सभ्यता से उसने शीघ्र ही पूछा-बौद्ध गुरुओ! आपका उपदेश मैंने सुना किन्तु मुझे इस बात का संदेह रह गया, आप यह बात कैसे जानते हैं कि दिगम्बर मुनियों की सेवा से परभव में क्लेश भोगने पड़ते हैं, दीन-दरिद्री होना पड़ता है और बौद्ध गुरुओं की सेवा से यह एक भी बात नहीं होती। बौद्ध गुरु-सेवा से मनुष्य परभव में सुखी रहते हैं इत्यादि। कृपाकर मुझे शीघ्र कहें-रानी के इन वचनों को सुन बौद्ध गुरुओं ने कहा-चेलने! तुम्हें इस बात में संदेह नहीं करना चाहिए। हम सर्वज्ञ हैं। परभव की बात बताना हमारे सामने कोई बड़ी बात नहीं। हम विश्व-भर की बातें बता सकते हैं। बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी चेलना ने कहा-बौद्ध गुरुओ! यदि आप अखंड ज्ञान के धारक सर्वज्ञ हैं तो मैं कल आपको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर आपके मत को ग्रहण करूँगी। आप इस विषय में जरा भी संदेह न करें-रानी के मुख से ये वचन सुन बौद्ध गुरुओं को परम संतोष हो गया। हर्षित चित्त हो, वे शीघ्र ही महाराज के पास आये और सारा समाचार महाराज

इत्युक्ते राज्ञि ते प्राहुर्वयं ज्ञानपरायणाः। यथावद्विश्वमाविद्मः का वार्त्ताऽत्र भवादिजा ॥५८॥
राज्याऽभाणि यदीत्थं वै भवत्सुज्ञानमुत्तमम्। भोजयित्वाऽखिलान् बौद्धान् श्वो गृहीष्यामित्व द्वृषं ॥५९॥
ततः प्रमुदिताः सर्वेऽभूवन् राज्ञी प्रबोधनात्। सद्मैत्य नृपतिः शंसां चक्रे तस्याः प्रमोदतः ॥६०॥
त्वं धन्यासि महाराज्ञि सफलं तेऽद्य जन्म च। सफलं जीवितं तेऽद्य सद्धर्म्मग्रहात्प्रिये ॥६१॥
वित्तघोटकदेशादौ वाछां ते यत्र वर्त्तते। वांछ्यस्वाद्यचित्तस्थं तद्ददामि सुधर्मतः ॥६२॥

को कह सुनाया। बौद्ध गुरुओं के मुख से रानी का इस प्रकार वचन सुन महाराज भी अति प्रसन्न हुए। उन्हें भी पूरा विश्वास हो गया कि अब रानी जरूर बौद्ध बन जायेगी तथा रानी की भाँति-भाँति से प्रशंसा करते हुए महाराज शीघ्र ही उसके पास गये और उसके मुख पर भी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे ॥४६-६०॥

प्रिये! आज तुम धन्य हो। गुरुओं के उपदेश से तुमने बौद्ध धर्म धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली। शुभे! ध्यान रखो बौद्ध धर्म से बढ़कर दुनिया में कोई भी धर्म हितकारी नहीं। आज तेरा जन्म सफल हुआ। अब तुम्हें जिस बात की अभिलाषा हो, शीघ्र कहो। मैं अभी उसे पूर्ण करने के लिए तैयार हूँ तथा इस प्रकार कहते-कहते महाराज ने रानी चेलना को उत्तमोत्तम पदार्थ बनाने की शीघ्र ही आज्ञा दे दी।

महाराज की आज्ञा पाते ही रानी चेलना ने शीघ्र ही भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। लड्डू, खाजे आदि उत्तमोत्तम पदार्थ तत्काल तैयार हो गये। जिस समय महाराज ने देखा कि भोजन तैयार है, शीघ्र ही उन्होंने बड़े विनय से गुरुओं को बुलावा भेज दिया और राजमंदिर में उनके बैठने के स्थान का शीघ्र प्रबन्ध भी करा दिया।

गुरुगण इस बात की चिंता में बैठा ही था कि निमंत्रण आवे और कब हम राजमंदिर में भोजनार्थ चलें। ज्योंही निमंत्रण-समाचार पहुँचा। शीघ्र ही सभी ने अपने वस्त्र पहने और राजमंदिर की ओर चल दिये।

राजमंदिर में प्रवेश करते समय रानी चेलना ने उन्हें देखा तो उनका बड़ा भारी सम्मान किया। उनके गुणों की प्रशंसा की एवं जब वे बौद्ध गुरु अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। रानी चेलना ने नम्रता से उनका पाद-प्रक्षालन किया तथा उनके सामने उत्तमोत्तम सुवर्णमय थाल रखकर भाँति-भाँति के लड्डू, खीर, श्रीखंड, राजाओं के खाने योग्य भात, मूँग के लड्डू इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थों को परोस दिया और भोजन के लिए प्रार्थना भी कर दी। रानी की प्रार्थना सुनते ही गुरुओं ने भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। कभी तो वे खीर खाने लगे और कभी उन्होंने लड्डुओं पर हाथ जमाया। भोजन को उत्तम एवं स्वादिष्ट समझ वे मन-ही-मन अति प्रसन्न होने लगे और बार-बार रानी की प्रशंसा करने लगे।

ततोऽन्नपान पक्वान्नमोदकं व्यंजनान्वितम्। राज्ञ्या निष्पाद्य ते सर्वे आहूता निजमंदिरे ॥६३॥
सन्मानितास्तया सर्वे सिंहासन विधानतः। तत्प्रशंसा करैर्वाक्यैर्मानोन्मानादिदानतः ॥६४॥
सा तेषां पादधावादिकारयित्वा निजे निजे। पदे तान् स्थापयामास भुक्त्यै भोजनलोलुपान् ॥६५॥
नानाविधं च पक्वान्नं नानामोदकमंडकम्। पायसं लापनश्रीं च प्रबुराज्यं सपूपकम् ॥६६॥
तेभ्यो व्यंजनराशिं च राजभोग्यं समोदनम्। मुद्गादिकं मुमोचाशु ते भुंजंत्यतिलोलुपाः ॥६७॥
तत्परीक्षा कृते दक्षा तेषां वामांह्रिजां पराम्। उपानहमुपादायैकैकां खंडीचकार च ॥६८॥
तत्सूक्ष्मां शान्समादाय तक्राम्ले जतुकाकुले। निक्षिप्य मुद्गवेलायां तेभ्यस्तद्व्यंजनं ददौ ॥६९॥

जिस समय रानी ने बौद्ध गुरुओं को भोजन में अति मग्न देखा शीघ्र ही उसने अपनी प्रिय दासी बुलाई और यह आज्ञा दी। तू अभी राजमंदिर के दरवाजे पर जा और गुरुओं के बाएँ पैरों के जूते लाकर शीघ्र उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर मुझे दे।

रानी की आज्ञा पाते ही दूती चल दी। उसने वहाँ से जूता लाकर और उनके महीन टुकड़े कर शीघ्र ही रानी को दे दिये तथा रानी ने उन्हें शीघ्र ही किसी निकृष्ट छाछ में डाल दिया एवं उनमें खूब मसाला मिलाकर शीघ्र ही थोड़ा-थोड़ा कर गुरुओं के सामने परोस दिया।

जिस समय मधुर भोजनों से उनकी तबीयत अकुला गई तब उन्होंने यह समझा कि यह कोई अद्भुत चटपटी चीज है शीघ्र ही उन छाछ मिश्रित टुकड़ों को खा गये एवं भोजन के अन्त में रानी द्वारा दिये तांबूल, इलायची आदि चीजों को खाकर और सब के सब रानी के पास आकर इस प्रकार उसे उपदेश देने लगे-

सुन्दरी! देख तेरी प्रार्थना से हम सभी ने राजमंदिर में आकर भोजन किया है। अब तू शीघ्र ही बौद्धधर्म को धारण कर। शीघ्र ही अपनी आत्मा बौद्धधर्म की कृपा से पवित्र बना। अब तुझे जैनधर्म से सर्वथा सम्बन्ध छोड़ देना चाहिए।

बौद्ध गुरुओं का ऐसा उपदेश सुन रानी ने विनय से उत्तर दिया-श्री गुरुओ! आप अपने-अपने स्थानों पर जाकर विराजें। मैं आपके यहाँ आऊँगी और वहीं पर बौद्धधर्म धारण करूँगी। इस विषय में आप जरा भी सन्देह न करें। रानी चेलना के ऐसे विनय वचन सुन वे सब गुरु अति प्रसन्न हुए और अपने-अपने मठों को चल दिये।

जिस समय वे दरवाजे पर आये और ज्योंही उन्होंने अपने बाएँ पैर के जूतों को न देखा वे एकदम घबरा गये। आपस में एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे एवं कुछ समय इधर-उधर अन्वेषण कर वे शीघ्र ही रानी के पास आये और रानी से जूतों के बाबत कहा एवं रानी को डाँटने भी लगे कि तुझे गुरुओं के साथ हँसी नहीं करनी चाहिए। बौद्ध गुरुओं का यह चरित्र देख रानी हँसने लगी। उसने शीघ्र ही उत्तर दिया-गुरुओ! आप तो इस बात की डींग मारते थे कि हम सर्वज्ञ हैं। अब आपका यह सर्वज्ञपना कहाँ गया ? आप ही अपने ज्ञान से जाने कि आपके जूते कहाँ हैं। रानी के ऐसे वचन सुन बौद्ध बड़े छके।

सुस्वादतो विशेषेण बुभुजुस्ते च व्यंजनं। ततस्तक्रादिपर्यंतं जेमुस्ते साम्ल व्यंजनम् ॥७०॥
संचंचम्य तदा सर्वे गृहीत्वा पूगपत्रकं। आवादिषुः प्रमादेनेति गृहाण निजं वृषं ॥७१॥
राज्ञि त्वद्वाक्यतः सर्वैर्भूक्तं तद्धाम्नि वेगतः। उररीकुरु सद्धर्मं बौद्धं सत्सातसिद्धये ॥७२॥
इत्युक्ते सा वचोऽवादीद्गंतव्यं भो निजे मते। इदानीं भगवद्भिश्चा गमिष्यामि भवद्गृहम् ॥७३॥
करिष्यामि भवद्वाक्यं तत्र नात्र विचारणा। इति प्रोक्ते गृहं गंतुकामाः प्राणहितां निजां ॥७४॥
वामां न लोकयंति स्म सर्वे व्याकुलमानसाः। पृष्टेति सा क्व चैकैका राज्ञि प्राणहिता गता ॥७५॥
हास्यं नो गुरुभिः साकं विधेयं नृपवल्लभे। पादत्राणमतो देहि हास्यं योग्ये शुभं खलु ॥७६॥
आकर्ण्येति मृगाक्षी साऽभाणीद्धो बौद्धनायकाः। मत्वा बोधेन गृह्णंतु तां भवन्तश्च ज्ञानिनः ॥७७॥
नास्ति राज्ञीदृशं ज्ञानमस्मत्सु च तदा जगौ। यदीदृशं न विज्ञानं जानीध्वे मुग्धमानसाः ॥७८॥
दिगम्बरगतिं रम्यां कथं भो वंचनोद्यताः। अलीकभाषिणो यूयं सर्वमुग्धप्रतारकाः ॥७९॥
न जानीमो गतिं राज्ञि तेषां ज्ञानेन निश्चितं। उपानहो द्रुतं देहि यतोऽटामः स्वमंदिरम् ॥८०॥
भावत्कं वस्तु चास्त्येव भवत्पार्श्वेषु सौगताः। अस्माकं सन्निधौ नास्ति भवत्सु खलु विद्यते ॥८१॥
भो राज्ञि! चर्वितास्माभिः किं पुनः पुनरादरात्। भवदाराच्च वर्तेतेति प्रतिपाद्यते त्वया ॥८२॥

उनके चेहरों से प्रसन्नता तो कोसों दूर किनारा कर गई। अब रानी के सामने उनसे दूसरा तो कोई बहाना न बन सका। किन्तु लाचारी से यही जवाब देना पड़ा-सुन्दरी! हम लोगों में ऐसा ज्ञान नहीं कि हम इस बात को जान लें कि हमारे जूते कहाँ हैं? कृपा कर आप ही हमारे जूते बता दीजिए। बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी चेलना का शरीर मारे क्रोध के भभक उठा कुछ समय पहले जो वह अपने पवित्र धर्म की निंदा सुन चुकी थी। उस निंदा ने उसे और भी क्रोधित बना दिया। बौद्ध गुरुओं को बिना जवाब दिये उससे नहीं रहा गया, यह कहने लगी- ॥६१-७८॥

बौद्ध गुरुओ! जब तुम जिन धर्म का स्वरूप ही नहीं जानते तो तुम्हें उसकी निंदा करनी सर्वथा अनुचित थी। बिना समझे बोलने वाले मनुष्य पागल कहे जाते हैं। तुम लोग कदापि गुरुपद के योग्य नहीं हो। किन्तु भोले-भाले प्राणियों के वंचक असत्यवादी, मायाचारी एवं पापी हो। रानी के मुख से ऐसे कटु वचन सुनकर भी बौद्ध गुरुओं के मुख से कुछ भी जवाब न निकला। वे बार-बार उससे यही प्रार्थना करने लगे-कृपया आप हमारे जूते दे दें, जिससे हम आनंदपूर्वक अपने-अपने स्थान चले जायें। इस प्रकार बौद्ध गुरुओं की अब प्रार्थना विशेष देखी तो रानी ने जवाब दिया-बौद्ध गुरुओ! आपकी चीज आपके ही पास है और इस समय भी वह आपके ही पास है। आप विश्वास रखें आपकी चीज किसी दूसरे के पास नहीं। रानी चेलना के ये वचन सुनकर बौद्ध गुरु बड़े बिगड़े। वे कुपित हो, इस प्रकार रानी से कहने लगे-रानी, यह तू क्या कहती है ? हमारी चीज हमारे पास है, भला बता तो वह चीज कहाँ है? क्या हमने उसे चबा ली ? तुझे हम साधुओं के साथ कदापि ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी ने जवाब दिया।

भविष्यंति तथैवात्र दापयामि कुतो द्रुतं। इत्युक्ते ह्रियमाणास्ते चक्रुरन्योन्य लोकनं ॥८३॥
पादत्राणस्य किं जातं भक्षणं कृतछद्मना। वितर्क्येति च कोपेन वमितं तत्र सौगतैः ॥८४॥
ददृशुश्चर्मखंडानि तत्र ते चांगमे जयाः। ललज्जिरेऽजिनाशित्वान्निदयंतः स्वभोजनं ॥८५॥
जग्मुस्ततो निजावासं मन्यमानाः स्ववंचनम्। बौद्धा विबुद्धितां नीताः स्फीतलज्जापरायणाः ॥८६॥
श्रेणिकाग्रे निरूप्याशु महिषीसंभवं तदा। आसते निजसद्धाम्नि ते स्मरंतः पराभवं ॥८७॥
अन्यदा भूरिभूमीश सेवितांह्रिः नराधिपः। प्रशंसां स्वगुरोश्चक्रे मृगाक्ष्यग्रे स्वबुद्धितः ॥८८॥
पद्मनेत्रे शुभांगे च ज्ञानिनो विश्ववेदकाः। अस्मदीयाः परां काष्टां प्राप्ताश्च गुरवः पराः ॥८९॥
कदा विदंति संप्रश्ने राज्ञि ध्यानपरायणाः। आसते ते यदा सर्वे तदात्मानं शिवालयं ॥९०॥
नयंति परमं तत्त्वं गमयंति स्फुरत्प्रभाः। तदा सा महिषी प्राह तथास्थान् दर्शयस्व मे ॥९१॥

गुरुओ! आप घबराइए नहीं, आपकी चीज आपके पास है, मैं अभी उसे निकालकर देती हूँ। रानी के इन वचनों ने बौद्ध गुरुओं को बुद्धिहीन बना दिया। वे बार-बार सोचने लगे यह रानी क्या कहती है ? यह बात क्या हो गई ? मालूम होता है इस निर्दय रानी ने हमें जूतों का भोजन करा दिया तथा ऐसा विचार करते-करते उन्होंने शीघ्र ही क्रोध से वमन कर दिया।

फिर क्या था ? जूतों के टुकड़े तो उनके पेट में अभी विराजमान ही थे। ज्योंही वमन में उन्होंने जूतों के टुकड़े देखे, उनके होश उड़ गये। अब वे बार-बार रानी की निंदा करने लगे तथा रानी द्वारा किये हुए पराभव से लज्जित एवं अधोमुख हो वे शीघ्र ही महाराज की सभा में गये और जो-जो रानी ने उनका अपमान किया था, सारा महाराज को जा सुनाया एवं राजमंदिर में अति अनादर को पा, वे चुपचाप अपने-अपने स्थानों को चले गये। रानी के सामने उनके ज्ञान की कुछ भी कद्र नहीं हुई ॥७९-८७॥

कदाचित् राजगृह नगर में एक विशाल बौद्ध साधुओं का संघ आया। संघ के आगमन का समाचार एवं प्रशंसा महाराज के कानों में भी पड़ी। महाराज अति प्रसन्न हो शीघ्र ही रानी चेलना के पास गये और उन साधुओं की प्रशंसा करने लगे।

प्रिये मनोहरे! हमारे गुरु अतिशय ज्ञानी हैं, तप की उत्कृष्ट सीमा को प्राप्त हैं। समस्त संसार उनके ज्ञान में झलकता है और परम पवित्र हैं। मनोहरे! जब कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता है तो वे ध्यान में अतिशय लीन होने के कारण बड़ी कठिनता से उसका जवाब देते हैं। ध्यान से वे अपनी आत्मा को साक्षात् मोक्ष में ले जाते हैं एवं वे वास्तविक तत्त्वों के उपदेशक हैं और देदीप्यमान शरीर से शोभित हैं। महाराज के मुख से इस प्रकार बौद्ध साधुओं की प्रशंसा सुन रानी चेलना ने विनय से उत्तर दिया-

कृपानाथ! यदि आपके गुरु ऐसे पवित्र एवं ध्यानी हैं तो कृपा कर मुझे भी उनके दर्शन कराइये। ऐसे परम पवित्र महात्माओं के दर्शन से मैं भी अपने जन्म को पवित्र करूँगी। आप इस बात का विश्वास रखें यदि मेरी निगाह पर बौद्ध धर्म का सच्चापन जग गया और वे साधु सच्चे

अंगीकरोमि तद्धर्मं मत्वा तत्त्वं च सौगतं। प्रेक्षावंतो न गृह्णंत्यपरीक्ष्य सुकृतं यतः ॥९२॥
पक्षपाताच्च गृह्णंति ये वृषं युक्तिवर्जितम्। परीक्षाक्षममित्याहुस्तान् शठान्शठसंगतान् ॥९३॥
अतः परीक्ष्य नाथाद्याकर्ण्य तत्त्वं च सौगतम्। लास्यामि ते वृषं स्वामिन् दृष्ट्वा तान् ध्यानसंस्थितान् ॥९४॥
ततस्तदग्रे भूपालो निरूप्य वाक्प्रबंधनं। कार्यं तथा भवद्भिश्च पुराद्बहिश्च मंडपे ॥९५॥
ततस्तन्मंडपे सर्वे विधाय वातधारणम्। नेत्रोन्मीलनसंत्यक्ता निःश्वासा अक्रियाः पुनः ॥९६॥
उदीर्णसदृशास्तस्थुः करव्यापारदूरगाः। वक्त्रभ्रूभंगनिर्मुक्ता व्याहारादिपराङ्मुखाः ॥९७॥
तथास्थान्सा परिज्ञाया जगाम शिविकां पराम्। आरूह्य तान्विलोक्याशु पप्रच्छ परमं वृषम् ॥९८॥
वटु कश्चित्तदाऽवादीन्मातः सिद्धिं गता यतः। एतेषां देहिनो बौद्धा न वदंति लयं गताः ॥९९॥
तन्मायानिरासार्थं मंडपेऽग्निमदीपयत्। सखीभिः कुशला तावद्दृष्ट्वा ते मंडपं ज्वलत् ॥१००॥
नाशयामासुरुन्निद्राश्चकिताश्चलमानसाः। राज्ञो निरूपयामासासुर्वृतांतं विस्मयप्रदं ॥१०१॥
ततो मृगेक्षणा वेगादागत्य निजमंदिरं। हसंती कारयामास जिनधर्मप्रभावनां ॥१०२॥
ततस्तां भूपतिः प्राप्या वोचदामर्चमानसः। कांते ? ऽकारि त्वया किं तद्दुष्टत्वं श्रेष्ठनिंदितं ॥१०३॥

साधु निकले तो मैं तत्काल बौद्धधर्म को धारण कर लूँगी। मुझे इस बात का कोई आग्रह नहीं कि मैं जैन धर्म की ही भक्त बनी रहूँ परन्तु बिना परीक्षा लिए दूसरे के कथन मात्र से मैं जैन धर्म का परित्याग नहीं कर सकती क्योंकि हेयोपादेय के जानकार जो मनुष्य बिना समझे-बूझे दूसरे के कथन मात्र से उत्तम मार्ग को छोड़ दूसरे मार्ग पर चल पड़ते हैं वे शक्तिहीन मूर्ख कहे जाते हैं और किसी प्रकार वे अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते हैं।

महारानी के ऐसे निष्पक्ष वचनों से महाराज को रानी का चित्त कुछ बौद्ध धर्म की ओर खिंचा हुआ दीख पड़ा एवं रानी के कथनानुसार उन्होंने शीघ्र ही एक मंडप तैयार कराया और वह ग्राम के बाहर शीघ्र ही थोड़े ही समय में बनकर तैयार हो गया।

मंडप तैयार होने पर इधर बौद्ध गुरुओं ने तो मंडप में समाधि लगाई। दृष्टि बंद कर, श्वास रोककर, काष्ठ की पुतली के समान वे निश्चेष्ट बैठ गये। उधर रानी को भी इस बात का पता लगा वह शीघ्र पालकी तैयार कराकर उनके दर्शनार्थ आई एवं किसी बौद्ध गुरु से बौद्ध धर्म के विषय में जानने के लिए वह प्रश्न करने लगी ॥८८-९८॥

रानी के प्रश्न को भली प्रकार सुनकर भी किसी भी बौद्ध गुरु ने उत्तर नहीं दिया किन्तु पास ही ब्रह्मचारी बैठा था, उसने कहा-माते! यह समस्त साधुवृन्द इस समय ध्यान में लीन हैं। समस्त साधुओं की आत्मा इस समय सिद्धालय में विराजमान हैं। देहयुक्त भी इस समय वे सिद्ध हैं। इसलिए इन्होंने आपके प्रश्न का जवाब नहीं दिया है।

ब्रह्मचारी के ऐसे वचन सुन रानी चेलना ने और कुछ भी जवाब नहीं दिया। उन्हें मायाचारी समझ, माया को प्रकट करने के लिए उसने शीघ्र ही मंडप में आग लगा दी और उनका दृश्य देखने के लिए एक ओर खड़ी हो गई एवं कुछ समय बाद राजमंदिर में आ गई। फिर क्या था ?

विधीयते न भक्तिश्चेन्मारणे का मतिस्तव। किं च जैनेमते धर्मो दयाप्राधारन्यपूर्वकः ॥१०४॥
हन्यमानेषु बौद्धेषु कृपा क्वास्ते मृगेक्षणे। वयं जैना वयं जैना इति किं प्रतिपाद्यते ॥१०५॥
एकिंद्रियादिजंतूनां रक्षणं जैनशासने। कथं विधीयते हिंसा पंचाक्षाणां च संकदा ॥१०६॥
नाममात्रेण जैनत्वं त्वयास्ते प्राणवल्लभे। ननु साक्षात् त्रिशुद्धया च जैनत्वं जंतुरक्षकं ॥१०७॥
आकर्ण्येति प्रहस्याशु जगौ वाचं शुभानना। शृणु वृत्तांतमेकं च भो कांत! स्मयदायकं ॥१०८॥
वत्सदेशोऽस्ति विख्यातो विशिष्टजनपूरित। समस्ति निगमैः पूर्णो विस्तीर्णो गुणिभिर्जनैः ॥१०९॥
पुरी नरकृतावासा कौशांबी तत्र राजते। राजद्राजनिकायाढ्या शुभाढ्यदृढपूरिता ॥११०॥
तच्छास्तावृषपाकेन वसुपालो बभूव च। वसुधारप्रदानेन कल्पवृक्षायते च यः ॥१११॥
यशस्विनी ति सन्नाम्ना महिषी योषितां गुणैः। यशस्विनी सुविख्याता तस्याभून्मृगलोचना ॥११२॥
श्रेष्ठी सागरदत्ताख्या आस्ते सागरवर्द्धनी। गंभीरो गुणवान्वीरो राजमान्यो विदांवरः ॥११३॥

अग्नि जलते ही बौद्ध गुरुओं का ध्यान न जाने कहाँ चला गया। कुछ समय पहले तो वे निश्चल ध्यानारूढ़ बैठे थे, वे अब इधर-उधर व्याकुल हो दौड़ने लगे और रानी का सारा कृत्य उन्होंने महाराज को जा सुनाया। बौद्ध गुरुओं के ये वचन सुन अबकी बार तो महाराज कुपित हो गये। वे यह समझ कि रानी ने बड़ा अनुचित काम किया, शीघ्र ही उसके पास आये और इस प्रकार कहने लगे-सुन्दरी! मंडप में जाकर तूने यह अति निंद्य एवं नीच काम क्यों कर डाला ? अरे! यदि तेरी बौद्ध धर्म पर श्रद्धा नहीं है। बौद्ध साधुओं को तू ढोंगी साधु समझती है तो तू उनकी भक्ति न कर। यह कौन बुद्धिमानी थी कि मंडप में आग लगा तूने उन बेचारों के प्राण लेने चाहे। कांते! जो तू अपने जैन धर्म की डींग मार रही है, सो यह तेरी डींग अब सर्वथा व्यर्थ मालूम पड़ती है क्योंकि जैन सिद्धान्त में धर्म दया-प्रधान माना गया है। दया उसी का नाम है जो एकेन्द्रिय से पंचेंद्रिय-पर्यंत जीवों की प्राण-रक्षा की जाये किन्तु तेरे इस दुष्ट बर्ताव से उस दयामय धर्म का पालन कहाँ हो सका ? तूने एकदम पंचेन्द्रिय जीवों के प्राण विघात के लिए साहस कर डाला यह बड़ा अनर्थ किया। अब तेरा हम जैन हैं, हम जैन हैं, यह कहना आलाप मात्र है इस दुष्ट कर्म से तुझे कोई जैनी नहीं बतला सकता। महाराज को इस प्रकार अति कुपित देख रानी चेलना ने बड़ी विनय एवं शांति से इस प्रकार निवेदन किया-कृपानाथ! आप हमें क्षमा करें। मैं आपको एक विचित्र आख्यायिका सुनाती हूँ। आप कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुनें और मेरा इस कार्य में कितने अंश अपराध हुआ है। उस पर विचार करें ॥९९-१०८॥

इसी जम्बूद्वीप में मनोहर-मनोहर गाँवों में शोभित, धनिक एवं विद्वानों से भूषित, एक वत्स देश है। वत्स देश में एक कौशांबी नगरी है। जो कौशांबी उत्तमोत्तम बाग-बगीचों से, देवतुल्य मनुष्यों से स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करती है। कौशांबीपुरी का स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजापालक, कल्पवृक्ष के समान दाता जिसका नाम राजा वसुपाल था। राजा वसुपाल की पटरानी का नाम अश्विनी था। रानी अश्विनी स्त्रियों के प्रधान गुणों की आकर, मृगनयना, चन्द्रवदना एवं रमणी

भार्या वसुमती तस्य तन्मनः पद्मचंद्रमा। चारुवक्त्रा विचारज्ञा तन्वंगी कठिनस्तनी ॥११४॥
तत्रैवास्ते धनी चान्यः श्रेष्ठी श्रेष्ठक्रियाग्रणीः। समुद्रदत्त इत्याख्यः कांता सागरदत्तिका ॥११५॥
एकदा श्रेष्ठिनौ द्वौ च हसंतौ तिष्ठतो मुदा। एकत्रस्नेहवृद्ध्यर्थं तदाख्यद्दि्वतीयो वणिक् ॥११६॥
श्रेष्ठिन् सागरदत्ताख्य यदि पुत्रो भवेत्तव। भागधेयात्तथा पुत्री भवेन्मे दैवयोगतः ॥११७॥
अन्योन्यं भवितव्यो वै विवाहो निश्चयेन भो। विपर्ययेऽपि कर्त्तव्यं तथैव स्नेहसिद्धये ॥११८॥
प्रतिपन्नं तथा ताभ्यां तदा स्नेहकृते मुदा। कियत्काले सुतो जातो वसुमत्यां च सागरात् ॥११९॥
वसुमित्राभिधः सर्परूपः साध्वसदायकः। अन्ययोस्तनुजा जाता नागदत्ता च दैवतः ॥१२०॥
कनत्कनकदेहाभा विकसत्पद्मलोचना। संपूर्णविधुसद्वक्त्रा सद्रूपा सद्गुणाकुला ॥१२१॥
संपूर्णे यौवने जातस्तयोर्वाक्यनिबंधनात्। विवाहश्च महाभूत्या नानाक्षणपरात्मनोः ॥१२२॥
अन्यदा यौवनैः पूर्णां कनत्कनककंकणाम्। हारिहारसमाकीर्णां विस्तीर्णवसनावहाम् ॥१२३॥

रत्न थी। सागरदत्त अपार धन का स्वामी था। अनेक गुण युक्त होने के कारण राज्य-मान्य और विद्वान् था। सागरदत्त की स्त्री का नाम वसुमती था। वसुमती रात्री विकसी कमलों को चाँदनी के समान सदा सागरदत्त के मन को प्रसन्न करती रहती थी। मुख से चन्द्र शोभा को भी नीचे करने वाली थी एवं प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक करती थी।

उसी समय कौशांबीपुरी में समुद्रदत्त नाम का श्रेष्ठि भी निवास करता था। समुद्रदत्त सम्पन्न धनी था। धर्मात्मा एवं अनेक गुणों का भंडार था। श्रेष्ठि समुद्रदत्त की प्रिय भार्या सागरदत्ता थी जो कि अतिशय रूपवती, गुणवती एवं पति भक्ता थी।

कदाचित् सेठ सागरदत्त और समुद्रदत्त आनंदपूर्वक एक स्थान में बैठे थे। परस्पर में और भी स्नेह वृद्ध्यर्थ सेठ समुद्रदत्त ने सागरदत्त से कहा-प्रिय सागरदत्त! आप एक काम करें। यदि भाग्यवश आपके पुत्र और मेरे पुत्री अथवा मेरे पुत्र और आपके पुत्री होवे तो उन दोनों का आपस में विवाह कर देना चाहिए जिससे हमारा और आपका स्नेह दिनों-दिन बढ़ता ही चला जाय। समुद्रदत्त के ऐसे वचन सुन सागरदत्त ने कहा-जो आप कहते हैं, सो मुझे मंजूर है। मैं आपके वचनों से बाहर नहीं हूँ ॥१०९-११८॥

कुछ दिन बाद श्रेष्ठि सागरदत्त के भाग्यानुसार एक पुत्र जो कि सर्प की आकृति का धारक एवं भयावह उत्पन्न हुआ था और उसका नाम वसुमित्र रखा गया तथा श्रेष्ठि समुद्रदत्त की सेठानी सागरदत्ता के यहाँ एक पुत्री उत्पन्न हुई। जो पुत्री चन्द्रवदना, मनोहरा, सुवर्ण वर्णा एवं अनेक गुणों की आकर थी और उसका नाम नागदत्ता रखा गया। कदाचित् कुमार और कुमारी ने यौवनावस्था में पदार्पण किया। इन्हें विवाह के सर्वथा योग्य जान बड़े समारोह से दोनों का विवाह किया गया एवं विवाह के बाद वे दोनों दंपती सांसारिक सुख का अनुभव करने लगे। माता का पुत्री पर अधिक प्रेम रहता है। यदि पुत्री किसी कष्टमय अवस्था में हो तो माता अति दुःख मानती है। कदाचित् पुत्री नागदत्ता पर सागरदत्ता की दृष्टि पड़ी। उसे हार आदि उत्तमोत्तम भूषणों से भूषित,

नागदत्तां समालोक्याऽरोदीत्सागरदत्तिका। हा हा पुत्रि! क्व सौभाग्यं हा रूपं हा कला क्व च ॥१२४॥
हा सुते देवकन्याभे गतिस्ते क्व मनोरमा। क्व नागो भीषणो रूपीपादहस्तातिगो शुभः ॥१२५॥
दुर्दमं चेष्टितं ज्ञेयं विधेर्लोके सुरेश्वरैः। अन्यथा चिंतितं पूर्वं विधिना चान्यथा कृतं ॥१२६॥
हाकार मुखरां वाष्प पूरास्यां वीक्ष्य मातरं। रुदंतीं तनुजा वोचद्विलापः किं विधीयते ॥१२७॥
तदा सा वचनं प्राह नागदत्ते तवेदृशीं। भोगादिरहितावस्थां प्रेक्ष्य रोदिमि भर्तृजां ॥१२८॥
प्रहस्य तनुजावोचच्छ्रुत्वा मातृवचस्तदा। मारोदिषि प्रवक्ष्येऽहं चरित्रं भर्तृजं शुभे ॥१२९॥
ममेशोऽहिन् प्रविश्याशु मातः पेटरकं मुदा। सर्पीभूत्वा समास्ते च सुखेन सुखसंगतः ॥१३०॥
पेटारकाद्विनिसृत्य क्षणदायां नरोत्तमः। भूत्वा भुनक्तिसद्भोगान्मया साकं निरंतरं ॥१३१॥
माता बंभण्यते पुत्रि पेटारकं क्षिपोज्झितं। देहि मे लोकनायैव कदाचिन्नागदत्तया ॥१३२॥
तस्यै पेटारके दत्ते तया दग्धं च तन्मुदा। ततः प्रभृति राजेंद्र नरो भूत्वा स्थितः सदा ॥१३३॥
तद्वद्राजंश्च बौद्धानां सिद्धस्थाने गते नरि। शरीरदहने दोषो वर्त्तते कश्च कथ्यतां ॥१३४॥

कमलाक्षी, कनकवर्णी देख वह इस प्रकार मन-ही-मन रुदन करने लगी।

पुत्री! कहाँ तो तेरा मनोहर रूप, सौभाग्य, उत्तम कुल एवं मनोहर गति ? और कहाँ भयंकर शरीर का धारक, हाथ-पैर रहित एवं अशुभ तेरा पति नाग ? हाय दुर्दैव! तुझे सहस्त्र बार धिक्कार है। तूने क्या जानकर यह संयोग मिलाया अथवा ठीक है तेरी गति विचित्र है। बड़े-बड़े देव भी तेरी गति के पते लगाने में हैरान हैं। तब हम कौन चीज हैं। हाय! विचारा तो कुछ और था, हो कुछ और ही गया। माता को इस प्रकार रुदन करती देख पुत्री नागदत्ता का भी चित्त पिघल गया उसने शीघ्र ही विनय से सांत्वना पूर्वक कहा-माते! आज क्या हुआ ? तू मुझे देख अचानक ही क्यों कर विलाप करने लग गई। कृपा कर इसका कारण शीघ्र मुझे कह- ॥११९-१२७॥

पुत्री के इन विनय वचनों ने तो सागरदत्ता को रुदन में और अधिक सहायता पहुँचाई अब उसकी आँखों से अविरल आँसुओं की झड़ी लग गई। प्रथम तो उसने नागदत्ता के प्रश्न का कुछ भी जवाब न दिया किन्तु जब उसने नागदत्ता का अधिक आग्रह देखा तो बड़े कष्ट से वह कहने लगी-पुत्री! मुझे और किसी की ओर से दुःख नहीं किन्तु इस युवा अवस्था में तुझे पतिजन्य सुख से सुखी न देख मैं रोती हूँ। यदि तेरा पति कुरूप भी होता, पर मनुष्य तो होता, मुझे कुछ दुःख न होता परंतु तेरा पति नाग है। वह न कुछ कर सकता और न धर ही सकता है इसलिए मेरे चित्त को अधिक संताप है। माता के ये वचन सुन प्रथम तो नागदत्ता हँसने लगी, पश्चात् उसने विनय से कहा-माते! तू इस बात के लिए जरा भी खेद मत कर। यदि तू नहीं मानती है तो मैं अपना सारा हाल तुझे सुनाती हूँ। तू ध्यानपूर्वक सुन-मेरे शयनागार में एक संदूक रखा है जिस समय दिन हो जाता है उस समय तो मेरा पति नाग बन जाता है और दिन-भर नागरूप में मेरे साथ खेल-किलोल करता है और जब रात हो जाती है तो वह उस संदूक से निकल उत्तम मनुष्य आकार बन जाता है एवं मनुष्य रूप से रात-भर मेरे साथ भोग भोगता है। पुत्री के मुख से यह

शरीरदहनात्सर्वे सिद्धत्वपदमाश्रिता:। आसते शिवमास्थानं देहिन: सौगता: खलु॥१३५॥
पुनरागमने राजन्नशर्मभवसंभवम्। रागद्वेषोद्भवं नाथ ते भुंजंति निरंकुशा:॥१३६॥
कायजं चेंदियं शर्म कर्मांस्त्रवणकारणम्। कर्मतो भ्रमणं राजन् संसारे पार वर्जिते॥१३७॥
संसारासातनाशार्थं देहो नाश्यो मनीषिणा। अतो विधीयते नाशो मया तेषां शुभावह:॥१३८॥
विषादो नो विधातव्यस्त्वया राजन्निरंतरं। अत: कूटतरं विद्धि सर्वमेतन्नराधिप॥१३९॥
क्वै तेषां सिद्धसंस्थाने गमनं प्राणिदुर्लभं। अनृतं भाति मे चित्ते विना जैनं न संशय:॥१४०॥

विचित्र घटना सुन सागरदत्ता आश्चर्य करने लगी उसने शीघ्र ही नागदत्ता से कहा–

नागदत्ते! यदि यह बात सत्य है तो तू एक काम कर उस संदूक को तू किसी परिचित एवं अपने अभीष्ट स्थान में रख और यह वृत्तांत मुझे दिखा। तब मैं तेरी बात मानूँगी–पुत्री नागदत्ता ने अपनी माता की आज्ञा स्वीकार कर ली तथा किसी निश्चित दिन नागदत्ता ने उस संदूक को ऐसे स्थान पर रखवा दिया जो स्थान उसकी माँ का भी भली प्रकार परिचित था और माँ को इशारा कर वह मनुष्याकार अपने पति के साथ भोग भोगने लगी।

बस फिर क्या था ? हे महाराज! जिस समय सागरदत्ता ने उस संदूक को खुला देखा, तो उसने उसे खोखला समझ शीघ्र जला दिया और वह वसुमित्र फिर सदा के लिए मनुष्याकार बन गया। उसी प्रकार हे दीनबंधो! किसी ब्रह्मचारी से मुझे यह बात मालूम हुई है कि बौद्ध गुरुओं की आत्मा इस समय मोक्ष में हैं। ये इनके शरीर इस समय खोखले पड़े हैं। मैंने यह जान कि बौद्ध गुरुओं को अब शारीरिक वेदना न सहनी पड़े, आग लगा दी क्योंकि इस बात को आप भी जानते हैं। जब तक आत्मा के साथ इस शरीर का संबंध रहता है तब तक अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। किन्तु ज्योंही शरीर का संबंध छूट जाता है त्योंही सब दु:ख भी एक ओर किनारा कर जाते हैं। फिर वे आत्मा से कदापि संबंध नहीं कर पाते। नाथ! शरीर के सर्वथा जल जाने से अब समस्त गुरु सिद्ध हो गये। यदि उनका शरीर कायम रहता तो उनकी आत्मा सिद्धालय से लौट आती और संसार में रहकर अनेक दु:ख भोगती क्योंकि संसार में जो इन्द्रियजन्य सुख भोगने में आते हैं उनका प्रधान कारण शरीर है यह बात अनुभवसिद्ध है कि इन्द्रिय सुख से अनेक कर्मों का उपार्जन होता है और कर्मों से नरकादि गतियों में घूमना पड़ता है। जन्म–मरण आदि वेदना भोगनी पड़ती है इसलिए मैंने तो उन्हें सर्वथा दु:ख से छुड़ाने के लिए ऐसा किया था।

नरनाथ! आप स्वयं विचार करें इसमें मैंने क्या जैन धर्म के विरुद्ध अपराध कर डाला ? प्रभो! आपको इस बात पर जरा भी विषाद नहीं करना चाहिए। आप यह निश्चय समझें बौद्ध गुरुओं का वह ध्यान नहीं था। ध्यान के बहाने से भोले जीवों को ठगना था। मोक्ष कोई ऐसी सुलभ चीज नहीं जो हरेक को मिल जाय। यदि इस सरल मार्ग से मोक्ष मिल जाये तो बहुत जल्दी सर्वजीव सिद्धालय में स्थित हो जायेंगे। आप विश्वास रखें मोक्ष–प्राप्ति की जो प्रक्रिया जिनागम में वर्णित है वही उत्तम और सुखप्रद है। नाथ! अब आप अपने चित्त को शांत करें और

प्रत्युत्तरविधौ भूपोऽशक्तस्तूष्णीस्थितस्तदा। आमर्षं विविधं चित्ते विधायाशुभपाकतः ॥१४१॥
ईक्षे दैवाद् गुरुं कुर्वेऽस्याः पूजां च विपर्ययाम्। इति चित्ते विधायास्थाद् गृहे भुंजन् शुभाशुभं ॥१४२॥
कदाचित्सेनया साकं मृगांतककृतेऽगमत्। वने स तूर्यनादेन कुर्वन्भुवनमाकुलम् ॥१४३॥
शुभयोगप्ररूढं वै गूढात्मपदवेदकम्। त्यक्ताशुभवियोगं च मनोयोग प्ररुंधकं ॥१४४॥
मित्रशत्रुसमानत्वं मन्यमानं त्रियोगकं। मुनिमुख्यत्वमापन्नमनंतगुणयोगकं ॥१४५॥
सहस्त्रहृतद्वैतार्थं शीलशालिनमुन्नतं। षष्णिकाय सुजीवानां रक्षकं शिक्षपक्षकं ॥१४६॥
नानर्द्धिबुद्धिसंपन्नं भव्यार्थकृतदेशनं। सत्सप्तभंगसंरूढ सप्तत्वप्ररूपकं ॥१४७॥
शीतातापनयोगस्थं यशोधरयतीश्वरं। संदृश्य श्रेणिकोऽपृच्छन्नरं किंचिदितिस्फुटं ॥१४८॥
कोऽयमंशुकसंत्यक्तः स्नानसंस्कारवर्जितः। मुंडमूर्द्ध नेति संप्रश्ने सोऽवादीद्वेत्सि किं न वा ॥१४९॥
चेलनाया गुरुः राजन्नयं चोद्धूतदेहकः। आकर्ण्येति विकुप्याशु चिंतयामास मानसे ॥१५०॥
मद्गुरोरनया पूर्वमुपसर्गः कृतः खलु। राज्ञ्या ददामि तद्वैरं गुरोस्तद्वैरहानये ॥१५१॥

बौद्ध साधुओं को ढोंगी साधु समझें ॥१२८-१४०॥

रानी के इन युक्तिपूर्ण वचनों ने महाराज को अनुत्तर बना दिया। वे कुछ भी जवाब न दे सके किन्तु गुरुओं का पराभव देख उनका चित्त शांत न हुआ। दिनों-दिन उनके चित्त में ये विचार तरंगें उठती रहती कि इस रानी ने बड़ा अपराध किया है। मेरा नाम भी श्रेणिक नहीं जो मैं इसे बौद्ध धर्म की भक्त और सेविका न बना दूँ। आज जो यह जिनेन्द्र भगवान् का पूजन और उनकी भक्ति करती है सो जिनेन्द्र के बदले इससे बुद्धदेव की भक्ति कराऊँगा तथा अशुभ कर्म के उदय से कुछ दिन ऐसे ही संकल्प-विकल्प वे करते रहे।

कदाचित् महाराज को शिकार खेलने का कौतूहल उपजा। वे एक विशाल सेना के साथ शीघ्र ही वन की ओर चल पड़े। जिस वन में महाराज गये उसी वन में महामुनि यशोधर खड्गासन से ध्यानारूढ़ थे। मुनि यशोधर परम ज्ञानी, आत्मस्वरूप के भली प्रकार जानकार एवं परम ध्यानी थे। उनकी आत्मा सदा शुभ योग की ओर झुकी रही थी अशुभ योग उनके पास तक भी नहीं फटकने पाता था। उनका मन सर्वथा वश में था। मित्र शत्रुओं पर उनकी दृष्टि बराबर थी। त्रैकालिक योग के धारक थे। समस्त मुनियों में उत्तम थे। अनंत अक्षय गुणों के भंडार थे। असंख्याती पर्यायों के युगपत् जानकार थे। देदीप्यमान निर्मल ज्ञान से शोभित थे। भव्य जीवों के उद्धारक और उत्तम उपदेश के दाता थे। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति इत्यादि अनेक धर्म स्वरूप जीवादि सप्त तत्त्व उनके ज्ञान में सदा प्रतिभासित रहते थे एवं बड़े-बड़े देव और इन्द्र आकर उनके चरणों को नमस्कार करते थे। महाराज की दृष्टि मुनि यशोधर पर पड़ी। उन्होंने पहले किसी दिगम्बर मुनि को नहीं देखा था इसलिए शीघ्र ही उन्होंने किसी पार्श्वचर से पूछा-देखो भाई! नग्न, स्नानादि संस्कार रहित एवं मूड़मूड़ाये यह कौन खड़ा है, मुझे शीघ्र कहो। पार्श्वचर बौद्ध था उसने शीघ्र ही इन शब्दों में महाराज के प्रश्न का जवाब दिया।

प्रशंस्य वचनै रम्यैर्मुमोच निजकुर्कुरान्। शतपंचप्रमान् दृष्टान् दीर्घदंष्ट्रान्हरिप्रमान् ॥१५२॥
ध्यानस्थं तं समासाद्य बभूवुः क्रोधवर्जिताः। चक्रुः प्रदक्षिणां सर्वे सच्छ्रद्धा इव सन्नताः ॥१५३॥
नत्वा तत्पादपद्मांते तस्थुस्ते कीलिता इव। महामंत्रेण नागा वा क्रुद्धाः कंपितविग्रहाः ॥१५४॥
तथास्थांस्तान् विलोक्यासौ क्रुद्धोऽवादीद्वचस्तदा। धूर्तोऽयं मंत्रवादज्ञो नानादेशावलोकिकः ॥१५५॥
अनेन कीलिताः सर्वे शुनकामेऽद्य निश्चितम्। दर्शयामि फलं तस्य तस्यैवाशुभकर्मणः ॥१५६॥
इति संभाष्य चोत्क्षिप्य कृपाणं मुनिसूदने। मार्गेऽटन् शकुनघ्नं च नागमैक्षे समुत्फणं ॥१५७॥

कृपानाथ! क्या आप नहीं जानते ? शरीर नर्राये खड़ा हुआ, महाभिमानी यही तो रानी चेलना का गुरु है। बस, वहाँ कहने मात्र की ही देरी थी, महाराज इस सोच में बैठे ही थे कि कब रानी का गुरु मिले और कब उसका अपमान कर मैं रानी से बदला लूँ। ज्योंही महाराज ने पार्श्वचर के वचन सुने अति क्रोध से उनका शरीर उबल उठा। वे विचारने लगे–

अहा! रानी से बैर का बदला लेने का आज सुअवसर मिला है। रानी ने मेरे गुरुओं का बड़ा अपमान किया है। उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाये हैं। मुझे आज यह रानी का गुरु मिला है। अब मुझे भी इसे कष्ट पहुँचाने में और इसका अपमान करने में चूकना नहीं चाहिए तथा ऐसा क्षणिक विचार कर महाराज ने शीघ्र ही पाँच सौ शिकारी कुत्ते, जो लंबी–लंबी दाढ़ों के धारक, सिंह के समान ऊँचे एवं भयंकर थे, मुनिराज पर छोड़ दिये।

मुनिराज परम ध्यानी थे, उन्हें अपने ध्यान के सामने इस बात का जरा भी विचार नहीं था कि कौन दुष्ट हमारे ऊपर क्या अपकार कर रहे हैं ? इसलिए ज्योंही कुत्ते मुनिराज के पास गये और ज्योंही उन्होंने मुनिराज की शांत मुद्रा देखी, सारी क्रूरता उनकी शांति में पलट गई। मंत्रकीलित सर्प–जैसा शांत पड़ जाता है मंत्र के सामने उसकी कुछ भी करामात नहीं चलती उसी प्रकार कुत्ते भी शांत हो गये। मुनिराज की शांत मुद्रा के सामने उनकी कुछ भी हिम्मत नहीं चली। वे मुनिराज की प्रदक्षिणा देने लगे और उनके चरण–कमलों में बैठ गये ॥१४१–१५४॥

महाराज भी दूर से यह दृश्य देख रहे थे। ज्योंही उन्होंने कुत्तों को क्रोध रहित और प्रदक्षिणा करते हुए देखा क्रोध के कारण उनका शरीर शिथिल हो गया। वे सोचने लगे–यह साधु नहीं है, धूर्त्तवंचक कोई मंत्रवादी है। मेरे बलवान् कुत्ते इस दुष्ट ने मंत्र से कीलित कर दिये हैं। अस्तु, मैं अभी इसके कर्म का मजा चखाता हूँ तथा ऐसा विचार कर उन्होंने शीघ्र ही म्यान से तलवार निकाली और मुनि के मारणार्थ बड़े वेग से उनकी ओर झपटे।

मुनि को मारने के लिए महाराज जा ही रहे थे कि अचानक ही उन्हें एक सर्प, जो कि अनेक जीवों का भक्षक एवं फण ऊँचा किये था, देख पड़ा एवं उसे अनिष्ट का करने वाला समझ, शीघ्र महाराज ने मार डाला और अति क्रूर परिणामी हो पवित्र मुनि यशोधर के गले में डाल दिया।

जैन सिद्धांत में फल–प्राप्ति परिणामाधीन मानी है। जिस मनुष्य के जैसे परिणाम रहते हैं।

अनिष्टं तं परिज्ञाय मारयामास दुष्टधीः। शुभेः कंठे महापापी न्यक्षिपन्मुतसर्पकं ॥१५८॥
तदातिरौद्रभावेन बबंध क्षितिनायकः। महातमः प्रभाख्यस्य निरयस्यायुरंतदं ॥१५९॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्धनुः पंचशतोच्छ्रुतिः। यत्रास्ते परमं दुःखं कविवाचामगोचरं ॥१६०॥
अहो! साधूपसर्गेणाशर्मनानाविधं भवेत्। किल्विषं परमं नित्यं श्वभ्रादिगतिदायकं ॥१६१॥
फलंति विपदोऽमुत्र साधु पीड़ा न संशयः। न विदंति मदालीढा अमुत्र च हिताहिते ॥१६२॥
यथा यथा विकुर्वंति शुभं कर्माशुभं तथा। इह सर्वे जनास्तत्र भुंजंति च तथा तथा ॥१६३॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म च यैस्तकैः। आदत्त मृणवद् ज्ञेयं न कांता सुतबांधवैः ॥१६४॥
इति मत्वाऽशुभं कार्यं कार्यार्थं कार्यकोविदैः। वैरतः प्राणनाशेऽपि नाहितं हितमिच्छुभिः ॥१६५॥
किल्विषं तीव्रमादायाजगाम निजपत्तनं। सहसन्वविधैर्वाक्यै बौद्धाग्रे तन्न्यवेदयत् ॥१६६॥
जहर्षुः खलरूपास्ते श्रुत्वा मुनि निबंधनं। ज्वलनात्कुक्कुरा वाहो मातंगाः पशुपातनात् ॥१६७॥

उसे वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। महाराज श्रेणिक के उस समय अति रौद्र परिणाम थे। उन्हें तत्काल ही, जिस महातम प्रभा नरक में तैंतीस सागर की आयु, पाँच सौ धनुष का शरीर एवं विद्वानों के वचन के अगोचर घोर दुःख है, उस महातम प्रभा नाम के सप्तम नरक का आयुबन्ध बँध गया।

यह बात ठीक भी है जो मनुष्य बिना विचारे दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं। विशेषकर साधु महात्माओं को उन्हें घोर-से-घोर दुःखों का सामना करना पड़ता है। महात्माओं को कष्ट देने वाले मनुष्यों को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, वे शीघ्र ही अनर्थ कर बैठते हैं। महाराज श्रेणिक ने मदोन्मत्त हो तुरन्त ऐसा काम कर दिया इसलिए उन्हें इस प्रकार कष्टप्रद आयु बन्ध बँध गया ॥१५५-१६२॥

ज्यों ही मुनि यशोधर को यह बात मालूम हुई कि मेरे गले में सर्प डाल दिया है तो उन्होंने अपनी ध्यान मुद्रा और भी अधिक चढ़ा दी और महाराज श्रेणिक वहाँ से चल दिये एवं जो-जो काम उन्होंने वहाँ किये थे, अपने गुरुओं से आकर सब कह सुनाये।

श्रेणिक द्वारा एक दिगम्बर गुरु का ऐसा अपमान सुन बौद्ध गुरुओं को अति प्रसन्नता हुई। वे बार-बार श्रेणिक की प्रशंसा करने लगे किन्तु साधु होकर उनका यह कृत्य उत्तम नहीं था। साधु का धर्म मानापमान, सुख-दुःख में समान भाव रखना है अथवा ठीक ही था, यदि वे साधु होते तो वे साधुओं के धर्म जानते किन्तु वहाँ तो वेष साधु का था। आत्मा के साथ साधुत्व का कोई संबंध न था।

इस प्रकार तीन दिन तक तो महाराज इधर-उधर लापता रहे। चौथे दिन वे रानी चेलना के राजमंदिर में गये। जो कुछ दुष्कृत्य वे मुनि के साथ कर आये थे, सारा रानी से कह सुनाया और हँसने लगे।

महाराज द्वारा अपने गुरु का यह अपमान सुन रानी चेलना अवाक् रह गई। मुनि पर घोर

चतुर्थे घस्त्र एवासाऽवाप्यराज्ञी गृहं निशि। रममाणस्तदा राज्ञ्याचकथद्वचनं नृपः ॥१६८॥
सर्पस्य कंठनिक्षेपं गुरोः श्रुत्वा रुरोद सा। अहो विरूपकं जातं त्वयात्मा दुर्गतौ कृतः ॥१६९॥
धिग्धिग्जन्म ममात्रैव स्थितिं धिग्राजमंदिरे। वज्रं न पतितं किं मे मूर्द्धिन जन्मनि दुःसहं ॥१७०॥
यौवने मरणं किं वाऽभूद्यत्पाणिपीड़नम्। अनेन भविता नैव मत्त इत्थं वनो भवेत् ॥१७१॥
किं करोमि क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कथंचन। अस्त्वत् पयो ममात्रैव स्थित्यालं पशुवत्सदा ॥१७२॥
वरं वने स्थितिर्मेऽद्य रणेवासोऽद्रिमस्तके। वरं च मरणं ज्ञेयं धर्महीने गृहे न च ॥१७३॥
इत्यादिविविधालापमुखरां रतिदायिनीं। तां वीक्ष्याऽसौऽभणद्राज्ञि वृथा शोकं च माकृथाः ॥१७४॥
त्यक्त्वा नागं क्षणार्द्धेन भविष्यति गतः स च। अशक्तो गंतुमुत्क्षिप्य नागं किं किं च लप्यते ॥१७५॥
तदा तया वचोऽभाणि राजन्नित्थं कदाचन। गुरवो भवितारो मे यदि मागधमंडन ॥१७६॥
चलंति मंदरा दैवाद्धरा वा स्थानतः पुनः। समुद्रालंघयत्याज्ञां यतयो न व्रतं स्थिताः ॥१७७॥
अचलाः क्षमयाऽभूवनंभीरा नीरनाथवत्। असंगा वायुवद् ज्ञेया अग्निवत् कर्मदाहकाः ॥१७८॥
निर्लेपा अभ्रवद्राजन् स्वच्छचित्ता जलादिवत्। जलदा इव ते संति परोपकृतये रताः ॥१७९॥

उपसर्ग जान उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह कहने लगी–हाय, बड़ा अनर्थ हो गया। राजन्! आपने अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बना लिया।

अरे! मेरा जन्म सर्वथा निष्फल है। मेरा राजमंदिर में भोग भोगना महापाप है। हाय! मेरा इस कुमार्गी पति के साथ क्यों संबंध हो गया। युवती होने पर मैं मर क्यों नहीं गई। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, हाय! यह मेरा प्राणपखेरू क्यों नहीं जल्दी बिदा होता। प्रभो, मैं बड़ी अभागिनी हूँ। मेरा अब कैसे भला होगा ? छोटे गाँव, वन, पर्वतों में रहना अच्छा किन्तु जिन धर्म रहित अति वैभव युक्त भी इस राजमंदिर में रहना ठीक नहीं। हाय दुर्दैव! तूने मुझ अभागिनी पर ही अपना अधिकार जमाया। रानी चेलना का रुदन सुन महाराज के चेहरे से प्रसन्नता कोसों दूर उड़ गई। उस समय उनसे और कुछ न बन सका। वे इस रीति से रानी को समझाने लगे–

प्रिये! तू इस बात के लिए जरा भी शोक न कर, वह मुनि गले से सर्प फेंक कभी का वहाँ से भाग गया होगा। मृत सर्प को गले से निकालना कोई कठिन नहीं। महाराज के ये वचन सुन रानी ने कहा–नाथ! आपका यह कथन भ्रम मात्र है। मेरा विश्वास है, यदि वे मेरे सच्चे गुरु हैं तो कदापि उन्होंने अपने गले से सर्प न निकाला होगा। कृपानाथ! अचल मेरु पर्वत भी कदाचित् चलायमान हो जाय। मर्यादा का त्यागी भी समुद्र में अपनी मर्यादा छोड़ दे किन्तु जब दिगम्बर मुनि ध्यानैकतान हो जाते हैं। उस समय उन पर घोरतम भी उपसर्ग क्यों न आ जाये कदापि अपने ध्यान से विचलित नहीं होते। प्राणनाथ! क्षमा भूषण से भूषित दिगम्बर मुनि तो अचल पृथ्वी के समान होते हैं और समुद्र के समान गंभीर, वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म-भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान स्वच्छ चित्त के धारक एवं मेघ

ज्ञानिनो ध्यानसंरूढा दृढवैराग्यपारगाः। संसारभयसंत्रस्ताः स्वामिन् मद्गुरवो मताः ॥१८०॥
न प्रच्यवंति सद्ध्यानादुपसर्गात्कथंचन। गुरवो गुरुतापन्नाः संसारच्छेदकारकाः ॥१८१॥
अपवादेन तेषां च बध्नंति प्राणिनोऽशुभं। निरयोदर्कदानाढ्यं विचारो नात्र भूपते ॥१८२॥
भावत्का गुरवो राजन्परीषहभराक्षमाः। लिप्तोपधि सुसर्वांगा व्रताभरणदूरगाः ॥१८३॥
अदंति सर्वदा सर्वं पलिलं मधुमद्यकं। किल्विषाभीतिमानस्काः कथं मान्याः शुभैर्जनैः ॥१८४॥
परीक्ष्य स्वर्णवद्धर्ममंगीकार्यं बुद्धोत्तमैः। निर्घर्षणादिभिश्चैव व्रतशीलदयागुणैः ॥१८५॥
इत्याकर्ण्य भयत्रस्तो जगौ भूभृन्नतांह्रिकः। सत्यमेतत्प्रिये नूनं वृथा वा को शुभानने ॥१८६॥
यत्राऽस्ते स महायोगी याव आवां वने दुतं। ईक्षावहे विनोदं तं निश्चलं च यतीश्वरं ॥१८७॥
दापयामास सद्भेरीं गमनाय कृतोद्यमः। शिविकास्थितया राज्ञ्या चचाल तुरगस्थितः ॥१८८॥
दशेंधनास्तदा दीप्ता यत्र तत्र चकासिरे। उच्छेदयंतः सद्ध्वांतं राज्ञी वाचश्वमानसं ॥१८९॥
अनेकदंतिवृन्देन गंधर्वगणगुंठितः। सनाथ रथवारेण वृतः पत्तिपरेश्वरैः ॥१९०॥
क्रमेण विप्रेर भूभृदासाद्य निजकांतया। लुलोके किल्विषकृंति कृते तं कंठसर्पगम् ॥१९१॥
उपसर्गे च यो धीमान् ध्यायतीति मानसे। उपकारपरो मेऽद्य नृपोऽभूद्वापरो नहि ॥१९२॥
उदीरणया सोढव्या शीताद्याः सुपरीषहाः। यतिभिस्ते स्वयं सर्वे कृता भूपेन किं रिपुः ॥१९३॥

के समान परोपकारी होते हैं ॥१६३-१७९॥

प्रभो! आप विश्वास रखें जो गुरु परम ज्ञानी, परम ध्यानी, दृढ़ वैरागी होंगे, वे ही मेरे गुरु होंगे किन्तु इनसे विपरीत परिषहों से भय करने वाले, अति परिग्रही, व्रत-तप आदि से शून्य, मधु, मांस-मदिरा के लोलुपी एवं महापापी जो गुरु हैं सो मेरे गुरु नहीं। जीवन-सर्वस्व! ऐसे गुरु आपके ही हैं। न जाने जो परम परीक्षक एवं अपनों के हितैषी हैं, वे कैसे इन गुरुओं को मानते हैं ? उनकी पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं ? रानी के ऐसे युक्तिपूर्ण वचन सुन राजा का चित्त मारे भय के काँप गया। उस समय और कुछ न कहकर उनके मुख से ये ही शब्द निकले प्रिये! इस समय जो आपने कहा है, बिलकुल सत्य कहा है। अब विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। अब एक काम करो, जहाँ पर मुनिराज विराजमान हैं वहाँ पर हम दोनों शीघ्र चलें और उन्हें जाकर देखें।

रानी तो जाने को तैयार ही थी, उसने उसी समय चलना स्वीकार किया एवं इधर रानी तो अपनी तैयारी करने लगी। उधर महाराज ने मुनि दर्शनार्थ शीघ्र ही नगर में ड्योढ़ी पिटवा दी तथा जिस समय रानी पीनस में बैठी वन की ओर चलने लगी। महाराज भी एक विशाल सेना के साथ उसके पीछे घोड़े पर सवार हो चल दिये और रात में अनेक हाथी-घोड़ों से वेष्टित वे दोनों दंपती पलस्यायत में मुनिराज के पास जा दाखिल हो गये ॥१८०-१९१॥

यह नियम है मुनियों पर जब उपसर्ग आता है तब वे अनित्य आदि बारह भावनाओं का चिंतन करने लग जाते हैं। ज्योंही मुनि यशोधर के गले में सर्प पड़ा वे इस प्रकार भावना भाने लगे राजा ने जो मेरे गले में सर्प डाला है सो मेरा बड़ा उपकार किया है क्योंकि जो मुनि अपनी आत्मा

मत्तो देहादिकं भिन्नं कर्मकारणसंभवं। तद्दुःखे मे कथं दुःखं चिद्रूपस्य परात्मनः ॥१९४॥
अहो! इदं वपुर्नित्यं बीभत्सं भीतिदायकं। सर्गनाशि कथं धत्ते मतिमांस्तत्र सन्मतिं ॥१९५॥
पात्यंगं पदमेकं च सार्द्धनैति परत्र तत्। भूषणं पोषणं तस्य को दधाति शुभेच्छया ॥१९६॥
व्याधिर्देहं तुदत्येव न मां मूर्त्तं चिदात्मकम्। शुद्धं पथाकुटीरं च ज्वलते न नभोऽग्निकः ॥१९७॥
चिद्रूपं केवलं शुद्धं निराबाधं निरंजनं। निःकलंकं रजोमुक्तं वेद्म्यहं योगयोगतः ॥१९८॥
वपुर्विण्मयमा बद्धमजिनैरस्थिपंजरं। पूतिगंधं विमांसाढ्यं समस्ति मम पापदं ॥१९९॥
अनयोः सर्गमावेद्य यद्धितं तद्धितेच्छुभिः। ध्येयं ध्येयं विशुद्धात्म कोविदैश्चिल्लयंगतैः ॥२००॥
परीषहे समापन्ने मनोनास्यविचंचलम्। अभूत्तस्य सहिष्णुत्वं परीषहजयं तपः ॥२०१॥
तादृशं कीटिकालुप्त हृदयं कुणपं यथा। सुस्थिरं वीक्ष्य चापन्नौ तस्यांते दंपती मुदा ॥२०२॥
त्रिः परीत्य प्रणम्याशु चेलिनीभक्तिरंजिता। ससंवेगादिसम्यक्ता वृषाभरणभूषिता ॥२०३॥
उत्क्षिप्य स्वभुजाभ्यां च मुनेः कंठाद्भुजंगमं। खंडपुंजविधानेन दूरीचक्रे पिपीलिकाः ॥२०४॥

से समस्त कर्मों का नाश करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे अवश्य कर्मों की उदीरणा के लिए परीषह सहे। यह राजा मेरा बड़ा उपकारी है। इसने अपने-आप परीषहों की सामग्री मेरे लिए एकत्रित कर दी है। यह देह मुझसे सर्वथा भिन्न है। कर्म से उत्पन्न हुआ है और मेरी आत्मा समस्त कर्मों से रहित पवित्र है, चैतन्य स्वरूप है। शरीर में क्लेश होने पर भी मेरी आत्मा क्लेशित नहीं बन सकती। यद्यपि यह शरीर अनित्य है, महा अपवित्र है, मल-मूत्र का घर है, घृणित है तथापि न मालूम विद्वान् लोग क्यों इसे अच्छा समझते हैं ? इत्र-फुलेल आदि सुगंधित पदार्थों से क्यों इसका पोषण करते हैं। यह बात बराबर देखने में आती है कि जब आत्माराम इस शरीर से बिदा होता है उस समय कोस-दो कोस की तो बात ही क्या है पगभर भी यह शरीर उसके साथ नहीं जाता। इसलिए यह शरीर मेरा है ऐसा विश्वास सर्वथा निर्मूल है। मनुष्य जो यह कहते हैं कि शरीर में सुख-दुःख होने पर आत्मा सुखी-दुःखी होती है यह बात भी सर्वथा निर्युक्तिक है क्योंकि जिस प्रकार झोंपड़े में अग्नि लगने पर झोंपड़ा ही जलता है तदन्तर्गत आकाश नहीं जलता उसी प्रकार शारीरिक सुख-दुःख मेरी आत्मा को सुखी-दुःखी नहीं बना सकते? मैं ध्यान-बल से आत्मा को चैतन्य स्वरूप शुद्ध निष्कलंक समझता हूँ और मेरी दृष्टि में शरीर जड़, अशुद्ध चर्मावृत, मल-मूत्र आदि का घर, अनेक क्लेश देने वाला है। मुझे कदापि इसे अपनाना नहीं चाहिए तथा इस प्रकार भावनाओं का चिंतन करते हुए मुनिराज, जैसे उन्हें राजा छोड़ गया था वैसे ही खड़े रहे और गंभीरतापूर्वक परीषह सहते रहे।

सत्य-सिद्धांत पर आरूढ़ रहने पर मनुष्य कहाँ तक दास नहीं बनते हैं। जिस समय राजा रानी ने मुनि को ज्यों-का-त्यों देखा अपार आनंद से उनका शरीर रोमांचित हो गया। उन दोनों ने शीघ्र ही समान भाव से मुनिराज को नमस्कार किया एवं उनकी प्रदक्षिणा की। मुनि के दुःख से दुःखित किन्तु उनके ध्यान की अचलता से हर्षित चित्त एवं प्रशम, संवेग आदि सम्यक्त्व गुणों से

प्रक्षाल्य मुनिसद्गात्रं निर्मलं कोष्णवारिणा। सुश्री खंडैर्विलिप्याशु तत्तापहतये सिका ॥२०५॥
ततः समर्च्य तत्पादमाक्षिपं सविधौ यतेः। आसतुस्तौ परं प्रीतौ सुस्मयापन्नमानसौ ॥२०६॥
सूर्योदये विषण्णं तं पूर्णयोगं च चर्वितम्। पिपीलिकाभिरत्यंतं राज्ञी रंजितमानसा ॥२०७॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य पूजयित्वा पदाम्बुजं। आरेभे तद्गुणालीढं स्तवं सा पापशांतये ॥२०८॥
नाथाद्य मित्रशत्रूणां समत्वं त्वयि वर्त्तते। नागपुष्पस्रजां साम्य मशर्मेतरदायिनां ॥२०९॥
संसारजलधेः पारं नीतोऽसि स्वयमेव च। अन्येषां प्रापणे दक्षस्त्वमेव काष्ठयानवत् ॥२१०॥
त्वत्तः प्राप्नोति जीवानां निकायः सातमुल्वणम्। एधसे शर्मणा स्वामिन्नात्मजेन भवापह् ॥२११॥
अहोधीरत्वमेवात्र शूरत्वं शुभभावना। परीषहजयत्वं च समस्ति ज्ञाननायक ॥२१२॥
क्षमयस्व कृपां कृत्वाऽपराधं में महामते। न ते स्तौ रागकोपौ च मित्रे शत्रौ हितेऽहिते ॥२१३॥

भूषित, रानी चेलना ने शीघ्र ही मुनि के गले से सर्प निकलवाया। पास में कुछ चीनी फैलाकर शीघ्र ही चींटियाँ दूर कीं। चींटियों ने मुनिराज का शरीर खोखला कर दिया था इसलिए रानी ने एक मुलायम वस्त्र से अवशिष्ट चींटियों को भी दूर करवाकर उसे गरम पानी से धुलवाया और संताप की निवृत्ति के लिए उस पर शीतल चन्दन आदि का लेप करवा दिया एवं मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मुनिराज की ध्यान मुद्रा पर आश्चर्य करने वाले, उनके दर्शन से अतिशय संतुष्ट, वे दोनों दंपती आनंदपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गये ॥१९२-२०७॥

यह नियम है दिगम्बर साधु रात में नहीं बोलते इसलिए जब तक रात्रि रही मुनिराज ने किसी प्रकार वचनालाप नहीं किया किन्तु ज्योंही दिन का उदय हुआ और अंधकार को तितर-बितर करते हुए ज्योंही प्राची दिशा में सूर्योदय हो गया त्योंही रानी ने शीघ्र ही मुनिराज के चरणों का प्रक्षालन किया एवं परम ज्ञानी, परम ध्यानी, जर्जर शरीर के धारक मुनिराज की फिर से तीन प्रदक्षिणा दी और उनके चरणों की भक्ति-भाव से पूजा कर अपने पाप की शान्ति के लिए वह इस प्रकार स्तुति करने लगी-

प्रभो! आप समस्त संसार में पूज्य हैं। अनेक गुणों के भंडार हैं। आपकी दृष्टि में शत्रु-मित्र बराबर हैं। दीनबंधो! सुमार्ग से विमुख जो मनुष्य आपके गले में सर्प डालने वाले हैं और जो आपको फूलों के हार पहनाने वाले हैं आपकी दृष्टि में दोनों ही समान हैं। कृपासिंधो! आप स्वयं संसार-समुद्र के पार पर विराजमान हैं एवं जो जीव दुःखरूपी तरंगों से टकराकर संसाररूपी बीच समुद्र में पड़े हैं, उन्हें भी आप ही तारने वाले हैं। जीवों के कल्याणकारी आप ही हैं। करुणासिंधो! अज्ञानवश आपकी जो अवज्ञा और अपराध बन पड़ा है, आप उसे क्षमा करें। कृपानाथ! यद्यपि मुझे विश्वास है आप राग-द्वेष रहित हैं। आपसे किसी का अहित नहीं हो सकता तथापि मेरे चित्त में जो अवज्ञा का संकल्प बैठा है, मुझे संताप दे रहा है इसीलिए यह मैंने आपकी स्तुति की है। प्रभो! आप मेघतुल्य, जीवों के परोपकारी हैं। आप ही धीर और वीर हैं एवं शुभ भावना भावने

प्रार्थयेऽहं तथापीह मम मानसशुद्धये। स्वामिन्गुणगणाराम वारिवारिदशारद ॥२१४॥
सेति संस्तुत्य सद्भक्त्या नेमतुस्तौ पदांबुजं। तेनोभाभ्यां सुनम्राभ्यां धर्मवृद्धिरदायि च ॥२१५॥
मागधेश! वृषवारविभागात् प्राप्यतेऽभ्युदयसंगमभारः।
जन्मलाभकुलिता सुकुले स्यात् तस्य वृद्धिरुभयोर्भव हान्यै ॥२१६॥
क्वेदं पवित्रं मुनिदर्शनं तयोः क्व भूपतिः सौगतधर्मवंचितः।
क्व चेलना बौद्धपरीक्षणं सदा क्व कोपभारो नृपतेर्जिने मते ॥२१७॥
क्व नागरोपो मुनिकंधरोद्भवः क्व चेलनायाः कथनं च भिक्षुजं।
क्व रात्रिमध्ये मुनिपार्श्वगंतृता क्व धर्मवृद्धिर्मुनिवक्त्रनिर्गता ॥२१८॥
दत्ताया मुनिनायकेन शिवदा तीर्थादिमूलं प्रभोश्च चक्रेशप्रमुखादिशर्मजनिनी धर्मादिवृद्धिःपरा।
राज्ञो भारतभावितीर्थपतिता सत्सूवने दूतिका दंपत्योर्युगपद्वृषोन्मुखतयोः संसारभीतात्मनोः ॥२१९॥
इति श्री श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभ पुराणे भट्टारक श्रीशुभचंद्राचार्य विरचिते
मुनि संगमवर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥९॥

वाले हैं। इस प्रकार रानी द्वारा भली प्रकार मुनि की स्तुति समाप्त होने पर राजा-रानी ने भक्तिपूर्वक फिर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया और यथास्थान बैठ गये एवं मुनिराज ने भी अतिशय नम्र दोनों दंपती को समान भाव से धर्म-वृद्धि दी।

तथा इस प्रकार उपदेश देने लगे-विनीत मगधेश! संसार में यदि जीवों का परम मित्र है तो धर्म ही है। इस धर्म की कृपा से जीवों को अनेक प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं। उत्तम कुल में जन्म मिलता है और संसार का नाश भी धर्म की ही कृपा से होता है। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे सदा उत्तम धर्म की आराधना करें ॥२०८-२१७॥

देखो भाग्य का माहात्म्य कहाँ तो परम पवित्र मुनि यशोधर का दर्शन? और बौद्धधर्म का परम भक्त कहाँ मगधेश राजा श्रेणिक? तथा कहाँ तो रानी चेलना द्वारा बौद्धधर्म की परीक्षा ? और कहाँ महाराज श्रेणिक का परीक्षा से क्रोध? कहाँ तो श्रेणिक का मुनिराज के गले में सर्प गिराना? और कहाँ फिर रानी द्वारा उपदेश? एवं कहाँ तो रात्रि में राजा-रानी का गमन? और कहाँ समान रीति से धर्म-वृद्धि का मिलना? ये सब बातें उन दोनों दंपती को शुभ-अशुभ भाग्योदय से प्राप्त हुई।

मुनि यशोधर ने जो धर्म-वृद्धि दी थी वह साधारण न थी किन्तु स्वर्ग-मोक्ष आदि सुख प्रदान करने वाली थी। संसार से पार करने वाली थी। तीर्थंकर-चक्रवर्ती-इन्द्र-अहमिन्द्र आदि पदों की प्रदात्री थी एवं महाराज आगे तीर्थंकर होंगे, इस बात को प्रकट करने वाली थी और धर्म से विमुख महाराज को धर्म-मार्ग पर लाने वाली थी ॥२१८-२१९॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के भवांतर के जीव महाराज श्रेणिक को भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित मुनिराज का समागम-वर्णन करने वाला नवम सर्ग समाप्त हुआ।

दशमः सर्गः

नौमि तं नरनाथेश चुंबितांह्रियशोधरम्। मुनीश्वरं विशुद्धात्मवेदकं कर्मभेदकं ॥१॥
वृषवृद्धिप्रदानेन शाम्यत्वं वीक्ष्य योगिनः। उभयोरुपरि प्राप्तो मानसे विस्मयं नृपः ॥२॥
अस्याहो नागरोहादि समये परमाक्षमा। त्यक्तमात्सर्यरूपस्य विशुद्धस्य च योगिनः ॥३॥
इदानीमनया भक्तिश्चक्राणश्चंदनादिभिः। अभक्तिश्च मया चक्रे कंठे नागादिदानतः ॥४॥
तथापि दृश्यते शाम्यमद्वितीयं द्वितीयकम्। अस्योपसर्गतो जातं कथं हन्मि च किल्विषं ॥५॥
मत्समः किल्विषी कोऽपि नास्ति योगिप्रघातनात्। अधमो मत्समो नैव भूपीठे पिशुनः परः ॥६॥
क्वेदं वपुः पवित्रं च यतेर्ध्यामव्रतादिना। अजनिष्ट जिघांसात्र ममैनः प्रचुरोऽभवत् ॥७॥
कथमेनो विधास्यामि दूरं दुर्गतिदायकम्। ज्ञानादृते मया पूर्वमर्जितं कलुषात्मना ॥८॥
तदेनोनाशसिद्ध्यर्थं स्वशिरश्छेदनं लघु। विधाय योगिपादाब्जं चायेऽहं पंकमग्रकः ॥९॥
अन्यथा किल्विषं नैव क्षयं याति ममात्मनः। दध्याविति नृपश्चित्ते चिरं यावदधोमुखः ॥१०॥

समस्त मुनियों के स्वामी, कर्म रहित निर्मल आत्मा के ज्ञाता, समस्त कर्मों के नाशक, मनुष्येश्वर महाराज श्रेणिक द्वारा पूजित, मैं श्री यशोधर मुनि को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

ज्योंही महाराज श्रेणिक का इस ओर लक्ष्य गया कि मुनि यशोधर ने हम दोनों को समान रीति से ही धर्म-वृद्धि दी है। धर्म-वृद्धि देते समय मुनिराज ने शत्रु-मित्र का कुछ भी विभाग नहीं किया है। इनकी हम दोनों पर कृपा भी एक-सी जान पड़ती है। महाराज एकदम अवाक् रह गये। तत्काल उनका मन संकल्प-विकल्पों से व्याप्त हो गया। वे खिन्न हो ऐसा विचारने लगे मुनि यशोधर धन्य हैं। गले में सर्प पड़ने पर अनेक पीड़ा सहन करते हुए भी इन्होंने उत्तम क्षमा को न छोड़ा। रानी चेलना ने गले से सर्प निकलवाकर इनकी भक्ति-भाव से सेवा की और मैंने इनके गले में सर्प डाला। इनकी अनेक प्रकार से हँसी की एवं इनकी कुछ भी भक्ति न की तो भी मुनिराज का भाव हम दोनों पर समान ही प्रतीत हो रहा है। हाय! मैं बड़ा नीच नराधम हूँ क्योंकि मैंने ऐसे परम योगी की यह अवज्ञा की। देखो! कहाँ तो परम पवित्र यह मुनिराज का शरीर और कहाँ मैं इसका विघातेच्छु? हाय! मुझे सहस्त्र बार धिक्कार है। संसार में मेरे समान कोई वज्रपाती न होगा। अरे! अज्ञानवश मैंने ये क्या अनर्थ कर डाले ? अब कैसे इन पापों से मेरा छुटकारा होगा ? हाय! मुझे अब नियम से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना पड़ेगा। अब नियम से वहाँ के दुःख भोगने पड़ेंगे। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस कमाये हुए पाप का पश्चाताप कैसे करूँ ? अब पाप-निवृत्यर्थ मेरा उपाय यही श्रेयस्कर होगा कि मैं खड्ग से अपना सिर काटूँ ? और मुनिराज के चरणों में गिर समस्त पापों का शमन करूँ।

कृपासिंधो! मेरे अपराध क्षमा करिये। मुझे दुर्गति से बचाइए तथा इस प्रकार विचार करते-करते मारे लज्जा के महाराज नतमस्तक हो गये। दुःख के कारण उनकी आँखों से अश्रुबिंदु टपक पड़ी ॥२-१०॥

तावद्बोधबलेनासौ मत्वा तत्स्वांतजं जगौ। राजन्विरूपकं नैवं चिंतनीयं त्वया हृदि ॥११॥
इत्थं कृते नृपाधीश न याति निजकिल्विषं। आयाति किल्विषं धीमन् स्वहत्याऽशर्मरूपया ॥१२॥
करपत्रादि घातेन ये कुर्वंति मृतिं शठाः। ते वै नारकतिर्यक्षु संबोभुवति किल्विषात् ॥१३॥
विषहेमादिपानेन प्राणास्त्यजंति मानवाः। अमुत्राऽशर्मभुंजंति नानाभेदं निरंकुशं ॥१४॥
स्वघातो नैव कर्त्तव्यः पंकनाशादिसिद्धये। रूपादिप्राप्तये चैव प्राणिभिर्हितमिच्छुभिः ॥१५॥
विधेहि पंकनाशाय निंदा गर्हां नराधिप। प्रायश्चित्तं विशेषेणैनोवृंदविधिदूरकृत् ॥१६॥
आकर्ण्येति जजल्पासौ मानसं मे कथंचन। अवीविदद्विकल्पं च चित्रं चित्रं मुनिर्महान् ॥१७॥
तदाऽगदीन्महाराज्ञ्यवीविदः किं न सद्यतेः। ज्ञानभूतिसमस्तार्थपर्यायपदवेदिकं ॥१८॥
का वार्ता स्वांतजा राजन् सर्वं वेत्तिभवादिकं। यतिरिच्छास्ति ते चित्ते पृच्छ यस्य भवादिकं ॥१९॥

मुनिराज परम ज्ञानी थे, उन्होंने शीघ्र ही राजा के मन का तात्पर्य समझ लिया एवं महाराज को सांत्वना देते हुए वे इस प्रकार कहने लगे–नरनाथ! तुम्हें किसी प्रकार का विपरीत विचार नहीं करना चाहिए। पाप-विनाशार्थ जो तुमने आत्महत्या का विचार किया है, सो ठीक नहीं। आत्महत्या से रत्ती-भर पापों का नाश नहीं हो सकता। इस कर्म से उल्टा घोर पाप का बन्ध ही होगा। मगधेश! अज्ञानवश जो जीव तलवार या विष आदि से अपनी आत्मा का घात कर लेते हैं। वे यद्यपि मरण के पहले समझ तो यह लेते हैं कि हमारी आत्मा कष्टों से मुक्त हो जायेगी। परभव में हमें सुख मिलेंगे किन्तु उनकी यह बड़ी भूल समझनी चाहिए। आत्मघात से कदापि सुख नहीं मिल सकता। आत्मघात से परिणाम संक्लेशमय हो जाते हैं। संक्लेशमय परिणामों से अशुभ बन्ध होता है और अशुभ बन्ध से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना पड़ता है।

राजन्! यदि तुम अपना हित ही करना चाहते हो तो इस अशुभ संकल्प को छोड़ो। अपनी आत्मा की निंदा करो एवं इस पाप का शास्त्रों में जो प्रायश्चित्त लिखा है, उसे करो। विश्वास रखो पापों से मुक्त होने का यही उपाय है। आत्महत्या से पापों की शांति नहीं हो सकती।

मुनिराज के ये वचन सुने तो महाराज अचम्भे में पड़ गये। वे महारानी के मुँह की ओर ताक कर कहने लगे-सुन्दरी! यह क्या बात हुई ? मुनिराज ने मेरे मन का अभिप्राय कैसे जान लिया? अहा! ये मुनि साधारण मुनि नहीं किन्तु कोई महामुनि हैं। महाराज के मुख से यह बात सुन रानी चेलना ने कहा–नाथ! हाथ की रेखा के समान समस्त पदार्थों को जानने वाले क्या इन मुनिराज की ज्ञानविभूति को आप नहीं जानते ? प्राणनाथ! आपके मन की बात मुनिराज ने अपने परम पवित्र ज्ञान से जान ली है। आप अचंभा न करें। मुनिराज को आपके अंतरंग की बात का पता लगाना कोई कठिन बात नहीं। आपके भवांतर का हाल भी ये बता सकते हैं। यदि आपको इच्छा है तो पूछिए। आप इनके ज्ञान की अपूर्व महिमा समझे। रानी चेलना से मुनिराज के ज्ञान की यह अपूर्व महिमा सुन अब तो महाराज गद्गद् कंठ हो गये। अपनी आँखों से आनंदाश्रु पोंछते हुए वे मुनिराज से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥११-१९॥

तदावनिपतिः प्राह स्वामिन्निःशेषवेदकः। भवमादिश मे पूर्वं कोऽहं कस्मात्समागतः ॥२०॥
समाधाय निजं चित्तं शृणु श्रेणिकभूपते। कथयिष्यामि योगींद्र इति वाचकथत्तदा ॥२१॥
द्वीपे जंबूपदोपेते वृत्तनिर्जितचंद्रके। मेरुः सुदर्शनो नाम्ना समस्ति स्वर्णवर्णकः ॥२२॥
अवाच्यां तस्य भरतं सस्यं भाति परोन्नतं। षट्खंडखंडसंशोभिशोभिताखिलभूतलम् ॥२३॥
तत्रार्यखंडमाभाति स्मार्यलोकैः समाकुलम्। निरालंबतया नाक खंडं भ्रष्टं बुधाश्रितं ॥२४॥
सूरकांतिसमोद्भासी सूरकांताऽभिधो नृप। नीवृत्तत्रास्ति विख्यातः ख्यातिव्याप्तजगत्रयः ॥२५॥
ग्रामारम्यसुरामाभी रमणीया मनोरमाः। हेमधामपरा यत्र सुसीमानो विशंति वै ॥२६॥
सस्यभृतो मनोऽभीष्टदायिनो वित्तपूरिताः। वर्त्तन्ते निगमा यत्र भांडागाराश्च भूपतेः ॥२७॥
तत्रास्ति परया भूत्या पुरं शूरपुरं परम्। विशालाति सद्दीर्घखातिकाभिरलंकृतं ॥२८॥
आपण श्रेणिकायां च कृतरत्नसुराशयः। वेष्टिता जनया दोभिर्भांति रत्नाकराविलौ ॥२९॥
यत्सौध शिखरे रूढाः सातकुंभसुकुंभकाः। दीप्यंत आगताश्चंद्राः सेवायै तत्पराजिताः ॥३०॥
यत्र प्रासाददेशेषु कृता जैने जनैर्मुदा। अर्चा जिनेशिनां पापशांतये स्युः स्फुरत्प्रभाः ॥३१॥

कृपासिंधो! मैं परभव में कौन था ? जिस योनि से मैं इस जन्म में आया हूँ? कृपया मेरे पूर्वभव का विस्तारपूर्वक वर्णन कहें। इस समय मैं अपने भवांतर के चरित्र सुनने के लिए अति आतुर एवं उत्सुक हूँ। अति विनयी महाराज श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कहा–राजन्! यदि तुम्हें अपने चरित्र सुनने की इच्छा है तो तुम ध्यानपूर्वक सुनो, मैं कहता हूँ।

इसी लोक में लाख योजन चौड़ा, द्वीपों का सिरताज, अपनी गोलाई से चंद्रमा की गोलाई को नीचे करने वाला जंबूद्वीप है। जंबूद्वीप में सुवर्ण के रंग का सुमेरु नाम का पर्वत है। सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में जो विजयार्द्ध पर्वत से छह खंडों में विभक्त, भरत क्षेत्र है। भरत क्षेत्र में एक अति रमणीय स्थान जो कि स्वर्ग के निरालंब होने के कारण, पृथ्वी पर गिरा हुआ स्वर्ग का टुकड़ा ही है क्या ? ऐसी मनुष्यों को भ्रांति करने वाला आर्यखंड है। आर्यखंड में अपनी कांति से सूर्य–कांति को तिरस्कृत करने वाला, जगद्विख्यात, समस्त देशों का शिरोमणि सूर्यकांत देश है। सूर्यकांत देश में कुक्कुट संपात्य ग्राम है। मनोहर पुरुषों के चित्तों को अनेक प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली उत्तमोत्तम स्त्रियाँ हैं। सर्वदा यह देश उत्तमोत्तम धान्य सोना–चाँदी आदि पदार्थों से शोभित और ऊँचे–ऊँचे धनिक गृहों से व्याप्त रहता है। इसी देश में एक नगर जो कि उत्तमोत्तम बावड़ी, कूप एवं स्वादिष्ट धान्यों से शोभित, शूरपुर है। शूरपुर के बाजार में जिस समय रत्नों की ढेरी नजर आती है। उस समय यही मालूम होता है मानो पानी रहित साक्षात् समुद्र आकर ही इसकी सेवा कर रहा है और जब ऊँचे–ऊँचे धनिक गृहों की शिखर पर सुवर्ण कलश देखने में आते हैं तब यह जान पड़ता है मानो चन्द्रमा इस नगर की सदा सेवा करता रहता है। वहाँ पर भक्ति–भाव से उत्तमोत्तम जिनालयों में भगवान् की पूजा कर भव्य जीव अपने पापों का नाश करते हैं और मयूर जिस समय गवाक्षों से निकला हुआ सुगंधित धुँआ देखते हैं तो उसे मेघ समझ

रम्यसौधस्थितानां च केकिनां घनशंकिकाम्। अकांडे तन्वते धूमाः कृष्णागुरुसमुद्भवाः ॥३२॥
पूजायै केचनोत्तुंगा भव्याभव्यादि संपदः। कनत्कंकणनारीभिर्यांति देवा इवोत्तमाः ॥३३॥
ककेचना जना यत्र निर्वेदं कायकादिषु। आसाद्य निर्वृतिं यांति तत्र का वर्णना परा ॥३४॥
तच्छास्ता मित्रनामाभूत्प्रतापत्रस्तशात्रवः। पत्नी कांतिकलाकीर्णा श्रीमती तस्य श्रीमती ॥३५॥
तयोः सुमित्र इत्याख्यस्तनयो मयनायकः। सविवेको विशालाक्षः सुपक्षो नीतिपंडितः ॥३६॥
मतिसागर नामाभून्मंत्री मंत्रविचक्षणः। दयिता तस्याभवन्नूनं रूपिणी रूपचंद्रिका ॥३७॥
अजनिष्ट तयोः सूनुः सुषेणः सुखसंगतः। बुद्धिविज्ञानवेत्ता च राजमार्गे परार्थकृत् ॥३८॥
सुमित्रो मंत्रिपुत्रेण रमते क्रीडनैः सदा। संतापयति भूभृज्जो मंत्रिपुत्रं कदाचन ॥३९॥
मदाष्टतः सुमित्रेण तापितोऽपि सुमंत्रिजः। न ब्रूते वचनं भीतः सहमानः समाधिजं ॥४०॥
कदाचिज्जलकेल्यर्थं दीर्घिकायां ममज्जतुः। तौ पद्मवृदसंकीर्णौ निमग्नौ जलमध्यतः ॥४१॥
सुमुखश्च महास्नेहात्कौतुकेन च वारिणि। बहुशो मज्जयत्येव सुषेणं खिन्नमानसं ॥४२॥
ससंक्लिश्यमना नैव प्रतिवाक्यं कदाचन। सुब्रूते साध्वसाद्राज्ञोऽशक्ये मौनं वरं सदा ॥४३॥

असमय में ही नाचने लग जाते हैं एवं वहाँ कई एक भव्य जीव संसार-भोगों से विरक्त हो सर्वदा के लिए कर्म-बन्धन से छूट जाते हैं।

शूरपुर का स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजापालक एवं शत्रुओं को भयावह था, राजा मित्र था। राजा मित्र की पटरानी श्रीमती थी। श्रीमती वास्तव में अतिशय शोभायुक्त होने से श्रीमती ही थी। महाराज मित्र के श्रीमती रानी से उत्पन्न कुमार सुमित्र था। सुमित्र नीतिशास्त्र का भले प्रकार वेत्ता, विवेकी, सच्चरित्र और विशाल किन्तु मनोहर नेत्रों से शोभित था। राजा मित्र के मंत्री का नाम मतिसागर था। जो कि नीतिमार्गानुसार राज्य की सँभाल रखता था। मंत्री मतिसागर के मनोहर रूप की खान, रूपिणी नाम की भार्या थी और रूपिणी से उत्पन्न पुत्र सुषेण था। सुषेण माता-पिता को सदा सुख देता था और प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक करता था। राजा मित्र का पुत्र सुमित्र और सुषेण दोनों समवयस्क थे। इसलिए वे दोनों आपस में खेला करते थे। सुमित्र को अभिमान अधिक था। वह अभिमान में आकर सुषेण को बड़ा कष्ट देता था। अनेक प्रकार की अवज्ञा भी किया करता था ॥२०-४०॥

एक दिन सुमित्र और सुषेण किसी बावड़ी पर स्नानार्थ गये। वे दोनों कमल-पत्र से मुँह ढाँक बार-बार जल में डुबकी मारने लगे। सुमित्र बड़ा कौतूहली था, सुषेण को बार-बार डूबाता था और खूब हँसी करता था। सुमित्र के बर्ताव से यद्यपि सुषेण को दुःख होता था किन्तु राजमित्र के भय से वह कुछ नहीं कहता था। उदासीन भाव से उसके सब अनर्थ सहता था।

कदाचित् राजा मित्र का शरीरांत हो जाने से सुमित्र राजा बन गया। सुमित्र को राजा जान मंत्री-पुत्र सुषेण को अति चिंता हो गई। वह विचारने लगा-सुमित्र का स्वभाव क्रूर है वह दुष्ट मुझे बालकपन में बड़े कष्ट देता था। अब तो यह राजा हो गया, मुझे अब यह और भी अधिक

कालांतरेण सप्रापत्सुमुखो राज्यमुत्तमम्। तं राज्यस्थं परिज्ञाय सुषेणोऽतर्कयद् हृदि ॥४४॥
अहो पूर्वं यथा सैष व्यतापयच्च दुष्टधी:। तथैव मां महापापीदानीं संतापयिष्यति ॥४५॥
विमृश्येति निजे चित्ते जगाम विपिनं घनं। निर्ग्रंथमुनिमासाद्य जग्राह परमं तप: ॥४६॥
नानाविधं तप: कुर्वन् द्विपक्षप्रोषधादिकं। शास्त्राध्ययनकर्मादि षडावश्यकतत्पर: ॥४७॥
एकदा भूपतिर्मित्रमपश्यंस्तद्गृहं गत:। कमपि पृष्टवान्वेगात्कुत्रास्ते मे सुहृत्प्रिय: ॥४८॥
तेनाभाणि महाभूप जग्रहे तेन सत्तप:। वने गुरुसमीपेऽथाकर्ण्येति व्याकुलोऽभवत् ॥४९॥
कदाचित्स्वपुरोद्याने मत्वा मित्रमुनिं मुदा। आटितं परमं तोषमापेदे पंकजं यथा ॥५०॥
संदाप्यानंदसद्भेरीमारुह्य गजमुन्नतम्। चचाल संपदा साकं सुमित्रो मंत्रिभि: पुन: ॥५१॥
ततस्तद्वनमासाद्य समुत्तीर्यस्ववाहनात्। परीत्य तं मुनिं भक्त्या नमन्नमितमस्तक: ॥५२॥

कष्ट देगा। इसलिए अब सबसे अच्छा यही होगा कि इसके राज्य में न रहना तथा ऐसा विचार कर सुषेण ने शीघ्र ही कुटुम्ब से मोह तोड़ दिया एवं वन में जाकर जैन दिगम्बर दीक्षा धारण कर वे उग्र तप करने लगे।

जब से सुषेण मुनिराज वन में गये तब से वे राजमंदिर में न आये। राजा सुमित्र भी राज्य पाकर आनंद से भोग भोगने लगे। उनको भी सुषेण की कुछ याद न आई। कदाचित् राजा सुमित्र एकान्त स्थान में बैठे थे। उन्हें अचानक ही सुषेण की याद आ गई। सुषेण का स्मरण होते ही उन्होंने शीघ्र ही किसी पार्श्वचर (सिपाही) से पूछा-कहो भाई! आजकल मेरे परम पवित्र मित्र सुषेण राजमंदिर में नहीं आते, वे कहाँ रहते हैं ? और क्यों नहीं आते ? महाराज के मुख से सुषेण के बाबत ये वचन सुन पार्श्वचर ने कहा–कृपानाथ! सुषेण तो दिगम्बर दीक्षा धारण कर मुनि हो गये। अब उन्होंने समस्त संसार से मोह छोड़ दिया। वे आजकल वन में रहते हैं। इसलिए आपके मंदिर में नहीं आते। पार्श्वचर के मुख से अपने प्रिय मित्र सुषेण का यह समाचार सुन राजा सुमित्र बड़े दु:खी हो गये। उन्हें सुषेण की अब बड़ी याद आने लगी। कदाचित् राजा सुमित्र को यह पता लगा कि मुनिराज सुषेण शूरपुर के उद्यान में आ विराजे हैं। उन्हें बड़ी खुशी हुई। मुनिराज के आगमन–श्रवण से राजा सुमित्र का चित्तरूपी कमल विकसित हो गया। उन्होंने मुनिराज के दर्शनार्थ शीघ्र ही नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया एवं स्वयं भी एक उन्नत गज पर सवार होकर बड़े ठाट–बाट से मुनि–दर्शन के लिए गये। ज्योंही राजा सुमित्र का हाथी वन में पहुँचा, वे गज से तुरन्त उतर पड़े। मुनिराज सुषेण के पास जाकर उनको तीन प्रदक्षिणा दी। अति विनय से नमस्कार किया एवं प्रबल मोह के उदय से सुषेण की मुनि–मुद्रा की ओर कुछ न विचार कर वे यह कहने लगे–

प्रियमित्र! मेरा राज्य विशाल राज्य है। शुभ पुण्योदय से मुझे यह मिल गया है। ऐसे विशाल राज्य की कुछ भी परवा न कर मेरे बिना पूछे आप मुनि बन गये यह ठीक नहीं किया। आपको आधा राज्य ले भोग भोगने थे। अब भी आप इस पद का परित्याग कर दें। भला संसार में ऐसा

भूपोऽभाणीद्यते धीमन्राज्यं मे शुभायतम्। हित्वा त्वया तपस्तूर्णमंगीकार्यं तदर्द्धकम् ॥५३॥
हित्वा दृष्टं शुभं राज्यं को गृह्णाति तपः परम्। मुंच मुंच तपो मित्र समेहि मम पत्तनम् ॥५४॥
इत्युक्ते मुनिनाथोऽसौ जगौ नरपते शृणु। परलोकहितायाहं जग्राह परमं तपः ॥५५॥
तपसा प्राप्यते नाकस्तपसा प्राप्यते सुखं। तपसा प्राप्यते राज्यं तपसा प्राप्यते शिवः ॥५६॥
तपसा प्राप्यते वित्तं तपसा प्राप्यते यशः। न तितिक्षामि राजेंद्र तपोऽभ्युदयदायकं ॥५७॥
भूपः पुनर्जगौ वाक्यं नो चेन्मम वचः कुरु। ममाहारकृते गेहया गंतव्यं यथा तथा ॥५८॥
राजन्निति न युक्तं मे कृताहारग्रहादिकम्। यतीनां योगयुक्तानां तपः कृतविवर्जनम् ॥५९॥
मनोवचनकायैश्च यत्कृतं कारितं पुनः। अनुमोदितमेवात्र हेयं हेयं च भोजनम् ॥६०॥
प्रासुकं यत्स्वयं जातं गेहिनां धाम्नि निश्चितं। अनुद्दिष्टं समादेयं जेमनं यतिभिः सदा ॥६१॥
तिथि र्न विद्यते येषां येषामामंत्रणं न च। कथ्यंतेऽतिथयस्तत्र निघस्त्रे तिथिवर्जिते ॥६२॥

कौन बुद्धिमान् होगा जो शुभ एवं प्रत्यक्ष सुख देने वाले राज्य को छोड़ दुर्धर तपश्चरण करेगा। राजा सुमित्र के मुख से ये मोह पूर्ण वचन सुन मुनिराज सुषेण ने कहा–

राजन्! मैं अपनी आत्मा को शांतिमय अवस्था में लाना चाहता हूँ। पर भव में मेरी आत्मा शांति स्वरूप का अनुभव करे। इसलिए मैंने यह तप करना प्रारम्भ कर दिया है। मुझे विश्वास है कि उत्तम तप की कृपा से मनुष्यों को स्वर्ग–मोक्ष सुख मिलते हैं। इसी की कृपा से राज्य, उत्तमोत्तम विभूतियाँ, उत्तम यश एवं उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। मुनिराज सुषेण के मुख से ये वचन सुन राजा सुमित्र ने और तो कुछ न कहा किन्तु इतना निवेदन और भी किया।

मुनिनाथ! यदि आप तप छोड़ना नहीं चाहते तो कृपा कर आप मेरे राजमंदिर में भोजनार्थ जरूर आवें और मेरे ऊपर कृपा करें। राजा के ये वचन भी मोह–परिपूर्ण जान मुनिवर सुषेण ने कहा ॥४१–५८॥

नरनाथ! मैं इस काम के करने के लिए भी सर्वथा असमर्थ हूँ। दिगम्बर मुनियों को इस बात की पूर्णतया मनाई है। वे संकेत पूर्वक आहार नहीं ले सकते। आप निश्चय समझिए। जो भोजन मन, वचन, कर्म द्वारा स्वयं किया एवं पर से कराया गया, वा पर को करते देख ''अच्छा है'' इत्यादि अनुमोदन पूर्वक होगा, दिगम्बर मुनि उस भोजन को कदापि न करेंगे किन्तु उनके योग्य वही भोजन हो सकता है जो प्रासुक होगा। उनके उद्देश्य से न बना होगा और विधिपूर्वक होगा। राजन्! दिगम्बर मुनि अतिथि हुआ करते हैं। उनके आहार की कोई तिथि निश्चित नहीं रहती। मुनि निमन्त्रण–आमन्त्रण पूर्वक भी भोजन नहीं कर सकते। आप विश्वास रखिए जो मुनि निश्चित तिथि में निमन्त्रण पूर्वक आहार करने वाले हैं। कृत–कारित–अनुमोदन का, कुछ भी विचार नहीं रखते। वे मुनि नहीं, जिह्वा के लोलुपी हैं एवं वज्र मूर्ख हैं।

हाँ, यदि मेरे योग्य जैन–शास्त्र से अविरुद्ध कोई काम हो तो मैं कर सकता हूँ। मुनिराज की दृष्टि सांसारिक कार्यों से ऐसी उपेक्षायुक्त देख राजा सुमित्र ने कुछ भी जवाब न दिया। उसने शीघ्र

(अशनं) कृतकारितसंमोदैन्यादं गृह्णंति ये शठाः। यततो नात्र चोच्यंते रसनाहतमानसाः ॥६३॥
अत इत्थं न वक्तव्यं भूप! भिक्षादिहेतवे। अन्यद्यद्रोचते तुभ्यं कथ्यमानं करोमि तत् ॥६४॥
नत्वा तं योगिनं भूपो जगाम खिन्नमानसः। तत्राहूय जनान्सर्वानादिशद्भूमिपः स्फुटं ॥६५॥
यदा सुषेणनामायं लेपार्थं मुनिसत्तमः। आगच्छति भवद्गेहे स्थापनीयो न सर्वकैः ॥६६॥
तदास्मन्मंदिरे धीमान् ग्रहीष्यति च भोजनं। इत्याज्ञां भूमिपश्चक्रे सर्वेषां स्वार्थसिद्धये ॥६७॥
ततः कतिपयै र्घस्त्रै र्द्विपक्षपारणा कृते। प्रति श्राद्धगृहं सोऽगात्पतिगृह्णाति कोऽपि न ॥६८॥
तदेर्यां पथसद्दृष्टि रखिन्नः खिन्नगात्रकः। समाप मंदिरं तस्य कायस्थित्यै महामना ॥६९॥
तावत्सदसि भूपस्य वैरिभूपस्य दूतकः। आजगाम तदा भूपो व्याकुलोऽभून्नराधिपः ॥७०॥
नापश्यत्तं नराधीशः स स्मप्रतिगृह्णाति न। विधाय विधिवद्योगी प्रत्यूहमगमत्तदा ॥७१॥
ततो द्विपक्षपर्यंतं जग्राह प्रोषधं यतिः। पारणायै पुनर्योगी चचाल नृपमंदिरं ॥७२॥
भूपदंताबलो राजंस्तदा चोत्क्षिप्य बंधनं। चचाल व्याकुलीकुर्वन्स निशांतं नृपादिकं ॥७३॥

ही मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया एवं हताश हो चुपचाप राजमन्दिर की ओर चल दिया।

यद्यपि राजा सुमित्र हताश हो राजमन्दिर में तो आ गये किन्तु उनका सुषेण विषयक मोह कम न हुआ। उनके मन में मोह का यह अंकुर खड़ा ही रहा कि किस रीति से मुनि सुषेण राजमन्दिर में आहार लें इसलिए ज्योंही वह राजमन्दिर में आया। शीघ्र ही उसने यह समझ कि मुनि सुषेण को जब अन्यत्र आहार न मिलेगा तो मेरे यहाँ जरूर लेंगे। नगर में यह कड़ी आज्ञा कर दी कि सुषेण मुनि को कोई आहार न दें और प्रतिदिन मुनि सुषेण की राह देखता रहा।

कई दिन बाद मुनिराज सुषेण दो पक्ष की पारणा के लिए नगर में आहारार्थ आये। वे विधिपूर्वक इधर-उधर गृहस्थों के घर गये किन्तु राजा की आज्ञा से किसी ने उन्हें आहार न दिया। अन्त में सम्यग्दर्शनादि गुणों से भूषित, विद्वान् आहार के न मिलने पर भी प्रसन्न चित्त, मुनि सुषेण जूरा प्रमाण भूमि को निरखते राजमन्दिर की ओर आहारार्थ चल दिये।

इधर मुनिराज का तो राजमन्दिर में प्रवेश हुआ और इधर राजा सुमित्र की सभा में राजा वैर का एक दूत आ पहुँचा। दूत-मुख से समाचार सुन राजा सुमित्र अति व्याकुल हो गये ॥५९-७०॥

चित्त की घबराहट से वे मुनिराज को न देख सके। अन्य किसी ने मुनिराज को आहार दिया नहीं। इसलिए अपना प्रबल अंतराय जान मुनिराज तत्काल वन को लौट गये एवं उन्हें दो पक्ष का प्रोषध व्रत धारण कर लिया।

जब दो पक्ष समाप्त हो गये तो फिर मुनिराज आहार को आये और उसी तरह समस्त गृहस्थों के घर घूमकर वे राजमन्दिर की ओर गये। ज्योंही मुनिराज राजमन्दिर के पास पहुँचे त्योंही राजा सुमित्र के हाथी ने बन्धन तोड़ दिया एवं जन-समुदाय को व्याकुल करता हुआ वह नगर में उपद्रव करने लगा इसलिए इस भयंकर दृश्य से अपना भोजनांतर समझ मुनिराज फिर वन को

तथा समीक्ष्य योगी स कृतप्रत्यूहकोऽगमत्। वनं पुनर्द्विपक्षांतं जग्राहानशनं मुदा ॥७४॥
तृतीयपारणायां सोऽटतो हि भूपते र्मुदा। राजधाम महादाहाद्व्याकुलैर्भूमिपादिभिः ॥७५॥
नादृश्यत तदा सोऽपि प्रत्यूहमकरोत्पुनः। क्षीणगात्रो विशिष्टात्मा त्वगस्थीभूतविग्रहः ॥७६॥
गच्छंतं तं वनं वीक्ष्य प्राहुः केचिन्नरोत्तमाः। अहो दुष्टो महाभूपो दानप्रत्यूहकारकः ॥७७॥
स्वयं दत्तेन सद्दानमस्मै दातुं निषेधकृत्। अन्येषामिति च श्रुत्वा योगी कोपी बभूव सः ॥७८॥
अहो! अनेन दुष्टेन पूर्वं संतापितो महान्। तथेदानीमहं राज्ञा ताप्ये वै लेपबाधनात् ॥७९॥
रोषोद्दीपितगात्रोऽसौ निदानमकरोत्तदा। कोपांधो ग्रावसंलग्नपादो भूमौ समापतत् ॥८०॥
क्षीणदोषेण मृत्वा स निदानाद्व्यंतरोऽजनि। व्यंतरत्वं क्व चारित्रं कार्यं हि न निदानकं ॥८१॥
कुतश्चिन्मृतमावेद्य सुषेणं मुनिपुंगवं। चकार विविधं शोकं राजन्सुमुखभूपतिः ॥८२॥
तद्वियोगोत्थदुःखेन सुमुखस्तापसोऽभवत्। कुतपो दुस्सहं कृत्वा मृत्वा जज्ञे सुरस्ततः ॥८३॥
स्वायुरंते ततश्च्युत्वा सुमित्रचरनिर्जरः। त्वमभूर्मागधाधीश स मिथ्यात्वः कुशासनात् ॥८४॥

लौट गये। उस दिन भी उनको आहार न मिला एवं वन में जाकर फिर उन्होंने दो पक्ष का प्रोषध व्रत धारण कर लिया।

प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने पर मुनिराज फिर भी दो पक्ष बाद नगर में आये। गृहस्थों के घरों में आहार न पाकर वे राजमन्दिर में आहारार्थ गये। इधर मुनिराज का तो राजमन्दिर में आगमन हुआ और उधर राजमन्दिर में बड़े जोर से आग लग गई। अग्निज्वाला देख राजा सुमित्र आदि घबरा गये। उस दिन भी राजा सुमित्र की दृष्टि मुनिराज पर न पड़ी एवं मुनिराज भी आहार का अन्तराय समझ वन की ओर चल दिये। मुनिराज वन की ओर जा रहे थे। उनकी देह आहार के न मिलने से सर्वथा क्षीण हो चुकी थी। ज्योंही गृहस्थों की दृष्टि मुनिराज पर पड़ी, मुनिराज का शरीर अति क्षीण देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे खुले शब्दों में राजा सुमित्र की निन्दा करने लगे। देखो! यह राजा बड़ा दुष्ट है इस समय यह मुनिराज के आहार में पूरा-पूरा अन्तराय कर रहा है। न यह दुष्ट स्वयं आहार देता है और न किसी दूसरे को देने देता है ॥७१-७८॥

मनुष्यों को इस प्रकार बातचीत करते हुए सुन मुनि सुषेण ईर्यापथ-ध्यान से विचलित हो गये। आहार के न मिलने से क्रोध के कारण उनका शरीर लाल हो गया। वे विचारने लगे-देखो इस राजा की दुष्टता जिस समय मैं मुनि नहीं था उस समय भी मुझे यह अनेक संताप देता था और अब मैं मुनि हो गया, इसके साथ मेरा कुछ भी संबंध नहीं रहा तो भी यह मुझे संताप दिये बिना नहीं मानता। ऐसा नीच, चांडाल कोई राजा नहीं देख पड़ता तथा इस प्रकार क्रोधांध हो मुनि सुषेण ने बड़े जोर से किसी पत्थर में लात मारी। लात मारते ही वे एकदम जमीन पर गिर गये। तत्काल उनके प्राण पखेरू उड़ गये एवं खोटे निदान से मुनि सुषेण व्यन्तर हो गये।

मुनि सुषेण की मृत्यु का समाचार राजा सुमित्र ने भी सुना। सुनते ही उनका चित्त अति आहत हो गया। सुमित्र और मंत्री आदि सुषेण की मृत्यु पर अति शोक करने लगे।

सुषेणचर देवो यो भविता चेलनोदरे। कुणिकाख्यः सुतो राजंस्तववैरिसमः सदा ॥८५॥
कर्णांजलिपुटाभ्यां स संपीयेति वचोऽमृतम्। जातिस्मस्तदा जज्ञे ज्ञातपूर्वभवावलिः ॥८६॥
अहो ज्ञान महोज्ञानमहो क्षांतिरहो क्षमा। अहो धीरत्वमुत्तंगं यतेः शंसां तदाकरोत् ॥८७॥
शासनं जिनचंद्रस्य सत्यं नान्यज्जगत्त्रये। तत्वं तद्गदितं सत्यं सत्यं सत्यव्रतं यतेः ॥८८॥
अहो! ये वंचका लोके रसनारसलंपटाः। परिगहग्रहग्रस्ता बोधयोग पराङ् मुखाः ॥८९॥
नाम्ना गुरुपदं मूढा वहंतो हंतुकामुकाः। गुरवो नैवते नूनं पाखंडपदमंडिताः ॥९०॥
किंचित्तत्वस्य श्रद्धानं दधत्स श्रेणिको नृपः। पाक्षिकाचारसंन्यस्तमतिर्दर्शनसन्मुखः ॥९१॥
ततो निश्चित्य सद्धर्मं जैनं तं मुनिपुंगवम्। मुहुर्मुहुः प्रणम्याशु चर्चयित्वा तदंह्रिकं ॥९२॥
तदुत्थगुणसंलीढमानसो वचसा किरन्। तद्गुणान्निर्ययौ तस्माच्चिंतयंस्तद्गुणान्मुहुः ॥९३॥

किसी दिन सुषेण की मृत्यु से सुमित्र के दुःख की सीमा यहाँ तक बढ़ गई कि उसने समस्त राज्य का परित्याग कर दिया। शीघ्र ही तापस के व्रत धारण कर लिए और आयु के अंत में मरकर खोटे तप के प्रभाव से वह भी देव हो गया।

मगधेश! अब देवगति की आयु को समाप्त कर राजा सुमित्र का जीव तो श्रेणिक हुआ है और मुनि सुषेण का जीव अपने आयु-कर्म के अन्त में रानी चेलना के गर्भ में आवेगा। वह कुणिक नाम का धारक तेरा पुत्र होगा एवं तेरा पुत्र होकर भी वह तेरे लिए सदा शत्रु रहेगा।

मुनिराज यशोधर के मुख से अपने पूर्व भव का हाल वास्तविक रीति से जान लिया एवं मुनिराज के गुणों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए वे ऐसा विचार करने लगे–अहा!!! मुनि यशोधर का ज्ञान धन्य है। उत्तम क्षमा भी इनकी प्रशंसा के लायक है। परीषहों के जीतने में धीरता भी इनकी लोकोत्तर है। इनके प्रत्येक गुण पर विचार करने से यही बात जान पड़ती है कि मुनि यशोधर-समान परम ध्यानी, परम ज्ञानी, मुनि शायद ही संसार में होगा ॥७९-८७॥

श्री जिनेन्द्र भगवान् का शासन भी संसार में धन्य है। जिनागम में जो तत्त्व कहे गये हैं और उनका जिस रीति से स्वरूप-वर्णन किया गया है, सर्वथा सत्य है। जिनोक्त जीवादि तत्त्वों से भिन्न तत्त्व मिथ्या तत्त्व हैं। यशोधर मुनिराज अपने व्रत में सर्वथा दृढ़ हैं। साधुओं के वास्तविक लक्षण मुनि यशोधर में ही संघटित होते हैं एवं महाराज की विचार-सीमा अब और भी चढ़ गई। वे मनोमन यह भी कहने लगे–जो साधु भोले जीवों के वंचक हैं, विषय-लंपटी हैं। हाथी, घोड़ा, माल, खजाना, स्त्री आदि परिग्रहों के धारक हैं। वास्तविक ज्ञान-ध्यान से बहिर्भूत हैं। वे नाम के ही साधु हैं, पाखंडी साधु कदापि गुरु नहीं बन सकते। वे संसार-समुद्र में डूबने वाले हैं। इस प्रकार विचार करते-करते महाराज श्रेणिक को अपनी आत्मा का कुछ वास्तविक ज्ञान हो गया उन्होंने शीघ्र ही श्रावक के व्रत धारण कर लिए। रानी चेलना सहित महाराज श्रेणिक ने विनय से मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया एवं मुनिराज के गुणों में संलग्न चित्त, उनकी बारम्बार

दुंदुभ्यानकनिर्घोषैर्भेरी पटहवादनैः। शंखकाहलसंनादैस्तवै बंदिमुखोद्गतैः ॥९४॥
क्षालयन्भुवनं कीर्त्या कर्मकारणभूतया। चेलिन्या सह संप्रापत्सुंदरं राजमंदिरं ॥९५॥
जिनोक्तं धर्ममाकुर्वन्भावनां तत्वसंभवां। दधदास्ते तया सत्रं तन्वन्धर्मे महामतिं ॥९६॥
जिनधर्मरतं भूपं श्रुत्वा च जठराग्नयः। समेत्य व्याकुला ऊचु र्भो राजन्मगधेश्वर ॥९७॥
त्वयाऽकारि कथं भूप! स्वामिन्नित्थं विचक्षण। अंगीकृतं वृषं हित्वा श्रेयोन्यदुररीकृतं ॥९८॥
जायावृषेण भो भूभृद्वंचितो जन्म लुंबिना। क्षुरत्कारकेण नैवं च युक्तं कर्त्तुं तवाधिप ॥९९॥
दक्षा जायां स्वधर्मे च वर्त्तयंति ननु स्वयं। वर्त्तंते स्त्रीवृषे धन्या न्यायोऽयं विसृतो भुवि ॥१००॥
विपर्ययः कृतो देव! त्वया मार्गानुवेदिना। यदि ते ज्ञानिनो जैना इत्याकूतं तवास्तिवै ॥१०१॥
पुनः परीक्ष्य तद्धर्मं गृहाण मगधेश्वर। नाना विज्ञानबोधेन नान्यथा तद्ग्रहोद्यमः ॥१०२॥
इति दुर्वाक्यवातेन चुच्योतवृषशाखिकः। अस्थिरोभूपते वेंगाद्वाताद्वृक्षोमदद्विपात् ॥१०३॥
परीक्षायै ततो भूपो मध्येगेहं कदाचन। चर्मास्थिनिवहं क्षिप्त्वा यत्नेनादृश्यतां व्यधात् ॥१०४॥

स्तुति करते हुए महाराज श्रेणिक और रानी चेलना आनन्द पूर्वक अपने राजमन्दिर की ओर चल दिये। महाराज ने जिन धर्म की परम भक्त रानी चेलना के साथ बड़े ठाट-बाट से राजमन्दिर में प्रवेश किया और अपनी कीर्ति से समस्त दिशाएँ सफेद करने वाले महाराज भली प्रकार जिन भगवान् की पूजा, आराधना एवं उनके गुणों का स्तवन करते हुए राजमन्दिर में रहने लगे।

कदाचित् बौद्ध साधुओं को इस बात का पता लगा कि महाराज श्रेणिक ने किसी जैन मुनि के उपदेश से जैनधर्म धारण कर लिया है। उनके परिणाम बौद्धधर्म से सर्वथा विमुख हो गये हैं। वे शीघ्र ही महाराज श्रेणिक के पास आये और ऐसा उपदेश देने लगे प्रिय मगधेश! यह बात सुनने में आई है कि आपने बौद्ध धर्म का सर्वथा परित्याग कर दिया है। आप जैन धर्म के परम भक्त हो गये हैं? यदि यह बात सत्य है तो आपने बड़ा अनर्थ एवं अविचारित काम कर दिया है। हमें सन्देह होता है कि परम पवित्र, जीवों को यथार्थ सुख देने वाले, श्री बुद्धदेव के धर्म और यथार्थ तत्त्वों को छोड़कर, निस्सार, जीवों का अहित कारक जैनधर्म और उसके तत्त्वों पर आपने कैसे विश्वास कर लिया? प्रजानाथ! स्त्रियों की अपेक्षा बुद्धिबल मनुष्य का अधिक होता है। इसलिए सर्वथा संसार में यही बात देखने में आती है कि यदि स्त्री किसी विपरीत मार्ग पर चलने वाली हो तो चतुर पुरुष अपने बुद्धिबल से उसे सन्मार्ग पर ले आते हैं किन्तु यह बात कहीं नहीं देखी कि स्त्री के कहने से वे विपरीत मार्गगामी हो जायें आप विश्वास रखिए जो मनुष्य स्त्री की बातों में आकर अपने समीचीन मार्ग का त्याग कर देते हैं और विपरीत मार्ग को ही सम्यग् मार्ग समझने लग जाते हैं। वे मनुष्य विद्वानों की दृष्टि में चतुर नहीं समझे जाते।

स्त्री के कहने में चलने वाला मनुष्य आबाल गोपाल निंदा-भाजन बन जाता है। राजन्! आप बुद्धिमान् हैं प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करते हैं तथापि न मालूम आपने कैसे स्त्री की बातों में फँसकर अपने पवित्र धर्म का परित्याग कर दिया। हमें इस बात की कोई परवा नहीं कि आप

ततोऽभाणीत्स दयितां राज्ञ्यहं जैनमानसः। जातोऽस्मि मद्गृहे जैना गुरवो भावसिद्धितः ॥१०५॥
भिक्षार्थं स्थापनीयास्ते धाम्नि चास्मिन्निरंजने। इत्युक्तं कोविदा मेने भूपाभिप्रायमंजसा ॥१०६॥
अन्यदा मुनयस्तत्र समागूराजमंदिरं। त्रयो निघस संसिद्ध्यै कृतेर्यापिथवीक्षणाः ॥१०७॥
मुनीन्वीक्ष्या वदद्भूपो राज्ञि स्थापय भक्तितः। उदीर्येति सुनम्रांगा बुभौ सन्मुखमीयतुः ॥१०८॥
तदा बभाण सा देवी वचनं मुनिपुंगवाः। त्रिगुप्तिगुप्तास्तिष्ठंतु लेपार्थं राजमंदिरे ॥१०९॥
तदा मुनीश्वराः सर्वे दर्शयित्वांगुलिद्विकं। व्याघुट्य विपिने तस्थुर्मत्वा भूपतिभावकं ॥११०॥

जैन बनें अथवा बौद्ध रहें किन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि आप जैन मुनियों की अपेक्षा बौद्ध साधुओं को अल्पज्ञानी समझते हैं तो आप कृपया फिर से इस बात का निर्णय कर लें। पीछे आप बौद्धधर्म का परित्याग कर दें। मगधाधिप! हमें पूर्ण विश्वास है कि अनेक प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के भंडार, परम पवित्र, बौद्ध साधुओं के सामने जैनधर्म सेवी मुनि कोई चीज नहीं और न बौद्धधर्म के सामने जैनधर्म ही कोई चीज है। याद रखिए, यदि आप यों ही बिना परीक्षा किये जैन धर्म धारण कर लेंगे और बौद्धधर्म छोड़ देंगे तो आपको अभी नहीं तो पश्चात् जरूर पछताना होगा। प्रबल पवन के सामने अचल भी वृक्ष कहाँ तक चलायमान नहीं होता। कुतर्क से मनुष्य के सद्विचार कहाँ तक किनारा नहीं कर जाते? ज्योंही महाराज ने बौद्धों का लम्बा-चौड़ा उपदेश सुना-पानी के अभाव से जैसे अभिनव वृक्ष कुम्हला जाता है। महाराज का जैनधर्मरूपी पौधा कुम्हला गया। अब उनका चित्त फिर डाँवाडोल हो गया। उनके मन में फिर से जैनधर्म एवं जैन मुनियों की परीक्षा का विचार सामने मँडराने लगा ॥८८-१०३॥

कदाचित् महाराज ने जैन मुनियों की परीक्षार्थ राजमंदिर में गुप्त रीति से एक गहरा गड्ढा खुदवाया। उसमें कुछ हड्डी-चर्म आदि अपवित्र पदार्थ मँगाकर रखवा दिये और रानी से आकर कहा-कांते! अब मैं जैनधर्म का परिपूर्ण भक्त हो गया हूँ। मेरे समस्त विचार बौद्धधर्म से सर्वथा हट गये हैं।

कदाचित् भाग्यवश यदि कोई जैन मुनि राजमंदिर से आहारार्थ आवें तो तू इस पवित्र मंदिर में आहार देना। उनकी भक्ति, सेवा, सम्मान भी खूब करना। रानी चेलना बड़ी पंडिता थी। महाराज की यह आकस्मिक वचन-भंगी सुन उसे शीघ्र ही इस बात का बोध हो गया कि महाराज ने जैन मुनियों की परीक्षार्थ अवश्य ही कुछ ढोंग रचा है और महाराज के परिणाम बौद्ध धर्म की ओर फिर झुके हुए प्रतीत होते हैं।

कुछ दिन के पश्चात् भली प्रकार ईर्यासमिति के परिपालक, परम पवित्र तीन मुनिराज राजमंदिर में आहारार्थ आये। ज्योंही महाराज की दृष्टि मुनियों पर पड़ी वे शीघ्र ही रानी के पास गये और कहने लगे-प्रिये! मुनिराज राजमंदिर में आहारार्थ आ रहे हैं। जल्दी तैयार हो उनका पड़गाहन करके स्वयं भी मुनियों के सामने आकर खड़े हो गये।

मुनिराज यथास्थान आकर ठहर गये। ज्योंही रानी ने मुनिराजों को देखा विनम्र मस्तक हो

गुणसागरनामानमागतं भोजनकृते। वीक्ष्यांगुलित्रिकं राज्ञी दर्शयामास सनृपा ॥१११॥
प्रतिपद्य तथा योगी तस्थौ राजनमस्कृतः। प्रतिगृहीत एवं च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥११२॥
लेपकृते गृहं प्राप्य मुनी राज्ञा समं मुदा। मत्वाऽवधि बलात्प्राह तद्गृहस्थास्थिचर्मणी ॥११३॥
भूप! नास्मिन्गृहे शुद्धि रस्ति स्थातुं न योग्यता। इति संलप्य योगी स प्रत्यूहमकरोत्तदा ॥११४॥
हा हा रवं तदा चक्रु भूपाद्यास्तद्गुणावलिम्। संसयंतश्च तज्ज्ञानं वीक्ष्याश्चर्यपरंपरां ॥११५॥
केन भो राज्ञि ते पूर्वं व्याघुट्य मुनिपुंगवाः। वने गताः शुभे कांते इत्याचख्यौ नृपस्तदा ॥११६॥

उन्हें नमस्कार किया तथा महाराज द्वारा की हुई परीक्षा से जैन धर्म पर कुछ आघात न पहुँचे यह विचारकर रानी ने शीघ्र ही विनय से कहा–

हे मनोगुप्ति आदि त्रिगुप्ति पालक, परमोत्तम मुनिराजो! आप आहारार्थ राजमंदिर में तिष्ठें। उनमें से कोई भी मुनि त्रिगुप्ति का पालक नहीं था। सब दो-दो गुप्तियों के पालक थे इसलिए ज्योंही रानी के वचन सुने उन्होंने शीघ्र ही अपनी दो-दो अँगुलियाँ उठा दीं तथा दो अँगुलियों के उठाने से रानी को यह बतला दिया कि हे रानी! हम दो-दो गुप्तियों के ही पालक हैं, शीघ्र वन की ओर चल दिये।

उसी समय कोई गुणसागर नाम के मुनिराज भी पुर में आहारार्थ आये। मुनि गुणसागर को अवधिज्ञान के बल से राजा का भीतरी विचार विदित हो गया था इसलिए वे सीधे राजमंदिर में ही घुसे चले आये। मुनिराज पर रानी की दृष्टि पड़ी। उन्हें नतमस्तक हो, रानी ने नमस्कार किया एवं विनय से वह इस प्रकार कहने लगी–

हे त्रिगुप्तियों के पालक परमोत्तम मुनिराज! आप राजमंदिर में आहारार्थ ठहरें। मुनि गुणसागर ने ज्योंही रानी के वचन सुने शीघ्र ही उन्होंने अपनी तीन अँगुलियाँ दिखा दीं। मुनिराज की तीनों अँगुलियाँ देख रानी अति प्रसन्न हुई। उसने शीघ्र ही महाराज को अपने पास बुलाया। महाराज ने आकर भक्ति-भाव से मुनिराज को नमस्कार किया। आगे बढ़कर रानी ने मुनिराज को काष्ठासन दिया। उनका पड़गाहन (प्रतिगृहीत) किया। गरम पानी से उनके चरण प्रक्षालन किये एवं महाराज नतमस्तक हो उन्हें भोजनालय में आहारार्थ ले गये।

महाराज की प्रार्थनानुसार मुनिराज भोजनालय में गये तो सही किन्तु ज्योंही वे वहाँ पहुँचे अवधि ज्ञान के बल से शीघ्र ही उन्हें गड़े हुए हड्डी और चमड़े का पता लग गया। वे तत्काल ही यह कह कि राजन्! तेरा घर अपवित्र है। वहाँ से बाहर निकले और ईर्यापथ से जीवों की रक्षा करते हुए वन की ओर चले आये ॥१०४-११४॥

चारों मुनियों को इस प्रकार राजमंदिर से बिना कारण लौटा देख राजा श्रेणिक आदि समस्त जन हा-हाकार करने लगे। मुनियों का अलौकिक ज्ञान देख सब मनुष्यों के मुख से उनकी प्रशंसा निकलने लगी। महाराज श्रेणिक को भी इस बात का परम दुःख हुआ। वे शीघ्र रानी के पास आये

न वेद्मि भूप! तद्धेतुमावां यावो वने द्रुतम्। मुनींस्तान्नाथ पृच्छावो हेतुं संन्यस्तधर्मकः ॥११७॥
ततस्तौ परया भूत्या जग्मतुर्वनमुत्तमं। दंपती दीप्तसर्वांगौ संगोक्तं वितमानसौ ॥११८॥
ततस्तत्र वने वीक्ष्य धर्मघोषमुनिं मुदा। प्रणम्य भूपति र्भूयो पप्रच्छेति वृषकृते ॥११९॥
स्वामिन्मद्धाम्नि चर्यार्थमागतस्त्वं च हेतुना। केन नास्थास्तदा प्राह योगी योगांगसाधकः ॥१२०॥
राजन्राज्ञ्या तदा चोक्तं त्रिगुप्तिर्भवतां यदि। स्थिता तर्हि भवद्भिश्च स्थातव्यं नान्यथा मुने ॥१२१॥
त्रिगुप्तिर्न स्थितास्माकमतो न स्थितिसंकृता। मया स्वामिन्कथं केन का गुप्तिर्न स्थिता तव ॥१२२॥
इत्युक्ते स जगौ योगी राजन्मानसगोपनं। न स्थितं तत्कथां वक्ष्ये शृणु श्रेणिकमद्भवां ॥१२३॥
कलिंगविषये रम्ये विस्तीर्णे नगरादिभिः। पुरं दंतपुरं हारि वणिग्वारविराजितं ॥१२४॥

और कहने लगे–प्रिये! यह क्या हुआ ? मुनिराज अकारण ही क्यों आहार छोड़कर चले गये ? कुछ समझ नहीं आ रहा है, शीघ्र कहो। महाराज के ऐसे वचन सुन रानी ने उत्तर दिया ॥११५-११६॥

नाथ! मैं भी इस बात को नहीं जान सकी, मुनिगण क्यों तो राजमंदिर में आहारार्थ आये और क्यों फिर बिना आहार लिए चले गये। स्वामिन्! चलिए, हम शीघ्र ही वन चलें और जहाँ पर वे परम पवित्र यतीश्वर विराजमान हैं। वहाँ जाकर उन्हीं से यह बात पूछे। रानी चेलना की मनोहर एवं संशय-निवारक यह युक्ति महाराज को पसंद आ गई। अतिशय तेजस्वी और मुनि-दर्शनार्थ उत्कंठित वे दोनों दंपती उनके पास गये। भक्ति पूर्वक उनके चरणों को नमस्कार किया एवं अति विनय से महाराज ने यह पूछा–प्रभो! समस्त जगत् के उद्धारक स्वामिन्! मेरे शुभोदय से आप राजमंदिर में आहारार्थ गये थे किन्तु आप बिना आहार के ही चले आये, मैं यह न जान सका क्यों तो आप राजमंदिर में आहारार्थ गये और क्यों लौट आये? कृपाकर मेरे इस संशय को दूर करें। राजा के ऐसे वचन सुन मुनिवर धर्मघोष ने कहा–राजन्! जब हम राजमंदिर में आहारार्थ पहुँचे थे। हमें देख रानी चेलना ने यह कहा था कि हे त्रिगुप्ति पालक मुनिराज! आप मेरे राजमंदिर में आहारार्थ विराजे। हम त्रिगुप्ति पालक थे नहीं, इसलिए हम वहाँ न ठहरे। हमारे न ठहरने का और दूसरा कोई कारण न था। मुनिराज के ऐसे वचन सुन महाराज आश्चर्य-सागर में गोता मारने लगे। वे सोचने लगे-ये परम पवित्र मुनिराज किस गुप्ति के पालक नहीं हैं? तथा ऐसा कुछ समय सोच-विचार कर महाराज ने शीघ्र ही मुनिराज से निवेदन किया–कृपानाथ! क्या आपके तीनों ही गुप्ति नहीं हैं ? अथवा कोई एक नहीं है ? तथा वह क्यों नहीं हैं ? कृपया शीघ्र कहें ॥११७-१२२॥

महाराज श्रेणिक के ऐसे लालसायुक्त वचन सुनकर मुनिराज ने कहा–राजन्! हमारे मनोगुप्ति नहीं है। यह क्यों नहीं है उसका कारण कहता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें–अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम नगरों से व्याप्त इसी जम्बूद्वीप में एक कलिंग नाम का देश है। कलिंग देश में अतिशय मनोहर

तच्छास्ता धर्मघोषोऽहं न्यायरूपेण भूतलं। पालयन्मंत्रिसामंतसेवितांह्निः प्रतापभृत् ॥१२५॥
लक्ष्मीमती शुभाकारा वल्लभा प्राणवल्लभा। ममाऽभूत्पूर्णचंद्रास्या कामवृक्षस्य मंजरी ॥१२६॥
आवां प्रेमानुबद्धौ च गतं कालं न विद्धकः। अन्यदा सद्गुरुं प्राप्याकर्ण्य धर्ममहं नृप ॥१२७॥
निर्विण्णो भव भोगेषु प्राव्राजं भवभीतधीः। विहरन्नगमं राजन् कौशांब्यां भोजनकृते ॥१२८॥
तत्रास्ति गुरुडाभिख्यो राजमंत्र्यभवत्प्रिया। दत्ता गरुडपूर्वा च तस्यचंद्रकलाप्रभा ॥१२९॥
तयाहं वीक्ष्य सद्भक्त्या प्रतिगृह्यासनादिभिः। दीयते मे शुभाहारो देहाऽक्षप्रीणनक्षमः ॥१३०॥
(तंडुलं) लेपकाले करात्सिक्तं पपात भूतले मम। तत्र दृष्टिर्गता राजन्नवलोकनहेतवे ॥१३१॥
तदांगुष्टमहं तस्या अद्राक्षं मम मानसं। सस्मार पट्टदेव्याश्चांगुष्टं मोहवशान्नृप ॥१३२॥
तादृक्षोऽयं शुभोंऽगुष्टो ममाक्षप्रीणनक्षमः। इति स्मृते चकाराशु प्रत्यूहं नृपनायक ॥१३३॥

बाजारों की श्रेणियों से व्याप्त एक दंतपुर नाम का सर्वोत्तम नगर है। दंतपुर का स्वामी जो कि नीतिपूर्वक प्रजा का पालक, मंत्री एवं बड़े-बड़े सामंतों से वेष्टित, सूर्य के समान प्रतापी था। मैं राजा धर्मघोष था। मेरी पटरानी का नाम लक्ष्मीमती था। रानी लक्ष्मीमती अति मनोहरा थी, समस्त रानियों में मेरी प्राणवल्लभा थी। चंद्रमुखी एवं काम-मंजरी थी। हम दोनों दंपती में गाढ़ प्रेम था। एक दूसरे को देखकर जीते थे। यहाँ तक कि हम दोनों ऐसे प्रेम में मस्त थे कि हमको जाता हुआ काल भी नहीं मालूम होता था।

कदाचित् मुझे एक दिगम्बर गुरु के दर्शन का सौभाग्य मिला। मैंने उनके मुख से जैन धर्म का उपदेश सुना। उपदेश में मुनिराज के मुख से ज्योंही मैंने संसार की अनित्यता, बिजली के समान विषय-भोगों की चपलता सुनी, मारे भय के मेरा शरीर काँप गया। कुछ समय पहले जो मैं भोगों को अच्छा समझता था वे ही मुझे विष सरीखे महसूस होने लगे। मैं एकदम संसार से उदास हो गया और उन्हीं मुनिराज के चरण-कमलों में तुरन्त जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।

इसी पृथ्वी-तल में एक अति मनोहर कौशांबी नगरी है। कौशांबीपुरी के राजा का मंत्री जो कि नीति-कला में अतिशय चतुर गरुड़वेग था। मंत्री गरुड़वेग की प्रिय भार्या गरुड़दत्ता थी। गरुड़दत्ता, परमसुंदरी,चंद्रवदना एवं पतिभक्ता थी। किसी समय विहार करता-करता मैं कौशांबी नगरी में जा पहुँचा और वहाँ किसी दिन मंत्री गरुड़वेग के घर आहारार्थ गया। ज्योंही गरुड़दत्ता ने मुझे अपने घर आते देखा भली प्रकार मेरा विनय किया। आह्वान कर काष्ठासन पर बिठाकर मेरा चरण-प्रक्षालन किया एवं मन और इन्द्रियों को भली प्रकार संतुष्ट करने वाला मुझे सर्वोत्तम आहार दिया। आहार देते समय गरुड़दत्ता के हाथ से एक कवल नीचे गिर गया। कवल गिरते ही मेरी दृष्टि भी जमीन पर पड़ी। ज्योंही मैंने गरुड़दत्ता के पैर का अँगूठा जमीन पर देखा मुझे शीघ्र ही अपनी प्रियतमा लक्ष्मीमती के अँगूठे की याद आई। मेरे मन में अचानक यह विकल्प उठ खड़ा हुआ। अहा! जैसा मनोहर अँगूठा रानी लक्ष्मीमती का था वैसा ही इस गरुड़दत्ता का है।

तदा मे मानसी गुप्तिर्ना भूद्भूपततः पुनः। विहरन्नत्र दैवेनाजगाम नृपमंदिरं ॥१३४॥
राज्ञ्योक्तं ये त्रिगुप्तास्ते तिष्ठंतु मम मंदिरे। अमनोगुप्ति भावेन नातिष्ठाम वयं गृहे ॥१३५॥
धन्यं धन्यमिदं लोके शासनं पापनाशनं। धन्यो धन्योऽयमायोगी यथार्थलेपभाषणः ॥१३६॥
तथात्वं भुवने नास्ति यादृशं जैनशासने। इतिप्रशंस्य भूपालो नत्वोत्तस्थौ मुनीश्वरं ॥१३७॥
जिनपालमुनिं प्राप्य भूपो नत्वा मुहुर्मुहुः। पप्रच्छेति महाभक्त्या शिरोधृतकृतांजलिः ॥१३८॥
अस्मिन्मंदिरमासाद्य यूयं किमु स्थिता नहि। इत्याकर्ण्य जगौ योगी मेघगंभीर वाचया ॥१३९॥
राजत्वाग्गोपनाभावान्नस्थितास्तवमंदिरे। केनेति चेदिति प्रश्ने प्रोवाच भगवान्पुनः ॥१४०॥
पृथिव्यां तिलकप्रायं श्रीभूमितिलकं पुरं। तिलकाभरणाकीर्णयोषितां तिलकायितं ॥१४१॥
प्रजापालाभिधो जातः राजाभूद्वृषवेदकः। तस्य जाया जयाकीर्णा धारणी गुणधारिणी ॥१४२॥
तयोः सुता मृगांकास्या मृगाक्षी मदनप्रिया। वसुकांता गुणैः कांता कांतिकृंतितितामसा ॥१४३॥

बस, फिर क्या था ? मेरे मन के चलित हो जाने से हे राजन्! आज तक मुझे मनोगुप्ति की प्राप्ति न हुई इसलिए मैं मनोगुप्ति रहित हूँ ॥१२३-१३४॥

ज्योंही मुनिवर धर्मघोष के मुख से राजा श्रेणिक ने यह बात सुनी उन्हें अति प्रसन्नता हुई। वे अपने मन में कहने लगे-समस्त पापों का नाशक जिनेन्द्र-शासन धन्य है। सत्यवक्ता मुनिवर धर्मघोष भी धन्य हैं। अहा! जैसी सत्यता जैन धर्म में है, वैसी कहीं नहीं तथा इस प्रकार मुनिराज धर्मघोष की बार-बार प्रशंसा कर महाराज ने मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं वे दोनों दंपती वहाँ से उठकर मुनिवर जिनपाल के पास गये। उन्हें सविनय नमस्कार कर राजा श्रेणिक ने पूछा-

भगवन्! आज आप आहारार्थ मेरे मंदिर में गये थे, आपने मेरे मंदिर में आहार क्यों नहीं लिया? मुझसे ऐसा क्या घोर अपराध बन पड़ा था? कृपा कर मेरे इस संदेह को शीघ्र दूर करें। राजा श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज जिनपाल ने भी वही उत्तर दिया। जो मुनिवर धर्मघोष ने दिया था। मुनिराज से यह उत्तर पाकर महाराज फिर अचंभे में पड़ गये। मन में वे ऐसा सोचने लगे कि इन मुनिराज के कौन-सी गुप्ति नहीं है और वह क्यों नहीं है? तथा कुछ समय ऐसा संकल्प-विकल्प कर उन्होंने मुनिराज से पूछा-प्रभो! कृपया इस बात को खुलासा रीति से कहें। आपके कौन-सी गुप्ति न थी और क्यों नहीं थी? मेरे मन में अधिक संशय है। मुनिराज ने उत्तर दिया-राजन्! मेरे वचन गुप्ति न थी, वह क्यों न थी, उसका कारण सुनाता हूँ? ध्यानपूर्वक सुनो-इसी पृथ्वी-मंडल पर समस्त पृथ्वी का तिलकभूत एक भूमितिलक नाम का नगर है। नगर भूमितिलक का अधिपति भली प्रकार प्रजा का रक्षक, अतिशय धर्मात्मा राजा प्रजापाल था। प्रजापाल की प्रिय भार्या धारिणी थी। रानी धारिणी अति मनोहरा, उत्तमोत्तम गुणों की आकर एवं कामदेव की जयपताका थी। शुभ भाग्योदय से रानी धारिणी से उत्पन्न एक कन्या थी। जो कन्या चंद्रवदना, मृगनयना, रतिरूपा समस्त उत्तमोत्तम गुणों की आकर एवं अपनी शरीर-कांति से अंधकार

कोशांब्यामथभूपालश्चंडप्रद्योतनाभिधः। चतुरंगमहासैन्यः प्रतापी जितशात्रवः ॥१४४॥
कुतश्चिद् द्योतनः श्रुत्वा वसुकांतां कलाधिकाम्। ययाचे ग्राम्यधर्मार्थं तद्गुणाहतमानसः ॥१४५॥
प्रजापालस्ततस्तस्मै नादान्मत्वाविधर्मगं। रुषा प्रचंडनः श्रुत्वा चचाल बलमंडितः ॥१४६॥
क्रमेण तत्पुरं प्राप्य विवेष्टि बलिभिर्बलैः। घस्त्रे घस्त्रे तयोर्जातो रणो रणविदोः पुनः ॥१४७॥
कुंतकृंतितमूर्द्धानो योयुध्यंते नरास्तदा। बृंहितैः प्रेर्यमाणाश्च मेघनादैश्च केकिनः ॥१४८॥
महारणसमुद्रेऽस्मिन् पतद्दंतिमहाशिले। चलद्घोटकसंरंगत्तरंग तरले परे ॥१४९॥
व्रणोत्थलोहितोत्तुंगजले जनभयप्रदे। जलयादांसिभीताढ्ये विदीर्णमुखमस्तके ॥१५०॥
विदीर्णवक्त्रसंभासि रदनोत्तुंगसन्मणौ। पर्वतप्रायसद्दंति बृंहितोच्चैः सुगर्जिते ॥१५१॥
पिष्टास्थि शिकते मांस कर्दमे दुर्गदुर्जनैः। कातरांगिसुमंडूके खंडखंडितपर्वते ॥१५२॥
लूनबालधि सत्सर्पे दर्पोच्छ्वासितवायुके। संलूनचक्रसच्चक्रिविशिष्टवडवामुखे ॥१५३॥
वेलायंते नरा दीप्ता दशदिक्सर्पिणः क्रुधा। नावायंते महायानास्तुरंगास्तरलांह्रयः ॥१५४॥
असिसंघट्टसंभूत स्फुलिंगा वह्नितां गताः। खड्गाखड्गि नराः केचिन्मुष्टा मुष्टिकचाकचि ॥१५५॥

का नाश करने वाली थी और उसका नाम वसुकांता था। उसी समय कौशांबीपुरी में एक चंडप्रद्योतन नाम का प्रसिद्ध राजा राज्य करता था। चंडप्रद्योतन अतिशय तेजस्वी, वीर एवं विशाल सेना का स्वामी था। कदाचित् कुमारी वसुकांता ने यौवनावस्था में पदार्पण किया। राजा चंडप्रद्योतन को इसके युवतीपने का पता लग गया। कुमारी के गुणों पर मुग्ध हो राजा चंडप्रद्योतन ने शीघ्र ही राजा प्रजापाल से उस पुत्री के लिए प्रार्थना की और उनके साथ बहुत-कुछ प्रेम दिखाया। किन्तु राजा चंडप्रद्योतन जैन न था। इसलिए राजा प्रजापाल ने उसकी प्रार्थना न सुनी और पुत्री के लिए साफ इंकार कर दी।

राजा चंडप्रद्योतन ने यह बात सुनी। उसने शीघ्र ही सेना सजाकर भूमि-तिलक की ओर प्रस्थान कर दिया। कुछ दिन बाद मंजिल-दर-मंजिल करता-करता राजा चंडप्रद्योतन भूमितिलक पुर में आ पहुँचा। आते ही उसने अपनी सेना से समस्त नगर घेर लिया और लड़ाई के लिए तैयार हो गया।

राजा प्रजापाल को इस बात का पता लगा उसने भी अपनी सेना सजवा ली। तत्काल वह चंडप्रद्योतन से लड़ने के लिए निकल पड़ा और दोनों दलों की सेना में भयंकर युद्ध होने लगा। मेघनाद मेघ शब्द से जैसे मयूर इधर-उधर नाचते फिरते हैं। मेघनाद (बिगुल) के शब्द सुनने से उस समय योद्धाओं की भी वही दशा हो गई। रोष में आकर वे भी इधर-उधर घूमने लगे और एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। दोनों सेनाओं का घोर संग्राम साक्षात् महासागर की उपमा को धारण करता था क्योंकि महासागर-जैसा पर्वतों से व्याप्त रहता है, संग्राम भी आहत हो पृथ्वी पर गिरे हुए हाथीरूपी पर्वतों से व्याप्त था। महासागर-जैसा तरंग युक्त होता है, संग्राम भी चंचल अश्वरूपी तरंग युक्त था। महासागर में जिस प्रकार महामत्स्य रहते हैं, संग्राम में भी पैनी तलवारों

कुंताकुंति महातीव्रं भुजाभुजि पदापदि। वक्त्रावक्त्रि भटास्तत्र मुंडामुंडि गदागदि ॥१५६॥
बाणाबाणि महातीव्रा घोटकाघोटकि स्फुटं। द्विरदाद्विरदि क्रोधाद्रथारथि नरानरि ॥१५७॥
शब्दाशब्दि क्रुधाक्रोधि लोष्टलोष्टि नृपानृपि। योयुध्यंते च वैरेण भटाभटि शिलाशिलि ॥१५८॥
वंशावंशिभटा केचिद् वृक्षावृक्षि हलाहलि। (कुलक) ॥१५९॥
इत्थं रणे तयोर्जाते प्रजापालो विषण्णधीः। प्रचंडं दुर्दमं मत्वा सचिंतोऽभूत्स्वमानसे ॥१६०॥

से कटे हुए मनुष्यों के मुखरूपी मत्स्य थे। महासागर-जैसा जल पूर्ण रहता है, संग्राम भी घावों से निकलते हुए रक्तरूपी जल से पूर्ण था। महासागर-जैसा मणि-रत्नों से व्याप्त रहता है, संग्राम भी मृत योद्धाओं के दाँतरूपी मणि-रत्नों से व्याप्त था। महासागर में जैसे भयंकर शब्द होते हैं, संग्राम में भी हाथियों के चीत्काररूपी भीषण शब्द थे। महासागर जिस प्रकार बालू सहित होता है, संग्राम भी पिसी हुई हड्डीरूपी बालू सहित था। महासमुद्र-जैसा कीचड़ व्याप्त रहता है, संग्राम भी मांसरूपी कीचड़ से व्याप्त था। महासागर में जैसे मेढ़क और कछुवे रहते हैं, संग्राम में भी वैसे ही कटे हुए घोड़ों के पैर मेढ़क और हाथियों के पैर कछुवे थे। महासागर जैसा खंड पर्वत युक्त होता है। संग्राम भी मृत शरीरों का ढेररूप खंड पर्वतयुक्त था। महासागर में जैसे सर्प रहते हैं, संग्राम में भी कटी हुई हाथियों की पूँछे सर्प थीं। महासागर-जैसा पवन परिपूर्ण रहता है, संग्राम भी योद्धाओं के श्वासोच्छ्वासरूपी पवन से परिपूर्ण था। महासागर में जैसा बड़वानल होता है, संग्राम में भी उसी प्रकार चमकते हुए चक्र बड़वानल थे। महासागर-जैसा बेला युक्त होता है, उसी प्रकार संग्राम में भी समस्त दिशाओं में घूमते हुए योद्धारूपी बेला थी। सागर में जैसे नाव और जहाज होते हैं, संग्राम में भी घोड़ेरूपी नाव और जहाज थे तथा संग्राम में खड्गधारी खड्गों से युद्ध करते थे। मुष्टि-युद्ध करने वाले मुष्टियों से लड़ते थे। कोई-कोई आपस में केश पकड़कर युद्ध करते थे। अनेक वीर पुरुष भुजाओं से लड़ते थे। पैरों से लड़ाई करने वाले पैरों से लड़ते थे। सिर लड़ाने वाले सुभट सिर लड़ाकर युद्ध करते थे। बहुत-से सुभट आपस में मुख भिड़ाकर लड़ते थे। गदाधारी और तीरंदाज गदाधारी और तीरंदाजों से लड़ते थे। घुड़सवार घुड़सवारों से, गजसवार गजसवारों से, रथसवार रथसवारों से एवं पयादे पयादों से भयंकर युद्ध करते थे। उस संग्राम में अनेक वीर पुरुष शब्द-युद्ध करने वाले थे इसलिए वे शब्द-युद्ध करते थे। लाठी चलाने वाले लाठियों से युद्ध करते थे एवं राजा राजाओं से युद्ध करते थे तथा शिलायुद्ध करने वाले शिलाओं से, बाँस युद्ध करने वाले सुभट बांसों से, वृक्ष उखाड़कर युद्ध करने वाले वृक्षों से करते थे। हल के धारक अपने हलों से युद्ध करते थे। इस प्रकार दोनों राजाओं का आपस में कई दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्त में जब प्रजापाल ने यह देखा कि राजा चंड़प्रद्योतन जीता नहीं जा सकता तो उसे बड़ी चिंता हुई वह उसके जीतने के लिए अनेक उपाय सोचने लगा ॥१३५-१६०॥

सोऽन्येद्यु: पुष्पला नृणां मुखान्मत्वामुनीश्वरं। दुर्गसंलग्न विपिने स्थितं मां जिनपालकं ॥१६१॥
चचाल वंदितुं भूप: प्रजापाल: सुहर्षत:। तत्र नत्वा मुनिं धीरं कायोत्सर्गस्थित: प्रभु: ॥१६२॥
तदेति प्रार्थयामास कश्चित्तं मुनिपुंगवं। प्रयच्छ भो मुने राज्ञेऽभयदानं च वैरिण: ॥१६३॥
ततस्तद्बृषपाकेन कया चिद्वनरक्षया। देव्योक्तं नृप मा भैषी र्भविताते जय: खलु ॥१६४॥
तस्या अदृश्यरूपाया वच: श्रुत्वा नृपादय:। जहर्षुस्ते मुनिवाक्यं मत्वा निश्िंचतमानसा: ॥१६५॥
प्रजापालस्ततो भूत्या विवेश नगरं परम्। उत्तोरणं पताकाढ्यं कुर्वन्नादाकुलं जगत् ॥१६६॥
जयवार्तां समाकर्ण्य प्रचंडश्चंडमानस:। जैनं मेने प्रजापालं जिनवाक्यविनिर्णयं ॥१६७॥
चंडप्रद्योतनो धीमान् ससम्यक्त्वो गुणाकर:। व्याघुट्य निर्ययौ स्वस्य पुरं प्रति ससैन्यक: ॥१६८॥
स तं व्याघुटितं मत्वा प्रजापालस्तदंतिकं। विशिष्टान्प्रेषयामास सुभटान्मंत्रकोविदान् ॥१६९॥

कदाचित् विहार करता-करता उस समय मैं भी कौशांबी में आ पहुँचा। मैंने जो वन किले के बिलकुल पास था। उसी में स्थित हो ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ ध्यान करते माली ने मुझे देखा। वह तत्काल राजा प्रजापाल के पास भागता-भागता पहुँचा और मेरे आगमन का सारा समाचार राजा से कह सुनाया। सुनते ही राजा प्रजापाल तत्काल मेरे दर्शन के लिए आये। मेरे पास आकर उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। राजा प्रजापाल के साथ और भी कई मनुष्य थे। उनमें से एक मनुष्य ने मुझसे यह निवेदन किया-प्रभो! कृपया राजा प्रजापाल को आप शत्रुओं की ओर से अभयदान प्रदान करें। इन्हें वैरियों की ओर से कैसा भी भय न रहे।

मनुष्य की राग-द्वेष परिपूर्ण बात सुनकर मैंने कुछ भी उत्तर न दिया, उस वन की रक्षिका एक देवी थी ज्योंही उसने यह समाचार सुना अपनी दिव्य वाणी से उसने शीघ्र ही उत्तर दिया-

राजन् प्रजापाल! तुझे किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए, नियम से तेरी विजय होगी। बस, फिर क्या था ? देवी तो उस समय अदृश्य थी इसलिए ज्योंही राजा प्रजापाल ने ये वचन सुने अत्यधिक आनंद से उसका शरीर रोमांचित हो गया। वह यह समझ कि यह आशीर्वाद मुझे मुनिराज ने दिया है, बड़ी भक्ति से उसने मुझे नमस्कार किया और बड़ी विभूति के साथ अपने राजमंदिर की ओर चला गया। राजमंदिर में जाकर विजय की खुशी में उसने तोरणादि लगाकर नगर में बड़ा भारी उत्सव किया। समस्त दिशा बधिर करने वाले बाजे बजने लगे एवं राजा प्रजापाल आनंद से रहने लगा।

राजा चंडप्रद्योतन को भी इस बात का पता लगा। राजा प्रजापाल को पक्का जैनी समझ उसने तत्काल युद्ध का संकल्प छोड़ दिया और सब सेना को साथ ले अपने नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। नगर में जाकर उसने जैन धर्म धारण कर लिया। जिनराज के वाक्यों पर उसका पूरा-पूरा श्रद्धान् हो गया और आनंद से रहने लगा ॥१६१-१६८॥

राजा प्रजापाल को भी चंडप्रद्योतन के चले जाने का पता लगा। उसने शीघ्र ही कई मंत्री जो कि पर के अभिप्राय जानने में अतिशय चतुर थे शीघ्र ही राजा चंडप्रद्योतन के पास भेजे और

प्रणतैस्तैः सविज्ञप्त इति राजंस्त्वया कथं। व्याघुट्य गम्यते युद्धादृते चंडप्रशासन ॥१७०॥
तदा तान् प्रतिसोऽवादीन्मंत्रि णोमंत्रकोविदाः। जैनेन युयुधेनाऽहं प्राणतुल्येन धर्मिणा ॥१७१॥
ये जैनेन समंजन्यं कुर्वंति वृषवर्जिताः। त एव निधनं यांति सुधार्मिकपराङ्मुखाः ॥१७२॥
इत्याकर्ण्य नराः सर्वे तं व्याघुट्य न्यवेदयन्। चंडप्रद्योतनं जैनं मत्वा संतोषमाप्तवान् ॥१७३॥
प्रजापालस्ततः प्रीत्या चंडप्रद्योतनाय च। सुधर्मिणे ददौ भूत्या मृगाक्षीं तां घनस्तनीं ॥१७४॥
रत्नकोशतुरंगादि दंतिनः प्रीतिवृद्धये। ददतुस्तौ सुवस्त्रादि कृत्वा तोषं परस्परं ॥१७५॥
ततः सपरया भूत्या कौशांब्यामगमत्तया। रेमाते दंपती तुष्टौ श्लेषमीलितलोचनौ ॥१७६॥
चंडप्रद्योतनो भूप एकदा वनितांतिके। अवदद्वसुकांते भो बलवान्बलमंडितः ॥१७७॥
प्रताप्याहं महावीरः साधिताखिलभूपतिः। पितरं यदि नो वेद्म्यनर्थं कर्त्तास्मि जैनकं ॥१७८॥
इत्याकर्ण्य तया वादि नाथेत्थं न कदाचन। दत्तं यतोऽभयं दानं जिनपालेन योगिना ॥१७९॥

सारा हाल जानना चाहा। राजा की आज्ञानुसार समस्त मंत्री शीघ्र ही कौशांबी गये। राजा चंडप्रद्योतन की सभा में पहुँच उन्होंने विनय से राजा को नमस्कार किया और जो कुछ राजा प्रजापाल का संदेशा था, सब कह सुनाया। मंत्रियों के मुख से राजा प्रजापाल का यह संदेशा सुन राजा चंडप्रद्योतन ने कहा–

मंत्रियो! राजा प्रजापाल अतिशय धर्मात्मा है। धर्म उसे अपने प्राणों से भी प्यारा है। मैंने राजा प्रजापाल को जैन समझ युद्ध का संकल्प छोड़ दिया। जो पापी पुरुष जैनियों के प्राणों को दुःखाते हैं, उनके साथ युद्ध करते हैं। वे शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और वे संसार में नराधम कहलाते हैं।

राजा चंडप्रद्योतन से यह समाचार सुन मंत्री तत्काल भूमि तिलकपुर को लौट पड़े। चंडप्रद्योतनका सारा समाचार राजा प्रजापालको कह सुनाया और उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। ज्योंही राजा प्रजापाल ने यह बात सुनी उन्हें अति प्रसन्नता हुई। चंडप्रद्योतन को अपने समानधर्मी समझ राजा प्रजापाल ने शीघ्र ही कन्या वसुकांता का राजा चंडप्रद्योतन के साथ विवाह कर दिया एवं हाथी-घोड़ा अति उत्तमोत्तम पदार्थ देकर राजा चंडप्रद्योतन के साथ बहुत-कुछ हित जताया।

अब कन्या वसुकांता के साथ राजा चंडप्रद्योतन का विवाह हो गया तो उनको बड़ा संतोष हो गया। वे बड़े आनन्द से रहने लगे और दोनों दंपती भली प्रकार सांसारिक सुख का अनुभव करने लगा कदाचित् राजा चंडप्रद्योतन रानी वसुकांता के साथ एकांत में बैठे थे। अचानक ही उन्हें भूमितिलकपुर के युद्ध का स्मरण हो गया। वे रानी वसुकांता से कहने लगे–प्रिये! मैं अतिशय प्रतापी था। चतुरंग सेना से मंडित था, अपने प्रताप से मैंने समस्त भूपतियों का मान गलित कर दिया था। मैंने तेरे पिता को इतना बलवान् नहीं जाना था। हाय! तेरे पिता के साथ युद्ध कर मैंने बड़ा अनर्थ किया। रानी वसुकांता ने जब ये वचन सुने तो वह कहने लगी–

तदा रराण भूपालः कांते कमललोचने। न तोषो न च विद्वेषो योगिनां कुत्र विद्यते ॥१८०॥
एवं चेद्वल्लभे यावस्तर्ह्येहि मृगलोचने। इत्युदीर्य ततस्तौ च चेलतुर्वंदना कृते ॥१८१॥
जिनपालमुनिं वीक्ष्य पूजयित्वा तदंह्रिकं। परीत्य तौ प्रणम्याशु तिष्ठतुः सुकृतांजली ॥१८२॥
तदा पप्रच्छ भूभीशो भो ज्ञानिन्मोक्षमाग्रणीः। समस्तव्यस्तशीलेश विपक्षेतरशाम्यक ॥१८३॥
यतीनां योगनिष्ठानां युक्तं किं कस्यचित्प्रभो। अभयोत्सर्जनं कस्य नाशचिंतनमित्यपि ॥१८४॥
मौनेनास्थुस्तदाते च न भाषंते हिताऽहिते। वादिताश्च तदा वादीद्वसुकांता सुचंद्रिका ॥१८५॥
राजन् भूपालपुण्येन दिव्यनादो विनिर्गतः। स्वयं नैष मुनेर्दोषोऽभयनाशादिसंभवः ॥१८६॥
चित्तस्थं द्वापरं तौ च विनाश्य वृषवर्द्धकौ। प्रणम्य प्रापतुस्तूर्णं पुरां पूर्णं मनोरथाम् ॥१८७॥
तिष्ठतुस्तौ सुखेनैव स्वदेशे सुदशागतौ। वयं विशिष्टदेशेषु भ्रमंतोऽत्र समागताः ॥१८८॥
तवालयं परिप्राप्ता लेपार्थं श्रेणिकाधिप। वाग्गुप्त्यपापतो नैव वयं त्वन्मंदिरे स्थिताः ॥१८९॥

नाथ! आपके बराबर मेरे पिता बलवान् न थे। किन्तु मुनिवर जिनपाल ने उन्हें अभयदान दे दिया था इसलिए वे आपसे पराजित न हो सके। रानी वसुकांता के ये वचन सुने तो महाराज अचम्भे में पड़ गये वे कहने लगे–चंद्रवदने! तुम यह क्या कह रही हो ? परम योगी राग–द्वेष से रहित होते हैं। वे कदापि ऐसा काम नहीं कर सकते। यदि मुनिवर जिनपाल ने राजा प्रजापाल को ऐसा अभयदान दिया हो तो बड़ा अनर्थ किया। चलो, अब हम शीघ्र उन्हीं मुनिराज के पास चलें और उन्हीं से सब समाचार पूछे। राजा चंडप्रद्योतन की आज्ञानुसार रानी वसुकांता चलने के लिए तैयार हो गई, वे दोनों दंपती बड़े आनंद से मुनि–वंदनार्थ गये। जिस समय वे दोनों दंपती वन में पहुँचे और ज्योंही उन्होंने मुझे देखा बड़ी भक्ति से नमस्कार किया। तीन प्रदक्षिणा दी एवं राजा चंडप्रद्योतन ने बड़ी विनय से यह कहा–समस्त विद्वानों के पारगामी, भव्यों को मोक्ष–सुख प्रदान करने वाले, अतिशय कठिन किन्तु परमोत्तम व्रत के धारक, शत्रु–मित्रों को समान समझने वाले, प्रभो! क्या यह आपको योग्य था कि एक को अभयदान और दूसरे का अनिष्ट चिंतन करना ? कृपानाथ! प्रथम तो मुनियों के लिए ऐसा कोई अवसर नहीं आता। यदि किसी प्रकार का अवसर उपस्थित भी हो जाये तो आप सरीखे वीतराग मुनिगण उस समय ध्यान का अवलंबन कर लेते हैं। भली–बुरी कैसी भी सम्मति नहीं देते। राजा चंडप्रद्योतन के ऐसे वचन सुन–हे राजन् श्रेणिक! मैंने तो कुछ जवाब नहीं दिया। किन्तु रानी वसुकांता कहने लगी–नाथ! मेरे पिता के शुभोदय से उस समय किसी वन–रक्षिका देवी ने वह आशीर्वाद दिया था। मुनिराज ने कुछ भी नहीं कहा था। आप इस अंश में मुनिराज का जरा भी दोष न समझें। बस, फिर क्या था ? राजन्! ज्योंही राजा चंडप्रद्योतन ने रानी वसुकांता के वचन सुने मारे हर्ष के उसका कंठ गद्गद हो गया। कुछ समय पहले जो उसके हृदय में मेरे विषय में कालुष्य बैठा था, तत्काल वह निकल भागा। दोनों दंपती ने मुझे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं वे दोनों दंपती तो कौशांबीपुरी में आनंदानुभव करने लगे और मुझे उसी कारण से आज तक वचन गुप्ति न प्राप्त हुई ॥१६९–१८९॥

राजंस्त्रिगुप्तिगुप्तानामवधिज्ञानमुत्तमं। जायते नान्यथा भूप तृतीयादिकवेदनं ॥१९०॥
वाग्गोपनं स्थितं मे नत्तदा जानाहि भूपते। वाग्गुप्ति वंचिता नूनं वयं गुप्तिद्वयावृताः ॥१९१॥
चित्तगुप्तिरिति निः मृत्ताक्षिता दुर्द्धरा कृतविकल्पवारणात्।
रक्षितुं न हि समर्थतां गता योगिने जितमदाश्च तां परां ॥१९२॥
दुर्द्धरं जगति मानसं मतं भ्रामितं प्रबलमोहकर्मणा।
चिंतयद् बहु शुभेतरं सदा कुर्वतां स्ववशमेव योगिनः ॥१९३॥
वाग्गोपनं ये यतिपुंगवाः सदा प्रकुर्वते ते शिव धामसंपदः।
लभंति वाग्वर्गणया समागता स्वकर्मराशीनवरुंधयत्यपि ॥१९४॥
त्रिगुप्तिगुप्ता भुवि ये यतीश्वरा विशुद्धिशुद्धाः स्वहितैषिणः शुभाः।
सुलब्धिलुब्धा वरबोधबोधिता जयंतु ते जैनमतानुगामिनः ॥१९५॥

मैं अनेक देशों में विहार करता-करता राजगृह आया। आज मैं आपके यहाँ आहारार्थ भी गया, किन्तु मैं त्रिगुप्तिपालक था नहीं। इसलिए मैंने आहार न लिया। मेरे आहार के न लेने का अन्य कोई कारण नहीं। विनीत मगधेश! यह आप निश्चय समझें जो मुनि मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति के पालक होते हैं वे नियम से अवधि-ज्ञान के धारक होते हैं। तीनों गुप्तियों में एक भी गुप्ति को न रखने वाले मुनिराज के अवधिज्ञान, मनःपर्यज्ञान और केवलज्ञान तीनों ज्ञानों में से एक भी ज्ञान नहीं होता, साधारण जीवों के समान उनके मति, श्रुत दो ही ज्ञान होते हैं। राजन्! मन में उत्पन्न खोटे विकल्पों के निरोध के लिए मनोगुप्ति का पालन किया जाता है। इस मनोगुप्ति का पालन करना सरल बात नहीं। इस गुप्ति का वे ही पालन कर सकते हैं जो ज्ञान-पूजा आदि अष्ट मदों के विजयी यतीश्वर होते हैं और शुभ एवं अशुभ संकल्पों से बहिर्भूत रहते हैं।

उसी प्रकार वचनगुप्ति का पालन करना भी अति कठिन है। जो मुनिश्वर वचनगुप्ति के पालक होते हैं। उन्हें स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है। अनेक प्रकार के कल्याण मिलते हैं। विशेष कहाँ तक कहा जाये वचनगुप्तिपालक मुनिराज समस्त कर्मों का नाश कर सिद्धावस्था को भी प्राप्त हो जाते हैं तथा इसी प्रकार कायगुप्ति का पालन भी अति कठिन है। शरीर से सर्वथा निर्मम होकर विरले ही मुनीश्वर कायगुप्ति के पालक होते हैं। तीनों गुप्तियों के पालक मुनिराज निर्मल होते हैं। उन्हें तप के प्रभाव से अनेक प्रकार की उपलब्धियां मिलती हैं। उनकी आत्मा सम्यग्ज्ञान से सदा भूषित रहती हैं एवं वे जैनधर्म के संचालक समझे जाते हैं।

इस प्रकार मुनिवर धर्मघोष और जिनपाल के मुख से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की कथा सुन राजा श्रेणिक और रानी चेलना को अति आनंद मिला। वे दोनों दंपती परम पवित्र दोनों

श्रुत्वा गुप्तिकथां यतींद्रवदनोद्गीतां विशुद्धाक्षरैः स्यूतां स्फीतमनोऽवधानकरणीं हृष्टौ च तौ दंपती।
कुर्वांते मुनिमार्ग साधन कथां संसार बाधापहाम् तच्छाते जिनवीर वक्त्रगदितां शास्त्रावबोधि मुदा ॥१९६॥

इति श्री श्रेणिकभवानुबद्ध भविष्यत्पद्मनाभ पुराणे भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचिते गुप्तिद्विक कथावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥१०॥

गुप्तियों की बार-बार प्रशंसा करने लगे। उनके मुख से समस्त बाधा रहित मुनिमार्ग की एवं केवली प्रतिपादित श्रुतज्ञान की भी अविरल प्रशंसा निकलने लगी ॥१९०-१९६॥

इस प्रकार भविष्यत्काल के पद्मनाभ तीर्थंकर के भवांतर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित मनोगुप्ति, वचनगुप्ति दोनों गुप्तियों की कथा वर्णन करने वाला दशम सर्ग समाप्त हुआ।

एकादशः सर्गः

तत उत्थाय भूमिशो नत्वा तं मणिमालिनं। पप्रच्छ गमने हेतुं स्वगृहाद् बहिरुन्नतः ॥१॥
प्रोवाच मणिमाली तं वक्ष्ये स्वोदंतमुत्तमं। विस्तीर्णं वृषसद्धेतुं शृणुत्वं शुभचेतसा ॥२॥
अत्रैव विषयः ख्यातो मण्यादिवतनाम भाक्। मणिभिर्नररत्नैश्च देशेषु च मणीयते ॥३॥
दंतच्छदेष्वधरतायाचना पाणिपीडने। क्विप्प्रत्यये विनाशश्च बंधनं शुकपक्षिणि ॥४॥
मदो दंतिसमूहेषु मारकत्वं यमाह्वये। साध्वसं कामिनां यत्र कामिन्या भूत सद्रुषः ॥५॥
तस्करो भोगगंधानां हारित्वान्मारुतः पुनः। पतनं वृक्षपर्णेषु चापलत्वं च मारुते ॥६॥

मुनिवर जिनपाल द्वारा वचनगुप्ति-कथा के समाप्त हो जाने पर राजा-रानी ने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। धर्म-प्रेमी वे दोनों दंपती मुनिवर मणिमाली के पास गये। उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार कर राजा श्रेणिक ने विनय से पूछा-संसार-तारक स्वामिन्! मेरे शुभोदय से आप राजमंदिर में आहारार्थ गये थे। किन्तु आप बिना कारण आहार के बिना ही लौटे आये। यह क्या हुआ? मेरे मन में इस बात का बड़ा संशय बैठा है, कृपया मेरे इस संशय को शीघ्र मिटावें। राजा श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कहा-राजन्! रानी चेलना ने-हे त्रिगुप्तिपालक मुनिराज आप आहारार्थ राजमंदिर में विराजें इस रीति से हमारा आह्वानन किया था। मेरे कायगुप्ति थी नहीं इसलिए मैं वहाँ आहार के लिए न ठहरा वह क्यों नहीं थी ? उसका कारण सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनें-इसी पृथ्वीतल में अतिशय शुभ एक मणिवत नामक देश है। मणिवत साक्षात् समस्त देशों में मणि के समान है। मणि देश में (अधरता) धन, विद्या आदि की असहायता हो, यह बात नहीं है। वहाँ के निवासी धनी एवं विद्वान्-धन और विद्या से बराबर सहायता करने वाले हैं। एकमात्र अधरता है तो स्त्रियों के ओठों में ही है। इसलिए कोई किसी से किसी चीज की याचना भी नहीं करता। यदि याचना का व्यवहार है तो वर के लिए कन्या और कन्या के लिए वर का ही है। उस देश में किसी का विनाश भी नहीं किया जाता। यदि विनाश व्यवहार है तो व्याकरण में क्विप्प्रत्यय में ही है-क्विप्प्रत्यय का ही लोप किया जाता है। वहाँ के मनुष्य निरपराधी हैं इसलिए वहाँ कोई किसी का बंधन नहीं करता यदि बंधन व्यवहार है तो मनोहर शब्द करने वाले पक्षियों में ही है-वे ही पिंजरे में बँधे रहते हैं। मणिवत देश में कोई आलसी भी नजर नहीं आता आलसीपना है तो वहाँ के मतवाले हाथियों में ही है-वे ही झूमते-झूमते मंद गति से चलते हैं। कोई किसी को वहाँ पर मारने-सताने वाला भी नहीं है। यदि मारता-सताता है तो यमराज ही है। वहाँ के निवासियों को भय किसी से नहीं है केवल कामी पुरुष अपनी प्राणवल्लभाओं के क्रोध से डरते हैं-कामियों को प्रतिक्षण इस बात का डर बना रहता है, कहीं यह नाराज न हो जाय। उस देश में कोई चोर नहीं है यदि चोर का व्यवहार है तो पवन में है वहीं जहाँ कहीं की सुगंधी चुरा ले आता है। वहाँ का कोई मनुष्य जाति-पतित नहीं है यदि पतन व्यवहार है तो वृक्षों के पत्तों में है वे ही पवन के जोर

नितंबे जड़ता यत्र कट्यां च कृशता शुभा। कामिन्याः प्रस्तरे यत्र मूकत्वं वर्त्तते खलु ॥७॥
निग्रहः करणग्रामे योगिनां योगचेतसां। कालुष्यं सरसि प्रोक्तं गजांदोलितवारिणि ॥८॥
विकोशत्वं च पद्मेषु स्पर्धा दानादिसंभवा। व्यसनं सन्मते यत्र नान्यत्र भुवि वर्त्तते ॥९॥
यति योगप्रभावेण विपिनानि घनानि च। सर्वकालफलाढ्यानि यत्र संति शुभावहे ॥१०॥
वसंत इव सा ब्रूते सदा च पिककामिनी। पराजिता पुरंध्रीभिः काशयंती निजां कलां ॥११॥
वने दंतिपुरंध्यश्च शिष्यंति गमनक्रियां। यत्र नार्यः सलज्जाश्च निःकाश्य पर स्थिताः ॥१२॥
तत्रास्ति पत्तनं रम्यं देशनाम्ना मनोहरम्। तुंगसौधाग्रश्रृंगेण दारयच्चंद्रमंडलं ॥१३॥
भिन्ने तमसि बालानां वक्त्रचंद्रैरनर्थतां। सूर्याचंद्रप्रदीपाद्याः समीयुः क्षणदाह्नि च ॥१४॥
यत्र गोपुरकामिन्याश्चंद्रश्चूड़ामणीयते। क्षणं स्थितः क्षपायां च तारामुक्तावलीश्रितः ॥१५॥
तच्छास्ता मणिमाली वै बभूव भववेदकः। मूर्तीभूत इवोत्तुंगः क्षात्रो धर्मः सनातनः ॥१६॥
गुणमालाभिधा राज्ञी ममाभूत्प्राणवल्लभा। मणिशेखरनामाभूत्तनुजो नयसंगतः ॥१७॥

से जमीन पर गिरते हैं। वृक्षों के पत्ते छोड़कर उस देश में कोई चपल भी नहीं है किन्तु वहाँ के निवासी सब लोग गम्भीर और उदार हैं।

वहाँ पर कोई मनुष्य जड़ नहीं है यदि जड़ता है तो स्त्रियों के नितंबों में है। कृशता भी वहाँ पर स्त्रियों के कटिभाग में ही है–स्त्रियों की वहाँ कमर ही पतली है और कोई कृश नहीं। वहाँ के पत्थर ही नहीं बोलते-चालते हैं मनुष्य कोई गूंगा नहीं। उस देश में कोई किसी का दमन नहीं करता एकमात्र योगीश्वर ही इन्द्रियों का दमन करते हैं। मलिन भी वहाँ कोई नहीं रहता एकमात्र मलिनता वहाँ के तालाबों में है। हाथी आकर वहाँ के तालाबों को गंदला कर देते हैं। उस देश में निष्कोपता कमलों में ही है, सूर्यास्त होने पर वे ही मुंद जाते हैं किन्तु वहाँ निष्कोपता खजाना न हो, यह बात नहीं। लोग उस देश में दान आदि उत्तम कार्यों में ईर्ष्या-द्वेष करते हैं किन्तु इनसे अतिरिक्त और किसी कार्य में उन्हें ईर्ष्या-द्वेष नहीं। वहाँ के लोग उत्तमोत्तम व्याख्यान सुनने के व्यसनी हैं–जुआ आदि का कोई व्यसन नहीं तथा उस देश में उत्तमोत्तम मुनियों के ध्यान-प्रभाव से वृक्ष सदा फले-फूले रहते हैं।

योग्य वर्षा हुआ करती है, उसके मनोहर बागों में सदा कोकिला बोलती रहती है। वहाँ की स्त्रियों से हथिनी भी मंद गमन की शिक्षा लेती हैं और स्वभाव से वे स्त्रियाँ लज्जावती एवं पति भक्ता होती है ॥१-१२॥

इसी मणिवत देश में एक अतिशय रमणीय दारा नाम का नगर है। दारा नगर के ऊँचे-ऊँचे महल सदा चन्द्रमंडल को भेदन किया करते हैं। उसकी स्त्रियों के मुख चन्द्रमा की कृपा से अंधकार सदा दूर रहता है इसलिए वहाँ दीपक आदि की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस समय वहाँ की स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ जाती हैं उस समय चन्द्रमा उनका चूड़ामणि तुल्य जान पड़ता है और तारागण चूड़ामणि में जड़े हुए सफेद मोती सरीखे मालूम पड़ते हैं। दारा नगर का स्वामी

कुर्वन्राज्यं जनांस्तोषं दधद्धर्मं समर्जयन्। कारणं शर्म संभुंजन् जातं कालं न वेदम्यहं ॥१८॥
कौतुकेनैकदा राज्ञ्या कचा मम मनोहराः। तया विरुलयंत्या च पलितं वीक्ष्यं तत्र च ॥१९॥
इत्युक्तं यमदूतोऽय महोआरात्मसमागतः। व्याप्तं येन जगत्सर्वं सेंद्रचक्रिहरादिकम् ॥२०॥
राज्ञाऽभाणि क्व कांते स आटितो भयदायकः। इत्युक्ते सा सितं केशं दर्शयामास भूपतेः ॥२१॥
सवधिस्थं यमं मत्वा विरज्याखिलशर्मतः। सतां त्याज्यं महाराज्यं नियुज्य मणिशेखरे ॥२२॥
ज्ञानसागरमासाद्य गुरुं बहुनृपोद्भवैः। अदीक्षितसुसिद्धांत पठनोद्यतमानसः ॥२३॥
सकलागमवेत्ताहं भूत्वा तपसि संस्थितः। विजहार चिरं भूमि मेकाकी सिंहवत्सदा ॥२४॥
विहरन्नन्यदा राजन्नुज्जयिन्याः श्मशानके। ध्यानसिद्ध्यै स्थितस्तत्र शवशय्यासमाश्रितः ॥२५॥
तावत्तत्र समायातः कौलिकः सिद्धमंत्रकः। वेतालाख्य महाविद्या सिद्धये कृतकौतुकः ॥२६॥

भली प्रकार नीति-कला में निष्णात क्षत्रियवंशी मैं राजा मणिमाली था। मेरी स्त्री जो कि अतिशय गुणवती थी, गुणमाला से उत्पन्न मेरा एक पुत्र था, उसका नाम मणिशेखर था और वह अतिशय नीति युक्त था। मैं भोगों में इतना मस्त था कि मुझे जाते हुए काल का भी ज्ञान न था। मैं सदा जिनधर्म का पालन करता हुआ आनंद से राज्य करता था।

कदाचित् मैं आनंद से बैठा था। मेरी पटरानी मेरे केशों को सँभाल रही थी। अचानक ही उसे मेरे सिर में एक सफेद बाल दीख पड़ा। वह एकदम अचम्भे में पड़ गई और कहने लगी- हाय! जिस यमराज ने बड़े-बड़े चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायणों को अपना कवल बना लिया उसी यमराज का दूत यहाँ आकर भी प्रकट हो गया। बस!!! ज्योंही मैंने रानी गुणमाला के ये वचन सुने मेरी आनंद-तरंगें एकदम शांत हो गई। मेरे मुख से उस समय ये ही शब्द निकले- प्रिये! समस्त लोक में भय उत्पन्न करने वाला वह यमदूत कहाँ है? मुझे भी शीघ्र दिखा। मैं उसे देखना चाहता हूँ। मेरे वचन सुनते ही रानी ने बाल शीघ्र उखाड़ लिया और मेरी हथेली पर रख दिया। ज्योंही मैंने अपना सफेद बाल देखा। अपना काल अति समीप जान मैं उसी समय राज्य से विरक्त हो गया। जो विषयभोग कुछ समय पहले मुझे अमृत जान पड़ते थे वे ही हलाहल विष बन गये। मैं अपने प्यारे पुत्र और स्त्रियों को भी अपना शत्रु समझने लगा। मैंने शीघ्र ही मणिशेखर को बुलाया-और राज्य-कार्य उसे सौंप तत्काल वन की ओर चल पड़ा। वन में आते ही मुझे मुनिवर ज्ञानसागर के दर्शन हुए। मैंने शीघ्र ही अनेक राजाओं के साथ मुनि-दीक्षा धारण कर ली। जैन सिद्धान्त के पढ़ने में अपना मन लगाया एवं जब मैं जैन सिद्धान्त का भली प्रकार ज्ञाता हो गया और उग्र तपस्वी बन गया तो मैं सिंह के समान इस पृथ्वी-मंडल पर अकेला ही विहार करने लगा ॥१३-२४॥

राजन्! अनेक देश एवं नगरों में विहार करता-करता किसी दिन मैं उज्जयिनी नगरी में जा पहुँचा और वहाँ की श्मशान भूमि में मुर्दे के समान आसन बाँधकर ध्यान के लिए बैठ गया। वह समय रात्रि का था इसलिए एक मंत्रवादी जो कि अनेक मंत्रों में निष्णात, वैताली विद्या की सिद्धि

कुणपं मम सद्गात्रं मत्वा मंत्रोद्यतः स च। नरमूर्ध्नि पयो रम्य मानयामास तंदुलान् ॥२७॥
चौर मूर्द्धद्वयं नीत्वा योजयन्मुनिमस्तके। रंधनाय चकाराशु चुल्लीं शीर्षसमुद्भवां ॥२८॥
जज्वाल ज्वलनं वेगाद्रंधयन्वरपायसं। एधांसि मुंचयन् सिद्धो विद्यासिद्ध्यर्थमंजसा ॥२६॥
यथा यथाग्निरेधेत ज्वलते च तथा तथा। मुनेः शीर्षं व्यथा तीव्रा जायते मूर्ध्नि सन्मुनेः ॥३०॥
तदा सस्मार योगींद्रश्चिद्रूपं शुद्धमुत्तमं। नोद्रव्यभावदुःकर्म विमुक्तं मुक्तिसंगतं ॥३१॥
मा कृथाऽशर्म रे जीव भुक्तपूर्वं च नारकं। अनेकशो मया दुःखं तदग्नेरपि का कथा ॥३२॥
नरये क्षुत्प्रवर्त्तेत सर्वसस्योपजीविनी। लभ्येत शिकणमात्रं न नारकै र्नष्टशर्मकैः ॥३३॥
तप्तैलकटाहेषु निक्षिप्तास्तत्र देहिनः। भस्मीभवंति सर्वांगे सहमानाश्च वेदनां ॥३४॥
करपत्रादियोगेन द्विधा भवंति नारकाः। खंडशः खंडशो भूता एकीयंते च सूतवत् ॥३५॥
भूमिस्पर्शनतोऽसातं सहस्त्रवृश्चिकस्पृशः। अधिकं देहिनां यत्र जायते देहदाहकं ॥३६॥
भूमृदो दैवयोगेना-यांति लोकेऽत्रमध्यमे। तद्गंधामत्ररणं यांति नराः क्रोशादिसंस्थिताः ॥३७॥
अनेकशोमयादुःखं तदभुक्तं पूर्वमेव च। पराधीनतयाद्याहं क्षमिष्यामि समागतं ॥३८॥
एकाक्षविषये द्वयादिकरणे केवलं मया। अशर्माऽभोजि चिद्रूपमजानतार्त्तचेतसा ॥३९॥

का इच्छुक एवं जाति का कौली था, वहाँ आया और मेरे शरीर को मृत शरीर जान तत्काल उसने मेरे मस्तक पर एक चूल्हा रख दिया एवं किसी मृत कपाल में दूध और चावल डालकर, चूल्हे में अग्नि बालकर (जलाकर) वह खीर पकाने लग गया। बस, फिर क्या था ? मंत्रवादी तो यह समझ कि कब जल्दी खीर पके और जल्दी मंत्र सिद्ध हो, बड़ी तेजी से चूल्हे में लकड़ी झोंककर आग लगाने लगा और आग लगने से जब मुझे मस्तक-मुख में तीव्र वेदना जान पड़ी तो मैं कर्म रहित शुद्ध आत्मा का स्मरण कर इस प्रकार भावना का भाव निकला–रे आत्मन्! तुझे इस समय इस दुःख से व्याकुल न होना चाहिए। तूने अनेक बार भयंकर नरक-दुःख भोगे हैं। नरक-दुःखों के सामने यह अग्नि का दुःख कुछ दुःख नहीं। देख! नरक में नारकियों को क्षुधा तो इतनी अधिक है कि यदि मिले तो वे त्रिलोक का अन्न खा जाये किन्तु उन्हें मिलता कण मात्र भी नहीं। इसलिए वे अतिशय क्लेश सहते हैं। वहाँ पर नारकियों को गरम लोहे की कड़ाहियों में डाला जाता है उनके शरीर के खंड किये जाते हैं उस समय उन्हें परम दुःख भोगना पड़ता है। हजार बिच्छुओं के काटने से जैसी शरीर में अग्नि भैराती (लगती) है उसी प्रकार नरक भूमि स्पर्श से नारकियों को दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि नरक की मिट्टी का छोटा-सा टुकड़ा भी यहाँ आ जाये तो उसकी दुर्गन्धि से कोसों दूर बैठे जीव शीघ्र मर जाएँ किन्तु अभागे नारकी रात-दिन उसमें पड़े रहते हैं।

तुझे भी अनेक बार नरक में जाकर ये दुःख भोगने पड़े हैं। जब-जब तू एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय योनियों में रहा है उस समय भी तूने अनेक दुःख भोगे हैं। अनेक बार तू निगोद में भी गया है और वहाँ के दुःख कितने कठिन हैं यह बात भी तू जानता है। तुझे इस समय जरा भी विचलित नहीं होना चाहिए। भाग्यवश यह नरभव मिला है प्रसन्नचित्त होकर तुझे व्रत सिद्धि

अनंतानंत संसारो नित्येतरनिगोदके। स्थितः पूर्वं सुदिष्टाच्च लब्धोऽयं मानुषो भवः ॥४०॥
मानुषं भवमासाद्य जेतव्याश्च परीषहाः। मया व्रतादिसंसिद्ध्यै परीषहजयं तपः ॥४१॥
दह्यमाने च मे मूर्ध्नीतीत्थंभावनया युतः। आसे यावत्पदारूढः पंचाना परमेष्ठिनां ॥४२॥
शिरासंकोचयोगेन तावन्मे मस्तकोपरि। उद्ध्रीभूय करौ तूर्णं स्थितौ लष्टि सुदण्डवत् ॥४३॥
करयोगात्कपालं च पतितं दुग्धयोगतः। अग्निः शशाम वेगेन भो श्रेणिक नराधिप ॥४४॥
तदा कौलेयको वीक्ष्य मत्वाक्रुद्धं स्वमंत्रकम्। चक्रे पलायनं भीतः पश्यन् पश्यन्नवाङ्मुखं ॥४५॥
उदयाय तदा भानुः कथयन्निव सज्जनान्। मुनेर्महोपसर्गं च कुणपायतपातिनः ॥४६॥
ननाश तामसं दूरादुच्चनीचसमानकृत्। स्तव्यग्राभेद्यमत्यंतं मिथ्यात्वं जिन भास्करात् ॥४७॥
यस्योदयप्रभावेण पद्मानि विचकासिरे। जिनोदयेन भव्यानां मनांसीव स्वभावतः ॥४८॥

के लिए परीषह सहना चाहिए। ध्यान रख! परीषह सहन करने से ही व्रत-सिद्धि और सच्चा आत्मीय सुख मिल सकता है ॥२५-४१॥

राजन्! मैं तो इस प्रकार अनित्यत्व भावना भा रहा था। मुझे अपने तन-बदन का भी होश न था। अचानक ही जब अग्नि जोर से बढ़ने लगी तो मेरे मस्तक की नसें भी सिकुड़ने लगीं। मेरे मस्तक पर रखा कपाल बेहद रीति से हिलने लगा और भली-भाँति कौलिक द्वारा डाँटे जाने पर तत्काल जमीन पर गिर गया। जो कुछ उसमें दूध, चावल आदि चीजें थीं, मिट्टी में मिल गई और शीघ्र ही अग्नि शांत हो गई।

बस, फिर क्या था ? ज्योंही उस कौलिक ने यह दृश्य देखा मारे भय के उसके पेट में पानी हो गया। वह यह जान कि मंत्र मुझ पर कुपित हो गया है, वहाँ से तत्काल घर भागा और शीघ्र ही अपने घर आ गया।

कुछ समय बाद रात्रि में मुर्दे के धोखे से मुनिराज पर घोर उपसर्ग हुआ है। यह बात दारा नगर-निवासी सज्जनों को मानो कहता हुआ सूर्य प्राची दिशा में उदित हो गया। जिनेन्द्ररूपी सूर्य के उदय से जैसा मिथ्यात्व अंधकार तत्काल विलय को प्राप्त हो जाता है और भव्यों के चित्तरूपी कमल विकसित हो जाते हैं। उसी प्रकार सूर्य के उदय से गाढ़ अंधकार भी बातोंबात में नष्ट हो गया। जहाँ-तहाँ सरोवरों में कमल भी खिल गये। उस समय रात-भर के वियोगी चकवा-चकवी सूर्योदय से अति आनंदित हुए और परस्पर प्रेमालिंगन कर अपने को धन्य समझने लगे किन्तु रात्रि में अपनी प्राण-प्यारियों के साथ क्रीड़ा करने वाले कामीजन अति दुःख मानने लगे और बार-बार सूर्य की निंदा करने लगे। असली पूछिए तो सूर्य एक प्रकार का उत्तम साधु है क्योंकि साधु जिस प्रकार भव्य जीवों को उत्तम मार्ग का दर्शक होता है सूर्य भी पथिकों का उत्तम मार्ग का दर्शक है। साधु जैसे भव्य जीवों के अज्ञानांधकार को दूर करता है सूर्य भी उसी प्रकार गाढ़तमरूपी अंधकार को दूर करता है। साधु जिस प्रकार जीव-अजीव आदि पदार्थों का विचार करता है उनके

रथांगयुगलान्याशु नंदयंति मुहुर्मुहुः। वियुक्तिरात्रितो लुब्धं संपर्कानि हरिं मुदा ॥४९॥
कामिनां युगलान्याशु निंदयंति वियोगिनां। दृढालिंगनतो यस्योदयं संभिन्नतामसं ॥५०॥
साधुमार्गसमादर्शी विभिन्नखलतामसः। पदार्थसार्थसंस्पर्शी साधुरेव दिवाकरः ॥५१॥
यस्योदय हिमांशुश्च शुष्क पत्रायते तरां। लून सर्वांगसत्कांतिस्तत्रान्येषां च का कथा ॥५२॥
भानुदर्शित सन्मार्गे चरंति जनताः शुभाः। जिनोपदिष्टसन्मार्गे भव्या इव हितैषिणः ॥५३॥
पतितं मां तदा भूप विदग्धार्द्धसुमस्तकम्। पुष्पलावी समावीक्ष्य विस्मितोऽभून्निजे हृदि ॥५४॥
आगत्य नगरे तूर्णमचीकथदुपासकान्। जिनदत्तादिसंमुख्यान् जिनधर्मप्रवेदकान् ॥५५॥
आकर्ण्येति तदा चक्र र्हाहाकारमुपासकाः। जग्मुः संभूय सर्वे च मुनिपुंगवसन्निधौ ॥५६॥
निरूप्य तादृशं तं च प्रणम्य मन्युमानसाः। करैः सद्वृत्यसंनीय नगरं ते बुधोत्तमाः ॥५७॥
योगिनं स्थापयामासुर्जिनदत्तालये मुदा। व्यजने व्याधिघातार्थं भस्मीभूतसुमस्तकं ॥५८॥
ततः पप्रच्छ भिषजं भेषजं जिनदत्तकः। व्याधिघातकृते साऽपि निरूप्यालीलयद्वचः॥ ५९॥
लक्षमूलादृते तैलान्न शांतिर्भविता विभोः। चिकित्सेऽहं महाव्याधि तेन श्रेष्ठिन्न चान्यथा ॥६०॥

साथ संबंध रखता है। उसी प्रकार सूर्य भी अपनी किरणों से समस्त पदार्थों से संबंध रखता है। देदीप्यमान सूर्य के तेज के सामने चन्द्रमा उस समय सूखे पत्ते के समान दिखाई पड़ने लगा और तारागण तो लापता हो गये। श्मशान भूमि के पास एक बाग था इसलिए उस समय एक माली फूल तोड़ने के लिए वहाँ आया था, अचानक उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। ज्योंही उसने मुझे अर्ध दग्ध मस्तक युक्त और बेहोश देखा मारे आश्चर्य के उसका ठिकाना न रहा। वह शीघ्र ही भागकर नगर में आया और जिन धर्म के परम भक्त जो जिनदत्त आदि सेठ थे उनसे मेरा सारा हाल कह सुनाया ॥४२-५५॥

ज्योंही जिनदत्त आदि सेठों ने माली के मुख से मेरी ऐसी भयंकर दशा सुनी उन्हें परम दुःख हुआ। मारे दुःख के वे हा-हाकार करने लगे और सबकेसब मिलकर तत्काल श्मशान भूमि की ओर चल दिये। श्मशान भूमि में आकर मुझे उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। मेरी ऐसी बुरी अवस्था देख वे और भी अधिक दुःख मनाने लगे। किस दुष्ट ने मुनिराज पर यह घोर उपसर्ग किया है ? इस प्रकार क्रुद्ध हो भव्य जिनदत्त ने मुझे शीघ्र उठाया और व्याधि के दूर करने के लिए मुझे अपने घर ले गया। जिस समय मैं घर पहुँच गया। तत्काल जिनदत्त किसी वैद्य के घर गया। मेरी व्याधि के शान्त्यर्थ वैद्य से उसने औषधि माँगी और मेरी सारी अवस्था कह सुनाई। भव्य जिनदत्त के मुख से मुनिराज की यह अवस्था सुन वैद्य ने कहा-प्रिय जिनदत्त! मुनिराज का रोग अनिवार्य है। जब तक लाक्षामूल तेल न मिलेगा कदापि मैं उनकी चिकित्सा नहीं कर सकता, लाक्षामूल तेल से ही यह रोग जा सकता है। इसलिए तुम्हें लाक्षामूल रस के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वैद्यराज के ऐसे वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा वैद्यराज! कृपया शीघ्र कहें लाक्षामूल तेल कहाँ और कैसे मिलेगा ? मैं उसके लिए प्रयत्न करूँ। वैद्यराज ने कहा-इसी नगर में भट्ट सोम-

क्वास्ते तदिति संपृष्टे प्रागदीद्भिषजांवरः। गृहेऽस्ति लक्षमूलं तद्भट्टस्य सोमशर्मणः ॥६१॥
दग्धव्रणविघातोत्थ व्याधयो यांति दूरतां। तैलेन तेन तस्मात्तदा नेतव्यं त्वया लघु ॥६२॥
ततोऽगात्तस्य स सद्मं दृष्ट्वा तद्भामिनीं शुभाम्। तुंकारीं स्नेहसिद्ध्यर्थं भगिनीति वचो जगौ ॥६३॥
(हे) स्वसो रुजोपनोदार्थं लक्षमूलं मुनेर्मुदा। प्रयच्छ मूल्यमादाय श्रुत्वेति सा व्यलीलपत् ॥६४॥
मूल्यादृते गृहाण त्वं मुनेः शांतिकृते शृणु। अगदाद् गदर्णिर्नाशोऽमुत्र जीवस्य संभवेत् ॥६५॥
अट्टालिकायां तत्तैल काचकुंभाः समासते। तत्रैकं त्वं गृहाणाशु यावत्प्रयोजनं तथा ॥६६॥
तत्र गत्वा गृहीत्वा तं कंठे यावन्मुदा तदा। गृह्णाति क्षिप्तवान् भूमौ तैलं निःशेषमेव च ॥६७॥
भयकंपितगात्रेण तेनाकथि तदग्रके। साऽवादीदन्यमंत्रत्वमंगीकुरु सहोदर ॥६८॥

शर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता है। लाक्षामूल तेल उसी के यहाँ मिल सकता है और कहीं नहीं। तुम उसके घर जाओ और शीघ्र वह तेल ले आओ। वैद्यराज के ऐसे वचन सुन शीघ्र ही भट्ट सोमशर्मा के घर गया। वहाँ उसकी तुंकारी नाम की शुभ भार्या को देखकर और उसे बहिन शब्द से पुकार कर यह निवेदन करने लगा–

बहिन! मुनिवर मणिमाली का आधा मस्तक किसी दुष्ट ने जला दिया है। उनके मस्तक में इस समय प्रबल पीड़ा है कृपाकर मुनि पीड़ा की निवृत्ति के लिए मूल्य लेकर मुझे कुछ लाक्षामूल तेल दे दीजिए। जिनदत्त की ऐसी प्रिय बोली सुन तुंकारी अति प्रसन्न हुई। उसने शीघ्र ही जिनदत्त से कहा–

प्रिय जिनदत्त! यदि मुनि की पीड़ा दूर करने के लिए तुम्हें तेल की आवश्यकता है तो आप ले जाइए मैं आपसे कीमत नहीं लूंगी। जो मनुष्य इस भव में जीवों को औषधि प्रदान करते हैं पर भव में उन्हें कोई रोग नहीं सताता। आप निर्भय हो मेरी अटारी चले जाइए। वहाँ बहुत-से घड़े तेल के रखे हैं, जितना तुम्हें चाहिए, उतना ले जाइए। तुंकारी के ऐसे दयामय वचन सुन जिनदत्त अति प्रसन्न हुआ। अटारी पर चढ़कर उसने एक घड़ा उठाकर अपने कंधे पर रख लिया और चलने लगा। घड़ा लेकर जिनदत्त कुछ ही दूर गया था अचानक ही उनके कंधे से घड़ा गिर गया और उसमें जितना तेल था सब फैलकर मिट्टी में मिल गया। तेल को इस प्रकार जमीन पर गिरा देख जिनदत्त का शरीर मारे भय के काँप गया। वह विचारने लगा–हाय!!! बड़ा अनर्थ हो गया। यही कठिनता से यह तेल हाथ आया था सो अब सर्वथा नष्ट हो गया। जाने अब तेल मिलेगा या नहीं ? अहा!!! अब तुंकारी मुझ पर जरूर नाराज होगी मैंने बड़ा अनर्थ किया तथा इस प्रकार अपने मन में कुछ समय संकल्प-विकल्प कर वह तुंकारी के पास गया। डरते-डरते उसे सब हाल कह सुनाया और तेल के लिए फिर से निवेदन किया। तुंकारी परम भद्रा थी उसने नुकसान पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया किन्तु शांतिपूर्वक उसने यही कहा ॥५६-६८॥

द्वितीयं काचकुंभं तमादातुं स जिघृक्षति। भूमौ निपत्य भग्नोऽसौ तावत्कुंभो द्वितीयकः ॥६९॥
पुनस्तयाः समादेशाद् गृहीतंतृतीयं घटम्। बभंज खिन्नचित्तोऽसौ तां तत्सर्वं न्यवेदयत् ॥७०॥
अलीलपत्तदा सापि मा भैषीस्त्वं सहोदर। यावत्प्रयोजनं तावदंगीकुरु शुभं घटं ॥७१॥
यत्नतो घटमादाय स एकं विस्मितोऽभवत्। तस्याः सवधिमागत्य बभाषे शुभयागिरा ॥७२॥
रे मातस्त्वत्समा बालां नाकालवलोकयं। वृषवर्द्धितचेतस्कां क्षांतिपूरितविग्रहां ॥७३॥
असाधारा महाक्षांतिस्त्वयि विद्येत भो स्वसः। मुनावपि वसत्क्षांते रीदृशा याहि संशयः ॥७४॥
भग्नेषु तेषु रे मात रामषीस्तकथंचन। अभूच्चित्रमिदं चित्रं न दृष्टं कुत्र भूतले ॥७५॥
अशीशममहं कोपं यतस्तत्फलमुल्वणं। अभोजमिति सावादीत् श्रेष्ठिनं कृतकौतुकं ॥७६॥

प्रिय जिनदत्त! यदि वह तेल फैल गया तो फैल जाने दे, मेरे यहाँ बहुत तेल रखा है, जितना तुझे चाहिए उतना ले जा और मुनिराज की पीड़ा दूर करने का उपाय कर। ब्राह्मणी के ऐसे उत्तम किन्तु संतोषप्रद वचन सुन जिनदत्त का सारा भय दूर हो गया। ब्राह्मणी की आज्ञानुसार उसने शीघ्र ही दूसरा घड़ा अपने कंधे पर रख लिया किन्तु ज्योंही घड़ा लेकर जिनदत्त कुछ चला ठोकर खा चट जमीन पर गिर गया और घड़ा फूट जाने से फिर सारा तेल फैल गया।

ब्राह्मणी की आज्ञानुसार जिनदत्त ने तीसरा घड़ा भी अपने कंधे पर रखा कंधे पर रखते ही वह भी फूट गया। इस प्रकार फिर सब हाल जाकर कह सुनाया और कहते-कहते उसका मुख फीका पड़ गया। तीनों घड़ों के इस प्रकार फूट जाने से सेठ जिनदत्त को अति दुःखित देख तुंकारी का चित्त करुणा से आर्द्र हो गया। डाँट-डपट के बदले उसने जिनदत्त से यही कहा–

प्यारे भाई! यदि तीन घड़े फूट गये हैं तो फूट जाने दे। उसके लिए किसी बात का भय मत कर। मेरे घर में बहुत-से घड़े रखे हैं। जब तक तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न हो तब तक तुम एक एक कर सबों को ले जाओ। ब्राह्मणी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुन जिनदत्त को परम संतोष हुआ। उसकी आज्ञानुसार उसने शीघ्र ही घड़ा कंधे पर रख लिया और अपने घर की ओर चल दिया।

ब्राह्मणी के ऐसे उत्तम बर्ताव से जिनदत्त के चित्त पर असाधारण असर पड़ गया था। ब्राह्मणी के स्नेह युक्त वचनों ने उसे अपना पक्का दास बना लिया था। इसलिए ज्योंही वह अपने घर पहुँचा घड़ा रखकर वह फिर तुंकारी के घर आया और विनयपूर्वक इस प्रकार निवेदन करने लगा–प्रिय बहिन! तू धन्य है, तेरा मन सर्वथा धर्म में दृढ़ है। तू क्षमा की भंडार है। मैंने आज तक तेरे समान कोई स्त्री-रत्न नहीं देखा। जैसी क्षमा तुझमें है संसार में किसी में नहीं। मुझसे बराबर तीन घड़े फूट गये, तेरा बहुत नुकसान हो गया तथापि तुझे जरा भी क्रोध न आया। जिनदत्त के ऐसे प्रशंसायुक्त किन्तु उत्तम वचन सुन तुंकारी ने कहा–भाई जिनदत्त! क्रोध का भयंकर फल मैं चख चुकी हूँ। इसलिए मैंने कुछ शांत कर दिया है मैं जरा-जरा-सी बात पर क्रोध नहीं करती। तुंकारी के ऐसे वचन सुन जिनदत्त ने कहा ॥६९-७६॥

स उवाच शुभे मातस्तत्कथां कथयस्व मां। अबीभणत्तदा सापि श्रृणु वृत्तांतमंजसा ॥७७॥
आनंदपूरिते रम्ये आनंदाख्यसुपत्तने। सानंदजनसंपूर्णे विस्तीर्णेऽक्षीणसंपदि ॥७८॥
शिवशर्मा महादेवो धनेभ्यो वसति स्फुटं। कमलश्री सुनामाऽभूत्तस्य जाया सुलोचना ॥७९॥
तयोर्बभूवुरष्टौ च पुत्राः पौरंदरोपमाः। भव्ययौवनलीलाढ्या धनाद्यष्टमदावहाः ॥८०॥
ततस्तयोरहंभद्रा तनुजाऽसीच्छिवावहा। पित्रादीनां सदा मान्या लालिता बंधुसत्करैः ॥८१॥
सरूपा सकला सारा मानिता भ्रातृजायया। मानयंति जनाः सर्वे गृहीत्वा नाम चोत्तमं ॥८२॥
ततो विज्ञापयामास भूपालमिति सादरं। भवद्भिर्जनमुख्यैश्च बांधवैनगिरैस्तथा ॥८३॥
तुंकारनिनदो राजन्न विधेयः कदाचन। मत्पुत्र्या इति चादेशं सा प्रापद्भूपतस्तदा ॥८४॥
तुंकार वचनं कोऽपि दत्ते दैवाच्च मां प्रति। करोम्यनर्थसंतानं तस्य भूपसमक्षकं ॥८५॥
तदा प्रभृति मन्नाम तुंकारीतिकृतं जनैः। इत्थं तातादिसन्मान्या स्थिता धाम्नि सकोपिका ॥८६॥
अथैकदा वने शुभे गुणसागरसन्मुनिम्। आटितं संपरिज्ञाय राजाद्या वंदितुं ययुः ॥८७॥

बहिन! तुम क्रोध का फल कब चख चुकी हो, कृपा कर मुझे उसका सविस्तार समाचार सुनाओ। इस कथा के सुनने की मुझे विशेष लालसा है। जिनदत्त के ऐसे वचन सुन तुंकारी ने कहा– भाई! यदि तुझे इस कथा के सुनने की अभिलाषा है तो मैं कहती हूँ, तू ध्यानपूर्वक सुन–इसी पृथ्वीतल में आनंदित जनों से परिपूर्ण मनोहर एवं आनंद का आकर एक आनंद नाम का नगर है। आनंद नगर में अक्षय संपत्ति का धारक कोई शिवशर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था। शिवशर्मा की प्रिय भार्या कमलश्री थी। कमलश्री अतिशय मनोहरा, सुवर्ण वर्णा एवं विशाल नेत्रा थी। शिवशर्मा के प्रिय भार्या कमलश्री से उत्पन्न आठ पुत्र–रत्न थे। आठों ही पुत्र इन्द्र के समान सुन्दर थे, भव्य थे और धन आदि से मत्त थे। उन आठों भाइयों के बीच में अकेली बहिन थी। मेरा नाम भद्रा था। माता–पिता का मुझ पर असीम प्रेम था। सदा वे मेरा सम्मान करते रहते थे। मेरे भाई भी मुझ पर परम स्नेह रखते थे। मैं अतिशय रूपवती और समस्त स्त्रियों में सारभूत थी। इसलिए मेरी भौजाई भी मेरा पूरा–पूरा सम्मान करती थी। पास पड़ोसी भी मुझ पर अधिक प्रेम रखते थे और मुझे शुभ नाम से पुकारते थे। मुझे तुंकार शब्द से बड़ी चिढ़ थी। इसलिए मेरे पिता ने राज–सभा में भी जाकर कह दिया राजन्! मेरी पुत्री तुंकार शब्द से बहुत चिढ़ती है इसलिए क्या तो मंत्री, क्या नगर निवासी और बांधव कोई भी उसके सामने तुंकार शब्द न कहे। मेरे पिता के ऐसे वचन सुन राजा ने मुझे भी बुलाया। राजा की आज्ञानुसार मैं दरबार में गई। मैंने वहाँ स्पष्ट रीति से यह कह दिया कि जो मुझे तुंकारी शब्द से पुकारेगा राजा के सामने ही मैं उसके अनेक अनर्थ कर डालूँगी तथा ऐसा कहकर मैं अपने घर लौट आई। उस दिन से सब लोगों ने चिढ़ से मेरा नाम तुंकारी ही रख दिया और मैं क्रोधपूर्वक माता–पिता के घर रहने लगी ॥७७–८६॥

कदाचित् शुभ्र नाम के वन में एक परम पवित्र मुनिराज, जिनका नाम गुणसागर था, आये मुनिराज का आगमन–समाचार सुन राजा आदि समस्त लोग उनकी वंदनार्थ गये। मुनिराज के

नत्वा योगीश्वरं सर्वे तस्थुस्तत्र वृषेच्छव:। मुनिवक्त्रात्ततो धर्मं शुश्रुवु: सा तदायिनं ॥८८॥
यथायथं व्रतं सर्वे जग्रहुर्हितसिद्धये। तदा श्रेष्ठिन्मया रम्यं गृहीतं श्रावकव्रतं ॥८९॥
विना तुंकारशब्देन विना कोपं मयाद्रुतम्। उररीकृतमेवात्र नियमादिकसद्व्रतम् ॥९०॥
आगत्य मंदिरे सर्वैरहं तस्थौ मदावहा। मदाष्टकै: समाकीर्णा भ्रात्रष्टकसमुद्भवै: ॥९१॥
मत् शीलं संपरिज्ञाय मां वृणोति न कश्चन। पितृणां च तदा कष्टं जातं मद्यौवने क्षणात् ॥९२॥
एकदा सोमशर्माख्यो द्युतव्यसनवंचित:। द्विजो वित्तं महाद्यूते हारयामास पापत: ॥९३॥
द्यूतकृद्भिस्तदा सोऽपि याचयद्भिर्निजं वसु। वृक्षे संरोप्य सल्लोष्टैस्ताड्यते यष्टिमुष्टिभि: ॥९४॥
श्रुत्वा मज्जनकस्तत्र गत्वा तं कैतवं प्रति। इत्याख्यद् द्विज मे कन्यां चेद्वरिष्यसि सत्वरं ॥९५॥
मोचयामि तदा वित्तं दत्त्वैतेभ्य: शुभावहम्। सोऽवोचद् द्विजाधीश शिवशर्मन् धनाधिप ॥९६॥
केन दोषेण सा कन्या दीयते मम पापिन:। द्यूतव्यसनशक्तस्य पीड्यमानात्मन: खलै: ॥९७॥
मत्पितेति वचोऽवादीन्न दोषो भूपसंभव:। किन्तु कोपकृतो दोषो मत्सुतायां यथाकथम् ॥९८॥
त्वंकारप्रभवं शब्दं सहते सा न सुंदरी। यूयं वयं प्रकर्त्तव्यं त्वया जीवनहेतवे ॥९९॥

पास पहुँचकर सभी ने भक्ति-भाव से उन्हें नमस्कार किया और सबके सब उनके पास भूमि पर बैठ गये। उन सभी को उपदेश-श्रवण के लिए लालायित देख मुनिराज ने उपदेश दिया। उपदेश सुनकर सभी को परम संतोष हुआ और अपनी सामर्थ्य के अनुसार यथायोग्य सभी ने व्रत भी धारण किये। मैं भी मुनिराज का उपदेश सुन रही थी मैंने भी श्रावक व्रत धारण कर लिए।

किन्तु व्रत धारण करते समय तुंकार शब्द से उत्पन्न क्रोध का त्याग नहीं किया था। मुनिराज के उपदेश के समाप्त हो जाने पर सब लोग नगर में आ गये। मैं भी अपने घर आ गई। मेरे भाई जैसे आठ मदयुक्त थे उनके संसर्ग से मैं भी आठ मदयुक्त हो गई। जिस बात की मैं हठ करती थी उसे पूरा करके मानती थी। यहाँ तक कि मुझे हठीली जान मेरा कोई विवाह भी नहीं करता था इसलिए जिस समय मैं युवती हुई तो मेरे पिता को परम कष्ट होने लगा। मेरी विवाह संबंधी चिता उन्हें रात-दिन सताने लगी।

उसी समय एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण था। सोमशर्मा पक्का जुआरी था। कदाचित् सोमशर्मा जुआ खेल रहा था। उसने किसी बाजू पर अपना सब धन रख दिया और तीव्र दुर्भाग्योदय से उसे वह हार गया। सब धन हारने पर सब जुआरियों ने सोमशर्मा से अपना धन माँगा तो वह न दे सका इसलिए जुआरियों ने उसे किसी वृक्ष से बाँध दिया और बुरी तरह लात, डंडे, घूसों से मारने लगे। शिवशर्मा के कान तक भी यह बात पहुँची वह भागता-भागता शीघ्र ही सोमशर्मा के पास गया और उससे इस प्रकार कहने लगा प्रिय ब्राह्मण! यदि तुम मेरी पुत्री के साथ विवाह करना स्वीकार करो तो मैं इन जुआरियों का कर्जा निपटा दूँ और तुम्हें इनके चंगुल से छुड़ा लूँ। बस, हे श्रेष्ठिन्! मेरे पिता के ऐसे हितकारी वचन सुन सोमशर्मा ने कहा-ब्राह्मण सरदार! आपकी कन्या में ऐसा कौन-सा दुर्गुण है जिससे उसके लिए कोई योग्य वर नहीं मिलता और पापी,

तथेति प्रतिपन्नोऽसौ कष्टेन वसुवर्षणैः। मत्पित्रा मोचितो दुःखादानीतो निजवेश्मनि ॥१००॥
महता संभ्रमेणैव कारिता पाणिपीडनम्। तेनाहं सुखमालेभे ततो रतिसमुद्भवं ॥१०१॥
यूयं यूयमिति कृत्वा माँ स वादयते सदा। अतः सुखमवाप्ताहं प्रौढयौवनसंभवं ॥१०२॥
अन्यदा नटनाद्यं स लोकयंस्तत्र संस्थितः। विविधाद्भुत सद्वेषं चित्राश्चर्य सुहासकृत् ॥१०३॥
गणरात्रमतिक्रम्याजगाम धरिणीसुरः। स्थित्वा द्वाराग्रदेशेसोऽभाणीन्मधुरया गिरा ॥१०४॥
उद्घाटयत भो कांता यूयं द्वारं स्वभावतः। पौनः पुण्येन वाचालमिति कांतं प्रति क्रुधा ॥१०५॥
बृहत्कालक्रमेणैव नो वच्मि च यथाकथं। वादिता मानवादेन वहंती गर्वमुल्वणं ॥१०६॥
बृहद्वेलामतिक्रम्य खिन्नचेतो वचोऽवदत्। शीघ्रं त्वंकार शब्दवाचालो रे रे मुद्घाटयत्त्वकं ॥१०७॥
सा त्वंकारं समाकर्ण्य द्वारमुद्घाट्य चांजसा। मुक्त्वा कांतं गृहं वित्तं निर्गता योषमाश्रिता ॥१०८॥

जुआरी, दुष्टों द्वारा दंडित, मुझ नकुछ पुरुष के साथ उसका विवाह करना चाहते हैं। सोमशर्मा के ऐसे वचन सुन शिवशर्मा ने कहा–प्रियवर! मेरी पुत्री में रूप आदि का कुछ भी दोष नहीं है वह अतिशय रूपवती, सुन्दरी है। अनेक कला–कौशलों की भंडार है किन्तु उसमें क्रोध की कुछ मात्रा अधिक है। वह तुंकार शब्द को सहन नहीं कर सकती। बस, जो–कुछ दोष है सो यही है। तुम अपने जीवन–सुख भोगने के लिए यही करना कि हम–तुम का ही व्यवहार रखना, मैं–तू का नहीं रखना।

इसके अतिरिक्त दूसरा तुम्हें कोई कष्ट न भोगना पड़ेगा। शिवशर्मा के ऐसे वचन सुन और उस कष्ट को कुछ न समझ सोमशर्मा ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं मेरे पिता ने तत्काल जुआरियों का कर्ज पटा दिया और आनंदपूर्वक उसे अपने घर ले आये। कुछ दिन बाद किसी उत्तम मुहूर्त में सोमशर्मा के साथ मेरा विवाह हो गया। मैं उसके साथ आनंदपूर्वक भोग भोगने लगी। वह मुझसे सदा तुम का व्यवहार रखता था। इसलिए मुझे परम संतोष रहता था एवं हम दोनों दंपती का आपस में स्नेह बढ़ता ही चला जाता था ॥८७–१०२॥

कदाचित् सोमशर्मा किसी कार्यवश बाहर गये। उन्हें वहाँ कोई ऐसा स्थान दीख पड़ा जहाँ बहुत–से नृत्य आदि तमाशे हो रहे थे। वे चट वहाँ बैठ गये और तमाशा देखते–देखते उन्हें अपने समय का भी कुछ ख्याल नहीं रहा। जब बहुत–सी रात्रि बीत चुकी, खेल भी प्रायः समाप्त होने पर आ चुका, उन्हें घर की याद आई। वे शीघ्र अपने घर के द्वार पर आकर इस प्रकार पुकारने लगे–प्राणवल्लभे! कृपा कर आप दरवाजा खोलें। मैं दरवाजे पर खड़ा हूँ। मैं उस समय अर्ध निद्रित थी इसलिए दो–एक आवाज तो मैं उनकी सुन न सकी। किन्तु जब वे स्वभाव से बार–बार पुकारने लगे तो मैंने उनकी आवाज तो सुन ली परंतु ये इतनी रात तक कहाँ रहे ? क्यों अपने समय पर अपने घर न आये। ऐसा उन पर दोषारोषण कर फिर भी मैंने आवाज न दी और न दरवाजा खोला। कुछ समय बाद वे मुझे 'तुम' शब्द से पुकारने लगे तो भी मैंने उत्तर न दिया प्रत्युत मैं उन पर अधिक घृणा करती चली गई और मेरा गर्व भी बढ़ता चला गया। अंत में जब

भ्रातः कोपेन जीवानामिहैवाशुभमुल्वणं। पापं संपद्यते नूनमुपहास्यफलप्रदं ॥१०९॥
क्रोधशत्रुर्नृणां पूर्वं ज्वलते निजविग्रहं। पुनरन्यं यथा वंसस्थितो वह्निः स्वदाहकः ॥११०॥
आमर्षान्नरयं प्राप्ताः कृष्णद्वीपायनादयः। देहज्वलनमासाद्य पूर्वं कोपो महारिपुः ॥१११॥
इहैवाशर्मसंदाता कोपोऽयं दुर्धरो रिपुः। अमुत्र नरयादीनां दायकः पापनायकः ॥११२॥
दूरज्वलनमेवात्र त्वदग्रे कथ्यते मया। पादाऽधो ज्वलनं कोपान्मम बंधोहितच्छृणु ॥११३॥
निर्गता पत्तने कोपाद्वहंत्यखिलभूषणम्। दिव्यस्त्री वसने पथ्या स्थूलमुक्ताफलावहा ॥११४॥
दस्यवो मां समालोक्य जग्रहुर्गणरात्र के। भीमभिल्लाय वेगेन समदुर्निजस्वामिने ॥११५॥
सोऽपि मां वीक्ष्य मूढात्मा जगाद वचनं तदा। भव मे वनिता बाले गृहाणाभीष्टवस्तु च ॥११६॥
मयाऽवादी किरातेश न युक्तं कुलयोषितां। नराणां च तथा ज्ञेयं दुःखदं शीलखंडनं ॥११७॥
तीव्रकामानलैस्तप्तो नाकर्ण्य वचनं मम। बद्धकक्षो बभूवाशु शीलभंगाय पापधीः ॥११८॥

सोमशर्मा अधिक घबरा गये, मेरी ओर से उन्हें कुछ भी जवाब न मिला तो उन्हें क्रोध आ गया। क्रोध के आवेश में उन्हें कुछ न सूझा वे मुझे फिर इस रीति से पुकारने लगे–अरी तुंकारी! दरवाजा तू क्यों नहीं जल्दी खोलती ? दरवाजे पर खड़े-खड़े हमें कितना समय बीत चुका है? रात्रि के अधिक व्यतीत हो जाने से हम कष्ट भोग रहे हैं।

बस, फिर क्या था ? रे भाई जिनदत्त! ज्योंही मैंने अपने पति के मुख से तुंकारी शब्द सुना मेरा क्रोध के मारे शरीर भभक उठा। मेरे पति अर्ध रात्रि के बीतने पर घर आये थे इसलिए मैं स्वभाव से ही उन पर कुपित बैठी थी किन्तु तुंकारी शब्द ने मुझे बेहद कुपित बना दिया। मुझे उस समय और कुछ न सूझा किवाड़ खोल मैं घर से निकली और वन की ओर चल पड़ी।

उस समय रात्रि अधिक बीत चुकी थी। नगर में चारों ओर सन्नाटा छा रहा था उस समय उल्लू, चोर आदिक ही आनंद से जहाँ-तहाँ भ्रमण करते फिरते थे और कोई नहीं जागता था। मैं थोड़ी ही दूर अपने घर से गई थी। मेरे बदन पर कीमती भूषण, वस्त्र थे इसलिए मुझ पर चोरों की दृष्टि पड़ी। वे शीघ्र मुझ पर बाघ सरीखे टूट पड़े और मुझे कड़ी रीति से पकड़कर उन्होंने तत्काल अपने सरदार किसी भील के पास पहुँचा दिया। चोरों का सरदार वह भील बड़ा दुष्ट था ज्योंही उसने मुझे देखा वह अति प्रसन्न हुआ और इस प्रकार कहने लगा– ॥१०३-११५॥

बाले! तुझे जिस बात की आवश्यकता हो कह, मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ। तू मेरी प्राणवल्लभा बनना स्वीकार कर ले। मैं तुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी रखूँगा। तू किसी प्रकार अपने चित्त में भय न कर। भिल्लपति के ऐसे वचन सुन मैं भौंचक रह गई। किन्तु मैंने धैर्य हाथ से न जाने दिया इसलिए शीघ्र ही प्रौढ़ किन्तु शांतिपूर्वक इस प्रकार जवाब दिया भिल्ल सरदार! आपका यह कथन सर्वथा विरुद्ध और मलिन है। जो स्त्रियाँ उत्तम वंश में उत्पन्न हुई हैं और जो मनुष्य कुलीन हैं कदापि उन्हें अपना शीलव्रत नष्ट न करना चाहिए। आप यह विश्वास

निश्चलांगं मनः कृत्वा स्थितां मां व्रतरक्षितुं। चकार विविधां चेष्टां वस्त्रोत्क्षेपणजां स च ॥११९॥
मच्छीलेन समागत्य वनदेव्या निवारितः। नरजन्मनि यत्सारं व्रतानामपि भूषणम् ॥१२०॥
ततः स सार्थवाहस्य क्रुद्धो मूल्यं न मां ददौ। तेऽपि मां दिव्यकन्याभां वीक्ष्य मारशराहताः ॥१२१॥
ते शीलखंडने रक्ता बभूवुर्यावदुन्मुखाः। वनदेव्या तदागत्य पीडिता यष्टिमुष्ठिभिः ॥१२२॥
तत्रापि रक्षणे हेतुर्बभूव वनदेवता। शीलप्रभावतो नूनं किंकरा हि सुरा नराः ॥१२३॥
भयत्रस्तः समानैषीत्कृमिरागादिकं बलं। द्वीपं पापजनाकीर्णं श्रक्कर्दमसमाकुलं ॥१२४॥
स मां रसकुलस्यैव ददौ मूल्येन किल्विषात्। स्थिताहं तत्र पश्यंती समुदीर्णं कुदादिकं ॥१२५॥

रखें जो जीव अपने शीलव्रत की कुछ भी परवाह न कर दुष्कर्म कर डालते हैं, उन्हें दोनों जन्मों में अनेक दुःख सहने पड़ते हैं। संसार में उनको कोई भला नहीं कहता।

उस समय वह चोरों का सरदार कामबाण से बिद्ध था। भला वह धर्म-अधर्म को क्या समझ सकता था। इसलिए तप्त लौह-पिंड पर जल-बूँद जैसे तत्काल नष्ट हो जाती है-उसका नामोनिशान भी नजर नहीं आता। वैसे ही मेरे वचनों का भिल्लराज के चित्त पर जरा भी असर न पड़ा वह ''कबूतरी पर जैसे बाज टूटता है'' एकदम मुझ पर टूट पड़ा और मुझे अपनी दोनों भुजाओं में भरकर कामचेष्टा करने के लिए उद्यत हो गया।

जब मैंने उसकी यह घृणित अवस्था देखी तो मैं अपने पवित्र शीलव्रत की रक्षार्थ आसन बाँधकर निश्चल बैठ गई। मैंने उसकी ओर निहारा तक नहीं। बहुत समय तक प्रयत्न करने पर भी जब उस पापी का उद्देश्य पूर्ण न हो सका तो वह अति कुपित हो गया। उसने शीघ्र ही अपने साथियों के हाथ मुझे बेच डाला और अपने क्रोध की शांति की।

उसके साथी परम दुष्ट थे। ज्योंही उन्होंने मुझे देखा देवांगना के समान परम सुंदरी जान वे भी कामबाण से व्याकुल हो गये और बिना समझे-बूझे मेरे शीलव्रत का खंडन करना प्रारंभ कर दिया। उस समय कोई वन-रक्षिका देवी यह दृश्य देख रही थी इसलिए ज्योंही वे दुष्ट मेरे पास आवे डंडों से पीट के देवी ने उन्हें ठीक कर दिया और वह मुझे अपने यहाँ ले गई।

भाई जिनदत्त! यद्यपि मैं अतिशय पापिनी थी तो भी मैं अपने शीलव्रत में दृढ़ थी इसलिए उस भयंकर समय में उस देवी ने मेरी रक्षा की। तुम निश्चय समझो जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं देव भी उनके दास बन जाते हैं और उनके समस्त दुःख एक ओर किनारा कर जाते है ॥११६-१२३॥

जिस समय देवी मुझे अपने घर ले गई थी उस समय मेरे पास कोई वस्त्र न था इसलिए उस देवी ने मुझे एक ऐसा कम्बल जो अनेक जुओं, चींटी आदि जीवों से व्याप्त था, जगह-जगह उसमें रक्त, पीब, कीचड़ आदि लगी थी, दे दिया और मुझे वहीं रहने की आज्ञा दी। मैंने भी

पक्षे समे भ्रातः कुरुते शिरमोचनं। निःकाश्य शोणितं तस्माद्वस्त्ररंजनहेतवे ॥१२६॥
गृह्णातीत्थं करोत्येवं पक्षे पक्षे निरंतरम्। सहमाना तथाऽहं च स्थिता तत्र स्वकिल्विषात् ॥१२७॥
तुंकारशब्दमासोढुमक्षमा तातमंदिरे। क्षन्तुं शक्ता सिरामोचं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥१२८॥
पुनः सलक्षमूलाख्य तैलाभ्यंगेन देहजाम्। निवारयति मे पीडां नारकाभ्यां शुभातिगां ॥१२९॥
अथ यो धनदेवाख्यो भ्राता संप्रीतिपूरितः। उज्जयिन्याधिपेनैव प्रेषितो भूतिमंडितः ॥१३०॥
ततो देशाधिपस्यैव पारासरसुभूपतेः। समीपं कार्यसिद्ध्यर्थं संक्रमात्तत्र चागतः ॥१३१॥
पारासरं समासाद्य प्रणम्य कृतकार्यकः। यावद् बभूव तावन्मा मवैक्षत च दुःखिनीं ॥१३२॥
आलिंग्यस्नेहतो भ्राता मोचयित्वा यथा कथं। आदाय मां समानीया जगाम निजपत्तनं ॥१३३॥
दृष्ट्वा मां च जनन्याद्या जहर्षुः क्षीणविग्रहां। धनदेवस्ततोऽदान्मां मद्भर्त्रे सोमशर्मणे ॥१३४॥
अन्यदा मुनिमासाद्य गृहीतं कोपसद्व्रतं। मया सच्छीलरक्षायै वेदयंत्या च तत्फलं ॥१३५॥

कम्बल ले लिया और प्रबल पापोदय से उस क्षेत्र में उत्पन्न कोदों आदि धान्यों को देखती हुई रहने लगी। इतने पर भी मेरे दुःखों की शांति न हुई प्रति पक्ष में वह देवी मेरे सिर के केशों का मोचन करती थी और अपने वस्त्र रँगने के लिए उससे रक्त निकाला करती थी। रक्त निकालते समय मेरे मस्तिष्क में पीड़ा होती थी इसलिए वह देवी उस पीड़ा को लाक्षामूल तेल लगाकर दूर करती।

कदाचित् मेरा परम स्नेही भाई यौवन देव उज्जयिनी के राजा ने किसी कार्यवश बड़ी विभूति के साथ राजा पारासर के पास भेजा। वह अपना कार्य समाप्त कर उज्जयिनी लौट रहा था। मार्ग में कुछ समय के लिए जिस वन में मैं रहती थी, उसी वन में वह ठहर गया और मुझ अभागिनी पर उसकी दृष्टि पड़ गई। ज्योंही उसने मुझे देखा बड़े स्नेह से मुझे अपने हृदय से लगाया और बड़ी कठिनता से उस देवी के चंगुल से निकालकर मुझे उज्जयिनी ले गया। जिस समय मेरी माता आदि कुटुम्बियों ने मुझे देखा उन्हें परम दुःख हुआ। मेरे शरीर की दशा देख मेरी माँ अधिक दुःख मानने लगी। मेरे मिलाप से मेरा समस्त बंधुवर्ग अति प्रसन्न हुआ एवं कुछ दिन बाद मेरा भाई धनदेव मुझे यहाँ मेरे पति के घर पहुँचा गया।

प्रिय भाई! जब से मैं यहाँ आई हूँ तब से मैंने जरा-जरा-सी बात पर क्रोध करना छोड़ दिया। मैं क्रोध का भयंकर फल चख चुकी हूँ इसलिए और भी मैं क्रोध की मात्रा दिनोंदिन कम करती जाती हूँ। आप निश्चय समझिए यह धर्मरूपी वृक्ष सम्यग्दर्शनरूपी जड़ का धारक, शास्त्ररूपी पीड़ कर युक्त, दानरूपी शाखाओं से शोभित, अनेक प्रकार के गुणरूपी पत्तों से व्याप्त, कीर्तिरूपी पुष्पों से सुसज्जित, व्रतरूपी उत्तम आल-बाल से मनोहर, मोक्षरूपी फल का देने वाला, क्षमारूपी जल से बढ़ा हुआ परम पवित्र है। यदि इसमें किसी रीति से क्रोधरूपी अग्नि प्रवेश कर जाये तो वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, तत्काल भस्म हो जाता है इसलिए जो मनुष्य अपना हित चाहते हैं उन्हें ऐसा भयंकर फल देने वाला क्रोध सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

दृग्मूलः श्रुतसत्पीठो दानशारवो गुणच्छदः। यशः पुण्याव्रतावृत्तिर्मोक्षांतफलदायकः ॥१३६॥
शमांबुवर्द्धितो धर्म शाखी कोप धनंजयम्। आसाद्य वृद्धिमापन्नः क्षणेन भस्मसाद्भवेत् ॥१३७॥
इति विज्ञाय भो भ्रातर्मयाऽग्राहि क्रुधाव्रतं। श्रुत्वेति तां पुनः श्रेष्ठी प्रशंस्य स्वालयं गतः ॥१३८॥
ततः स लक्षमूलेन तैलेन मुनिपुंगवम्। निर्व्रणं कृतवान्भक्त्या नानागदविधानतः ॥१३९॥
स्वस्थीभूते मुनौ राजंश्चक्रुस्ते परमोत्सवम्। गृहे गृहे जिनागारे तूर्यत्रिकसमुद्भवम् ॥१४०॥
प्रावृट् कालस्तदाऽयातो राजन्वर्षन्घनाघनम्। द्योतयन् विद्युतां वृंदं गंभीर गर्जयन् ध्वनिं ॥१४१॥
सशाद्वला तदा भूमिर्जज्ञेंऽबुबिंदुसंयुता। स्थूलमुक्ता फलाकीर्णा हरिन्मणिमया यथा ॥१४२॥
बभुस्तत्र शुभाः केकाः केकिनां तांडवात्मनां। लोकतृप्तिकृेते तूर्णमाह्वयंत्य इवांबुदं ॥१४३॥
हारायंते दिशां धाराबिंदु मुक्ताफलावहाः। विद्युत्संतप्तहेमाढ्या यत्र केका समाकुले ॥१४४॥
अग्नीयंते पराधाराः कामिनीनां वियोगतः। पीडितानां वरे चित्ते ज्वलंत्यो मारदारुभिः॥ १४५॥
अध्वगानां कृतालोपे पथि निर्गमनं कदा। धाराधरो न संदत्ते प्रियाविरह शंकिनां ॥१४६॥
ये ये यत्र स्थितास्ते ते तत्र तत्र महादरात्। घनाघनभयान्नूनं तिष्ठंति प्रीतिपीडिताः ॥१४७॥
परदेश प्रिया नारी बलाका कृत ताडकम्। स्वकांतगाढसंलीनं वीक्ष्येति सा व्यतर्कयत् ॥१४८॥
इयं मत्तः पराधन्या विप्रलंभभवं कदा। दुःखं न सहते चाहं विप्रलंभप्रतारिता ॥१४९॥

ब्राह्मणी तुंकारी के मुख से ऐसी कथा सुन सेठ जिनदत्त अति प्रसन्न हुआ। वह तुंकारी की बार-बार प्रशंसा करने लगा एवं प्रशंसा करता-करता कुछ समय बाद अपने घर आया। लाक्षामूल तेल एवं अन्यान्य औषधियों से जिनदत्त मेरी (मुनिराज की) परिचर्या करने लगा। कुछ दिन बाद मेरे रोग की शांति हुई। मुझे निरोग देख जिनदत्त को परम संतोष हुआ। मेरी निरोगता की खुशी में जिनदत्त आदि सेठों ने अति उत्सव मनाया। जहाँ-तहाँ जिनमंदिर में विधान होने लगे एवं कानों को अति प्रिय उत्तमोत्तम बाजे भी बजने लगे ॥१२४-१४०॥

राजन् श्रेणिक! इधर तो मैं निरोग हुआ और उधर वर्षाकाल भी आ गया। उस समय आनंद से वृष्टि होने लगी जहाँ-तहाँ बिजली चमकने लगी एवं प्रत्येक दिशा में मेघ ध्वनि सुनाई पड़ी। उस समय प्रत्येक एवं साधारण वनस्पति से आच्छादित जल-बूँदों से व्याप्त, पृथ्वी अति मनोहर नजर आने लगी। जैसे हरित कांतमणि पर जड़े हुए सफेद मोती शोभित होते हैं वैसे हरी वनस्पति पर स्थित जल-बूँदें उस समय ठीक वैसी ही शोभा को धारण करती थीं। उस समय चारों ओर आनंद शब्द करते थे। विरहिणी कामिनियों के लिए वह मेघमाला जलती हुई अग्नि ज्वाला के समान थी और अपनी प्राणवल्लभा के अधरामृत पान के लोलुपी, क्षण-भर भी उसके विरह को सहन न करने वाले कामिनियों के मार्ग को रोकने वाली थी। जिस समय विरहिणी स्त्रियाँ अपने-अपने घोसलों में आनंदपूर्वक प्रेमालिंगन करते हुए बगली बगलों को देखती थी उन्हें परम दुःख होता था। वे अपने मन में ऐसा विचार करती थी। हाय!!! यह पति विरह दुःख हम पर कहाँ से टूट पड़ा। क्या यह दुःख हमारे ही लिए था ? हम कैसे इस दुःख को सहन करें। इस प्रकार जीवों

अयोगाकारधाराभिर्द्वाराधरेव वर्षति। श्राद्धैराक्षिप्यमाणोऽहं जिनदत्तालये स्थितः ॥१५०॥
प्रावृट्योगं व्यवस्थाप्य मया स्थायि सुयोगतः। जिनार्चास्नानचैत्यादि कारयता महोत्सवं ॥१५१॥
एकदा निजपुत्रस्य भयात्सव्यसनात्मनः। कुबेरदत्तसंज्ञस्य दुर्ध्यानाहत चेतसः ॥१५२॥
ताम्रकुंभं समादाय श्रेष्ठी रत्नादिसंभृतं। मुनेर्निकटमानीयं तदाऽधो गुप्तगुप्तके ॥१५३॥
विष्टराधस्तले तावद् गर्भगृहविसंस्थितः। कुबेरो निक्षिपंतं तं ददर्श श्रेष्ठिनं क्षितौ ॥१५४॥
एकदा सततः काले गते कीयति पापधीः। निःकाश्य स्वर्णकलशं लोभसंभिन्नमानसः ॥१५५॥
अन्यत्राभीष्ट संस्थाने धृतस्तेन च पापिना। मुनिना वीक्ष्यमाणेन तूष्णीभावश्रितात्मना ॥१५६॥
अथो वयं सुखेनैव कारयंतोऽर्थकर्णनम्। प्रावृट्कालं प्रपूर्याशु विनिवर्त्त्य सुयोगकं ॥१५७॥
अटामो मनसः शुध्या भव्योपदेशन कृते। ईर्यापथविशुद्धाढ्या आढ्येतराः विचारकाः ॥१५८॥
तावच्छ्रेष्ठी समुत्क्षिप्य धरां कुंभं सरत्नकं। अपश्यन्व्याकुलो जज्ञे व्यामोहाहतमानसः ॥१५९॥
अहो क्व मे गतं वित्तं तस्करः कोऽत्र संगतः। केनारक्षि मम प्राण प्रख्यं रक्षं सुयत्नतः ॥१६०॥
निक्षिप्तमत्र रक्षार्थमतोपि गतमीक्ष्यते। भुनक्ति कर्कटीं वृत्तिर्यदि किं रक्ष्यतेऽन्यतः ॥१६१॥

को स्वभाव से ही सुख-दुःख के देने वाले वर्षाकाल के आ जाने से जिनदत्त आदि ने चातुर्मास के लिए मुझे उस नगर में ही रहने के लिए आग्रह किया इसलिए मैं वही रह गया एवं ध्यान में दत्तचित्त जीवों को उत्तम मार्ग का उपदेश देता हुआ में सुखपूर्वक जिनदत्त के घर में रहने लगा।

सेठ जिनदत्त का पुत्र जो कि अति व्यसनी और दुर्ध्यानी कुबेरदत्त था। कुबेरदत्त से जिनदत्त धन आदि के विषय से सदा शंकित रहता था। कदाचित् सेठ जिनदत्त ने एक ताँबे के घड़े को रत्नों से भरकर और मेरे सिंहासन के नीचे एक गहरा गड्ढा खोदकर चुपचाप रख दिया किन्तु घड़ा रखते समय कुबेरदत्त मेरे सिंहासन के नीचे छिपा था इसलिए उसने यह सब दृश्य देख लिया और कुछ दिन बाद वहाँ से उस घड़े को उखाड़कर अपने परिचित स्थान पर उसने रख दिया। कुछ दिन बाद चातुर्मास समाप्त हो गया। मैंने भी अपना ध्यान समाप्त कर दिया एवं हेयोपादेय विचार में तत्पर ईर्या समिति पूर्वक मैं वहाँ से निकला और वन की ओर चल दिया।

मेरे चले जाने के पश्चात् सेठ जिनदत्त को अपने धन की याद आ गई। जिस स्थान पर उसने रत्न भरा घड़ा रखा था तत्काल उसे खोदा। वहाँ घड़ा नहीं मिला, जब उसे घड़ा न मिला तो वह इस प्रकार संकल्प-विकल्प करने लगा-

हाय! मेरा धन गया ? किसने ले लिया ? अरे मेरे प्राणों के समान, यत्न से सुरक्षित, धन अब किसके पास होगा। हाय! रक्षार्थ मैंने दूसरी जगह से लाकर यहाँ रखा था उसे यहाँ से भी किसी चोर ने चुरा लिया ? जब बाढ़ ही खेत खाने लगी तो दूसरा मनुष्य कैसे उसकी रक्षा कर सकता है। मुनिराज के सिवाय इस स्थान पर दूसरा कोई मनुष्य नहीं रहता था। प्रायः मुनिराज के परिणामों में मलिनता आ गई हो। उन्होंने ही ले लिया हो। पूछने में कोई हानि नहीं, चलूँ मुनिराज से पूछ लूँ तथा ऐसा कुछ समय तक विचार कर शीघ्र ही जिनदत्त ने कुछ नौकर मेरे अन्वेषणार्थ

अहो वृत्तं दुरंतं हि गृहीतं मुनिपुंगवैः। भविष्यति न वा चित्ते तर्कयच्चेति मूढधीः ॥१६२॥
व्यावर्त्तनकृतेश्रेष्ठी मुने राजन् समूढधीः। भृत्यान्प्रस्थापयामास काष्ठासु निखिलासु च ॥१६३॥
एकस्मिन्नयने श्रेष्ठी स्वयं वीक्षणहेतवे। आट तत्कपटं चित्ते मन्यमानो मुहुर्मुहुः ॥१६४॥
अटंतं मुनिराजं तं निःशंकं गिरिवत्स्थिरं। वीक्ष्यागत्य प्रणम्याशु वचनं स व्यलीलपत् ॥१६५॥
स्वामिन्नशर्मसंपूर्णास्तूर्णं त्वद्दर्शनलोलुपाः। वर्त्तंते गृहिणस्तेषां कष्टनाशं विधेहि भो ॥१६६॥
व्यावर्त्तय कृपाधीश किंचित्कार्यकृते पुनः। न गंतव्यं न गंतव्यं त्वया नाथ यथा कथं ॥१६७॥
तदाग्रहं समालोक्य शंबर्या कृतमुल्वणं। मत्वाभिप्रायमाचित्ते तर्कयन्मानसे तदा ॥१६८॥
अहो दुष्टमहोदुष्टं द्रविणं पापदं नृणाम्। अनिष्टपदमेवात्र दुरंतं दुःखदायकम् ॥१६९॥
अहो! शत्रुत्वमायाति सखापि प्राणवल्लभः। नागीयते शुभा भार्या व्याघ्रीयति निजांबिका ॥१७०॥

भेजे और स्वयं भी घर से निकल पड़ा एवं कपट वृत्ति से जहाँ-तहाँ मुझे ढूँढ़ने लगा।

मैं वन में किसी पर्वत की तलहटी में ध्यानारूढ़ था। मुझे जिनदत्त की कपट वृत्ति का कुछ भी ख्याल न था। अचानक ही घूमता-घूमता वह मेरे पास आया। भक्ति-भाव से मुझे नमस्कार किया एवं कपटवृत्ति से वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगा ॥१४१-१६५॥

प्रभो दीनबन्धो! जब से आपने उज्जयनी छोड़ दी है। तब से वहाँ के निवासी श्रावक बड़ा दुःख मान रहे हैं। आपके चले आने से वे अपने को भाग्यहीन समझते हैं और अहोरात्र आपके दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं। कृपाकर एक समय आप जरूर ही उज्जयनी चलें और उन्हें आनंदित करें पीछे आपके आधीन बात है चाहे आप जायें या न जायें। जिनदत्त की ऐसी वचन भंगी सुन मैं अवाक् रह गया। मुझे शीघ्र ही उसके भीतरी अभिप्राय का ज्ञान हो गया। धन के लिए उसका ऐसा बर्ताव सुन मैं अपने मन में ऐसा विचार करने लगा।

यह धन बड़ा निकृष्ट पदार्थ है। यह दुष्ट जीवों को घोर पाप का संचय कराने वाला और अनेक दुःख प्रदान करने वाला है। हाय!!! जो परम मित्र है अपना कैसा भी अहित नहीं चाहता वह भी इस धन की कृपा से परम शत्रु बन जाता है और अनेक अहित करने के लिए तैयार हो जाता है। प्राण-प्यारी स्त्री इस धन की कृपा से सर्पिणी के समान भयंकर बन जाती है। जन्मदात्री, सदा हित चाहने वाली, माता भी धन के फेर में पड़कर भयंकर व्याघ्री बन जाती है। धन के लिए पुत्र के मारने में वह जरा भी संकोच नहीं करती। धन के फेर में पड़कर एक भाई दूसरे भाई का भी अनिष्ट चिंतन करने लग जाता है। पिता भी धन की ही कृपा से अपने को सुखी मानता है। यदि कुटुम्बी धन नहीं देखते हैं तो जहाँ-तहाँ निंदा करते फिरते हैं। बहिन भी धन के चक्र में फँसकर हलाहल विष सरीखी जान पड़ती है। निर्धन भाई को मारने में उसे जरा भी संकोच नहीं होता। हाय!!! समस्त परिग्रह के त्यागी, आत्मिक रस में लीन, मुनिराज भी इस दुष्ट धन की कृपा से चोर बन जाते हैं। इस धन के लिए पिता अपने प्यारे पुत्र को मार देता है। पुत्र भी अपने प्यारे पिता को यमलोक पहुँचा देता है। धन के पीछे भाई भाई को मार देता है। सेवक स्वामी का

वधीयति सुतो रम्यो मित्रीयति सहोदरः। अविश्वासीयति भ्राता तातो मूर्खायतेतरां ॥१७१॥
निंदीयति स्वगोत्रं च स्वसा हालाहलायते। वित्तप्रभावतो नूनं सर्वं द्वेषायते सदा ॥१७२॥
वित्तसंसर्गयोगेन मुनिश्चोरायते तराम्। अहोनिंद्यमहोनिंद्यं वित्तं प्राणापहारकं ॥१७३॥
घ्नंति ताताः सुतं वित्तात्सु तास्तातं न संशयः। सेवकाः स्वामिनं चैव भ्रातरो भ्रातरं निजं ॥१७४॥
स्वशरीरं त्यजंत्येव नरा वित्तकृते पुनः। धिग् धिग् द्रविणमेवात्र सर्वहिंसामयं खलं ॥१७५॥
इति व्यूहसमूहाढ्यं मां नीत्वा स्वगृहं गतः। सोऽवादीन्नाथ तत्रैकां कथां कथय बुद्धितः ॥१७६॥
बुद्ध्वांऽतः करणं तस्य जगौ योगी वणिग्वर। त्वमेवोदंतमेकं च शृणोमि गद चित्तजं ॥१७७॥
अलीलपन्निजं भावं सूचयन्ख्यातिमुत्तमां। श्रेष्ठी स्वामिन्निजं चित्तं स्थिरी कृत्य शृणु प्रभो ॥१७८॥
वाराणस्यां प्रफुल्लायां जितशत्रुनराधिपः। राजते राजराजेंद्रैः सेवितांह्रिः सरोरुहः ॥१७९॥
अगदंकार एकोऽस्ति भूपते! रोगवेदकः। धनदत्ताभिधस्तस्य धनदत्ता च वल्लभा ॥१८०॥
नानाभेषजभेदज्ञो भूपत्यादींश्चिकित्सते। भूपावतीर्णसद्वृतिं भुंजद्धोगपुरंदरः ॥१८१॥
तयो द्वौ तनुजौ रम्याऽवभूतां प्रीतिदौ मुने। धनमित्रो धनेंदुश्च यौवनोद्भासि विग्रहौ ॥१८२॥
पित्रा संपाठ्यमानौ तौ लालनात्पठतो न हि। गदादिकमजानंतौ समूर्खौ च गृहे स्थितौ ॥१८३॥

प्राणघात कर देते हैं। धन के लिए जीव अपने शरीर की भी परवाह नहीं करते। हाय!!! ऐसे धन को सहस्त्र बार धिक्कार है। वह सर्वथा हिंसामय है। इस चक्र में फँसे हुए जीव कदापि सुखी नहीं हो सकते तथा इस प्रकार धन की बार-बार निंदा करते हुए मुझे यह पुनः अपने घर ले गया एवं वहाँ पहुँचकर यह कहने लगा-नाथ कृपाकर! मुझे कोई कथा सुनाइये। मुझे आपके मुख से कथा श्रवण की अधिक अभिलाषा है। उसके ऐसे वचन सुन मैंने कहा-जिनदत्त! तुम्हीं कोई कथा कहो हम तुम्हारे मुख से ही कथा सुनना चाहते हैं बस फिर क्या था ? वह तो कथा द्वारा अपना भीतरी अभिप्राय बतलाना चाहता ही था इसलिए ज्यों ही उसने मेरे वचन सुने वह अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा-प्रभो! आपकी आज्ञानुसार मैं कथा सुनाता हूँ आप ध्यानपूर्वक सुने और मुझे क्षमा करें।

इसी जंबूद्वीप में एक अतिशय मनोहर बनारस नाम की नगरी है। बनारस नगरी का स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजा का पालक था राजा जितमित्र था। राजा जितमित्र के यहाँ एक अगदंकार नाम का राज वैद्य था। उसकी स्त्री धनदत्ता अतिशय रूपवती एवं साक्षात् कुबेर की स्त्री के समान थी। राज्य की ओर से वैद्य अगदंकार को जो आजीविका दी जाती थी उसी से वह अपना गुजारा करता था एवं इन्द्र के समान उत्तमोत्तम भोग भोगता वहाँ आनंद से रहता था। वैद्यवर अगदंकार के अतिशय सुन्दर दो पुत्र थे। प्रथम पुत्र धनमित्र था और दूसरे का नाम धनचन्द्र था। दोनों भाई माता-पिता के लाड़ले अधिक थे इसलिए अनेक प्रयत्न करने पर भी वे फूटा अक्षर भी न पढ़ सके। रोग आदि की परीक्षा का भी उन्हें ज्ञान नहीं हुआ एवं वे निरक्षर भट्टाचार्य होकर घर में रहने लगे ॥१६६-१८३॥

अन्यदा किल्विषात्तातस्तयोरापचपंचतां। लोपयामास तद्वृत्तिं भूपोऽन्यस्मै ददौ च तां ॥१८४॥
ततस्तौ दु:खसंपूर्णावभिमानेन पीडितौ। चंपायां जग्मतुस्तूर्णं शिवभूतेश्च पार्श्वके ॥१८५॥
भिषगावेदकं शास्त्रं तत्राधीत्य चिरं च तौ। चिकीर्षत: पुरं गंतुं निरगातां मुदा तदा ॥१८६॥
आटंतौ तौ वने घोरे व्याघ्रं क्रूरं भयावहं। नेत्रपीडापरिप्राप्तमद्राष्टामगदावहौ ॥१८७॥
धनमित्र स्तदावादीदंधं व्याघ्रं सुभेषजै:। करोमीक्षाक्षमं तावत्कनिष्टेन निवारित: ॥१८८॥
न कर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं त्वया भेषजमुत्तमम्। दृष्टस्य विपदायै स्यादुपकार: कृतोऽपि च ॥१८९॥
इति निर्वर्तित: सोऽपि ना स्थात्तावत्क्व निष्टक:। नगमारुह्य संस्थाताऽभूच्च विज्ञानपारग: ॥१९०॥

कुछ दिन बाद अशुभ कर्म की कृपा से वैद्यवर अगदंकार का शरीरांत हो गया। वे धनमित्र और धनचन्द्र अनाथ सरीखे रह गये। राज्य की ओर से जो आजीविका बँधी थी राजा ने उसे भी उन्हें मूर्ख जान छीन ली। इसलिए उन दोनों भाइयों को और भी अधिक दु:ख हुआ एवं अतिशय मिथ्या अभिमानी किन्तु अतिशय दु:खित वे दोनों भाई कुछ विद्या सीखने के लिए चम्पापुरी की ओर चल दिये।

उस समय चम्पापुरी में कोई शिवभूति नाम का ब्राह्मण निवास करता था। शिवभूति वैद्य विद्या का अच्छा ज्ञाता था इसलिए वे दोनों भाई उसके पास गये एवं कुछ काल वैद्यक शास्त्रों का भली प्रकार अभ्यास कर वे भी वैद्य विद्या के उत्तम जानकार बन गये ॥१८४-१८५॥

जब उन्होंने देखा कि हम अच्छे विद्वान् बन गए तो उन दोनों ने अपनी जन्म-भूमि बनारस आने का विचार किया एवं प्रतिज्ञानुसार वे वहाँ से चल भी दिये। मार्ग में वे आनन्दपूर्वक आ रहे थे अचानक ही उनकी दृष्टि एक व्याघ्र पर पड़ी जो व्याघ्र सर्वथा अंधा था और आँखों के न होने से अनेक क्लेश भोग रहा था।

व्याघ्र को अंधा देख धनमित्र का चित्त दया से आर्द्र हो गया। उसने शीघ्र ही अपने छोटे भाई से कहा-प्रिय धनचन्द्र! कहो तो मैं इस दीन व्याघ्र को उत्तम औषधियों के प्रताप से अभी सूझता कर दूँ ? यह विचारा आँखों के बिना बड़ा कष्ट सह रहा है। धनमित्र की ऐसी बात सुन धनचन्द्र ने कहा-नहीं भाई इसे तुम सूझता मत करो। यह स्वभाव से दुष्ट है इसके फँदे में पड़कर अपनी जान बचनी भी कठिन पड़ जायेगी। दुष्टों पर दया करने से कुछ फल नहीं मिलता।

धनमित्र का काल सिर पर छा रहा था। उसने छोटे भाई धनचन्द्र की जरा भी बात न मानी और तत्काल व्याघ्र को सूझता बनाने के लिए तत्पर हो गया। जब धनचन्द्र ने देखा कि धनमित्र मेरी बात को नहीं मानता है तो वह शीघ्र ही समीपवर्ती किसी वृक्ष पर चढ़ गया और पत्तियों से अपने को छिपाकर सब दृश्य देखने लगा। धनमित्र व्याघ्र की आँखों की दवा करने लगा औषधियों के प्रभाव से बात की बात में धनमित्र ने उसे सूझता बना दिया किन्तु दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। ज्यों ही व्याघ्र सूझता हो गया। उसने तत्काल ही धनमित्र को खा लिया और आनंद से

मूढो ज्येष्ठो व्यधात्तस्य नेत्रयोर्वरभेषजम्। तदा निवृत्तपीडोऽसौ बभूव वरभेषजात् ॥१९१॥
स एव तेन चाभोक्षि तस्य युक्तं महामुने। पतत्कृतोपकारस्य वद मां पापभाजिनः ॥१९२॥
कृतघ्न एव शार्दूलः श्रेष्ठिन्नात्र विचारणा। नोचितं तस्य चैतद्धि योगीत्यबीभणद्वचः ॥१९३॥
शुभाशुभं कृतं घ्नंति कृतघ्नास्ते महीतले। सप्तमं नरयं यांति परमर्मप्रकाशकाः ॥१९४॥
कथ्यमाना कथा श्रेष्ठिन् श्रोतव्यात्र मया त्वया। यथा ते यांति विश्वासं मानसं मानसं गतं ॥१९५॥
हस्ति हस्तहता मित्रे विचित्रे हस्तिनागके। पत्तने पृथिवीं पाति विश्वसेनो विशिष्टधीः ॥१९६॥
जायाऽस्य जितनागश्रीः संत्रस्तहरिणीदृशा। वसुकांता सुकांतांगा पूर्णचंद्रानना परा ॥१९७॥
तयोरभूत्सुतः सात निमग्ननिजमानसः। वसुवृद्धिकरो वीरो वसुदत्ताभिधोऽग्रणीः ॥१९८॥
निशांतनाथया साकं भूपो भुंक्ते सुखादिकम्। एकदा सार्थवाहेन केनचिद्भक्तिसिद्धये ॥१९९॥
भूपतेः प्राभृतं चक्रे रसालफलबीजकं। वीक्ष्य भूपोऽगदीद्वाक्यं किमेतत्प्राभृतं वद ॥२००॥
आम्रादौ यांति सद्रोगान्पलितत्वं नराधिप। इति तस्य वचः श्रुत्वा तुतोष धरिणीपतिः ॥२०१॥

जहाँ-तहाँ घूमने लगा। इसलिए हे प्रभो मुने! क्या व्याघ्र को यह उचित था जो कि वह अपने परमोपकारी दुःख दूर करने वाले धनमित्र को खा गया ? कृपया आप मुझे कहें ? सेठ जिनदत्त के मुख से ऐसी कथा सुन मुनिराज ने कहा-जिनदत्त! व्याघ्र बड़ा कृतघ्नी निकला निःसन्देह उसने परमोपकारी धनमित्र के साथ अनुचित वर्ताव किया। तुम निश्चय समझो जो मनुष्यकृत उपकार का ख्याल नहीं करते वे घोर पापी समझे जाते हैं संसार में उन्हें नरक आदि दुर्गतियों के फल भोगने पड़ते हैं। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका। अब तुम मेरी कथा सुनो जिससे संशय दूर हो ॥१८६-१९५॥

इसी जंबूद्वीप में एक हस्तिनापुर नाम का एक विशाल नगर है किसी समय हस्तिनापुर का स्वामी अतिशय बुद्धिमान् विश्वसेन राजा था। विश्वसेन की प्रिय भार्या रानी वसुकांता थी। वसुकांता अतिशय मनोहरा चन्द्रवदना मृगनयनी कृशांगी एवं पूर्ण चन्द्रानना थी। राजा विश्वसेन की रानी वसुकांता से उत्पन्न एक पुत्र जो कि शुभ लक्षणों का धारक सदा, धन वृद्धि का इच्छुक, वीर एवं सर्वोत्कृष्ट वसुदत्त था। राजा विश्वसेन ने वसुदत्त को योग्य समझ राज्य भार उसे ही दे दिया था। आनन्दपूर्वक भोग भोगते वे अपने अन्तःपुर में रहते थे।

कदाचित् वे आनंद में बैठे थे उस समय कोई एक सार्थवाह मनुष्य उनके पास आया। उसने भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया एवं अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए एक आम की गुठली उनको भेंट की। राजा विश्वसेन ने गुठली तो ले ली किन्तु वे उसकी परीक्षा न कर सके इसलिए उन्होंने शीघ्र ही सार्थवाह से पूछा-कहो भाई यह क्या चीज है मैं इसको पहचान न सका। राजा के ऐसे वचन सुन सार्थवाह ने कहा-कृपानाथ! समस्त रोगों के नाश करने वाले आम्र फल का यह बीज है। इस देश में यह फल होता नहीं इसलिए यह अपूर्व पदार्थ जान मैंने आपकी सेवा में आकर भेंट किया है।

मोहतो वसुकांतायै ददाविति व्यचिंतयत्। मया निर्व्याधिना किं वै विना राज्ञ्या च जीवितं ॥२०२॥
महिष्येति वितर्क्याशु मया किं जीव्यमानया। भवितव्यः स्थिरः पुत्रो राज्यभारोद्धरक्षमः ॥२०३॥
ततस्तस्मै प्रदत्तं तत्तेनापि पितृमोहतः। दत्तं पित्रे तदापृष्टं पित्रे तत्किमु भो सुत ॥२०४॥
कुतः समागतं चेति श्रुत्वा वृत्तांतमंजसा। आचख्यौ स नृपस्याग्रे तदाभूद्विस्मितोनृपः ॥२०५॥
स्त्रीषु पुत्रेषु दुर्लङ्घ्यं दधत्स्नेहं विभेदितं। उपकारकृते राजा बीजवृद्धौ मतिं दधौ ॥२०६॥
वनपालाय दक्षाय तद्बीजं च समर्पितम्। तेनोप्तं यत्नतो वेगात्पालयतांबुसेवनैः ॥२०७॥
सांद्रच्छायः क्रमेणासीत्सफलः पल्लवान्वितः।
स वृक्षः सर्वशोभाढ्यः कालात्किं किं न जायते ॥२०८॥
खे गृध्रे सर्पमास्ये च गृहीत्वा सति गच्छति। फलस्योपरि सद्बिंदु विषस्य पतितं तदा ॥२०९॥
ततस्तदूष्मणा पक्वं फलमेकं मनोहरम्। वीक्ष्य तद्रक्षकस्तूर्णमादाय प्रीतिपूर्वकम् ॥२१०॥
ददौ भूपाय संवीक्ष्य सोऽपि तस्मै ददौ धनं। तत्फलं युवराजायादनाय स वितीर्णवान् ॥२११॥
चर्वणात्सोऽपि तद्भूमौ विषव्याप्तस्वविग्रहः। तदा तं तादृशं वीक्ष्य वृक्षोपरि चुकोप सः ॥२१२॥

सार्थवाह के ऐसे विनय वचनों से राजा विश्वसेन अति प्रसन्न हुए। उनका प्रेम रानी वसुकांता में अधिक था इसलिए उन्होंने यह समझ कि बिना रानी के मेरा नीरोगी होना किस काम का ? चट रानी को बीज दे दिया। रानी का प्रेम पुत्र वसुदत्त पर अधिक था इसलिए उसने उठा वसुदत्त को दे दिया। जब वह आम का बीज वसुदत्त के हाथ में आया तो वे उसे जान न सके और उनका प्रेम पिता पर अधिक था इसलिए उन्होंने शीघ्र ही वह बीज पिता को दे दिया और विनय से यह प्रार्थना की कि पूज्य पिता! यह क्या चीज है कृपाकर मुझे बताएँ ? वसुदत्त के ऐसे वचन सुन राजा विश्वसेन ने कहा–प्यारे पुत्र! अमृतफल आम पैदा करने वाला यह आम का बीज है। इससे जो फल उत्पन्न होता है उससे समस्त रोग शान्त हो जाते हैं। यह फल हमें सार्थवाह ने भेंट किया है तथा ऐसा कहते–कहते उन्होंने शीघ्र ही किसी चतुर माली को बुलाया और स्त्री–पुत्र आदि के नीरोगपने की आशा से किसी उत्तम क्षेत्र में बोने के लिए उसे शीघ्र ही आज्ञा दे दी।

राजा की आज्ञानुसार माली ने उसे किसी उत्तम क्षेत्र में बो दिया। प्रतिदिन स्वच्छ जल सींचना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद माली का परिश्रम सफल हो गया। वह वृक्ष उत्तमोत्तम फलों से लदबदा गया एवं वह प्रतिदिन माली को आनंद देने लगा।

किसी समय एक गृद्ध पक्षी आकाश मार्ग से किसी एक जहरीले सर्प को मुख में दबाये चला आ रहा था। भाग्यवश एक फल पर सर्प की विष बूँद गिर गई। विष की गर्मी से वह फल भी जल्दी पक गया। माली ने आनंदित हो फल तोड़ लिया और उसे राजा की सभा में जाकर भेंट कर दिया। राजा विश्वसेन को फल देख परमानंद हुआ। उन्होंने माली को उचित पारितोषिक दे सन्तुष्ट किया एवं अपने प्रिय पुत्र को बुलाकर उसे फल खाने की आज्ञा दे दी। आम्रफल विष–बूँद से विषमय हो चुका था इसलिए ज्यों ही कुमार ने फल खाया खाते ही उसके शरीर में विष

(समाकर्ण्य नराः केचिद् दुःखजराविपीडिताः। तत्फलानि अदत्तानि बभूवुस्ते नवयौवनाः)
तदा तं खंडयामास शाखिनं फलशालिनं। सपप्रच्छ तदा वैद्यं तज्जीवनकृते लघु॥२१३॥
विषजां विक्रियां मत्वानीय तत्फलमुल्वणं। तस्मिन्दत्ते सुखी सोऽभून्निर्मुक्त विषविग्रहः॥२१४॥
पश्चात्तापहतो राजा पुनर्दुःखं दधौ हृदि। अपरीक्ष्य मया चैतत्कृतं किं मूढचेतसा॥२१५॥
अपरीक्ष्य च ये मूढा प्रप्लोषंति शुभाशुभं। त एव निधनं नूनं समायांति विमानसा॥२१६॥
युक्तमेतन्न वा श्रेष्ठिन् राज्ञोऽन्यस्य च दूषणे। अन्यस्य खंडनं च स्म ब्रूते नो युक्तमेव सः॥२१७॥
शृणु स्वामिन्कथामेकां त्वत्तोषशुभदायिनीं। जाह्नवी तटसंवासी विश्वभूत्याख्यतापसः॥२१८॥
एकदा जाह्नवीपूरे वहंतं लघुदंतिनम्। कृपार्द्रमनसा वीक्ष्य समाकार्षीच्च तापसः॥२१९॥
फलादि निद्यसैस्तं चापोषयत्शुभलक्षणं। ववृधेऽनेकपः कालाच्चारुचिह्नः सुदंतभाक्॥२२०॥
कदाचितं समालोक्य चारुचिह्नं समग्रहीत्। इच्छास्वमंदिरं भूभृत्पुपोषांकुशमादिशत्॥२२१॥

फैल गया। बातोंबात में वह मूर्छित हो जमीन पर गिर गया और उसकी चेतना एक ओर किनारा कर गई। अपने इकलौते और प्रिय पुत्र वसुदत्त की यह दशा देख राजा विश्वसेन बेहोश हो गये उन्होंने वह सब कार्य आम फल का जान तत्काल उसे कटवाने की आज्ञा दे दी एवं पुत्र की रक्षार्थ शीघ्र ही राज वैद्य को बुलाया।

राजवैद्य ने कुमार की नाड़ी देखी। नाड़ी में उसे विष-विकार जान पड़ा इसलिए उसने शीघ्र ही उसी आम्र फल का एक फल मँगाया और कुमार को खिलाकर तत्काल निर्विष कर दिया। राजा विश्वसेन ने जब आम्र फल का यह माहात्म्य देखा तो उन्हें बड़ा शोक हुआ वे अपने उस अविचारित कार्य के लिए बार-बार पश्चाताप (पछतावा) करने लगे और अपनी मूर्खता के लिए सहस्र बार धिक्कार देने लगे।

हे जिनदत्त! यह तुम निश्चय समझो जो हतबुद्धि मनुष्य बिना विचारे काम करते हैं उन्हें बाद में पछताना होता है। बिना समझे काम करने वाले मनुष्य निंदाभाजन बन जाते हैं। अब तुम्हीं इस बात को कहो राजा ने जो वह आम बिना विचारे कटवा दिया था वह काम क्या उसका योग्य था? मुझसे यह कथा सुन जिनदत्त ने कहा-नाथ! राजा का वह कार्य सर्वथा बेसमझ था। मैं आपको एक दूसरी कथा सुनाता हूँ आप ध्यानपूर्वक सुनें॥१९६-२१७॥

किसी समय किसी गंगा किनारे एक विश्वभूति नाम का तपस्वी रहता था। कदाचित् एक हाथी का बच्चा नदी के प्रवाह में बहा चला जा रहा था। तपस्वी की अचानक ही उस पर दृष्टि पड़ गई। दयावश उसने शीघ्र ही उस हाथी के बच्चे को पकड़ लिया। वह बच्चा शुभ लक्षण युक्त था इसलिए वह तपस्वी उत्तमोत्तम फल आदि खिलाकर उसका पोषण करने लगा और चन्द रोज में ही वह बच्चा एक विशाल हाथी बन गया।

कदाचित् किसी राजा की दृष्टि उस हाथी पर पड़ी उसे शुभ लक्षण-युक्त देख राजा ने उसे खरीद लिया और अपने महल में ले जाकर सिखाने के लिए किसी महावत के सुपुर्द कर दिया।

सोंऽकुशोत्थं व्रणं तावदसहिष्णुर्भयातुरः। पलाय्य तापसा वासं तापसैर्वारतो गतः ॥२२२॥
वारयंस्तापसो यावद् गजोऽपि तममीमरत्। नाथ तत्तस्य युक्तं वा न वा भवति मां वद ॥२२३॥
अबीभणन्मुनिर्वाचः श्रेष्ठिन्सुकृतहिंसकः। सत्कृतं यो न जानाति भविताऽशर्मभाजनं ॥२२४॥
उपकारक हंतार एकतो वधकारकाः। प्रोच्यंते ते समानान मेरुसर्षपवद् बुधैः ॥२२५॥
आख्यानकं मया कथ्यमानं शृणु वणिग्वर। चंपापुरी प्रसिद्धार्था स्वः पुरीव सुशोभना ॥२२६॥
पण्यस्त्री देवदत्ताख्या रूपादिमदमोदिनी। तत्रास्ते सा कदाचिच्च शुकमेकमपोषयत् ॥२२७॥
एकदा रविवारे सा निधाय वर्त्तके सुराम्। मध्ये धामं प्रविष्टा च पक्व मालूरसुस्तनी ॥२२८॥
तदा काचित्प्रक्रुद्धांतः कन्यैत्य गरलं लघु। विक्षिप्य सा तिरोजाता तद्दृष्टं शुकपक्षिणा ॥२२९॥
देवदत्ता समागत्य ततस्तं तदऽजान ही ? यावत्पास्यति तद्भीत्या न पीत्सति कथंचन ॥२३०॥

राजा की आज्ञानुसार महावत उसे सिखाने लगा। जब वह सीखने में टालमटोल करता था तब महावत उसे मार-मार कर अंकुश से वश में करता था।

इस प्रकार कुछ समय तो वह हाथी वहाँ रहा। जब उसे अंकुश बहुत दुःख देने लगा तो वह भागकर गंगा के किनारे उसी तपस्वी के पास आ गया। ज्योंही तपस्वी ने उसे देखा तो उसने भी उसे नहीं रखा मार-पीटकर वहाँ से भगा दिया। तपस्वी का ऐसा बर्ताव देख हाथी को क्रोध आ गया एवं उस दुष्ट ने उस उपकारी तपस्वी को तत्काल चीरकर मार दिया। कृपानाथ! अब आप ही कहें परमोपकारी उस तपस्वी के साथ क्या हाथी का वह बर्ताव योग्य था ? मैंने कहा- जिनदत्त! वह हाथी बड़ा दुष्ट था। दुष्ट ने जरा भी अपने उपकारी की दया न की।

देखो जो मनुष्य दूसरे के उपकार को भूल जाते हैं उन्हें अनेक वेदना सहनी पड़ती हैं। नरकादि गतियाँ उनके लिए सदा तैयार रहती हैं एवं बुद्धिमान् लोग स्वभाव से हिंसक और उपकारी के हिंसक में उतना ही भेद मानते हैं जितना राई और पर्वत में मानते हैं। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका। मैं भी एक दूसरी कथा कहता हूँ तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो-

इस पृथ्वी पर एक चम्पापुरी नाम की सर्वोत्तम नगरी है। किसी समय कुबेरपुरी के तुल्य उस चम्पापुरी में एक देवदत्ता नाम की वेश्या रहती थी। देवदत्ता अतिशय सुन्दरी थी यदि उसके लिए देवांगना कह दिया जाता तो भी उसके लिए कम था। उसके पास एक पालतू तोता था वह उसे अपने प्राणों से भी प्यारा समझती थी।

कदाचित् रविवार के दिन तोते के लिए प्याले में शराब रखकर वह तो किसी कार्यवश भीतर चली गई और इतने में ही एक लड़की वहाँ आई उसने उस शराब में विष डाल दिया और शीघ्र वहाँ से चली गई। देवदत्ता को इस बात का पता नहीं लगा वह अपने सीधे स्वभाव से बाहर आई और तोता को शराब पिलाने लगी। किन्तु तोता वह सब दृश्य देख रहा था इसलिए अनेक बार प्रयत्न करने पर भी उसने शराब में चोंच तक न डाली वह चुपचाप बैठा रहा। देवदत्ता जबरन उसे शराब पिलाने लगी तो भी उसने न पिया। देवदत्ता जब और जबरन पिलाने लगी तो

पायितं च तया तावद्दृष्टांतोद्भूतसाध्वसात्। शुकोऽकिरत्तदा दुष्टा कोपाच्च तममीरत् ॥२३१॥
तदा श्वनः समागत्य लिह्यमानो मुहुर्मुहुः। पतद्भूमौ तया वीक्ष्य पश्चात्तापहता च सा ॥२३२॥
उरजेत्थमिदं युक्तमविचार्यं विधातु मा। तस्याभवेन्न वासोपि जगौ नोयुक्तमेव च ॥२३३॥
मज्जं कथानकं नाथ श्रोतव्यं श्रुतितोषदम्। वाराणस्यां प्रसिद्धायां जांबूनदसुधामनि ॥२३४॥
वसुदत्ताभिधो वैश्यो धनेभ्यो वसति स्फुटं। स्वर्णमुक्ताफलादीनां व्यवहारी च तंदुलः ॥२३५॥
वसुदत्ताभिधा जाया तस्य चित्तापहारिणी। एकदा चापणे नीत्वा लाभं संहृत्य सोद्यतः ॥२३६॥
क्षपायां सर्वमादाय गृहं पित्सति वैश्यकः। तावद्दस्युः पलाय्याशु श्रेष्ठिनः शरणं ययौ ॥२३७॥
रक्ष रक्षेति मां नाथमार्यमाणं कृपार्द्रधीः। इति वाचालमावीक्ष्य वस्त्रेण पिहितस्तकैः ॥२३८॥
धावंतः कोट्टपालाश्च पप्रच्छुः श्रेष्ठिनं प्रति। स्थूलोन्नतोदरं मन्यमानाश्चौराद्यवर्त्तनं ॥२३९॥
पिचंडिलं समावीक्ष्य परावर्त्य च ते गतः। तत्र क्रमेण तद्वित्तं गृहीत्वा तस्करो गतः ॥२४०॥

वह चिल्लाने लगा इसलिए देवदत्ता को क्रोध आ गया और उसने उसे तत्काल मारकर फेंक दिया। उसी समय एक कुत्ता ने आकर उस विष मिश्रित शराब में मुँह डाला और बार-बार पीने लगा फिर क्या था ? उस विष मिश्रित शराब के नशे से वह कुत्ता शीघ्र ही जमीन पर गिर गया, यह देख देवदत्ता बहुत पछताई ॥२१८-२३२॥

अब हे जिनदत्त! तुम्हीं कहो देवदत्ता का वह अविचारित काम क्या योग्य था ? जिनदत्त ने उत्तर दिया नाथ! यदि देवदत्ता ने ऐसा काम किया तो परम मूर्खा समझनी चाहिए। मैं अब आपको तीसरी कथा सुनाता हूँ कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

इसी लोक में एक अतिशय मनोहर एवं प्रसिद्ध बनारस नाम की नगरी है। किसी समय बनारस में कोई वसुदत्त नाम का सेठ निवास करता था। वसुदत्त उत्तम दर्जे का व्यापारी धनी था सुवर्ण निर्मित मकान में रहता था और बड़ा तुंदिल (बड़ी थोंदि का धारक) था। वसुदत्त की प्रिय भार्या का नाम वसुदत्ता था। वसुदत्ता बड़ी चतुर थी। विनयादि गुणों से अपने पति को संतुष्ट करने वाली थी और मनोहरा थी। कदाचित् उसी नगरी में एक चोर किसी के घर में चोरी के लिए गया। उस समय उस घर के मनुष्य जग रहे थे इसलिए चोर को उन्होंने देख लिया। देखते ही चोर भागा। भागते समय उसके पीछे बहुत-से मनुष्य थे इसलिए घबराकर वह सेठ वसुदत्त के घर में घुस गया और वसुदत्त से इस प्रकार विनय वचन कहने लगा-

कृपानाथ! मुझे बचाइये मैं मरा। चोर के ऐसे वचन सुन वसुदत्त को दया आ गई। उसने चोर को शीघ्र ही अपने कपड़ों में छिपा लिया। कोतवाल आदि सेठजी के पास आये। सेठजी से चोर के बाबत पूछा भी तो भी सेठजी ने कुछ जबाब न दिया। जहाँ-तहाँ सभी ने चोर देखा कहीं दिखाई नहीं दिया किन्तु सेठजी की बड़ी थोंदि के नीचे ही वह छिपा रहा। इसलिए वे सबके सब वापस लौट गये। जब विघ्न शांत हो गया तब चोर को जाने की आज्ञा दे दी तथा यह समझ कि चोर चला गया। वे अपने किवाड़ बंद कर सो गये किन्तु वह दुष्ट उसी घर में छिप गया और दाव

दधौ चित्ते वणिग्नाथः किमनिष्टं मया कृतं। अस्यानेनेति किं कृतं यः खलः खल एव सः ॥२४१॥
योगिन्युक्तं न वा तस्यै तत्तदा वचनं जगौ। मुनिर्विश्वासघाती स चौरो नारकमार्गगः ॥२४२॥
मन्मुखोद्गीर्णमेकं च व्याख्यानं शृणु तोषदं। अनंगरंगसंसर्गो वंगदेशोऽत्र वर्त्तते ॥२४३॥
जाती सुकंदपंकेज केतकीचंपकादिभिः। भृता चंपापुरी तत्र चंपकाभनरैर्भृता ॥२४४॥
विप्रो वेदादिसंवेत्ता सोमशर्माभिधो धनी। आस्तां द्वे वल्लभे तस्य सोमिल्लासोमशर्मिका ॥२४५॥
सौमिल्यायाः सुभामिन्याः पराक्रारः सुतोऽजनि। तदा भर्त्रादि सन्मानं संगता सा सुसंगता ॥२४६॥
विद्वेषयति सोमश्रीर्द्वितीया तां सपत्निकाम्। मर्मभिद्वचनैर्हास्यै कलहैः कोपभाषणैः ॥२४७॥
अथास्ति सौरभेयश्वभद्रनामा सुशीलभृत्। शांतस्तत्र ततस्तस्मै दत्ते ग्रासं जनोऽखिलः ॥२४८॥

पाकर मालमत्ता लेकर चला गया। प्रातःकाल सेठ वसुदत्त की आँख खुली। अपनी चोरी देख उन्हें परम दुःख हुआ। वे कहने लगे मैंने तो उस दुष्ट चोर की रक्षा की थी किन्तु उस दुष्ट ने मेरे साथ भी यह दुष्टता की। यह बात ठीक है दुष्ट अपनी दुष्टता कदापि नहीं छोड़ते तथा ऐसा कुछ समय सोच-विचार कर वे शान्त हो गये। इसलिए हे मुनिनाथ! आप ही कहें क्या उस चोर का सेठ सुभद्रदत्त के साथ वैसा बर्ताव ठीक था ? मैंने उत्तर दिया।

सर्वथा अनुचित। उसने सेठ वसुदत्त के साथ बड़ा विश्वासघात किया। वह चोर बड़ा पापी और कुमार्गी था। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। अब मैं भी तुम्हें कथा सुनाता हूँ मुझे विश्वास है अबकी कथा से तुम्हें जरूर सन्तोष होगा तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥२३३-२४२॥

इसी लोक में कामदेव का रंग स्थल अतिशय मनोहर एक बंग देश है। बंग देश में एक चंपापुरी नाम की नगरी है। चंपापुरी में जातीय, मुकुंद, केतकी, चंपा आदि के वृक्ष सदा हरे-भरे फले-फूले रहते हैं और सदा उत्तम मनुष्य निवास करते हैं। चंपापुरी में एक ब्राह्मण, जो कि भले प्रकार वेद-वेदांग का पाठी और धनी सोमशर्मा था। सोमशर्मा की अतिशय रूपवती दो स्त्रियाँ थीं प्रथम स्त्री सोमिल्ला और दूसरी का नाम सोमशर्मिका था। भाग्योदय से सुन्दरी सोमिल्ला के एक अतिशय रूपवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। सोमिल्ला को पुत्रवती देख सोमशर्मा उस पर अधिक प्रेम करने लगा और सोमशर्मिका की ओर से उसका प्रेम कुछ हटने लगा। स्त्रियाँ स्वभाव से ही ईर्ष्या-द्वेष की खान होती हैं यदि उनको कुछ कारण मिल जाये तब तो ईर्ष्या-द्वेष करने में वे जरा भी नहीं चूकती ज्यों ही सोमशर्मिका को यह पता लगा कि मेरा पति मुझ पर प्रेम नहीं करता सोमिल्ला को अधिक चाहता है मारे क्रोध के वह भभक उठी। वह उसी दिन से सोमिल्ला से मर्मभेदी वचन कहने लगी। हँसी उड़ाना और कलह करना भी प्रारम्भ कर दिया यहाँ तक कि सोमिल्ला के अहित करने में भी वह न डरने लगी।

उसी नगरी में एक भद्र नाम का बैल रहता था। भद्र सुशील और शांत प्रकृति का धारक था इसलिए समस्त नगर निवासी उस पर बड़ा प्रेम करते थे। कदाचित् भद्र (बैल) ब्राह्मण सोमशर्मा के दरवाजे पर खड़ा था ब्राह्मणी सोमशर्मिका की उस पर दृष्टि पड़ी उसने शीघ्र ही अपनी सौत

वाडवस्य गृहद्वार युपविष्टस्य तस्य च। श्रृंगे स बालकः प्रीतो दुष्टया सोमशर्मया ॥२४९॥
तदा चीत्कारमाकुर्वन् शिशुर्मम्रे क्षणान्तिरे। प्रोतबालं च मरणे सति वृषभं दोषवर्जितं ॥२५०॥
सदोषमिति तं मत्वा तदा प्रभृति सज्जनाः। तस्मै तृणादि सद्ग्रासं ददते न कदाचनं ॥२५१॥
ततो निर्घाट्यमानः स सचिंतः क्षीणविग्रहः। सहिष्णु रकृतं दोषं हृदीति समतर्कयत् ॥२५२॥
अहो! दुर्लक्ष्यमेकं च स्त्रीचरित्रं विचित्रगं। देवानां योगिनां लोकेऽन्येषां नृणां कथं न हि ॥२५३॥
कुर्वते योषितो नूनं कृतास्याकृतमेव च। उक्तं चानुक्तमेवात्र तच्च ते पापपंडिताः ॥२५४॥
वादयंति नरं चान्यं वदंत्यन्यं स्वयं मुखे। ईक्षंतेऽन्यं विकुर्वंति विक्रियां कामलक्षितां ॥२५५॥
आकारयंति चान्यं चा शिलष्यंत्यन्यं कटाक्षतः। घातयंतेऽन्यमानिद्राः करोत्क्षेपं विकुर्वते ॥२५६॥
अटंत्यन्यत्र दृश्यंतेऽन्यत्रान्यस्मै ददत्यपि। अन्यत्र याचयंते च दुर्लक्ष्या योषितो भुवि ॥२५७॥
नाम्नेयमबला लोके न तु कृत्या कदाचन। कटाक्षाक्षेपतः सर्वं चालयति चलाचलं ॥२५८॥
शीततां वह्निराप्नोति सोष्णतां पद्मबांधवः। उदेति पश्चिमे सूर्यो ब्रूते सत्यं न योषिता ॥२५९॥
मुंचंति जननीं तातं बांधवं वस्तु सद्म च। जन्मस्थानं नरा सक्ता योषितो दोषदूषिताः ॥२६०॥

सोमिल्ला का बालक ऊपर अटारी से बैल के सींग पर पटक दिया एवं सींग पर गिरते ही रोता हुआ वह बालक शीघ्र मर गया।

नगर निवासियों को बालक की इस प्रकार मृत्यु का पता लगा। वे दौड़ते-दौड़ते शीघ्र ही सोमशर्मा के यहाँ आये। बिना विचारे सभी ने बालक की मृत्यु का दोष विचारे बैल के मत्थे पर ही मढ़ दिया। जो बैल को घास आदि खिलाकर नगर निवासी उसका पालन-पोषण करते थे सो भी छोड़ दिया और मारपीट कर उसे नगर से बाहर भगा दिया जिससे वह बैल बड़ा खिन्न हुआ और बिल्कुल कमजोर हो गया तथा किसी समय अतिशय दुःखी हो वह ऐसा विचार करने लगा।

हाय!!! इन स्त्रियों के चरित्र बड़े विचित्र हैं। बड़े-बड़े देव भी जब इनका पता नहीं लगा सकते तो मनुष्य उनके चरित्र का पता लगा लें यह बात अति कठिन है। ये दुष्ट स्त्रियाँ निकृष्ट काम करके भी चट मुकर जाती हैं और मनुष्यों पर ऐसा असर डाल देती हैं मानो हमने कुछ किया ही नहीं ये मायाचारिणी महा पापिनी हैं। दूसरों द्वारा कुछ और ही कहवाती हैं और स्वयं कुछ और ही कहती हैं। ये कटाक्षपात किसी और पर फेंकती हैं इशारे किसी अन्य की ओर करती हैं और आलिंगन किसी दूसरे से ही करती हैं तथा वस्तु का वायदा तो इनका किसी दूसरे के साथ होता है और वे किसी दूसरे को बैठती हैं। कवियों ने जो इन्हें अबला कहकर पुकारा है सो ये नाम से ही अबला (शक्तिहीन) हैं काम से अबला नहीं। जिस समय ये क्रूर काम करने का बीड़ा उठा लेती हैं तो उसे तत्काल कर डालती हैं और अपने कटाक्षपातों से बड़े-बड़े वीरों को भी अपना दास बना लेती हैं। चाहे अतिशय उष्ण भी अग्नि शीतल हो जाये, शीतल भी चन्द्रमा उष्ण हो जाये, पूर्व दिशा में उदित होने वाला सूर्य भी पश्चिम दिशा में उदित हो जाये किन्तु स्त्रियाँ झूठ छोड़ कभी भी सत्य नहीं बोल सकतीं। हाय! जिस समय ये दुष्ट स्त्रियाँ पुरुष में आसक्त हो जाती

कलंकयंति सद्गोत्रं सीमंतन्यः पराङ्मुखाः। साहसंति स्वघातार्थं घातयंति परं क्षणात् ॥२६१॥
हित्वा वने गताः पूर्वं योगिनो योगपंडिताः। प्रतापदर्शिनीं तद्धि समीचीनं कृतं तर्कैः ॥२६२॥
कापट्यपात्रमैवात्रानृतवाचालपंडिताः। सदोषाः प्रत्ययतीता मदनैः कवलीकृताः ॥२६३॥
रोधनं स्वर्गमार्गस्य दर्शयंत्यश्च दुर्गतिं। ससाहसाः सदा पापाः संति बाला बलोद्धताः ॥२६४॥
इति संचिंत्यमानोऽसौ यावदास्ते वणिग्वर। जिनदत्तोऽथ तत्रास्ति जायातस्य जिने मतिः ॥२६५॥
जिनधर्मापरा चारा सुशीला सुव्रता शुभा। दानपूजन सन्मार्गरक्ता सक्ता निजे धवे ॥२६६॥
अशुभोदयतस्तस्या जनैः परनरोद्भवः। दोषो दत्तस्तदा सापि व्याकुलीभूतमानसा ॥२६७॥
आत्मशुद्धिकृते दिव्यगृहे तप्तसुफालकं। धारणार्थं स्थिता तावद्भद्रस्तत्र समाटितः ॥२६८॥

हैं उस समय अपनी प्यारी माता को छोड़ देती हैं। प्राण प्यारे पुत्र की भी परवा नहीं करतीं परम स्नेही कुटुंबीजनों का भी लिहाज नहीं करतीं। विशेष कहाँ तक कहा जाये अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ परदेश में भी रहना स्वीकार कर लेती हैं। ये नीच स्त्रियाँ अपने उत्तम कुल को भी कलंकित बना देती हैं। पति आदि से नाराज हो मरने का भी साहस कर लेती हैं और दूसरों के प्राण लेने में भी जरा नहीं चूकती। अहा!!! जिन योगीश्वरों ने स्त्रियों की वास्तविक दशा विचार कर उनसे सर्वथा के लिए सम्बन्ध छोड़ दिया है। स्त्रियों की बात भी जिनके लिए हलाहल विष है वे योगीश्वर धन्य हैं और वास्तविक आत्मस्वरूप के जानकार हैं। हाय!!! ये स्त्रियाँ छल-कपट दगाबाजी की खान हैं। विश्वास के अयोग्य हैं। चारों ओर इनके शरीर में कामदेव व्याप्त रहता है। मोक्ष द्वार के रोकने में ये अर्गला (बाधा) हैं। स्वर्ग-मार्ग को भी रोकने वाली हैं। नरकादि गतियों में ले जाने वाली हैं दुष्कर्म करने में बड़ी साहसी हैं इत्यादि अपने मन में संकल्प-विकल्प करता-करता वह भद्र नाम का बैल वहीं रहने लगा ॥२४३-२६४॥

उसी नगरी में कोई जिनदत्त नाम का सेठ निवास करता था जिनदत्त समस्त वणिकों का सरदार और धर्मात्मा था। जिनदत्त की प्रिय भार्या सेठानी जिनमती थी। जिनमती परम धर्मात्मा थी। शीलादि उत्तमोत्तम गुणों की भंडार थी और अति रूपवती थी। पति भक्ता एवं दान आदि उत्तमोत्तम कार्यों में अपना चित्त लगाने वाली थी।

सेठ जिनदत्त और जिनमती आनन्द से रहते थे। अचानक ही जिनमती के अशुभ कर्म का उदय प्रकट हो गया। उस बिचारी को लोग कहने लगे कि यह व्यभिचारिणी है। निरन्तर पर पुरुषों के यहाँ गमन करती है इसलिए वह मन में अतिशय दुःखित होने लगी। उसे अति दुःखी देख कई एक पुरुष उसके यहाँ आये और कहने लगे जिनमती! यदि तुझे इस बात का विश्वास है कि मैं व्यभिचारिणी नहीं हूँ तो तू एक काम कर तपा हुआ लोहे का पिंड अपने हाथ पर रख। यदि तू व्यभिचारिणी होगी तो तू जल जायेगी नहीं तो नहीं। नगर निवासियों की बात जिनमती ने मान ली। किसी दिन वह सर्वजनों के सामने अपने हाथ में तपा हुआ लोहे का पिंड लेना ही चाहती थी कि अचानक ही वह भद्र नाम का बैल भी वहाँ आ गया। वह सब समाचार पहले से ही सुन

तप्ताय: पिंडमाकृष्य दंतैर्जग्राह भद्रकः। स्वशुद्धिं दर्शयल्लोकान् शुद्धोऽभूद्बुद्धमानसः ॥२६९॥
तदा लोकैर्विशुद्धात्मा विज्ञायि सविशेषतः। पुनर्जयारवं चक्रुः सर्वे निश्चितमानसाः ॥२७०॥
सापि शुद्धा पुनर्जज्ञे तप्तायः फलसंग्रहात्। अन्यस्य दूषणेऽन्यस्य दोषो नोयुक्त एव भोः ॥२७१॥
अविचार्य प्रदोषादिदानं युक्तं न वा वणिक्। सोऽवादीन्नैव नाथेत्थं युक्तं च विपरीक्षितं ॥२७२॥
वृत्तांतं कथ्यमानं भो श्रोतव्यं च मया त्वया। पुरे पद्मरथे राजा वसुपालाभिधोऽग्रणीः ॥२७३॥
अयोध्याधिपतेर्विप्रो जितशत्रोश्च संनिधि। राजकार्यकृते कश्चित्प्रेषितस्तेन सत्वरं ॥२७४॥
सत्पृथिव्यामटन् विप्रो पश्यन्मानुषसंभवम्। शाखामृगादिचीत्कारं कर्णयन्कर्णभीतिदं ॥२७५॥
कदाचिच्छ्रम संक्रांतः सलिलाऽभावतो द्विजः। पिपासापीडितो वृक्षतले संपतितोऽसुखी ॥२७६॥

चुका था इसलिए आते ही उसने तप्त लोहे का पिंड अपने दाँतों में दबा लिया। बहुत काल मुख में रखने पर वह जरा भी न जला एवं सभी को प्रकट रीति से यह बात बतला दी कि ब्राह्मण सोमशर्मा का बालक मैंने नहीं मारा। मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।

भद्रक की यह चेष्टा देख नगर निवासी मनुष्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुछ दिन पहले जो वे बिना विचारे भद्रक को दोषी मान चुके थे वही भद्रक अब उनकी दृष्टि में निर्दोष बन गया। अब वे भद्रक की बार-बार तारीफ करने लगे। उनके मुख से उस समय जय जयकार शब्द निकले तथा जिस प्रकार भद्रक ने उस प्रकार का काम कर अपनी निर्दोषता का परिचय दिया था। जिनमती ने भी उसी प्रकार दिया बेधड़क उसने तप्त पिंड को अपनी हथेली पर रख लिया जब उसका हाथ न जला तो उसने भी यह प्रकट रीति से बतला दिया कि मैं व्यभिचारिणी नहीं हूँ। मैंने आज तक पर-पुरुष का मुँह नहीं देखा है। मैं अपने पति की सेवा में ही सदा उद्धत रहती हूँ और उसी को देव समझती हूँ। जिससे सब लोग उसकी मुक्त कंठ से तारीफ करने लगे और उसकी आत्मा को भी शांति मिली इसलिए जिनदत्त! तुम्हीं बताओ भद्रक और जिनमती पर जो दोषारोपण किया गया था वह सत्य था या असत्य ? जिनदत्त ने कहा-कृपानाथ! वह दोषारोपण सर्वथा अनुचित था। बिना विचारे किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए जो लोग ऐसा काम करते हैं वे नराधम समझे जाते हैं। दीनबन्धो! मैं आपकी कथा सुन चुका अब आप कृपया मेरी भी कथा सुनें ॥२६५-२७२॥

इसी लोक में एक पद्मरथ नाम का नगर है। किस समय पद्मरथ नगर में राजा वसुपाल राज्य करता था। कदाचित् राजा वसुपाल को अयोध्या के राजा जितशत्रु से कुछ काम पड़ गया इसलिए उसने शीघ्र ही एक चतुर ब्राह्मण उसके समीप भेज दिया। ब्राह्मण राजा की आज्ञानुसार चला। चलते-चलते वह किसी अटवी में जा निकला वह अटवी बड़ी भयावह थी। अनेक क्रूर जीवों से व्याप्त थी। कहीं पर वहाँ पानी भी नजर नहीं आता था। चलते-चलते वह भी थक चुका था। प्यास से भी अधिक व्याकुल हो चुका था इसलिए प्यास से व्याकुल हो वह उसी अटवी में

तद्भावं च परिज्ञाय कीशनाथेन दर्शितम्। जलं प्रविपुलं दृष्टं इति विप्रो व्यतर्कयत् ॥२७७॥
महारण्य नराऽगम्ये स्याज्जलं सः संतोषभरः। न वेद्माति विधिं मत्वाऽमीमरद्वानरं द्विजः ॥२७८॥
तस्याजिनस्य संकृत्य खल्लिकां पापकोविदः। प्रपूर्य वारिभिर्वेगात्समनैषीन्महीसुर ॥२७९॥
पंचत्वकरणं तस्य युक्तं नो वाऽथवा मुने। इत्युदीर्य विरक्तेऽसौ मुनिः प्राख्यद्वचो वरं ॥२८०॥
अधमेष्वधमत्वं च शठेषु शठता वणिक्। सर्वपापिषु पापित्वं सर्वनीचेषु नीचता ॥२८१॥
विश्वासघातजं वै नो द्वितीयं तद्विघातजं। तस्य नारकसंदायि व्यपायफलभाजिनः ॥२८२॥
चिच्चमत्कार चातुर्यं वृत्तांतंशृणु मद्गिरा। कोशांबी नगरी भाति मारोद्दीपितविभ्रमा ॥२८३॥
सोमशर्माभिधस्तत्र वाडवस्तस्य भामिनी। कपिला च कपित्थाभस्तनौ मारार्त्तविग्रहा ॥२८४॥
अटन्वनं कदाचित्सोऽपश्यन्नकुलबालकं। समादाय गृहं चागात्प्रफुल्लवदनेक्षणः ॥२८५॥
कपिलाया अपुत्रायाः कालनिर्गमनाय सः। समर्पितस्तकेनाशु गृहीतश्च तया पुनः ॥२८६॥
संज्ञा च व्यवहारं च सा शिक्षत मनोहरम्। तस्य दत्तसुनाम्नश्च पुत्र संकल्पभागिनः ॥२८७॥
सुतोऽजनि तया दैवाद्दिनैः कतिपयैः पुनः। तौ दंपती मुदं प्राप्तौ मन्यमानौ सुसंभवं ॥२८८॥

किसी वृक्ष के नीचे पड़ गया और मूर्छित-सा हो गया। भाग्यवश वहाँ एक बन्दर आया। ब्राह्मण की वैसी चेष्टा देख उसे दया आ गई वह यह समझ कि प्यास से इसकी ऐसी दशा हो रही है, शीघ्र ही उसे एक विपुल जल से भरा तालाब दिखाया और एक ओर हट गया। ज्यों ही ब्राह्मण ने विपुल जल से भरा तालाब देखा तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा वह शीघ्र उसमें उतरा अपनी प्यास बुझाई और इस प्रकार विचार करने लगा। यह अटवी विशाल अटवी है। शायद आगे इसमें पानी मिले या न मिले इसलिए यहीं से पानी ले चलना ठीक है।

मेरे पास कोई पात्र है नहीं इसलिए इस बन्दर को मारकर इसकी चमड़ी का पात्र बनाना चाहिए। बस फिर क्या था ? विचार के साथ ही उस दुष्ट ने शीघ्र ही उस परोपकारी बन्दर को मार दिया और उसकी चमड़ी में पानी भरकर अयोध्या की ओर चल दिया। कृपानाथ! अब आप ही कहें क्या उस दुष्ट ब्राह्मण का परोपकारी उस बंदर के साथ वैसा बर्ताव उचित था ?

मैंने कहा–सर्वथा अनुचित। वास्तव में वह ब्राह्मण बड़ा कृतघ्नी था। उसे कदापि उस परोपकारी बंदर के साथ वैसा बर्ताव करना उचित न था। जिनदत्त! तुम निश्चय समझो जो पापी मनुष्य किये उपकार को भूल जाते हैं संसार में उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं कोई मनुष्य उन्हें अच्छा नहीं कहता। अब मैं भी तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो–

इसी जंबूद्वीप में एक कौशांबी नाम की विशाल नगरी है। कौशांबी नगरी में कोई मनुष्य दरिद्र न था सब धनी सुखी एवं अनेक प्रकार के भोग भोगने वाले थे। उसी नगरी में किसी समय एक सोम शर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता था। उसकी स्त्री का नाम कपिला था। कपिला अतिशय सुन्दरी थी, मृगनयनी थी, काममंजरी एवं रति के समान मनोहरा थी। कदाचित् सोमशर्मा को किसी कार्यवश किसी वन में जाना पड़ा। वहाँ एक अतिशय मनोहर नेवले का बच्चा उसे

दोलके शयनं तस्य कारयित्वा शिशोः सिका। नकुलस्य समर्प्याशु बहिस्तंदुलखंडने ॥२८९॥
सा यो ग्रासं स्थिता तावद्बालकाभिमुखं परं। समाटंतमहिं वीक्ष्य नकुलस्तं युयोध च ॥२९०॥
बलात्तौ क्रुद्धमानस्कौ फूचीत्कारपरायणौ। तौ युयुध्य चिरं नागं नकुलोऽमीमरंस्ततः ॥२९१॥
श्रक् लिप्तास्यं मुदा तस्या आगत्यादर्शयत्तदा। पंचत्वं मे सुतो नीतोऽनेन सा निश्चयं व्यधात् ॥२९२॥
क्रुधा तं मुशलैः सा च व्याजघान मदोद्धता। ततो दोलास्थितं बालं विदारितभुजंगमं ॥२९३॥
गृहे वीक्ष्य शुचा क्रांता विललाप चिरं हृदि। अविचारितकर्त्तव्यं तस्यायुक्तं न वा वणिक् ॥२९४॥
अबीभणत्तदा श्रेष्ठी नोचितं सोचितं प्रभो। आख्यानकं प्रवक्ष्यामि वृद्धाख्यानप्रसिद्धितः ॥२९५॥

दीख पड़ा और तत्काल उसे पकड़ अपने घर ले आया। कपिला के कोई सन्तान न थी। बिना सन्तान के उसका दिन बड़ी कठिनता से कटता था इसलिए जब से उसके घर में वह बच्चा आ गया पुत्र के समान वह उसका पालन करने लगी और उस बच्चे से उसका दिन भी सुख से व्यतीत होने लगा। दुर्भाग्य के अन्त हो जाने पर कपिला के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र की उत्पत्ति से कपिला के आनन्द का ठिकाना न रहा। सोमशर्मा और कपिला अब अपने को परम सुखी मानने लगे और आनन्द से रहने लगे।

कपिला का पति सोमशर्मा किसान था। इसलिए किसी समय कपिला को धान काटने के लिए खेत पर जाना पड़ा। वह बच्चे को पालने में सुलाकर और उसे नेवले के सुपुर्द कर शीघ्र ही खेत को चली गई। उधर कपिला का तो खेत पर जाना हुआ और इधर एक काला सर्प बालक के पालने के पास आया। ज्यों ही नेवले की दृष्टि काले सर्प पर पड़ी वह एकदम सर्प पर टूट पड़ा और कुछ समय तक चूं-चूं फूं-फूं शब्द करते हुए घोर युद्ध होने लगा। अन्त में अपने पराक्रम से नेवले ने विजय पा ली और उस सर्पराज को तत्काल यमलोक का रास्ता बता दिया तथा वह बालक के पास बैठ गया।

कपिला अपना कार्य समाप्त कर घर आई। कपिला के पैर की आहट सुन नेवला शीघ्र ही कपिला के पास आया और कपिला के पैरों में गिर उसकी मिन्नत करने लगा। नेवले का सर्वांग उस समय लहू-लुहान (रक्तमय) था इसलिए ज्यों ही कपिला ने उसे देखा इसने अवश्य मेरे पुत्र को मारकर खाया है यह समझ मारे क्रोध के उसका शरीर भभक उठा और बिना विचारे उस दिन नेवले को मारे मूसलों के देखते-देखते यमपुर पहुँचा दिया किन्तु ज्यों ही उस बालक के पास आई और ज्यों ही उसने बालक को सकुशल देखा उसके शोक का ठिकाना न रहा। नेवले की मृत्यु से उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई और माथा धुनने लगी। जिनदत्त! कहो उस ब्राह्मणी का वह अविचारित कार्य योग्य था या अयोग्य ? मेरे ऐसे वचन सुन जिनदत्त ने कहा ॥२७३-२९४॥

कृपानाथ! ब्राह्मणी का वह काम सर्वथा अयोग्य था। बिना विचारे जो मदान्ध हो काम कर डालते हैं उन्हें पीछे बहुत पछताना पड़ता है। मैं भी पुनः आपको कथा सुनाता हूँ आप ध्यानपूर्वक

काशीदेशे शुभावेशे वाराणस्यां पुरि प्रभो। सोमशर्माभिधो विप्रः सोमा तस्यास्तिभामिनी ॥२९६॥
छद्मना निज भर्त्तारं वंचयंती विशेषतः। पतिव्रतत्वमारीच्च तन्वती पापपंडिता ॥२९७॥
विश्वासयति भर्त्तारं सा शुभाचरणैः सदा। कटाक्षाक्षेपमात्रेण रंजयंती सुलोचना ॥२९८॥
गते भर्त्तरि सद्ग्रामे तया गोपालकैः सह। यभनं कारितं पापात्पंचाक्षप्रीतिकारणम् ॥२९९॥
आगते सति सद्ग्रामे तेन दृष्ट्या तदीक्षित। विरज्य वेणुयष्टौ च स्वर्णं निक्षिप्य वाडवः ॥३००॥
गृहान्निर्गत्य यात्रार्थं चचाल दृढयष्टिकः। वटुकस्तं प्रणम्याशु मिलित्वा शिष्यतां गतः ॥३०१॥
सवित्तां तां परिज्ञाय चचाल वाडवैः सम। एकदा तौ सुषुपतुः कुंभकार गृहे निशि ॥३०२॥
प्रातः प्रागत्य सन्मार्गं कियंतं वटुकोऽब्रवीत्। अदत्तं तृणमायातं मूर्द्धवलग्नं च तद्गृहात् ॥३०३॥
हा हाऽनिष्टमिदं जातं परतृणसमाश्रयात्। तदेनोऽहं कथं विप्र तितिक्षे क्षिप्तमानसः ॥३०४॥
यस्मादागतमेतद्धि तत्र मुंचामि निश्चितं। इत्युदीर्य सरंध्रेण व्यावृतो विप्रवंचकः ॥३०५॥
एकस्मिन् पत्तने विप्रो बुभुजे जेमनं गृहे। ज्ञेयं वटुकसंभुक्त्यै रक्षयत्वरभोजनं ॥३०६॥

सुनिये।

इसी द्वीप में एक विशाल बनारस नाम की उत्तम नगरी है। किसी समय बनारस में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता था। सोमशर्मा की स्त्री का नाम सोमा था सोमा अतिशय व्यभिचारिणी थी। पति से छिपाकर वह अनेक कटु दुष्कर्म किया करती थी किन्तु अपने मिष्ट वचनों से पति को अपने दुष्कर्म का पता नहीं लगने देती थी और बनावटी सेवा आदि कार्यों से उसे सदा प्रसन्न करती रहती थी।

कदाचित् सोमशर्मा तो किसी कार्यवश बाहर चला गया और सोमा अपने यार-गोपालों को बुलाकर उनके साथ सुखपूर्वक व्यभिचार करने लगी किन्तु कार्य समाप्त कर ज्यों ही सोमशर्मा घर आया और ज्यों ही उसने सोमा को गोपालों के साथ व्यभिचार करते देखा तो उसे परम दुःख हुआ। वह एकदम घर से विरक्त हो गया एवं बाँस की लाठी में कुछ सोना छिपाकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा मार्ग में वह कुछ दूर पहुँचा था अचानक ही उसकी एक मायाचारी बालक से भेंट हो गई। बालक ने विनयपूर्वक सोमशर्मा को प्रणाम किया। उसका शिष्य बन गया एवं यह विचार कि इस सोमशर्मा के पास धन है वह सोमशर्मा के साथ चल भी दिया।

मार्ग में चलते-चलते उन दोनों को रात हो गई इसलिए वे दोनों किसी कुम्हार के घर ठहर गये वहाँ रात बिताकर सबेरे चल भी दिये। चलते समय बालक महादेव के सिर से कुम्हार का छप्पर लग गया और एक तृण उसके सिर से चिपका चला गया। वे कुछ ही दूर गए थे कि बालक ने अपना सिर टटोला उसे एक तृण दिखाई दिया तथा तृण देख वह मायाचारी बालक ब्राह्मण से इस प्रकार कहने लगा-गुरो! चलते समय कुम्हार के छप्पर का यह तृण मेरे लिपटा चला आया है। मैं इसे वहाँ पर पहुँचाना चाहता हूँ। उत्तम किन्तु कुलीन मनुष्यों को पर-द्रव्य ग्रहण करना

तस्थौ मठे महीदेव एकस्मिन्निशिवंचकः। वटुकश्चागतस्तत्र तदा विनतमस्तकः ॥३०७॥
भोक्तुं प्रस्थापितस्तेन वटुकः कृपया निशि। कियदंतरमासाद्य व्याघुट्य बटुको जगौ ॥३०८॥
कुर्कु राः शब्दवाचालाश्चर्विष्यंति च मां प्रभो। नयामीति स्थितस्तत्र पर वंचनमानसः ॥३०९॥
तदा तद्रक्षणायैव विप्रस्तस्मै ददौ च तां। स आदाय जगामेत्थं वृद्धस्तेन च वंचितः ॥३१०॥
स्वामिंस्तस्योचितं नो वा तदा प्राख्यद्यमी हसन्। न युक्तं युक्तमेकं च व्याख्यानं कथयामि वः ॥३११॥
कौशांब्यां स्वर्णशालायां गंधर्वानीकभूपतिः। तस्य वाडिधा मांगार देव नामा वसेत्सुखी ॥३१२॥
स चैकदा मुदा राजकीयं रत्नं मनोहरम्। पद्मरागसुसंस्कारकृते धाम्न्या निनाय च ॥३१३॥

महापाप है। मैं बिना दिये पर-पदार्थ-जन्य पाप को सहन नहीं कर सकता कृपाकर आप मुझे आज्ञा दें मैं शीघ्र लौटकर आता हूँ तथा ऐसा कहता-कहता चल भी दिया। ब्राह्मण ने जब देखा बटुक चला गया तो वह भी आगे किसी नगर में जाकर ठहर गया। उसने किसी ब्राह्मण के घर भोजन किया एवं उस ब्राह्मण को अपने शिष्य के लिए भोजन रख छोड़ने की भी आज्ञा दे दी।

कुछ समय पश्चात ढूँढ़ता-ढूँढ़ता वह बालक भी सोमशर्मा के पास आ पहुँचा। आते ही उसने विनय से सोमशर्मा को नमस्कार किया और सोमशर्मा की आज्ञानुसार वह भोजन करके चल दिया। वह बटुक चित्त का अति कटुक था इसलिए ज्यों ही वह थोड़ी दूर पहुँचा तत्काल उसने ब्राह्मण का धन लेने के लिए बहाना बनाया और पीछे लौटकर इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगा।

प्रभो! मार्ग में कुत्ते अधिक हैं। मुझे देखते ही वे भौंकते हैं। शायद वे मुझे काट खांय इसलिए मैं नहीं जाना चाहता फिर कभी देखा जायेगा। किन्तु वह ब्राह्मण परम दयालु था उसे उस पर दया आ गई इसलिए उसने अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी और जिसमें सोना रख छोड़ा था वह लकड़ी शीघ्र उसे दे दी और जाने के लिए प्रेरणा भी की।

बस फिर क्या था ? बालक की निगाह तो उस लकड़ी पर ही थी। संग भी वह उसी लकड़ी के लिए लगा था इसलिए ज्यों ही उसके हाथ लकड़ी आई वह हमेशा के लिए ब्राह्मण से बिदा हो गया फिर वृद्ध ब्राह्मण की ओर उसने झाँक कर भी न देखा।

कृपानाथ। आप ही कहें वृद्ध परमोपकारी उस ब्राह्मण के साथ क्या उस बालक का वह बर्ताव योग्य था ? मैंने कहा-जिनदत्त! सर्वथा अयोग्य। उस बालक को कदापि सोमशर्मा ब्राह्मण के साथ वैसा बर्ताव नहीं करना चाहिए था, अस्तु, अब मैं भी तुम्हें एक अतिशय उत्तम कथा सुनाता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥२९५-३११॥

धन-धान्य उत्तमोत्तम पदार्थों से व्याप्त इसी पृथ्वीतल में एक कौशांबी नगरी है। किसी समय उस नगरी का स्वामी राजा गंधर्वानीक था। राजा गंधर्वानीक के मणि आदि रत्नों का साफ करने वाला कोई गारदेव नाम का मनुष्य भी उसी नगरी में निवास करता था। कदाचित् वह राजमंदिर से एक पद्मराग मणि साफ करने के लिए लाया और उसे आँगन में रख वह साफ ही

तदातदालयंयोगी ज्ञानसागरनामभाक्। चर्यार्थमाजगामाशु वणिग्वर प्रतिगृहे क्षणः ॥३१४॥
प्रतिगृह्य प्रणम्याशु स्थापयामास तं गुरुम्। सत्कर्ममपश्यंस्तदा रुक्मकारो व्याकुलमानसः ॥३१५॥
मुनिं विहाय चान्येषामभावान्मणिमुत्तमं। मुनिं ययाचे क्रूरात्मा किरन्मर्मवचस्तदा ॥३१६॥
वैपरीत्यं परिज्ञाय मुनिर्योगं दधौ हृदि। एकत्वं भावयन्योगी शुद्धचिद्रूपभावुकः ॥३१७॥
यष्टिमुष्ट्यादिघातेन बबंधे रुक्मकारकः। मुनिं दुर्वाक्यवाक्येन पीडयन् विधिवंचितः ॥३१८॥
रुषा मुमोच तस्यैव काष्ठं निष्ठुरमानसः। दूरतः सखि कंठे तदस्पृशन्मणिमंडिते ॥३१९॥

करना चाहता था उसी समय कोई ज्ञानसागर नाम के मुनिराज उसके यहाँ आहारार्थ आ गये। मुनिराज को देख गारदेव ने अपना काम छोड़ दिया मुनिराज को विनयपूर्वक नमस्कार किया। प्रासुक जल से उनका चरण-प्रक्षालन किया एवं किसी उत्तम काष्ठासन पर बैठने की प्रार्थना की। प्रार्थनानुसार इधर मुनिराज तो काष्ठासन पर बैठे और उधर एक मयूर आया एवं आँख बचाकर उस पद्मराग मणि को लेकर तत्काल उड़ गया तथा मुनिराज आहार ले वन की ओर चल दिये।

मुनिराज को आहार देकर जब गारदेव को फुर्सत मिली तो उसे मणि के साफ करने की याद आई। वह चट आँगन में आया। उसे वहाँ मणि मिली नहीं इसलिए परम दुःखी हो वह इस प्रकार विचारने लगा-मेरे घर में सिवाय मुनिराज के दूसरा कोई नहीं आया यदि मणि यहाँ नहीं है तो गई कहाँ? मुनिराज ने ही मेरी मणि ली होगी और लेने वाला कोई नहीं तथा कुछ समय ऐसा संकल्प-विकल्प कर वह सीधा वन को चल दिया और मुनिराज के पास आकर मणि का तकादा करता हुआ अनेक दुर्वचन कहने लगा।

जब मुनिराज ने उसके ऐसे कटुक वचन सुने तो अपने ऊपर घोर उपसर्ग समझ वे ध्यानारूढ़ हो गये गारदेव के प्रश्नों का उन्होंने जवाब तक न दिया किन्तु मुनिराज से जवाब न पाकर मारे क्रोध के उसका शरीर भभक उठा उस दुष्ट को उस समय और कुछ न सूझी मुनिराज को ही चोर समझ वह मुक्के-घूँसे, डंडों से मारने लगा और कष्टप्रद अनेक कुवचन भी कहने लगा। इस प्रकार मार-धाड़ करने पर भी जब उसने मुनिराज से कुछ भी जवाब न पाया तो वह हताश हो अपने नगर को चल दिया। वह कुछ ही दूर गया कि उसे फिर मणि की याद आई वह फिर मदान्ध हो गया इसलिए उसने वहीं से फिर एक डंडा मुनिराज पर फेंका। दैवयोग से वह नीलकंठ भी उसी वन में मुनिराज के समीप किसी वृक्ष पर बैठा था। इसलिए जिस समय वह डंडा मुनि की ओर आया तो उसका स्पर्श नीलकंठ से भी हो गया। डंडे के लगते ही नीलकंठ भगा और जल्दी में पद्मराग मणि उसके मुँह से गिर गई।

पद्मराग मणि को इस प्रकार देख गारदेव अचंभे में पड़ गया। अब वह अपने अविचारित काम पर बार-बार घृणा करने लगा। मणि को उठा वह नगर चला गया। साफ कर उसे राजमंदिर में पहुँचा दी और संसार से सर्वथा उदासीन हो उसी वन में आया। मुनिराज के चरणकमलों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने पापों की क्षमा माँगी एवं उन्हीं के चरणों में दीक्षा धारण कर दुर्धर

उच्चचाल मुखाद्रत्नं पतितं च महीतले। विलोक्य स चकाराशु स्वनिंदां तापपीडितः ॥३२०॥
दत्वा मणिं स भूपाय निंदागर्हासमुन्मुखः। दिदीक्षे सविधौ तस्य भूमिस्पृक् पापभीतधीः ॥३२१॥
इत्थं वणिग्भवेद्युक्तं नो वा तस्याविचारितम्। अदभ्रश्वभ्रसंदायि तत्कर्माऽशर्मशायि च ॥३२२॥
स्वामिंस्तन्नोचितं तस्य प्रशस्य विधिवर्जितः। कथां सुकथ्यमानां तां वक्ष्यामीति वचो जगौ ॥३२३॥
पलासकूटसद्ग्रामे धामधामविभूषिते। सुनामनरसंकीर्णे रौद्रदत्तोऽस्ति वाडवः ॥३२४॥
अटव्यामेकदा सोऽटन्नालोक्यं द्वीपिनं परं। धावंतं सन्मुखं भीत्या रुरोह वरशाखिनं ॥३२५॥
द्वीपी सोऽस्तं लभमानोऽपि परावृत्त्य जगाम च। उत्तीर्य वाडवस्तस्माद् गच्छंस्तं वीक्ष्य सस्मितः ॥३२६॥
स्वंभादियोग्यमावेद्य समागत्य स्वमंदिरम्। आदाय परशुं गत्वा तत्र चिच्छेद शाखिनं ॥३२७॥
आत्मनो रक्षणं यस्मात्तस्य छेदः कथं प्रभो। युक्तस्तस्य भवेन्नो वा कृतघ्नः सदृशात्मनः ॥३२८॥
उवाचेत्थं वचो योगी वणिक् किल्विषभाग्भवेत्। स नारयगतिं यात्युपकारकृद्विघातनात् ॥३२९॥
नानावृद्ध विवृद्धां स कथामेकामबीभणत्। पताका तोरणोपेता परा द्वारवती पुरी ॥३३०॥

तप करने लगा। सेठ जिनदत्त! कहो! क्या उस गारदेव का बिना विचारे किया वह काम योग्य था? निश्चय समझो बिना विचारे जो काम कर डालते हैं उन्हें निस्सीम दुःख भोगने पड़ते हैं। मेरी यह कथा सुन जिनदत्त ने कहा–कृपासिंधो! गारदेव का वह काम सर्वथा निंदनीय था। अविचारित काम करने वालों की दशा ऐसी ही हुआ करती है। नाथ! मैं आपकी कथा सुन चुका कृपाकर आप भी मेरी कथा सुनें ॥३१२-३२३॥

इसी पृथ्वीतल में अनेक उत्तमोत्तम घरों से शोभित, देव-तुल्य मनुष्यों से व्याप्त, एक पलाशकूट नाम का सर्वोत्तम नगर है। किसी समय पलाशकूट नगर में कोई रौद्रदत्त नाम का ब्राह्मण निवास करता था। कदाचित् किसी कार्यवश रौद्रदत्त को एक विशाल वन में जाना पड़ा। यह वन में पहुँचा ही था कि एक गेंडा उसकी ओर टूटा। उस समय रौद्रदत्त को और तो कोई उपाय न सूझा समीप में एक विशाल वृक्ष खड़ा था उसी पर वह चढ़ गया। जिस समय गेंड़ा उस वृक्ष के पास आया तो वह शिकार का मिलना कठिन समझ वहाँ से चल दिया। अपने विघ्न को शांत देख रौद्रदत्त भी नीचे उतर गया। वह वृक्ष अति मनोहर था। उसकी हर एक लकड़ी बड़े पायेदार थी इसलिए उसे देख रौद्रदत्त के मुख से पानी आ गया। वह यह निश्चय कर कि इसकी लकड़ी अन्यतम है इसकी स्तम्भ आदि कोई चीज बनवानी चाहिए। शीघ्र ही वह घर गया। हाथ में फरसा ले वह फिर वन को चला गया और बातोंबात में वह वृक्ष काट डाला। कृपानाथ! आप ही कहें क्या आपत्ति काल में रक्षा करने वाले उस वृक्ष का काटना रौद्रदत्त के लिए योग्य था ? मैंने कहा–जिनदत्त! सर्वथा अयोग्य था। रौद्रदत्त को कदापि वह वृक्ष काटना नहीं चाहिए था जो मनुष्य पर कृत उपकार को नहीं मानते वे निरन्तर पापी माने जाते हैं, कृतघ्नी मनुष्यों को संसार में अनेक वेदना भोगनी पड़ती है। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका अब मैं भी तुम्हें एक अत्युत्तम कथा सुनाता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो–

विपक्षपक्षसंभेदी विष्णर्व्यापितसद्यशाः। पातितां सत्यभामाभीरुक्मिणीभिश्च मंडितः ॥३३१॥
पुष्पलाविमुखाच्छ्रुत्वैकदा मुनि समागमं। वैकुंठो कुंठयत्कार्यं ददौ तस्मै धनादिकं ॥३३२॥
चचाल चतुरैः संघश्चतुरंग बलान्वितः। वंदितुं मुनिनाथस्य भक्तितो विष्टरश्रवाः ॥३३३॥
प्रागत्य तत्र तं वीक्ष्य ज्ञानसागर सन्मुनिम्। ववंदे मुनिवक्त्रेंदोः पपौ धर्मामृतं स कः ॥३३४॥
हृषीकेशो मुनिं वीक्ष्य व्याधिस्थं कर्मवासितं। भिषजं स्वं पप्रच्छाशु व्याधिहानि कृते मुदा ॥३३५॥
सोऽवादीद्रत्नकापिष्ट प्रयोगं विष्णुभूपतेः। संतुष्टो नगरं प्राप्तो भेषजं समचीकरत् ॥३३६॥
आहारार्थ स्थापकानन्यान्निवार्य वरभेषजं। रुक्मिण्यै दत्तवान् भूपो मुन्योषधकृते तदा ॥३३७॥

इसी पृथ्वीतल में उत्तमोत्तम तोरण-पताका आदि से शोभित, समस्त नगरियों में उत्तम कोई द्वारिका नाम की नगरी थी। किसी समय द्वारिका के पालक महाराज श्रीकृष्ण थे। महाराज श्रीकृष्ण परम न्यायी थे। न्याय से राज्य के चारों ओर उनकी कीर्ति फैली हुई थी और सत्यभामा, रुक्मिणी आदि कामिनियों के साथ भोग भोगते वे आनंद से रहते थे। कदाचित् राज्य सिंहासन पर बैठे वे आनन्द में मग्न थे इतने ही में एक माली आया उसने विनयपूर्वक महाराज को नमस्कार किया और उत्तमोत्तम फल भेंटकर वह इस प्रकार निवेदन करने लगा।

प्रभो! प्रजापालक! एक परम तपस्वी वन में आकर विराजे हैं। माली के मुख से मुनिराज का आगमन सुन महाराज श्रीकृष्ण को परमानंद हुआ। वे जिस काम को उस समय कर रहे थे उसे शीघ्र ही छोड़ दिया। उचित पारितोषिक दे माली को प्रसन्न किया। अनेक नगर निवासियों के साथ चतुरंग सेना से मंडित महाराज ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया। वन में आकर मुनिराज को देख भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कुछ उपदेश श्रवण की इच्छा से मुनिराज के पास भूमि में बैठ गये। उस समय मुनिराज का शरीर व्याधिग्रस्त था इसलिए उस व्याधि के दूर करणार्थ राजा ने यही प्रश्न किया।

प्रभो! इस रोग की शांति का उपाय क्या है? किस औषधि के सेवन करने से इस रोग का नाश हो सकता है, कृपया! मुझे शीघ्र बतावें राजा श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कहा–

नरनाथ! यदि रत्नकापिष्ट (१) नाम का प्रयोग किया जाये तो यह रोग शान्त हो सकता है और इस रोग की शान्ति का कोई उपाय नहीं। मुनिराज के मुख से ऐसे औषधिक वचन सुन राजा श्रीकृष्ण को परम सन्तोष हुआ। मुनिराज को विनयपूर्वक नमस्कार कर वे द्वारावती में आ गये और मुनिराज के रोग दूर करने के लिए उन्होंने सर्वत्र आहार की मनाई कर दी।

दूसरे दिन वे ही ज्ञानसागर मुनि आहारार्थ नगर में आये। विधि के अनुसार वे इधर-उधर नगर में घूमे किन्तु राजा की आज्ञानुसार उन्हें किसी ने आहार न दिया। अन्त में वे राजमंदिर में आहारार्थ गये। ज्यों ही राजमंदिर में मुनिराज ने प्रवेश किया रानी रुक्मिणी ने उनका विधिपूर्वक आह्वान किया पडगाहन आदि कार्य कर भक्तिपूर्वक आहार भी दिया। रत्नकापिष्ट चूर्ण एवं अन्यान्य औषधियों के ग्रास भी दिये एवं आहार ले चुकने पर मुनिराज वन को चले गये।

लेपस्यालाभतो योग्यन्येषां धाम्नि गतस्ततः। विष्णुधाम्नि समापन्नो जेमनं विधिपूर्वकं ॥३३८॥
रत्नकापिष्टपिंडानि रुक्मिणी मुनिभानवे। ददौ सुभेषजं चान्यद्भक्तिभारभरांगिका ॥३३९॥
ततः क्रमेण नीरोगोऽजनि योगी कियद्दिनैः। एकदा माधवो वीक्ष्य भिषजामुनिभाजगे ॥३४०॥
नीरोगत्वं मुनेर्जातं तदा प्राख्यत्तपः श्रितः। कर्मणामभवन्विष्ठो नीरोगः शमनान्मम ॥३४१॥
कर्मणामुदये राजन् शर्माऽशर्माणि देहिनां। जायंते तत्क्षये मोक्षस्तत्र नास्तिसुखासुखं ॥३४२॥
अंतरंगविधौ कोऽपि न दक्षश्चक्रवर्त्त्यपि। बहिर्निमित्तमात्रं भो अन्यन्नाभ्यंतरे विधौ ॥३४३॥
तत्सूक्तिं स समाकर्ण्य दुष्टो वैद्यस्तु क्रुद्धवान्। मन्यमानः स्वनैरर्थ्यं वृष्टिं लिंवे क्षुवन्नृपः ॥३४४॥
कोपादुद्भूतदुर्भावो द्वितीयायुर्बबंध च। कालेन स मृतिं चाप्य वने कीशोऽभवद्विधेः ॥३४५॥
एकदा तत्र विपिने स एव मुनिसत्तमः। पल्यं केन स्थितो ध्याने निमीलितनिजेक्षणः ॥३४६॥
शाखामृगः समालोक्य दैवात्तं मुनिपुंगवम्। सस्मार पूर्ववृत्तांतं राजाग्रे मानभंगजम् ॥३४७॥

इस प्रकार औषधियों के प्रयोग करने से मुनिराज का रोग सर्वथा नष्टप्राय हो गया वे शीघ्र ही निरोग हो गये। किसी समय किसी वैद्य के साथ महाराज श्रीकृष्ण वन में गये। जहाँ पर परम पवित्र मुनिराज विराजमान थे उसी स्थान पर पहुँच उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और मुनिराज के सामने ही वैद्य ने यह कहा प्रजानाथ! मुनिराज का रोग दूर हो गया है। वैद्य के मुख से जब मुनिराज ने ये वचन सुने तो वे इस प्रकार उपदेश देने लगे।

नरनाथ! संसार में जीवों को जो सुख-दुःख कल्याण और अकल्याण भोगने पड़ते हैं उनके भोगने में कारण पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म है। जिस समय ये शुभ-अशुभ कर्म सर्वथा नष्ट हो जाते हैं उस समय किसी प्रकार का सुख-दुःख भोगना नहीं पड़ता। कर्मों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर परमोत्तम सुख मोक्ष मिलता है। राजन्! शुभ-अशुभ कर्मरूपी अंतरंग व्याधि के दूर करने में अतिशय पराक्रमी चक्रवर्ती भी समर्थ नहीं हो सकते। ये औषधि आदिक व्याधि की निवृत्ति में बाह्य कारण हैं। उनसे अंतरंग रोग की निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती।

मुनिराज तो वीतराग भाव से ये उपदेश दे रहे थे उन्हें किसी से उस समय द्वेष न था किन्तु वैद्यराज को उनका यह उपदेश हलाहल विष सरीखा जान पड़ा। वह अपने मन में ऐसा विचार करने लगा यह मुनि बड़ा कृतघ्नी है। रोग की निवृत्ति का उपाय इसने शुभा-शुभ कर्म की निवृत्ति ही बतलाई है मेरा नाम तक भी नहीं लिया। इस मुनि के वचनों से यह साफ मालूम होता है कि हमने कुछ नहीं किया। जो कुछ किया है कर्म की निवृत्ति ने ही किया है तथा इस प्रकार रौद्र विचार करते-करते वैद्य ने उसी समय आयु बंध बाँध लिया और आयु के अन्त में मरकर वह वानर योनि में उत्पन्न हो गया ॥३२४-३४५॥

कदाचित् विहार करते-करते मुनिराज, जिस वन में यह वानर रहता था उसी वन में पहुँचे और पर्यंकासन मांड़कर नासाग्र दृष्टि होकर ध्यानैकतान हो गये। किसी समय मुनिराज पर बन्दर की दृष्टि पड़ी। मुनिराज को देखते ही उसे जाति-स्मरण हो गया। जातिस्मरण के बल से उसने

तीक्ष्णकाष्टेन जंघा स मुनेर्विव्याध मर्कटः। त्यक्तगात्रात्मसंगस्य निर्गतानेकदुर्मतेः ॥३४८॥
निर्ममत्वपरारूढं शाम्यकोटिपराश्रितम्। विशुद्धमनचेतस्कं दिविष्टां चाष्टसत्पदम् ॥३४९॥
नासाग्रदत्तसन्नेत्रं पवित्र पदपूरितम्। विश्वस्तध्यानयुग्यं च सुध्यानपदसाधकम् ॥३५०॥
उत्कीर्णमिव पाषाणे विगतांह्रिकरक्रियाम्। तं मुनिं वीक्ष्य निर्विण्णः कीशः शांतिं जगाम च ॥३५१॥
काष्टमुत्पाद्य वेगेन पूर्वानुभवभेषजैः। निर्व्रणं तं विधायाशु पूजयामास पुष्पकैः ॥३५२॥
प्रणम्य मुनिवाक्येन ससम्यक्त्वमणुव्रतम्। कीशो जग्राह स्वं निंदन् विभिन्नमदमंडलः ॥३५३॥
अविचार्य प्रकोपादि कुर्वन्ते ये नराधमाः। तिरश्चां ते गतिं यान्ति नारकीयां च भो वणिक् ॥३५४॥
हस्तमर्षणमाप्नोति योऽविचार्य क्रियोद्यतः। इहैवायशसः स्थानममुत्राशर्मभाग्भवेत् ॥३५५॥

अपने पूर्व भव का सब समाचार जान लिया। राजा श्रीकृष्ण के सामने मुनिराज के उपदेश से जो उसे अपना पराभव समझा था वह पराभव भी उसे उस समय स्मरण हो आया और मारे क्रोध के उस पापी ने पवित्र किन्तु ध्यान रस में लीन मुनि ज्ञानसागर के ऊपर एक विशाल काष्ठ पटक दिया। उन्हें अनेक प्रकार पीड़ा भी देने लगा। किन्तु मुनिराज जरा भी ध्यान से विचलित न हुए।

चिरकाल तक प्रयत्न करने पर भी जब बंदर ने देखा कि मुनिराज ममता रहित, समता रस में लीन, निर्मल ज्ञान के धारक, हलन-चलन क्रिया से रहित, परम पद मोक्ष पद के अभिलाषी परम किन्तु उकृष्ट धर्म ध्यान और शुक्लध्यान के आचरण करने वाले, ध्यान बल से परम सिद्धि प्राप्ति के इच्छुक, पाषाण में उकेरी हुई प्रतिमा के समान निश्चल और हाथ-पैर की समस्त चेष्टाओं से रहित हैं तो उसे भी एकदम वैराग्य हो गया। कुछ समय पहले जो उसके परिणामों में रौद्रता थी वह मुनिराज की शान्त मुद्रा के सामने शान्तिरूप में परिणत हो गई। वह अपने दुष्कर्म के लिए अधिक निन्दा करने लगा। मुनिराज पर जो काठ डाला था वह भी उसने उठा के एक ओर रख दिया। वह पूर्वभव में वैद्य था इसलिए मुनिराज पर काष्ठ पटकने से जो उनके शरीर में घाव हो गए थे उत्तमोत्तम औषधियों से उन्हें भी उसने अच्छा कर दिया। अब वह मुनिराज की शुद्ध हृदय से भक्ति करने लगा और यह प्रार्थना करने लगा।

प्रभो! अकारण दीनबन्धो! मेरे इन पापों का छुटकारा कैसे होगा ? मैं अब कैसे इन पापों से बचूँगा? कृपाकर मुझे कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे मेरा कल्याण हो। मुनिराज परम दयालु थे उन्होंने वानर को पंच अणुव्रत का उपदेश दिया और भी अनेक उपदेश दिये। वानर ने भी मुनिराज की आज्ञानुसार पंच अणुव्रत पालने स्वीकार कर लिए। अहंकार क्रोध आदि जो दुर्वासनायें थीं उन्हें भी उसने छोड़ दिया। हर समय अपने अविचारित काम के लिए पश्चाताप करने लगा। सेठ जिनदत्त! तुम निश्चय समझो जो नीच पुरुष बिना विचारे क्रोध-मान-माया आदि कर बैठते हैं। उन्हें पीछे अधिक पछताना भोगना पड़ता है वे तिर्यंच, नरक आदि गतियों में जाते हैं। वहाँ उन्हें अनेक दुःसह वेदनायें सहनी पड़ती हैं। अविचारित काम करने वाले इस लोक में भी राजा आदि से अनेक दण्ड भोगते हैं। उनकी सब जगह निंदा फैल जाती है। परलोक में भी उन्हें सुख नहीं

अविचार्याधमो वक्त्ययुक्तं युक्तिविमुक्तधीः। हास्यास्पदं भवेन्नूनं नरो नारकवांछकः ॥३५६॥
क्व वैद्यो दैत्यशत्रोश्च मान्यः शास्त्रांगपारगः। क्व वानरीगतिः सर्वमिदं ह्यज्ञातसत्फलम् ॥३५७॥
तस्य युक्तं न वा श्रेष्ठिन्नुपसर्गविधानकम्। सोऽवोचन्नोचितं नाथ परीक्षा वर्जितात्मनः ॥३५८॥
अबीभणत्कथां कम्रां मुनेः सद्भावसूचिकाम्। वदतमिति तत्पुत्रः स्वतातं वीक्ष्य लोभतः ॥३५९॥
कुंभं कुबेरदत्तश्च निष्कास्य स्थानतोऽन्यतः। न्यक्षिपत् जनकस्याग्रे विवादविधिहानये ॥३६०॥
स्वामिन्मज्जनकेनैव लक्ष्मीलोभेन किं कृतम्। मुनिश्चौरः कृतो वेगाद्धिग् लक्ष्मीं दुखभाजनं ॥३६१॥
लोभमूलानि पापानि लोभमूला च वेदना। लोभमूलो महाद्वेषो लोभमूलो ह्यनिष्टता ॥३६२॥
व्याघ्राम्रबीजे कलभः शुक्रश्च सुतुंदिलो वै वृषभो द्विजश्च।
नागारिवेश्या च सुवर्णकारो गजोभिषक्ताः च कथाः प्रचक्रुः ॥३६३॥

मिलता। अबुद्धिपूर्वक काम करने वालों की सब जगह हँसी होती है। देखो अनेक शास्त्रों का भले प्रकार ज्ञाता, राजा श्रीकृष्ण के सम्मान का पात्र वह वैद्य तो कहाँ ? और कहाँ अशुभ कर्म के उदय से उसे बन्दर योनि की प्राप्ति ? यह सब फल अज्ञानपूर्वक कार्य करने का है। जिनदत्त! यह कथा तुम ध्यानपूर्वक सुन चुके हो तुम्हीं कहो क्या उस बन्दर का वह कार्य उत्तम था ? जिनदत्त ने कहा– ॥३४६-३५८॥

मुनिनाथ! बन्दर का वह अविचारित काम सर्वथा अयोग्य था। बिना विचारे अभिमानादि के वशीभूत हो नीच काम करने वाले मनुष्यों को ऐसे ही फल मिलते हैं। इसके अनन्तर हे मगध देश के स्वामी राजा श्रेणिक! सेठ जिनदत्त मेरी कथा के उत्तर में दूसरी कथा कहना ही चाहता था कि उसके पास उसका पुत्र कुबेरदत्त भी बैठा था और सब बातों को बराबर सुन रहा था इसलिए उसने विवाद की शान्त्यर्थ शीघ्र ही वह रत्न-भरित घड़ा दूसरी जगह से निकालकर मेरे देखते-देखते अपने पिता के सामने रख दिया और विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने लगा।

प्रभो! समस्त जगत् के तारक स्वामिन्! मेरे पिता ने बड़ा अनर्थ कर डाला। इस दुष्ट धन के फँदे में फँसकर आपको भी चोर बना दिया। हाय! इस धन के लिए सहस्र बार धिक्कार है। दीनबन्धो! यह बात सर्वथा सत्य जान पड़ती है संसार में जो घोर से घोर पाप होते हैं वे लोभ से ही होते हैं। संसार में यदि जीवों का परम अहित करने वाला है तो यह लोभ ही है। प्रभो! किसी रीति से अब मेरा उद्धार कीजिए। मुक्ति में असाधारण कारण मुझे जैनेश्वरी दीक्षा दीजिए। अब मैं क्षण-भर भी भोग भोगना नहीं चाहता।

जिनदत्त भी रत्नों के घड़ा को और पुत्र को संसार से विरक्त देख अति दुःखित हुआ अपने अविचारित काम पर उसे बहुत लज्जा आई संसार को असार जान उसने भी धन से सम्बन्ध छोड़ दिया। अपनी बार-बार निन्दा करने वाले समस्त परिग्रह से विमुख उन दोनों पिता-पुत्र ने मुझसे जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली एवं अतिशय निर्मल चित्त के धारक, भली प्रकार उत्तमोत्तम शास्त्रों के पाठी, परिग्रह से सर्वथा निस्पृह, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति के धारक वे दोनों दुर्धर तप

मां देहि दीक्षां शिवबद्धकक्षां तस्यां गजस्तं विधिवद्ययाचे।
श्रेष्ठीति दृष्ट्वा वरशर्ममत्वा लज्जाकुलास्यो हृदि निर्वृतोऽभूत् ॥३६४॥
चिरं विनिंद्य तौ निजं समस्तवस्त्ववाङ् मुखौ। सुदीक्षितौ सुशिष्यतां गतौ विशुद्धमानसौ।
पुराणपाठपूरितौ पवित्रचित्रयोगिनौ। बभूवतुस्त्रि-गुप्तिगुप्त विग्रहौ स्वनिग्रहौ ॥३६५॥
भूपायते यतिवरा वरधर्ममार्गवर्गे वयं स्थितिकृतस्तवपुण्ययोगात्।
पृष्टा इति प्रणतमौलिविवद्धदीप्त्या ॥३६६॥
गप्त्या ये यतयः खलगुप्ताम्। आजग्मुरेव वरधाम्नि सुपट्टराज्ञ्याः
ते तिष्ठंतु गृहे मम दीप्ताः। तस्मादंगविगोपनभावान्नास्थामोऽवधिबोध विहीनाः ॥३६७॥
श्रुत्वा कारणमुत्तमं नरपतिः संतुष्टस्वांतस्तया। साकं शक्यवृषं सुदर्शनसमं लब्ध्वा रसं वाक्यजं।
नत्वा सन्मुनिपादपंकजयुगं स्मृत्वा गुणं तद्भवं। प्रापत्यत्तनमुत्तमं सह बलेः श्रेयः कथालालसः ॥३६८॥
इति श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभपुराणे मुमुक्षु श्री शुभचंद्राचार्य विरचिते
कायगुप्तिकथा वर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥११॥

करने लगे।

इस प्रकार हे मगधदेश के स्वामी श्रेणिक! अनेक देशों में विहार करते-करते हम तीनों मुनि राजगृह में भी आये। उक्त दो मुनियों के समान मैं त्रिगुप्ति पालक न था मेरे अभी तक कायगुप्ति नहीं हुई इसलिए मैंने राजमंदिर में आहार न लिया। आहार न लेने का और कोई कारण नहीं।

इस रीति से तीनों महाराजों के मुख से भिन्न-भिन्न कथा के श्रवण से अतिशय सन्तुष्ट चित्त मोक्ष सम्बन्धी कथा के परम प्रेमी महाराज श्रेणिक मुनिराज को नमस्कार कर राजमन्दिर में गये। राजमन्दिर में जाकर सम्यग्दर्शनपूर्वक जैन-धर्म धारण कर मुनिराजों के उत्तमोत्तम गुणों का निरन्तर स्मरण करते हुए रानी चेलना और चतुरंग सेना के साथ आनन्दपूर्वक राजमन्दिर में रहने लगे ॥३५९-३६८॥

इस प्रकार भविष्यत् काल के श्री पद्मनाभ भगवान् के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में मुमुक्षु श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित काय-गुप्ति कथा का वर्णन करने वाला एकादश सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादशः सर्गः

नौमि तं जिन सद्धर्मं सत्सिद्धांतभास्करम्। यस्य प्रसादतः प्राप्तं श्रेणिकेन सुखं परम् ॥१॥
कुर्वंतौ परमं धर्मं भुंक्तौ राज्यं च दंपती। गतं कालं न वित्तस्तौशर्माब्धिवशवर्तिनौ ॥२॥
यजंतौ जिनपादाब्जं ध्यायंतौ मुनिपुंगवम्। कृपाकृंतितपापांगौ तिष्ठतस्तौ च दंपती॥३॥
कदाचित्प्रथमं शास्त्रं त्रिषष्ठिस्मृतिगोचरं। अन्यदालोकसंस्थान व्याख्यानं शृणुतस्तकौ ॥४॥
अष्टोत्तरशतैर्भिन्नमहिंसाव्रतंमुत्तमम्। तथ्यवाचादिभेदं वा कर्णयंतौ निजेच्छया ॥५॥
द्रवति द्रोष्यति द्रव्यमदुद्रवदिति स्फुटम्। सद्भेदं सप्तभंगाढ्यं तौ च शुश्रुवतुः सदा ॥६॥
अपूर्वपाठपारीणौ धुरिणौ धर्मसंपदः। विपदः प्रतिकूलौ तौ रेमाते रतिमार वत् ॥७॥
दशांगभोगभोगाढ्यौ दाढ्र्याढ्यजनसेवितौ। रतिसंतृप्तसर्वाङ्गौ शचींद्राविवरेजतुः ॥८॥
सुषेणचरदेवोऽथ तस्या ब्रूणेऽभवत्सुतः। समैधे जठरे तस्याः क्रमेण गजसद्गतेः ॥९॥
आपांडुवदना क्षीणविग्रहा कलभाषिणी। ईषन्निद्रा समालभ्या जज्ञे सा भ्रूणभावतः ॥१०॥

जिस परमोत्तम धर्म की कृपा से मगध देश के स्वामी महाराज श्रेणिक को अनुपम सुख मिला। पापरूपी अन्धकार को सर्वथा नाश करने वाले उस परम धर्म के लिए नमस्कार है।

महाराज श्रेणिक को जैनधर्म में जो सन्देह थे, सो सब हट गये थे इसलिए भली प्रकार जैन धर्म के पालक राज्य-सम्बन्धी अनेक भोग भोगने वाले शुभ मार्ग पर आरूढ़ राजा श्रेणिक और रानी चेलना सानन्द राजगृह नगर में रहने लगे। कभी वे दोनों दंपती जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने लगे कभी मुनियों के उत्तमोत्तम गुणों का स्मरण करने लगे। कभी उन्होंने त्रेसठ महापुरुषों के पवित्र चरित्र से पूर्ण प्रथमानुयोग शास्त्र का स्वाध्याय किया। कभी लोक की लम्बाई-चौड़ाई आदि बतलाने वाले करणानुयोग शास्त्र को ये पढ़ने लगे। कभी-कभी अहिंसादि श्रावक और मुनियों के चरित्र को बतलाने वाले चरणानुयोग शास्त्र का उन्होंने श्रवण किया और कभी गुण, द्रव्य और पर्यायों का वास्तविक स्वरूप बतलाने वाले स्यादस्ति, स्यान्नास्ति इत्यादि सप्तभंगनिरूपक द्रव्यानुयोग शास्त्रों को विचारने लगे। इस प्रकार अनेक शास्त्रों के स्वाध्याय में प्रवीण धर्म-संपदा के धारक समस्त विपत्तियों से रहित रति और कामदेव तुल्य भोग भोगने वाले बड़े ऋद्धि धारक मनुष्यों से पूजित रतिजन्य सुख के भी भले प्रकार आस्वादक वे दोनों दंपती इन्द्र-इन्द्राणी के समान सुख भोगने लगे और भोगों में वे इतने लीन हो गये कि उन्हें जाता हुआ काल भी न जान पड़ने लगा।

बहुत काल पर्यंत भोग भोगने पर रानी चेलना गर्भवती हुई। उसके गर्भ में सुषेणचर नामक देव ने आकर जन्म लिया। गर्भभार से रानी चेलना का मुख फीका पड़ गया। स्वाभाविक कृश शरीर और भी कृश हो गया। वचन भी वह धीरे-धीरे बोलने लग गई, गति भी मन्द हो गई और आलस्य ने भी उस पर पूरा-पूरा प्रभाव जमा लिया ॥१-१०॥

दुष्टदोहलकोद्भूत भावनातो बभूव सा। कृशांगा क्षीणभूषाढ्या निशांते द्यौर्वितारिका: ॥११॥
तदप्राप्तां च तां वीक्ष्य गतदीप्तिनराधिप:। गदतिस्म शुभे भद्रे विशिष्टनयनोत्सवे ॥१२॥
काऽस्ति ते हृदि चिंता च सर्वगात्रविदाहिनी। इति संवादिता राज्ञी न ब्रूते च यथा कथम् ॥१३॥
महाग्रहेण भूपेन पुन: संवादिता जगौ। मृगाक्षी गंदमामंदाक्षरासंवाष्पवादिनी ॥१४॥
नाथ किं जीवनेनैव मम दुर्मानसात्मन:। दुर्भ्रूणधारणाज्ज्ञझे दुर्वांछा प्राणहारिणी ॥१५॥
वचनै: कथितुं शक्यां नो कथं कथयामि ताम्। तथाप्याख्यामि नाथाद्य तवाग्रहवशाद्विभो: ॥१६॥
वक्ष: स्थलं विदार्यांशु लोहितस्येक्षितुं तव। वांछास्ति मे नराधीश कथं प्राप्या दुरावहा ॥१७॥

गर्भवती स्त्रियों को दोहले हुआ करते हैं और दोहलों से सन्तान के अच्छे-बुरे का पता लग जाता है क्योंकि यदि सन्तान उत्तम होगी तो उसकी माता को दोहले भी उत्तम होंगे और सन्तान खराब होगी तो दोहले भी खराब होंगे। रानी चेलना को भी दोहले होने लगे। चेलना के गर्भ में महाराज श्रेणिक का परम बैरी अनेक प्रकार कष्ट देने वाला पुत्र उत्पन्न होने वाला था इसलिए रानी को जितने भर दोहले हुए सब खराब ही हुए जिससे उसका शरीर दिनों-दिन क्षीण होने लगा। प्राणपति पर आगामी कष्ट आने से उसका सारा शरीर फीका पड़ गया प्रात:काल में तारागण जैसे मलिन कांति वाले जान पड़ते हैं रानी चेलना भी उसी प्रकार मलिन कांति वाली हो गई।

किसी समय महाराज श्रेणिक की दृष्टि महारानी चेलना पर पड़ी। उसे इस प्रकार क्षीण और मलिन कांति वाली देख उन्हें अति दु:ख हुआ। रानी के पास आकर वे स्नेह परिपूर्ण वचनों में इस प्रकार कहने लगे।

प्राण बल्लभे! मेरे नेत्रों को अतिशय आनन्द देने वाली प्रिये! तुम्हारे चित्त में ऐसी कौन-सी प्रबल चिंता विद्यमान है जिससे तुम्हारा शरीर रात-दिन क्षीण और कांति-रहित होता चला जाता है। कृपा कर उस चिंता का कारण मुझसे कहो! बराबर उसको दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायेगा। महाराज के ऐसे शुभ वचन सुन पहले तो लज्जावश रानी चेलना ने कुछ भी उत्तर न दिया किन्तु जब उसने महाराज का आग्रह विशेष देखा तो वह दु:खाश्रुओं को पोंछती हुई इस प्रकार विनय से कहने लगी-

प्राणनाथ! मुझ सरीखी अभागिनी डाकिनी स्त्री का संसार में जीना सर्वथा निस्सार है यह जो मैंने गर्भ धारण किया है सो गर्भ नहीं आपकी अभिलाषाओं को मूल से उखाड़ने वाला अंकुर बोया है। इस दुष्ट गर्भ की कृपा से मैं प्राण लेने वाली डाकिनी पैदा हुई हूँ। प्रभो! यद्यपि मैं अपने मुख से कुछ कहना नहीं चाहती तथापि आप के आग्रह वश कुछ कहती हूँ। मुझे यह खराब दोहला हुआ है कि आपके वक्षस्थल को विदार-रक्त देखूँ। इस दोहले की पूर्ति होना कठिन है इसलिए मैं इस प्रकार अति चिंतित हूँ।

रानी चेलना के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने उसी समय अपने वक्षस्थल को चीरा और उससे निकलते रक्त को रानी चेलना को दिखाकर उसकी इच्छा की पूर्ति की।

श्रुत्वा विदार्य राजेशो हृदयं निजलोहितम्। प्रदर्श्य पूरयामास तद्वांछां चित्रदायिनीम् ॥१८॥
परिपूर्णे ततो मासे सुतोऽजनि तयाशुभात्। तल्लाभं भूपतिः श्रुत्वा कुतश्चित्तोषमाप च ॥१९॥
वितीर्य विविधं दानं दीनानां च दयार्द्रधीः। तद्वक्त्रालोकनार्थं च प्रतस्थे स्थिरमानसः ॥२०॥
तदा बालो नृपं वीक्ष्य बद्धमुष्टिर्महाभयी। कुटिलास्यो रक्तनेत्रो वक्रभ्रकुटिरुन्नतः ॥२१॥
दष्टाधरस्तदा दुष्टो घर्षयन् रदनान्निजान्। दुर्भावभावनारूढः पूर्ववैरादभूत्क्षणात् ॥२२॥
तथा तं सा परिज्ञाय चेलना महिषी क्षणात्। दुःपुत्रं तं वने भीत्या तत्याज स्वहितेच्छया ॥२३॥
कथंचिद्भूपतिर्मत्वा वनमुक्तं शरीरजम्। राज्ञानाय्य सुमोहेन धात्र्याः स च समर्पितः ॥२४॥
चकार कुणिकाख्यां च तस्य भूप मुदकृतः। ततः क्रमेण पुण्येन तत्र स ववृधे शुभः पुनः ॥२५॥
ततः क्रमेण चेलिन्या वारिषेणः सुतोऽभवत्। कलाविज्ञानरूपाढ्यः ससम्यक्त्वः शिवावहः ॥२६॥
हल्लस्ततो विहल्लश्च जितशत्रुः क्रमात्सुताः। तस्याऽजनि पुत्रोच्चैः पित्रोः प्रीतिविवर्द्धकाः ॥२७॥
ततः कतिपयैर्घस्रैर्गर्भोऽभूत्स्वप्नपूर्वकम्। तस्याः श्रेयः प्रभावेन जनयन् जगतां मुदम् ॥२८॥
आहारे मंदिमा जाता गतौ वाक्य निबंधने। तस्या भ्रूणप्रभावेन शरीरे पांडुतां गता ॥२९॥
स्वल्पभूषामितस्पष्टाक्षराक्षीणसुविग्रहा। भग्नसुत्रिवलीभंगा माजनि प्रियदर्शना ॥३०॥

नवम मास के पूर्ण होने पर रानी चेलना के पुत्र उत्पन्न हुआ पुत्रोत्पत्ति का समाचार महाराज के पास भी पहुँचा। उन्होंने दीन अनाथ याचकों को इच्छा भर दान दिया और पुत्र को देखने के लिए गर्भगृह में गये। ज्यों ही महाराज अपने पुत्र के पास गये। महाराज को देखते ही उसे पूर्व भव का स्मरण हो आया। महाराज को पूर्वभव का अपना प्रबल बैरी जान मारे क्रोध के उसकी मुट्ठी बँध गई। मुख भयंकर और कुटिल हो गया। नेत्र आरक्त हो गये। मारे क्रोध के भौंहें चढ़ गई।

ओठ डसने लगा और उसकी आँखें भी इधर-उधर फिरने लगीं। रानी ने जब उसकी यह दशा देखी तो उसे प्रबल अनिष्ट का करने वाला समझ वह डर गई। अपने हित की इच्छा से निर्मोह हो उसने वह पुत्र शीघ्र ही वन में भेज दिया। जब राजा को यह पता लगा कि रानी ने भयभीत हो पुत्र वन में भेज दिया है तो उससे न रहा गया पुत्र पर मोहवश उन्होंने शीघ्र ही उसे राजमंदिर में मंगा लिया उसे पालन-पोषण के लिए किसी धाय के हाथ सौंप दिया और उसका नाम कुणिक रख दिया एवं वह कुणिक दिनोंदिन बढ़ने लगा। कुमार कुणिक के बाद रानी चेलना के वारिषेण नाम का दूसरा पुत्र हुआ। कुमार वारिषेण अनेक ज्ञान-विज्ञानों का पारगामी, मनोहर रूप का धारक सम्यग्दर्शन से भूषित और मोक्षगामी था। वारिषेण के अनंतर-रानी चेलना के हल्ल-हल्ल के पीछे विदल-विदल के पीछे जितशत्रु ये तीन पुत्र और भी उत्पन्न हुए और ये तीनों ही कुमार माता-पिता को आनंदित करने वाले हुए।

इस प्रकार इन पाँच पुत्रों के बाद रानी चेलना के प्रबल भाग्योदय से सबको आनंद देने वाला फिर गर्भ रह गया गर्भ के प्रसाद से रानी चेलना का आहार कम हो गया। गति भी धीमी हो गई। शरीर पर पीलापन छा गया। आवाज मंद हो गई। शरीर अतिकृश हो गया, पेट की त्रिवली

कुचचूचकयोस्तस्तया: कृष्णत्वं तत्प्रभावत:। जातशत्रुमुखे कर्त्तुं सूचनायैव सूचकम् ॥३१॥
ततो दोहको जज्ञे तस्या इति सुदुर्लभ:। आरुह्य हस्तिनं भूत्या भ्रमिष्यामि च प्रावृषि ॥३२॥
तदा प्राप्ता कृशांगी सा समासीद् गजगामिनी। एकदा तां नृपो वीक्ष्य पप्रच्छ कृशकारणम् ॥३३॥
साऽप्राक्षीद्दुर्धराकांक्षीऽजनि मे हृदिवल्लभ। ग्रीष्मे गजं समारुह्य मेघवृष्टै: भ्रमाम्यहम् ॥३४॥
दुर्धरं तं परिज्ञाय ग्रीष्मे वृष्ट्याद्यभावत:। सचिंतो योषमादायास्थात्स स्थगितविग्रह: ॥३५॥
दुर्लालसं नृपं प्रेक्ष्याऽप्राक्षीदभयपंडित:। कथं तेऽद्य परा चिंता हृदि सर्वांग शोषिणी ॥३६॥
इति संवादितो भूपो जगौ तत्कारणं क्षणात्। श्रुत्वेति वचनं पुत्र: करिष्यामीति संजगौ ॥३७॥

भी छिप गई। होने वाला पुत्र समस्त शत्रुओं के मुख काले करेगा, इस बात को मानो बतलाये हुए ही उसके दोनों चूचक भी काले पड़ गये एवं गर्भ भार के सामने उसे भूषण भी नहीं रुचने लगे ॥११-३१॥

किसी समय रानी के मन में यह दोहला हुआ कि ग्रीष्मकाल में हाथी पर चढ़कर बरसते मेघ में इधर-उधर घूमे किन्तु इस इच्छा की पूर्ति उसे अति कठिन जान पड़ी। इसलिए उस चिंता से उसका शरीर दिनों-दिन अधिक क्षीण होने लगा। जब महाराज ने रानी को अति चिन्ता-ग्रस्त देखा तो उन्हें परम दु:ख हुआ। चिन्ता का कारण जानने के लिए वे रानी से इस प्रकार कहने लगे।

प्रिये! मैं तुम्हारा शरीर दिनों-दिन क्षीण देखता चला जाता हूँ मुझे शरीर की क्षीणता का कारण नहीं जान पड़ता तुम शीघ्र कहो तुम्हें कौन-सी चिन्ता ऐसी भयंकरता से सता रही है। महाराज के ऐसे वचन सुन रानी ने कहा-कृपानाथ! मुझे यह दोहला हुआ है कि मैं ग्रीष्मकाल में बरसते हुए मेघ में हाथी पर चढ़कर घूमूं किन्तु यह इच्छा पूर्ण होनी दु:साध्य है। इसलिए मेरा शरीर दिनों-दिन क्षीण होता चला जाता है।

रानी की ऐसी कठिन इच्छा सुनी तो महाराज अचम्भे में पड़ गये। इस इच्छा को पूर्ण करने का उन्हें कोई उपाय न सूझा इसलिए वे मौन धारण कर निश्चेष्ट बैठ गये। अभय कुमार ने महाराज की यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ वे महाराज के सामने इस प्रकार विनय से पूछने लगे। पूज्य पिताजी! मैं आपको प्रबल चिन्ता से आतुर देख रहा हूँ। मुझे नहीं मालूम पड़ता अकारण आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं ? कृपया चिन्ता का कारण मुझे भी बतावें। पुत्र अभयकुमार के ऐसे वचन सुन के महाराज श्रेणिक ने सारी आत्म कहानी कुमार को कह सुनाई और चिन्ता दूर करने का कोई उपाय न समझ वे अपना दु:ख भी प्रकट करने लगे।

अभय कुमार अति बुद्धिमान् थे ज्यों ही उन्होंने पिताजी के मुख से चिन्ता का कारण सुना शीघ्र ही सन्तोषप्रद वचनों में उन्होंने कहा-पूज्यवर! यह बात क्या कठिन है मैं अभी इस चिंता के हटाने का उपाय सोचता हूँ आप अपने चित्त को मलीन न करें तथा चिन्ता दूर करने का उपाय भी सोचने लगे।

अवलोकयितुं रात्रौ व्यंतरं पितृसद्मने। जगाम भयनिर्मुक्तोऽभयो बुद्धिमतां मतः ॥३८॥
अटन्वटतलेऽटव्यां ध्वांतसंलुप्तसत्पथि। ददर्श दीपिका पंक्तिमभयो भयवर्जितः ॥३९॥
घूकफूत्कार भीताढ्यं श्रृगालनिनदावहं। महाफणि फटाटोपं गजमर्दितपादपम् ॥४०॥
संदग्धार्द्धशवं भीमं मृतकोपांतमोदकम्। भग्नकुंभकपालाढ्यं मंदाग्निमदमोदितं ॥४१॥
संदग्धाद्भूतधामिल्य पताकं कुर्कुरस्वनं। भस्मसंभग्नसन्मार्गं नरदंतसुरत्नकम् ॥४२॥
पश्यन् श्मशानमापन्नो वटं दीपप्रकाशितम्। धूपधूमसमाकृष्ट व्यंतरं राजपुत्रकः ॥४३॥
सुगंधकुसुमैर्धीरं जपंतं स्थिरमानसम्। उद्विग्नं चिरकालेन सोऽद्राक्षीन्नरपुंगवम् ॥४४॥
तदेति स जगौ धीरः कत्स्वं कस्मात्समागतः। किं स्थानं तव किं नाम किं त्वं जपयसि स्फुटं ॥४५॥
इति पृष्टस्तदावादीद्वटस्थो राजदारकम्। श्रृणु धीर समाख्यानं मज्जं सुस्मयदायकं ॥४६॥
विजयार्द्धोत्तरश्रेण्यां पत्तने गगनप्रिये। भूपतिर्वायुवेगोऽहं विद्याधरनेश्वरः ॥४७॥
एकदा मंदरे रम्ये वंदितुं श्री जिनालयान्। जगामानेक भूमीश सेवितांह्रिः स्वमार्गतः ॥४८॥

कुछ समय सोचने पर उन्हें यह बात मालूम हुई कि यह काम बिना किसी व्यंतर की कृपा से नहीं हो सकता इसलिए आधी रात के समय घर से निकले। व्यंतर की खोज में किसी श्मशान भूमि की ओर चल दिये एवं वहाँ पहुँचकर किसी विशाल वट वृक्ष के नीचे इधर-उधर घूमने लगे। वह भयावह था। जगह-जगह वहाँ अजगर फुंकार शब्द कर रहे थे, श्मशान उलूकों के फुत्कार शब्दों से व्याप्त था श्रृंगालों के भयंकर शब्दों से मदोन्मत्त हाथियों से अनेक वृक्ष उजड़े पड़े थे। अर्द्ध-दाह मुर्दे और फूटे घड़ों के समान उनके कपाल वहाँ जगह-जगह पड़े थे। मांसाहारी भयंकर जीवों के रौद्र शब्द क्षण-क्षण में सुनाई पड़ते थे। अनेक जगह वहाँ मुर्दे जल रहे थे।

चारों ओर उनका धुँआ फैला हुआ था। मांसलोलुपी कुत्ते भी वहाँ जहाँ-तहाँ भयावह शब्द करते थे। चारों ओर वहाँ राख की ढेरियाँ पड़ी थीं। इसलिए मार्ग जानना भी कठिन पड़ जाता था एवं चारों ओर वहाँ हड्डियाँ भी पड़ी थीं। बहुत काल अंधकार में इधर-उधर घूमने पर किसी वट-वृक्ष के नीचे कुछ दीपक जलते हुये कुमार को दीख पड़े वह उसी वृक्ष की ओर झुक पड़ा और वृक्ष के नीचे आकर उसे धीर-वीर जयशील स्थिरचित्त चिरकाल से उद्विग्न एवं जिसके चारों ओर फूल रखे हुए हैं कोई उत्तम पुरुष दीख पड़ा। पुरुष को ऐसी दशापन्न देख कुमार ने पूछा-भाई! तू कौन है? क्या तेरा नाम है? कहाँ से तू यहाँ आया ? तेरा निवास स्थान कहाँ हैं? और तू यहाँ आकर क्या सिद्ध करना चाहता है? कुमार के ऐसे वचन सुन उस पुरुष ने कहा-राजकुमार! मेरा वृत्तांत अतिशय आश्चर्यकारी है यदि आप उसे सुनना चाहते हैं तो सुनें मैं कहता हूँ ॥३२-४६॥

विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर दिशा में एक गगनप्रिय नामक नगर है। गगनप्रिय नगर का स्वामी अनेक विद्याधर और मनुष्यों से सेवित मैं राजा वायुवेग था। कदाचित् मुझे विजयार्द्ध पर्वत पर जिनेन्द्र चैत्यालयों के वन्दनार्थ अभिलाषा हुई। मैं अनेक राजाओं के साथ आकाश मार्ग से अनेक

विजयार्द्धाचले तत्र युग्मश्रेणी विराजते। वालुकापुरनाथस्य सर्वविद्याधरे शिनः ॥४९॥
सुभद्रा तनुजा रम्या यौवन श्री विडंबिता। सुभद्रा च नितंबस्य स्फीतस्य धारिणी शुभा ॥५०॥
वयस्याभिः समं दैवात्मंदिरे द्युतिसुंदरे। आजगाम मृगाक्षी सा दधती रतिसंभ्रमम् ॥५१॥
प्रेक्ष्य तां विह्वलीभूतः संहतः कामसायकैः। शिथिलीभूतसर्वांगो बभूवाहं च तन्मयः ॥५२॥
ततस्तां च समादायाटितो दिव्यं च भारतम्। चक्राणो जन्मसाफल्यं तया सार्द्धं समुत्सुकः ॥५३॥
खगचक्री परिज्ञाय तत्सखीवदनाद्वृतम्। तां मामनुसमायातो विमानैः पूरयन्दिशः ॥५४॥
तेनाहं युद्धवान् दीर्घं नानाविद्याधरेशिना। विद्याभिः खंडखंडैश्च विद्यावद्भिर्बलोद्धतैः ॥५५॥
समे विद्यां विहत्यैव तामादाय गतः पुरम्। भूगोचरो बभूवाहमत्रास्थां शोकलावितः ॥५६॥
द्वादशाब्दं च जाप्येनैतन्मंत्रस्य विषेत्स्यति। विद्यासमूहमेतद्धि विद्यते सूरिदेशने ॥५७॥
इत्थं कृतेऽपि विद्या नो नो सिद्धागंतुमुत्सुकः। गृहमुद्विग्नचित्तोऽहमीहे मोहितमन्मतिः ॥५८॥
अभयोऽपि वचोऽवादीत्तन्मंत्रं मे निरूपय। ततो मंत्रं जगौ खगः कुमारं मार विभ्रमम् ॥५९॥

नगरों को निहारता हुआ विजयार्द्ध पर्वत पर आ गया। उसी समय राजकुमारी सुभद्रा जो कि बालकपुर के महाराजा की पुत्री थी। अपनी सखियों के साथ विजयार्द्ध पर्वत पर आई। राजकुमारी सुभद्रा अतिशय मनोहर थी। यौवन की अद्वितीय शोभा से मंडित थी, मृगनयनी थी। उसके स्थूल किन्तु मनोहर नितम्ब उसकी विचित्र शोभा बना रहे थे एवं रति के समान अनेक विलास संयुत होने से वह साक्षात् रति ही जान पड़ती थी। ज्यों ही कमल नेत्रा सुभद्रा पर मेरी दृष्टि पड़ी मैं बेहोश हो गया कामबाण मुझे बेहद रीति से बेधने लगे। मेरा तेजस्वी शरीर भी उस समय सर्वथा शिथिल हो गया विशेष कहाँ तक कहूँ तन्मय होकर मैं उसी का ध्यान करने लगा। सुभद्रा बिना जब मेरा एक क्षण भी वर्ष सरीखा बीतने लगा तो बिना किसी के पूछे मैं जबरन सुभद्रा को हर लाया और गगनप्रिय नगर में आकर आनन्द से उसके साथ भोग भोगने लगा। इधर मैं तो राजकुमारी सुभद्रा के साथ आनन्द से रहने लगा और उधर किसी सखी ने बालकपुर के स्वामी सुभद्रा के पिता से सारी बात कह सुनाई और मेरा ठिकाना भी बतला दिया सुभद्रा की इस प्रकार हरण वार्ता सुन मारे क्रोध के उसका शरीर भभक उठा और विमान पंक्तियों से समस्त गगन मंडल को आच्छादन करता हुआ शीघ्र ही गगनप्रिय नगर की ओर चल पड़ा। बालकपुर के स्वामी का इस प्रकार आगमन मैंने भी सुना अपनी सेना सजाकर मैं शीघ्र ही उसके सन्मुख आया। चिरकाल तक मैंने उसके साथ और अनेक विद्याओं को जानकर तीक्ष्ण खड्गों धारी उसके योद्धाओं के साथ युद्ध किया अन्त में बालकपुर के स्वामी ने अपने विद्या बल से मेरी समस्त विद्या छीन ली, सुभद्रा को भी जबरन ले गया। विद्या के अभाव से मैं विद्याधर भी भूमि गोचरी के समान रह गया। अनेक शोकों से आकुलित हो मैं पुनः उस विद्या के लिए यह मंत्र सिद्ध कर रहा हूँ बारह वर्ष पर्यन्त इस मंत्र के जपने से वह विद्या सिद्ध होगी ऐसा नैमित्तिक ने कहा है किन्तु बारह वर्ष बीत चुके अभी तक विद्या सिद्ध न हुई इसलिए मैं अब घर जाना चाहता हूँ। ज्यों ही कुमार ने उस

सबीजं लघु संलभ्य जजाप वृषपाकतः। सिषेध निखिला विद्याः सर्वं पुण्यफलं हि वै ॥६०॥
तत्प्रभावात्खगस्यापि विद्याः सिद्धाः शुभोदयात्। ततस्तौ स्नेहवृद्ध्यर्थमन्योन्यं नेमतुर्मुदा ॥६१॥
स चोद्वसितं लब्ध्वा रुष्टः संकल्पदंतिनम्। विकुर्व्य मेघसंघातं रोहयित्वा च चेलनां ॥६२॥
बभ्राम नगरं राज्ञी मासं पूर्णमनोरथा। समासेदे गृहं तूर्णं त्रिवलीभंगभेदिता ॥६३॥
संपूर्णाद्दोहदाद्राज्ञी पूर्वावस्थां समत्यजत्। शुभं सुसातकुंभाभा वृक्षे वल्लीव नूतना ॥६४॥
सहासा सरसा सिद्ध सुसंगास्मरसायका। सा प्रसूत सुतं सारं गजादिसुकुमारकं ॥६५॥
ततो मेघकुमारं च तनुजं समजीजनत्। सप्तपुत्रैश्च सा रेजे तारका सप्तयोगिभिः ॥६६॥
अभिन्नसुखसंतानौ चेलना श्रेणिकौ परौ। रेमाते रतिसंपन्नावखिन्नौ रतिलीलया ॥६७॥
एकदा नृपसामंत किरीट तटरत्नजैः। मयूखैर्मंडितांह्र्यब्जः सुशब्दमगधैः स्त्रुतः ॥६८॥
रत्नश्री चित्रनक्षत्र पवित्र गगनच्छवि। सिंहासनं समासीन उदयाद्रिं तमोहरः ॥६९॥
पयः पयोधि संरंगत्तरलोत्तुंग भंगुरैः। तरंगैरिव संवीज्यमानः खलु प्रकीर्णकैः ॥७०॥

पुरुष के मुख से ये समाचार सुने शीघ्र ही पूछा–

भाई वह कौन–सा मन्त्र है मुझे भी तो दिखाओ देखूँ तो वह कैसा कठिन है? कुमार के इस प्रकार पूछे जाने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही वह मंत्र कुमार को बतला दिया। कुमार अतिशय पुण्यात्मा थे उस समय उनका भाग्य सुभाग्य था इसलिए उन्होंने मंत्र सीखकर शीघ्र ही इधर–उधर कुछ बीज क्षेपण कर दिये और बातोंबात में वह मंत्र सिद्ध कर लिया। मंत्र से जो–जो विद्या सिद्ध होने वाली थी शीघ्र ही सिद्ध हो गई जिससे उसे परम संतोष हो गया एवं दोनों महानुभाव आपस में मिल–भेंट कर बड़े प्रेम से अपने–अपने स्थान चले गये।

मंत्र सिद्ध कर कुमार अपने घर (राजमहल) आये विद्या बल से उन्होंने शीघ्र ही कृत्रिम मेघ बना दिये। रानी चेलना को हाथी पर चढ़ा लिया इच्छानुसार और जहाँ–तहाँ घुमाया। जब उसके दोहले की पूर्ति हो गई तो वह अपने राजमहल में आ गई। दोहले की पूर्ति कठिन समझ जो उसके चित्त में खेद था वह दूर हो गया। अब उसका शरीर सुवर्ण के समान चमकने लगा। नवमास के बीत जाने पर रानी चेलना के अतिशय प्रतापी शत्रुओं का विजयी पुत्र उत्पन्न हुआ और दोहले के अनुसार उसका नाम राजकुमार रखा गया। राजकुमार के बाद रानी चेलना के मेघकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सात ऋषियों से आकाश में जैसी तारा शोभित होती है रानी चेलना भी ठीक उसी प्रकार सात पुत्रों से शोभित होने लगी। इस प्रकार आपस में अतिशय सुखी समस्त खेदों से रहित वे दोनों दंपती आनन्दपूर्वक भोग भोगते राजगृह नगर में रहने लगे ॥४७–६७॥

कदाचित् अनेक राजा और सामंतों से सेवित भले प्रकार बन्दीजनों से स्तुत महाराज श्रेणिक छत्र और चंचल चमरों से शोभित अत्युन्नत सिंहासन पर बैठते ही जाते थे कि अचानक ही सभा में वनमाली आया। उसने विनय से महाराज को नमस्कार किया एवं षट्काल के फल और पुष्प महाराज को भेंटकर वह इस प्रकार निवेदन करने लगा। समस्त पुण्यों के भंडार! बड़े–बड़े राजाओं

संसदि श्रेणिको यावदास्ते छत्रपवित्रतः। तावत्प्रसूनलावी चा जगामद्वास्थवेदिनः ॥७१॥
तं प्रणम्य सभासीनं षट्कालप्रभवैर्वरैः। प्राभृतैः फलपुष्पैश्च नवीनैश्च व्यजिज्ञपत् ॥७२॥
निःशेषपुण्य संस्थान महीभृत्यूजितांह्रिक। करुणा क्रांतचेतस्क शक्रचक्र विभूतिभाक् ॥७३॥
देव! श्रेणिक! भूपेंद्र! राजंस्त्वद्वृषनोदितः। समाट वर्द्धमानेशो भगवान्विपुलाचले ॥७४॥
तत्प्रभावाद्वने जाता वनश्रीः सफलाऽखिला। सपुष्पा मदनोद्दीप्ता यौवनाद्योषिता यथा ॥७५॥
सरांसि रसपूर्णानि सपद्मानि वराणि च। निर्मलानि गभीराणि विद्वच्चेतांसीवा बभुः ॥७६॥
सवंशा तिलकोद्दीप्ता कुलीना मदनाकुला। सुवर्णा मन्मथारूढा वनश्री स्त्रीव संबभौ ॥७७॥
भृङ्गझंकार वाचाला पुष्पहास्या फलस्तनी। स्वरूप रक्तकामांगा वनश्रीर्योषितेवच ॥७८॥
नकुलाः सकला नागैरंरम्यंते प्रभावतः। मार्जारशिशवो राजन् मूषकैर्वैरदूषितैः ॥७९॥
सिंहशावं करेणुश्च स्तन्यं सुतस्यामोदतः। पाययति तथा धेनु द्वीपिशावं समीपगं ॥८०॥

से पूजित! दयामय चित्त के धारक! चक्र और इन्द्र की विभूति से शोभित! भो देव! विपुलाचल पर्वत पर धर्म के स्वामी भगवान् महावीर का समवसरण आया है। भगवान् के समवसरण के प्रसाद से वनश्री साक्षात् स्त्री बन गई है क्योंकि स्त्री जैसी पुत्ररूपी फलयुक्त होती है वनश्री भी स्वादु और मनोहर फलयुक्त हो गई है। स्त्री जैसी सपुष्पा-रजोधर्म युक्त होती है। वनश्री भी सपुष्पा हरे-पीले अनेक फूलों से सज्जित हो जाती है। स्त्री जैसी यौवन अवस्था में मदनोदीप्ता-काम से दीप्त हो जाती है वनश्री भी मदनोदीप्ता मदन वृक्ष से शोभित हो जाती है। भगवान् के समवसरण की कृपा से तालाबों ने सज्जनों के चित्त की तुलना की है क्योंकि सज्जनों का चित्त जैसा रसपूर्ण करुणा आदि रसों से व्याप्त रहता है तालाब भी उसी प्रकार रसपूर्ण जल से भरे हुए हैं। सज्जनों का चित्त जैसा सपद्मा-अष्टदल कमलाकार होता है तालाब भी सपद्म मनोहर कमलों से शोभित हैं। सज्जन चित्त जैसा वर-उत्तम है तालाब भी वर-उत्तम है। सज्जन चित्त जैसा निर्मल होता है तालाब भी उसी प्रकार निर्मल है। सज्जनों के चित्त जैसे गम्भीर होते हैं तालाब भी इस समय गम्भीर हैं इस प्रकार से भी वनश्री ने स्त्री की तुलना की है क्योंकि स्त्री जैसी सवंशा-कुलिना होती है वनश्री भी सवंशा-बांसों से शोभित है। स्त्री जैसी तिलकोदीप्ता-तिलक से शोभित रहती है वनश्री भी तिलकोदीप्ता-तिलक वृक्ष से शोभित है। स्त्री जैसी मदनाकुला-काम से व्याकुल रहती है वनश्री भी मदनाकुला-मदन वृक्षों से व्याप्त है। स्त्री जैसी सुवर्णा-मनोहर वर्ण वाली होती है वनश्री भी सुवर्णा-हरे-पीले वर्ण से युक्त है। स्त्री के सर्वांग में जैसा मन्मथ-काम जाज्वल्यमान रहता है वनश्री भी मन्मथ जाति के वृक्षों से जहाँ-तहाँ व्याप्त है। पद्मिनी स्त्री जैसी भौरों की जंघारों से युक्त रहती हैं वनश्री पुष्परूपी हास्य युक्त है। स्त्री जैसी स्तन युक्त होती है वनश्री भी ठीक उसी प्रकार फलरूपी स्तनों से शोभित है ॥६८-७८॥

प्रभो! इस समय नेवले आनन्द से सर्पों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। बिल्ली के बच्चे बैर रहित मूसों के साथ खेल रहे हैं। अपना पुत्र समझ हथिनी सिंहनी के बच्चों को आनन्द से दूध

तत्प्रभावाद्विना वैरा रभवन् जंतवोऽखिलाः। नटंति नागतुंडिकादर्दुरा नागमूर्ध्नि च॥८१॥
देवदेव नरेशाद्यैः पर्युपासित शासन। समाट सन्मतिः केन तत्प्रभावो हि वर्ण्यते॥८२॥
आनंद प्रमदालीढां गिरं श्रुत्वा वनेशिनः। नरेशो हर्षरोमां च चर्म देही बभूव च॥८३॥
उत्थाय सहसा शूर गत्वा सप्तपदानि तां। अनमत्कुकुभां शुभ्रादभ्रकीर्तिः सुमूर्तिमान्॥८४॥
शरीरजं तदा तस्मै भूषणं वसनं धनं। ददौ नृपो धृतानंद इंदोरिव सारित्पतिः॥८५॥
आनंदान्नंद भेरीं स दापयामास भक्तितः। जगज्जाग्रत्कृते भूपो रक्षिताखिलः सत्क्षितिः॥८६॥
केचिद्वीताश्रिता केचित्संदतोद्दृंति दीपिताः। यथार्थ रथसंरूढाः समाजग्मुर्नृपांगणे॥८७॥
ततः सांतपुरः पौरैर्नृपैः सामंत मंत्रिभिः। नाना सपर्यया युक्तैश्चचाल मगधेश्वरः॥८८॥
करेणुकर पादाब्ज समुत्थापित पांशवः। दानोदकेन ते नूनं विधाप्यंते च दंतिभिः॥८९॥
कर्णजाहं वचो यत्र श्रूयते न जनैः क्वचित्। जयारव सुवाचालैरन्योन्यं मुख लोकनैः॥९०॥
आनकादिक नादेनाकारयंतीव दिग्वधूः। सैन्याः संन्यस्त चेतस्का जिते जिताजवंजवे॥९१॥

पिला रही है और सिंहनी हथिनियों के बच्चों को प्रेम से दूध पिला रही है। प्रजापालक! समवसरण के प्रताप से समस्त जीव बैर रहित हो गये हैं। मयूरगण सर्पों के मस्तकों पर आनन्द से नृत्य कर रहे हैं। विशेष कहाँ तक कहा जाये इस समय नहीं सम्भव भी काम बड़े-बड़े देवों से सेवित महावीर भगवान् की कृपा से हो रहे हैं। माली के इस प्रकार अचिंत्य प्रभावशाली भगवान् महावीर का आगमन सुन मारे आनन्द के महाराज का शरीर रोमांचित हो गया।

उदयादि से जैसा सूर्य उदित होता है महाराज भी उसी प्रकार शीघ्र ही सिंहासन से उठ पड़े। जिस दिशा में भगवान् का समवसरण आया था उस दिशा की ओर सात पैड चलकर भगवान् को परोक्ष नमस्कार किया। उस समय जितने उनके शरीर पर कीमती भूषण और वस्त्र थे तत्काल उन्हें माली को दे दिया धन आदि देकर भी माली को सन्तुष्ट किया। समस्त जीवों की रक्षा करने वाले महाराज ने समस्त नगर निवासियों को जानकारी के लिए बड़ी भक्ति और आनन्द से नगर में ड्योढ़ी पिटवा दी। ड्योढ़ी की आवाज सुनते ही नगर निवासी शीघ्र ही राजमहल के आँगन में आ गये उनमें अनेक तो घोड़ों पर सवार थे, अनेक हाथी पर और अनेक रथों पर बैठे थे। सब नगर निवासियों के एक चित्त होते ही रानी, पुरवासी, राजा, सामंत और मंत्रियों से वेष्टित महाराज शीघ्र ही भगवान् की पूजार्थ वन की ओर चल दिये। मार्ग में घोड़े आदि के पैरों से जो धूल उठती थी वह हाथियों के मद जाल से शांत हो जाती थी।

उस समय जीवों के कोलाहलों से समस्त आकाश व्याप्त था इसलिए कोई किसी की बात तक भी नहीं सुन सकता था। यदि किसी को किसी से कुछ कहना होता था तो वह उसकी मुँह की ओर देखता था और बड़े कष्ट से इशारे से अपना तात्पर्य उसे समझाता था। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो बाजों के शब्दों से सेना दिक्स्त्रियों को बुला रही है। उस समय सबों का चित्त कर्म विजयी भगवान् महावीर में लगा था और छत्रों का तेज सूर्य तेज को भी फीका कर रहा

आतपत्रविभिन्नार्क दीधितिर्मगधाधिपः। क्षणेन क्षणसंपन्नः समापत्समवसृतिं ॥९२॥
समुत्तीर्य गजाद्भूप उत्तस्थे समवसृतिं। पश्यन्मातापहार्यादिस्तूपशोभां च वंदितां ॥९३॥
परीत्य भगवंतं तं मुद्ध्र्वधृतनिजांजलिः। पूजां चक्रे महामंत्रैरिति पूतैर्महीधरः ॥९४॥
क्षीरोदधिसुत्रिश्रोतो जलतुल्यैश्चचंद्रितैः। चंद्रानैर्वारिभिर्भक्त्या चायते तं विकिल्विषं ॥९५॥
आमोदाकृष्टषट्पादैर्हरिचंदन सद्रवैः। अखंडैस्तंदुलैर्मुक्तामयैस्तं यजतिस्म सः ॥९६॥
पुष्पबाणविनाशाय पुष्पैराजीवचंपकैः। चरुभिश्चारुपक्वान्नैरर्चितस्तेन सन्मतिः ॥९७॥
रत्नजैश्चंद्रजैर्दीप्रै दीपैर्दिग्मुखद्योतनैः। धूपयंति जिनाह्रिं ते कृष्णागरुसुधूपतः ॥९८॥
सफलंति जिनस्याग्रे फलैस्ते सफलांशुभिः। पुष्पांजलिं दुदुस्तस्मै नरेंद्राद्या विपापिने ॥९९॥
प्रारेभे नृपतिर्न्नंदान्नुतिं निर्धूतकिल्विषां। भगवन् देवदेवेश शक्रचक्रिनमस्कृतं ॥१००॥
न यांति गुण पारं ते योगिनो गौतमादयः। शक्रा अपि विशक्तास्त्वद्गुणस्तोत्रेऽभवन्जिन ॥१०१॥
मन्ये मारस्त्वया दग्धो यतस्तद्भस्मभिर्हरः। लिप्तांगोऽभूद्धरिः स्त्रीणां वृंदवासीभयात्पुनः ॥१०२॥
चतुर्वक्त्रेण ब्रह्मा च चकितः पश्यति स्फुटं। दिशो दिशभयात्तस्य स्वास्थ्यं नाप्नोति कुत्र चित् ॥१०३॥
त्वयि ज्ञानं यथा भाति नैवं हरिहादिषु। उच्चैस्तरत्वं स्वर्णाद्रौ नैवं चान्यत्र पर्वते ॥१०४॥

था। इस प्रकार चलते-चलते महाराज समवसरण के समीप जा पहुँचे। समवसरण को देख महाराज शीघ्र ही गज से उतर पड़े। मानस्तम्भ और प्रातिहार्यों की अपूर्व शोभा देखते हुए समवसरण में प्रवेश किये। वहाँ जिनेन्द्र महावीर को विशाल किन्तु मनोहर सिंहासन पर विराजमान देख भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं मंत्र-पूर्वक पूजा करना प्रारम्भ कर दिया। सबसे प्रथम महाराज ने क्षीरोदधि के समान उत्तम और चन्द्रमा के समान निर्मल जल से प्रभु की पूजा की। पश्चात् चारों दिशा में महकने वाले चन्दन से और अखंड तंदुल से जिनेन्द्रदेव की पूजा की। कामबाण के विनाशार्थ उत्तमोत्तम चंपा आदि पुष्प और क्षुधा रोग विनाशार्थ उत्तमोत्तम स्वादिष्ट पकवान चढ़ाये। समस्त दिशा में प्रकाश करने वाले रत्नमयी दीपकों से और उत्तम धूप से भी भगवान् का पूजन किया एवं मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए उत्तमोत्तम फल और अनर्घ्य पद की प्राप्त्यर्थ अर्घ्य भी भगवान् के सामने चढ़ाये। जब महाराज श्रेणिक अष्ट-द्रव्य से भगवान् की पूजा कर चुके तो उन्होंने सानन्द हो इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ॥७९-९९॥

हे समस्त देवों के स्वामी! बड़े-बड़े इन्द्र और चक्रवर्तियों से पूजित आपमें इतने अधिक गुण हैं कि प्रखर ज्ञान के धारक गणधर भी आपके गुणों का पता नहीं लगा सकते। आपके गुण स्तवन करने में विशाल शक्ति के धारक इन्द्र भी असमर्थ हैं। मुझे जान पड़ता है काम को सर्वथा आपने ही जलाया है क्योंकि महादेव तो उसके भय से अपने अंग में उसकी विभूति लपेटे फिरते हैं। विष्णु रात-दिन स्त्री समुदाय में घुसे रहते हैं। ब्राह्मण भी चतुर्मुख हो चारों दिशा की ओर कामदेव को देखते रहते हैं और सदा भय से कंपते रहते हैं। प्रभो! ऊँचापना जैसा मेरु पर्वत में है अन्य किसी में नहीं। दीनबन्धो! जो मनुष्य आपके चरणाश्रित हो चुका है यदि वह मद और

श्च्योतन्मदसमालीढभृंगझंकारकोपितः। नाक्रमति गजो गर्वी त्वत्पादाश्रितमानवं ॥१०५॥
त्वद्ध्यानाष्टापदाद्देव दूरं याति च सद्धरिः। नृणां मदेभकुंभानां विदारणविचक्षणः ॥१०६॥
पप्लोषते नरं नैव कल्यांतसमयप्रभः। उत्फुलिंगोज्वलज्वालो वह्निस्त्वत्पादसंश्रितं ॥१०७॥
त्वन्नामनाग सद्दाममंत्रकीलितविग्रहः। सरीसृपो विषातीतो भवत्येव महामुने ॥१०८॥
वडवानलसंदीप्ते पीठपाठीनपूरिते। अब्धौ तरंति मानुष्यारत्त्वत्पादपोतसंस्थिताः ॥१०९॥
बलात्कुंतमहाखड्गे निस्त्रिंशगजगर्जिते। रणे जयंति मानुष्यास्त्वन्नाम कवचावहाः ॥११०॥
कुष्टमंडलपीनादि जलोदरधरा नराः। त्वन्नाभभेषजेनैव नीरोगाश्च भवंति वै ॥१११॥
श्रृंखला बद्ध सर्वांगा निगडा पादबंधिताः। निर्बंधास्तव सन्नामनिस्त्रिंश कर वालतः ॥११२॥
वपुर्विनायका षेऽत्र दूरं यांति तवेक्षणात्। स्थावरं जंगमं क्ष्वेडं सुधापूरसमं भवेत् ॥११३॥
यद्यत्समीहितं लोके नृणां करतले गतम्। भवेज्जिनमहामंत्र वशीकरविधानतः ॥११४॥
आजवंजवमग्नानां देहिनां कृतगेहिनां। त्वमेवालंबनं नाथ! नान्यः कोऽपि जगत्त्रये ॥११५॥
गुणानां गणनातीत गणानां गणनां प्रभां। प्रभो! वक्ष्ये कथंचित्ते यथार्त्थां बुद्धिभावतः ॥११६॥
गंभीरा गणनातीताः प्रसन्नाः परमाः पराः। बहवस्ते गुणाः संति नातो नाथाधिकास्त्वयि ॥११७॥

सुगंधि से आये भौंरों की झंकार से अतिशय क्रुद्ध महाबली गज के चक्र में भी आ जाये तो भी गज उसका कुछ नहीं कर सकता। जिस मनुष्य के पास आपका ध्यानरूपी अष्टापद मौजूद है मत्त हाथियों के गण्डस्थल विदारण करने में भी चतुर सिंह उसे कष्ट नहीं पहुँचा सकता। आपके चरण सेवी मनुष्य का कल्पांतकालीन और अपने फुलिंगों से जाज्वल्यमान अग्नि भी कुछ नहीं कर सकती। महाप्रभो! जिस मनुष्य के हृदय में आपकी नामरूपी नागदमनी विराजमान है। चाहे सर्प कैसा भी भयंकर हो उस मनुष्य के देखते ही शीघ्र निर्विष हो जाता है।

दयासिन्धो! जो मनुष्य आपके चरण-रूपी जहाज में स्थित है चाहे वह बड़वानल से व्याप्त, मगर आदि जीवों से पूर्ण समुद्र में ही क्यों न जा पड़े बातोंबात में तैरकर पार पर आ जाता है। जिनेन्द्र! जिन मनुष्यों ने आपका नाम रूपी कवच धारण कर लिया है वे अनेक भाले, बड़े-बड़े हाथियों के चीत्कारों से परिपूर्ण, भयंकर भी संग्राम में देखते-देखते विजय पा लेते हैं। कोढ़, जलोदर आदि भयंकर रोगों से पीड़ित भी मनुष्य आपके नामरूपी परमौषधि की कृपा से शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। गुणाकर! जिनका अंग संकलों से जकड़ा हुआ है, हाथ-पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं यदि ऐसे मनुष्यों के पास आपका नामरूपी अद्भुत खड्ग मौजूद है तो वे शीघ्र ही बन्धन रहित हो जाते हैं। प्रभो! अनादि काल से संसार-रूपी घर में मग्न अनेक दुःखों का सामना करने वाले जीवों के यदि शरण हैं तो तीनों लोक में आप ही हैं।

प्रभो! कथंचित् गणनातीत मैं आपके गुणों की गणना करता हूँ। कृपानाथ! गम्भीर, गणनातीत, प्रसन्न, परम, अतीत इतने गुण ही आप में हैं इनसे अधिक आप में गुण नहीं ऐसी बात नहीं है

अतो नमो जिनेंद्राय नमस्तुभ्यं परात्मने। नमस्तुभ्यं शिवाधीश नमस्ते परमात्मने ॥११८॥
नमः कल्याणरूढाय नमस्तुभ्यं महामते। नमो योगाधिनाथाय नमस्ते वीरसन्मते ॥११९॥
इति नुत्वा वरैर्वाक्यैर्भगवंतं जिनेश्वरम्। प्रणिपत्य गौतमादींश्च गणाधीशान्नराधिपः ॥१२०॥
उपाविशन्नरे कोष्ठे धर्मामृतपिपासया। कुड्मलीकृत हस्ताब्जः पप्रच्छ श्रेयसं नृपः ॥१२१॥
व्याजहार तदा वीरः शुभ सर्वांगभाषया। ताल्वोष्ठ वक्त्रवेष्टाभिर्मुक्तस्तं प्रतिसद्वृषं ॥१२२॥
राजन्भव्योत्तमाधीश श्रृणु तत्वानि पूर्वतः। सम्यग्दर्शन हेतूनि मोक्षसद्धामसत्पदम् ॥१२३॥
जीवेतरास्त्रवा बंधः संवरो निर्जरा तथा। मोक्षश्चेति सुतत्त्वानि वेदनीयानि सद्बुधैः ॥१२४॥
स्थावरेतरभेदेन तत्र जीवो द्विधा मतः। स्थावरः पंचधा प्रोक्तोम्वप्तेजोवायुशाखिनः ॥१२५॥
चतुः पर्याप्तिप्राणैश्चैकाक्षत्वं तत्र वर्ततें। सूक्ष्मेतरविभेदेन पंचैते ते द्विधा मताः ॥१२६॥
पर्याप्तेतर सल्लब्ध्यपर्याप्तपद भेदतः। त्रैधं सर्वे भवंत्येवं देहिनो मगधेश्वरः ॥१२७॥
तत्र पृथ्वी चतुर्धा स्यात् पृथ्वीजीव स्तथाधरा। पृथ्वीकायिक इत्येवं पृथ्वीकायस्ततोऽपरः ॥१२८॥
एवं योज्यं च सर्वत्र जलादिषु चतुर्षु च। घनांगुलस्यासंख्यात भागदेहाः समादिमाः ॥१२९॥
वनस्पति शरीरं च संख्यातांगुलमिष्यते। उत्कर्षतो जघन्याच्चांगुला संख्यातभागकं ॥१३०॥
शुद्धेतर भुवामायुर्द्वादशाब्द सहस्त्रकम्। द्वाविंशति सहस्त्राण्यणपां सप्तसहस्त्रकं ॥१३१॥

किन्तु आप में अनंतानन्त गुण भरे हुए हैं। इसलिए हे कल्याण रूप जिनेन्द्र! आपके लिए नमस्कार है। महामुने! परम योगीश्वर वीर भगवान्! आप मेरी रक्षा करें ॥१००-११९॥

इस प्रकार भगवान् महावीर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर और गौतम गणधर को भी भक्तिपूर्वक सिर नवाकर महाराज श्रेणिक मनुष्य कोठे में बैठ गये एवं धर्मरूपी अमृत पान की इच्छा से हाथ जोड़कर धर्म बाबत कुछ पूछा-महाराज श्रेणिक के इस प्रकार पूछने पर समस्त प्रकार की चेष्टाओं से रहित भगवान् महावीर अपनी दिव्य वाणी से इस प्रकार उपदेश देने लगे-

राजन्! सकल भव्योत्तम! प्रथम ही तुम सात तत्त्वों का श्रवण करो। सातों तत्त्व सम्यग्दर्शन के कारण हैं और सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है। वे सात तत्त्व जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं। जीव के मूल भेद दो हैं-त्रस और स्थावर। स्थावर पाँच प्रकार हैं-पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति। ये पाँचों प्रकार के जीव चारों प्राण वाले होते हैं और इनके केवल स्पर्शन इन्द्रिय होती है। ये पाँचों प्रकार के जीव सूक्ष्म और स्थूल के भेद से दो प्रकार के भी कहे गए हैं और ये सब जीव पर्याप्त, अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इस रीति से तीन प्रकार के भी हैं।

पृथ्वी जीव के चार प्रकार हैं-पृथ्वी काय, पृथ्वी जीव, पृथ्वी और पृथ्वीकायिक। इसी प्रकार जलादि के भी चार-चार भेद समझ लेना चाहिए। आदि के चार जीव घनांगुल के असंख्यातवें भाग शरीर के धारक हैं। वनस्पतिकाय के जीवों का उत्कृष्ट शरीर परिमाण तो संख्यातांगुल है और जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग हैं। शुद्धतर पृथ्वी जीवों की आयु बारह हजार वर्ष की है। जल जीवों की बाईस हजार वर्ष की है। तेज कायिक जीवों की सात हजार और तीन वर्ष की है एवं

घस्त्रत्रिकं च तेजस्येवायौ त्रिकसहस्त्रकं। वनस्पत्यां सहस्त्राणां परायुर्दशसंमतम् ॥१३२॥
द्वित्र्युदध्यक्षभेदेन विकलास्त्रिविधाः मताः। संज्ञीतरविभेदेन पंचाक्षा द्विविधा तथा ॥१३३॥
पंचाक्षाः संज्ञिनस्तत्र भिद्यंते तुर्यधाखिलाः। नारकाःखलु तिर्यंचो जलजैर्भूजैस्त्रिविधापक्षिभेदतः ॥१३४॥
कर्मजा भोगभूजाता नरा अपि द्विधा नृपः। त्रिपंचकर्मभूष्वेव जाता मोक्षाधिकारिणः ॥१३५॥
देवाश्चतुर्विधा राजन् भावना वानव्यंतराः। ज्योतिष्काः कल्पजास्तत्र भावना दशधा पुनः ॥१३६॥
अष्टधा व्यंतराः पंच विधा ज्योतिः सुरानृपः। स्वर्गिणो द्विविधाः कल्पाःकल्पातीताश्चमागध ॥१३७॥
विस्तीर्णं जिननाथेन जीवतत्त्वं निरूपितं। अजीवः पंचधा प्रोक्तो धर्मादिपदभेदतः ॥१३८॥
लोकप्रदेशमात्रं च धर्मद्रव्यं प्रवर्तते। कारणं चैकभेदं चामूर्तं सदादिसंयुतं ॥१३९॥
अधर्मद्रव्यमाज्ञातं तादृशं स्थितिकारणं। वृक्षच्छायेव विख्यातमनंतगुणपूरितं ॥१४०॥
एकोऽनंतप्रदेशी च लोकेतर विभेदतः। द्विधाकाशोऽवगाहस्य दाता मूर्तोगृहादिवत् ॥१४१॥
कालाणवो विसंख्याता भिन्ना रत्नादिराशिवत्। वर्त्तना हेतवः षण्णां द्रव्याणां चक्रवन्नृप ॥१४२॥
शरीरेंद्रिय सद्गेह विमानोद्योतभेदतः। अनंताः पुद्गला लोके कर्माहारादिभेदतः ॥१४३॥
मिथ्यात्वाविरती योगाः कषाया आस्त्रवामताः। कारणं द्रव्यभावाभ्यां द्विधा स भिद्यते पुनः ॥१४४॥

वायु कायिक जीवों की तीन हजार और वनस्पति कायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है। विकलेन्द्रिय जीव तीन प्रकार के हैं। दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय। संज्ञी और असंज्ञी के भेद से पंचेन्द्रिय भी दो प्रकार हैं। पंचेन्द्रिय जीव मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी भेद से भी चार प्रकार के हैं। नारकी सातों नरक में रहने के कारण सात प्रकार के हैं। तिर्यचों के तीन भेद हैं–जलचर, थलचर और नभचर। भोग-भूमिज और कर्मभूमिज के भेद से मनुष्य दो प्रकार के हैं। जो मनुष्य कर्म भूमिज हैं वे ही मोक्ष के अधिकारी हैं। देव भी चार प्रकार के हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनवासी दस प्रकार हैं, व्यन्तर आठ प्रकार, ज्योतिषी पाँच प्रकार और वैमानिक दो प्रकार हैं। इस प्रकार संक्षेप से जीवों का वर्णन कर दिया गया है। अब अजीव तत्त्व का वर्णन भी सुनिये।

अजीव तत्त्व के पाँच भेद हैं-धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। उनमें धर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी जीव और पुद्गल के गमन में कारण एक अपूर्व और सत्ता रूप द्रव्य लक्षण युक्त है। अधर्म द्रव्य भी वैसा ही है किन्तु इतना विशेष है कि यह स्थिति में सहकारी है। आकाश के दो भेद हैं–एक लोकाकाश दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है और अलोकाकाश अनंत प्रदेशी है। लोकाकाश सब द्रव्यों को घर से समान अवगाह दान देने में सहायक है। काल द्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी एक और द्रव्य लक्षण युक्त है। यह रत्नों की राशि के समान व लोका-काश में व्याप्त है और समस्त द्रव्यों के वर्तना परिणाम में कारण है। कर्म वर्गणा, आहार वर्गणा आदि के भेद से पुद्गल द्रव्य अनन्त प्रकार का है और यह शरीर और इन्द्रिय आदि की रचना में सहकारी कारण है। आस्त्रव दो प्रकार है- द्रव्यास्त्रव और भावास्त्रव। दोनों ही प्रकार के आस्त्रव के

बंधोऽष्टधामतो राजन् कर्मभेदेन सोऽखिलः। द्रव्यभावविभेदेन द्विधा भिद्येत भूपते ॥१४५॥
चतुर्धा निखिलो बंधो विभावपरिणामतः। प्रथमः प्रकृतेर्बंध प्रदेशाख्यो द्वितीयकः ॥१४६॥
स्थितेर्बंधस्तृतीयस्तु व्यनुभागश्चतुर्थकः। आजवंजव सद्धेतुः कृषेर्बीजं यथा नृप ॥१४७॥
अनुप्रेक्षाव्रतैर्धर्मैः परीषहजयैस्तथा। क्रमेणां संवरो द्वेधा द्रव्यभाव विभेदतः ॥१४८॥
निर्जरा च द्विधा हीत्थं सम्यग्दृष्ट्यादिभेदतः। तथैकादशधा ज्ञेया संख्यातद्रव्यभेदतः ॥१४९॥
सविपाकाऽविपाका च निर्जरा हि द्विधामता। आद्या साधारणा नृणामपरा च कृता नृभिः ॥१५०॥
द्रव्यभावादिभेदेन कर्मणां मोचनं नृप। मोक्षः स कथ्यते सद्भिः सर्वा सात विदूरगः ॥१५१॥
पुण्यपापैर्द्विधा भिन्नैः प्रत्येकं तत्त्वमायुतम्। पदार्थ इति कथ्येत नवधा भव्यभूपते ॥१५२॥
पदार्थै र्नवभिः सार्द्धं सधामव्रतमुत्तमम्। अनगारव्रतं चाख्यद्भगवांस्तं विशेषतः ॥१५३॥
प्रश्नतो नृपतेश्चाख्यत्त्रिषष्टिनरगोचरं। पुराणं पूरितं पुण्यैर्विस्तीर्णं तत्कथानकैः ॥१५४॥
अन्यो यो द्वापरश्चित्ते नाशयामासतः नृपः। भगवद्वाक्यतो दीपादंधकारो निकेतने ॥१५५॥
निशम्येति तदा वाचः प्रणत्य गणनायकं । विशुद्धमनसा भूपः पप्रच्छ मुनिगौतमं ॥१५६॥
भगवन् मे मते जैने महती मतिरुत्तमा। पुराणश्रवणात् श्रद्धा बभूव भवभंजिका ॥१५७॥
तथापि मे गणाधीश! न स्याद् व्रतपरिग्रहः। कथं कथय योगींद्र तत्स्मयो मम मानसे ॥१५८॥

कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, आदि हैं। जीव के विभाव परिणामों से बन्ध होता है और उसके चार भेद हैं–प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध। आस्रव का रुकना संवर है। संवर के भी दो भेद हैं–द्रव्य संवर और भाव संवर और इन दोनों ही प्रकार के संवरों के कारण गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि हैं।

निर्जरा दो प्रकार की है–सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। सविपाक निर्जरा साधारण और अविपाक निर्जरा तप के प्रभाव से होती है। द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष के भेद से मोक्ष भी दो प्रकार का कहा गया है और समस्त कर्मों से रहित हो जाना मोक्ष है।

मगधेश! यदि इन्हीं तत्त्वों के साथ पुण्य और पाप जोड़ दिये जायें तो ये ही नव पदार्थ कहलाते हैं। इस प्रकार पदार्थों के स्वरूप वर्णन के अनंतर भगवान् ने श्रावक–मुनिधर्म का भी वर्णन किया। महाराज श्रेणिक के प्रश्न से भगवान् ने त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र का भी वर्णन किया। जिससे महाराज श्रेणिक के चित्त में जो जैनधर्म विषयक अंधकार था शीघ्र ही निकल गया। जब महाराज श्रेणिक भगवान् की दिव्यध्वनि से उपदेश सुन चुके तो अतिशय विशुद्ध मन से राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर को नमस्कार किया और विनय से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥१२०–१५५॥

भगवान्! पुराण श्रवण से जैनधर्म में मेरी बुद्धि दृढ़ है। संसार नाश करने वाली श्रद्धा भी मुझमें है तथापि प्रभो! मैं नहीं जान सकता मेरे मन में ऐसा कौन–सा अभिमान बैठा है। जिससे मेरी बुद्धि व्रतों की ओर नहीं झुकती। मगधेश के ऐसे वचन सुन गणनायक गौतम ने कहा–राजन्!

इति श्रेणिकसंप्रश्नादुवाच गणनायकः। भोग संसर्गतो गाढ मिथ्यात्वोदयतस्तथा ॥१५९॥
सर्पनिक्षेपणाद्राजन् दुश्चरित्रात्परिग्रहात्। बबंधिथेऽह पूर्वत्वं नरकायुश्च जन्मनि ॥१६०॥
बद्धदेवायुषां नृणां व्रतादानं भवेन्नृप। नान्येषां दर्शनादानं जायते चतुरायुषं ॥१६१॥
मा भैषीर्भवतो भीमाद्भव्योऽसि भवनां वर। पुराणश्रुतिसंभूत विशुद्ध्या शुद्धमानसः ॥१६२॥
अधः करणमासाद्य संस्थित्यांतर्मुहूर्ततः। अपूर्वकरणं तूर्णं गमयित्वा गमादिवत् ॥१६३॥
अनिवृत्तिविधानेना शम्येति करणत्रयात्। सप्तप्रकृतिसंतानमादिमं दर्शनं श्रितः ॥१६४॥
अंतर्मुहूर्त्ततश्चोद्ध्वं सम्यक्त्वोदयतो नृप। क्षायोपशमिकं राजन्नासादि च त्वया परं ॥१६५॥
सप्तप्रकृतिनिःशेषक्षयात्क्षायिकमाप्तवान्। निर्मलं निश्चलं नाशरहितं परमोदयम् ॥१६६॥
श्रद्धानं सप्ततत्त्वानां जिनास्योद्गीतसत्पदा। सद्युक्तियुक्तसच्छात्र प्रोक्तानां दर्शनं मतं ॥१६७॥
भो भव्यात्र भवे भव्यं दर्शनं दुर्लभं मतं। नाप्यं कष्टशतै राजन्! संसृतिद्रुमदाहकम् ॥१६८॥
दर्शनान्नोत्तमं किंचिद्दर्शनान्नोत्तमं सुखं। दर्शनान्नोत्तमं कर्म दर्शनान्नोत्तमं तपः ॥१६९॥
दर्शनात्साध्यते सिद्धिः दर्शनात्तीर्थनाथता। दर्शनादाप्यते नाको दर्शनात्सर्वसातता ॥१७०॥
यत्प्रभावाद् व्रता यांति कुव्रतान्यपि देहिनां। तद्विना कुव्रता यांति सुव्रतानि च योगिनां ॥१७१॥
माभैषीर्भव्य तल्लाभादागामिन्यत्र भारते। समत्युत्सर्पिणीकाले तीर्थकृत्पद्मनामभृत् ॥१७२॥

भोग के तीव्र संसर्ग से, गाढ़ मिथ्यात्व से, मुनिराज के गले में सर्प डालने से, दुष्चरित्र से और तीव्र परिग्रह से तूने पहले नरकायु बाँध रखी है इसलिए तेरी परिणति व्रतों की ओर नहीं झुकती। जो मनुष्य देवगति का बन्धन बाँध चुके हैं। उन्हीं की बुद्धि व्रत आदि में लगती है। अन्य गति की आयु बाँधने वाले मनुष्य व्रतों की ओर नहीं झुकते। नरनाथ! संसार में तू भव्य और उत्तम है। पुराण श्रवण से उत्पन्न हुई विशुद्धि से तेरा मन अतिशय शुद्ध है। सात प्रकृतियों के उपशम से तेरे औपशमिक सम्यग्दर्शन था। अन्तर्मुहूर्त में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाकर उन्हीं सात प्रकृतियों के क्षय से अब तेरे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई है। यह क्षायिक सम्यक्त्व निश्चल, अविनाशी और उत्कृष्ट है।

भव्योत्तम! जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित, पूर्वापर विरोध-रहित शास्त्रों द्वारा निरूपित निर्दोष सात तत्त्वों का श्रद्धान् सम्यग्दर्शन कहा गया है। इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अतिशय दुर्लभ मानी गई है। संसाररूपी विष वृक्ष के जलाने में सम्यग्दर्शन के सिवाय कोई वस्तु समर्थ नहीं। सम्यग्दर्शन से बढ़कर संसार में कोई सुख भी नहीं और न कोई कर्म और तप है। देखो! सम्यग्दर्शन की कृपा से समस्त सिद्धियाँ मिलती हैं। सम्यग्दर्शन की ही कृपा से तीर्थंकरपना और स्वर्ग मिलता है एवं संसार में जितने सुख हैं वे भी सम्यग्दर्शन की कृपा से बातोंबात में प्राप्त हो जाते हैं।

राजन्! इस सम्यग्दर्शन की कृपा से जीवों के कुव्रत भी सुव्रत कहलाते हैं और उसके बिना योगियों के सुव्रत भी कुव्रत हो जाते हैं। भव्योत्तम! तू अब किसी बात का भय मत कर। सम्यग्दर्शन की कृपा से आगे उत्सर्पिणी काल में तू इसी भरत क्षेत्र में पद्मनाभ नाम का धारक तीर्थंकर होगा।

तस्मादासन्नभव्योऽसि मा भयं व्रजसंसृतेः। इमानि भावितान्येवं कारणानि त्वयाऽधुना ॥१७३॥
समस्त दोषसंत्यक्तं सम्यग्दर्शनमाश्रितम्। विनयो विधिना राजंस्त्वयाऽसादिस्वभावतः ॥१७४॥
दधासि हृदयं शीले व्रतोद्योतनतत्परः। अष्टांग परिपूर्णं तच्छास्त्रं पारंगतवान्पुनः ॥१७५॥
संवेगं भावयंश्चित्ते भवांग भोगसंचये। विदधासि तपस्यायां मनो मागध सादरं ॥१७६॥
धर्मार्थे जिनपूजादौ स्वशक्त्या स्थाप्यतेधनं। समाधानं प्रचक्राण साधूनां विस्मयप्रदं ॥१७७॥
वैयावृत्त्यं यथोक्तं त्वं चर्करीषि सुयोगिषु। दोषातीतेषु सद्भक्तिं जिनेषु जितवैरिषु ॥१७८॥
धर्माचार्येषु वर्येषु पर्युपासनमादरात्। बहुश्रुतेषु जैनेषु भक्त्या चेक्रीयषे मुदा ॥१७९॥
आप्तोद्दिष्टेषु शास्त्रेषु भक्तिरातन्यते त्वया। अवश्यं करणीयेषु मतिरावश्यकेषु च ॥१८०॥
मार्गप्रभावनां नित्यं तनोषि वृषसिद्धये। वात्सल्यं स्थापयन्मार्गे जिनधर्म समाश्रितान् ॥१८१॥
युग्माष्ट भावनाभिश्च बध्नासि मम महोच्छ्रयं। तीर्थकृत्वं परं पुण्यं त्रैलोक्य क्षोभकारणं ॥१८२॥
अतो विसर्ज्य सत्प्राणान् प्राप्य रत्नप्रभां परां। मध्यमायुष्य सो भुज्य भविष्णुस्तीर्थनायकः ॥१८३॥
पुण्यधाम्नि पुरेनाथ किमन्योऽधोगतेः प्रियः। नित्यं दुर्गतिं मा सेवी श्रेणिकश्चेत्यवीवदत् ॥१८४॥
आदिशन्मुनिनाथस्तमिति भूप! निशम्यतां। कालसौकरिकस्यात्र शुभायाश्च विदुर्गतिः ॥१८५॥
तत्कुतश्चिदिति प्रश्ने गणपो वचनं जगौ। कालसौकरिकोऽत्रैव कुले नीचे स्थितोभृशं ॥१८६॥
स्वपापकर्मणो योगाद् बद्धसप्तमनारकः। सप्तन्वोऽधुनाजातिस्मरोऽभूदिति संस्मरत् ॥१८७॥

इसलिए तू आसन्न-भव्य है। तू अब निर्भय हो। तूने तीर्थंकर प्रकृति की सोलहकारण भावना भा ली है। समस्त दोष-रहित तूने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है और विनय गुण तुझ में स्वभाव से है। तेरा चित्त भी शीलव्रत की ओर झुका है। यह शीलव्रत व्रतों की रक्षार्थ छत्र के समान है। मगधेश्वर! तू अपने चित्त में संवेग की भावना करता है। भव भोग से निवृत्त होने के लिए तप में भी मन लगाता है। शक्त्यनुसार धर्मार्थ जिन पूजा आदि में तेरा धन भी खर्च होता है। साधुओं का समाधान भी तू आश्चर्यकारी करता है। शास्त्रानुसार तू योगियों का वैयावृत्य भी करता है। समस्त कर्म-रहित जिनेन्द्र भगवान् में तेरी भक्ति भी अद्वितीय है। भले प्रकार शास्त्र के जानकार उत्तमोत्तम आचार्यों की उपासना भी तू भक्ति और हर्षपूर्वक करता है। जिन प्रतिपादित शास्त्रों का तू भक्त भी है। इस समय षट् आवश्यकों में तेरी बुद्धि भी अपूर्व है। धर्म के प्रसार के लिए तू जैन मार्ग की प्रभावना भी करता है। जैनमार्ग के अनुयायी मनुष्यों में वात्सल्य भी तेरा उत्तम है।

राजन्! त्रैलोक्य क्षोभ का कारण परम पवित्र सोलहकारण भावना भाने से तूने तीर्थंकर पद का बन्ध भी बाँध लिया है। जब तू प्राणों का त्याग कर प्रथम नरक रत्नप्रभा में जायेगा और वहाँ मध्यम आयु का भोगकर भविष्यत्काल में नियम से रत्नधामपुरी में तू तीर्थंकर होगा।

मुनिनाथ गौतम के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने कहा-नाथ! अधोगति का प्रियपना क्या है ? श्रेणिक का भीतरी भाव समझ गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को काल सूकर की कथा सुनाई। उसने पहले अपने पापोदय से सप्तम नरक की आयु बाँध पुनः किस रीति से उसका छेद किया सो भी कह सुनाया।

पुण्यपापफलं नास्ति न संयोगश्च तैः सह। स्वयमेव प्रवर्त्तंते जंतवो जलवत्सदा ॥१८८॥
यदि पुण्यादि संबंधस्तत्त्वतोऽस्ति नृणां महान्। मया लंभि कथं जन्म नरस्य गतश्रेयसा ॥१८९॥
अतः पुण्यं न पापं न लोके शर्म यथाकथं। इत्यातर्क्य विवर्त्तेत हिंसादिककदंबके ॥१९०॥
मद्यमांसाशने रक्तो मुनीनां घातनोद्यतः। परमायुर्बबंधापि नारकस्य पुनः स च ॥१९१॥

तथान्यकथा—

शुभाख्या द्विजसंजाता मुनिं नाम पराङ्मुखा। कोपिनी गुणसद्धर्म सदाचारान् विलोक्य सा ॥१९२॥
तद्वार्त्ताकर्णनाद्दुष्टा कोपिनी द्वेषदूषिता। प्रवृद्धद्वेषपैशून्य रागलोभभरावहा ॥१९३॥
महानुभागसंपन्न स्त्रीवेदीदयदीपिता। तमः प्रभा महादुःख भोगिनी भविता नृपः ॥१९४॥

इति गणपसुवाक्यात्तृप्तकायो नरेंद्रो निखिलनरपतींद्रैः पूजितांह्रिर्जिनांह्रौ।
निहितवचनचेतो देहकर्मा स शर्मा समजनि जितशत्रुर्मागधः पुत्रपौत्रैः ॥१९५॥

स्थित्वा सप्तमनारकस्य विविधैः पापाढ्यजीवैः परैः।
चायुः कर्मविवर्तिभिर्युज इति प्रोद्भूतभावादिभिः॥
लब्ध्वा तीर्थपदस्य कारणपराः सद्भावना प्रोन्नतो।
भूत्वा तीर्थंकरस्य योग्यवृषभाग् रेजे सभायां नृपः ॥१९६॥
क्व नारकी सप्तमभूमिसंस्थितिः क्व रत्नप्रभाप्राथमिके बिले स्थितिः।
सुसन्मुखश्चेद्वृष एक उन्नतः करोति शर्म प्रगुणं नृणां सदा ॥१९७॥
धर्मतो भवति पापसत्क्षितिर्धर्मतो भवति दुर्गतेः क्षतिः।
धर्मतो भवति तीर्थनाथता धर्ममेव कुरुतां च यत्नतः ॥१९८॥

इति श्री श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभपुराणे श्रेणिक चरित्रे भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचिते क्षायिकसम्यग्दर्शनोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

इस प्रकार गौतम गणधर के वचनों से अतिशय सन्तुष्ट अनेक बड़े-बड़े राजाओं से पूजित महाराज ने जिनराज के चरण कमलों से अपना मन लगाया और समस्त कल्याणों से युक्त हो अपने पुत्र-पौत्रों के साथ शत्रु रहित हो गये (पापों से जो पहले सप्तम नरक की आयु बाँध ली थी उस आयु का अपने उत्कृष्ट भावों द्वारा महाराज श्रेणिक ने छेद कर दिया) तथा तीर्थंकर नाम कर्म की शुभ भावना भाने से भविष्य में तीर्थंकर प्रकृति का बंध बांधकर अतिशय शोभा को धारण करने लगे। देखो भावों की विचित्रता ? कहाँ तो सप्तम नरक की उत्कृष्ट स्थिति और कहाँ फिर केवल प्रथम नरक की मध्यम स्थिति ? यह सब धर्म का ही प्रसाद है। धर्म की कृपा से जीवों को अनेक कल्याण आकर उपस्थित हो जाते हैं और धर्म की कृपा से तीर्थंकर पद की भी प्राप्ति हो जाती है इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे निरन्तर धर्म का आराधन करें ॥१५६-१९८॥

इस प्रकार भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित महाराज श्रेणिक को क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति वर्णन करने वाला द्वादश सर्ग समाप्त हुआ।

त्रयोदश: सर्ग:

श्रीगौतमगणाधीशं गौतमं मुनिकोत्तमं। प्रणम्य स्वभावान् धीर: पप्रच्छाभयपंडित: ॥१॥
ततो जगौ गणीवाचा गंभीरजलदा भया। भवत्रिकसुसंबंधं वक्ष्ये भव्य नरोत्तम: ॥२॥
वेणातडागपुर्यां च रुद्रदत्तो द्विज: कदा। देवपाखंडिसंमोही चचाल तीर्थ हे तवे ॥३॥
उज्जयिन्यां कदाचित्स आगमत्तीर्थमोहित:। अर्हद्दासस्य सद्धाम्नि योषिज्जिनमती हृदि ॥४॥
प्रियस्य बुद्धिरूढस्य विवेश धरिणीसुर:। ययाचे जेमनं रात्रौश्रेष्ठिनं भुक्तिसिद्धये ॥५॥
अबीभणत्तदा तस्य सुकांता वामलोचना। विप्ररात्रौ ददेनैवभोजनं पाप पादकम् ॥६॥
को दोषोऽस्ति स्वसश्चेत्थं प्रश्नेऽवादीद्वच: शुभं। पतंगभृङ्गसद्दंशमक्षिकाजंतुघातत: ॥७॥
निंदितं सूरिभिर्भव्य भोजनं भूरि पापदम्। हिंसामयं च बीभत्सं नानादुर्गतिदायकम् ॥८॥
उलूकव्याघ्रसारंग नागभेरंडवृश्चिका:। मार्जारमूषकश्वानो जायंते क्षणदाशनात् ॥९॥
किं च भो विप्र! यामिन्यां मृते स्वजनबांधवे। यदि स्यात्स्नानशुद्धिर्न किं च लोकस्य शुद्धिता ॥१०॥

गण के स्वामी मुनियों में उत्तम श्री गौतम गणधर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बड़ी विनय से अभय कुमार ने अपने पूर्व भवों को पूछा–कुमार को इस प्रकार अपने पूर्वभव श्रवण की अभिलाषा देख गौतम गणधर कहने लगे–अभय कुमार! यदि तुम्हें अपने पूर्व वृत्तांत सुनने की अभिलाषा है तो मैं कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो–

इसी लोक में एक वेणातड़ाग नाम की पुरी है। वेणातड़ाग में कोई रुद्रदत्त नाम का ब्राह्मण निवास करता था वह रुद्रदत्त बड़ा पाखंडी था इसलिए किसी समय तीर्थाटन के लिए निकल पड़ा और घूमता–घूमता उज्जयिनी में जा निकला। उस समय उज्जयिनी में कोई अर्हद्दास नाम का सेठ रहता था उसकी प्रिय भार्या जिनमती थी वे दोनों ही दम्पती जैन धर्म के पवित्र सेवक थे। अनेक जगह नगर में फिरता–फिरता रुद्रदत्त सेठी अर्हद्दास के घर आया और कुछ भोजन माँगने लगा। वह समय रात्रि का था इसलिए ब्राह्मण की भोजनार्थ प्रार्थना सुन जिनमती ने कहा–यह समय रात्रि का है, विप्र ? मैं रात्रि में भोजन न दूँगी। सेठानी जिनमती के ऐसे वचन सुन रुद्रदत्त ने कहा बहन! रात्रि में भोजन देने में और करने में क्या दोष है। जिससे तू मुझे भोजन नहीं देती ? जिनमती ने कहा–प्रिय भव्य! रात्रि में भोजन करने से पतंग, डाँस, मक्खी आदि जीवों का घात होता है इसलिए महापुरुषों ने रात्रि का भोजन अनेक पाप प्रदान करने वाला हिंसामय, घृणित और अनेक दुर्गतियों का देने वाला कहा है। यह निश्चय समझो जो मनुष्य रात्रि में भोजन करते हैं वे नियम से उल्लू, बाघ, हिरण, सर्प, बिच्छू होते हैं और रात्रि भोजियों को बिल्ली और मूसों की योनियों में घूमना पड़ता है और सुन–जो मनुष्य रात्रि में भोजन नहीं करते उन्हें अनेक सुख मिलते हैं। रात में भोजन न करने वालों को न तो इस भव सम्बन्धी कष्ट भोगना पड़ता है और न परभव सम्बन्धी इसलिए हे विप्र! मैं तुम्हें रात में भोजन न दूँगी। सबेरा होते ही भोजन दूँगी। जिनमती की ऐसी युक्तियुक्त वाणी सुनकर विप्र ने शीघ्र ही रात्रिभोजन का त्याग किया और सबेरे

निशाभोजनसंरोधात्सुखी भवति मानवः। तज्जन्मसंभवं कष्टं नाप्नोति च परत्रजं ॥११॥
अतो ददामि नो विप्र क्षपायां जेमनं घनम्। प्रातर्भोज्यं च दास्यामि ततस्तेन व्रतं कृतम् ॥१२॥
प्रातस्तद्धाम्नि संभुज्य गंगायां पश्विकेन सः। जैनेनामा चचालाशु सम्यक्त्वव्रतभासिना ॥१३॥
विप्रो वीक्ष्य कदाचित्तं पिप्पलं पुष्पितार्चितं। पाषाणपुंजगुंजस्थं दीर्घशाखं सपक्षिणं ॥१४॥
देवोऽयमिति संकृत्यं मुखुरस्तद्गुणादिभिः। त्रिपरीत्यानमन्मूढो गूढमिथ्यात्वमोहितः ॥१५॥
तादृशं तं निरूप्याशु तद्बोधनकृते वणिक्। जगौ देवः किमाख्योऽयं किं माहात्म्यं वद द्विजः ॥१६॥
बोधिद्रुमाभिधो देवो विष्णुर्वास कृते स्थितः। निग्रहानिग्रहे शक्त इत्यवादीद्वचो द्विजः ॥१७॥
परिमृज्य पदाभ्यां स पत्राण्यादाय वृक्षतः। प्रसार्य छदनान्येव तेषामुपरि संस्थितः ॥१८॥
पश्य पश्य द्विजाधीश प्रतापं च तवेशिनः। तुष्टे दुष्टेन किं नृणां स्याद्वेवस्य वनस्पतेः ॥१९॥
द्विजेनानुतथैवास्तु समधायीति मानसे। को दोषश्चेत्कदाचिच्च समीक्षेऽस्य सुदेवतां ॥२०॥
पराभवपदं नूनं नेष्यामीति वचो जगौ। उपाध्यायोत्र कर्त्तव्ये त्वमेव देव वंचने ॥२१॥
इति दौष्ट्यं समावेद्य वणिग्मार्गे कदाचन। संप्राप्तः कपिरोमाख्य बल्लीजालं हसन् हृदि ॥२२॥

आनन्दपूर्वक भोजन कर सम्यक्त्व गुण से भूषित किसी जैन मनुष्य के साथ गंगास्नान के लिए चल दिया। मार्ग में चलते-चलते एक पीपल का वृक्ष, जो कि फलों से व्याप्त था। लम्बी शाखाओं का धारी, भाँति-भाँति के पक्षियों से युक्त और जिसके चौतरफा बड़े-बड़े पाषाणों के ढेर थे, दीख पड़ा। वृक्ष को देखते ही ब्राह्मण का कंठ भक्ति से गद्गद हो गया। उसे देव जान शीघ्र ही उसकी तीन प्रदक्षिणा दी और बार-बार उसकी स्तुति करने लगा। विप्र रुद्रदत्त की ऐसी चेष्टा देख और उसे प्रबल मिथ्यामती समझ उसके बोधार्थ वह वणिक् कहने लगा–

प्रियवर! कृपया कहो यह किस नाम का धारक देव है ? और इसका महात्म्य क्या है? विप्र ने जवाब दिया-विष्णु भगवान् के वास के लिए यह बोधिकर्म नाम का देव है। यह इच्छानुसार मनुष्यों का बिगाड़-सुधार कर सकता है। ब्राह्मण के मुख से वृक्ष की यह प्रशंसा सुन वणिक् ने शीघ्र ही उसमें दो लात मारी और उससे पत्ते तोड़कर उन्हें जमीन पर बिछाकर शीघ्र ही उनके ऊपर बैठ गया और विप्र से कहने लगा-प्रिय विप्र! अपने ईश्वर का प्रताप देखो। अरे! यह वनस्पति मनुष्यों पर क्या रिसखुश हो सकती है? वणिक् की वैसी चेष्टा देख रुद्रदत्त ने जवाब तो कुछ नहीं दिया किन्तु अपने मन में यह निश्चय किया कि अच्छा क्या हर्ज है? कभी मैं भी इसके देवता को देखूँगा। इस वणिक् ने नियम से मेरा अपमान किया है तथा इस प्रकार अपने मन में विचार करता-करता कहने लगा-भाई! देव की परीक्षा में किसी को मध्यस्थ करना चाहिए। ब्राह्मण रुद्रदत्त के ऐसे वचन सुन वणिक् ने उसके अन्तरंग की कालिमा समझ ली तथा वह वणिक् उसे इस रीति से समझाने लगा-प्रिय मित्र! यह पीपल एकेन्द्रिय जीव है। इसमें न तो मनुष्यों के समान विशेष ज्ञान है न किसी प्रकार की सामर्थ्य है। यह तो केवल पक्षियों का घर है। तुम निश्चय समझो सिवाय शुभाशुभ कर्म के यहाँ किसी में सामर्थ्य नहीं जो मनुष्यों का बिगाड़-सुधार कर सके।

परीत्य तं ननामाशु देवोऽयं मे वदन्निति। कराभ्यां वाडवश्शिवदंस्तत्पादाभ्यां परामृशन् ॥२३॥
परामृशन् गुदे दुष्टस्तत्क्षणं वेदनाऽभवत्। ततः समुत्थकं द्रूया कृंतितां गो विषण्णधीः ॥२४॥
हाहारवं तदा चक्रे पतितो वाडवो भुवि। वणिग्देवस्य माहात्म्यमद्भुतं हृदि संस्मरन् ॥२५॥
उपायै र्वणिजा स्वास्थ्यं विधाय प्रतिबोधितुम्। चक्रे द्विजस्य चोपायो नानाबोधनवाक्यतः ॥२६॥
पिप्पले पादपे विप्रं! न देवत्वं कदाचन। एकेंद्रियत्व सामान्यात्सादृशत्वं च पादपैः ॥२७॥
न ज्ञानं पिप्पले मित्र! न सामर्थ्यं न देवता। एकेंद्रियत्वमस्त्येव केवलं पक्षिभिः श्रितं ॥२८॥
काकभुक्तोज्झिताद्बीजादुत्पत्तिर्बोधिभूरुहः। मन्यते कथमित्थं च त्वया वृक्षो वनस्पतिः ॥२९॥
एकं हि प्राक्तनं कर्म विहाय च शुभाशुभम्। कर्त्तुं नान्यः समर्थोऽत्र निग्रहानिग्रहं पुनः ॥३०॥
धर्मिणां देहिनां देवा जायंते किंकराः सदा। पराङ्मुखा नृणां नूनं स्वजना अपि पापिनां ॥३१॥
इति वाक्यप्रबंधेन देव मौढ्यं निराकरोत्। तस्य श्रावकसन्मुख्य आगमाज्जिनवाक्यजात् ॥३२॥
ताभ्यामासादिसद्गंगां बुभुक्षुस्तत्र भुक्तवान्। श्रावको वाडवः स्नातुं गंगायां समुपाविशत् ॥३३॥
स्नात्वा चिरं प्रतर्प्याशु भ्रांत्या पित्रादिकं मुदा। उच्छाल्य वारिवृंदं च निर्जगाम ततो द्विजः ॥३४॥
यावद्भुक्त्वा स जैनश्च स्थितस्तावत्स आगतः। जैनेनावादि भो विप्र स्वोच्छिष्टं भुंक्ष्व भावतः ॥३५॥
कथमित्थं वणिग्योग्यमित्युक्ते स जगौ वचः। गंगांबुमिश्रितं भोज्यं भुंक्ष्व दोषो न तेंऽशतः ॥३६॥
उच्छिष्टं च कथं योग्यं न शुद्धं तीर्थवारिणा। इति चेत्तर्हि पापस्य शोधकं तीर्थवार्कथम् ॥३७॥
स्नानेन यदि शुद्धिः स्यान्मीनधीवरदेहिनः। शुद्धाः स्नानेन नाकं चेद्यांतु ते त्रिदिवालयम् ॥३८॥

प्रिय भ्राता! यह निश्चय है जो मनुष्य धर्मात्मा है बड़े-बड़े देव भी उनके दास बन जाते हैं और पापियों के आत्मीयजन भी उनके विमुख हो जाते हैं। इस प्रकार अपनी वचन भंगी से और जिनेन्द्र भगवान् के आगम की कृपा से श्रावक वणिक् ने शीघ्र ही ब्राह्मण का मिथ्यात्व दूर कर दिया और वे दोनों स्नेह पूर्वक बातचीत करते हुए आगे को चल दिये ॥१-३२॥

आगे चलकर वे दोनों गंगा नदी के किनारे पहुँचे। वणिक् तो भूखा था इसलिए वह खाने को बैठ गया और रुद्रदत्त शीघ्र ही स्नानार्थ गंगा में घुस गया। बहुत देर तक उसने गंगा में स्नान किया, पानी उछालकर पितरों को पानी दिया, पश्चात् जहाँ वह जैन श्रावक भोजन कर बैठा था वहीं आया। विप्र को आता देख वणिक् ने कहा–विप्रवर! यह झूठा भोजन रखा है, आनन्दपूर्वक इसे खाओ। वणिक् की ऐसी बात सुन विप्र ने जवाब दिया–वणिक् सरदार! यह बात कैसे हो सकती है? झूठा भोजन खाना किस प्रकार योग्य हो सकता है? अर्थात् नहीं। विप्र के ऐसे वचन सुन वणिक् ने जवाब दिया–गंगाजल मिश्रित है। इसमें झूठापन कहाँ से आया ? तू निर्भय हो खाओ। गंगाजल मिश्रित होने से इसमें जरा भी दोष नहीं। यदि कहो कि तीर्थजल से मिश्रित भी झूठा भोजन योग्य नहीं हो सकता तो तुम्हीं बताओ पाप की शुद्धि गंगाजल से कैसे हो सकती है? अरे भाई! यदि यह बात ठीक हो कि स्नान से शुद्धि हो जाती है तो मछलियाँ रात-दिन गंगा के जल में पड़ी रहती हैं। धीवर हमेशा नहाते-धोते रहते हैं उन्हें शुद्ध हो सीधे स्वर्ग चले जाना चाहिए। देखो! ॥३३-३८॥

स्नानेनान्नं न चेद्योग्यं भुक्तेस्तर्हि कथं भवेत्। शिवयोग्यो नृणां देही पंचपापादिपीडितः ॥३९॥
तपोजपव्रतध्यानैरांतरी शुद्धिरीष्यते। क्षमया शुभभावेन न तु स्नानेन देहिनां ॥४०॥
महापापमया जीवा अब्रह्मादिसमाकुलाः। न यांति स्नानतः शुद्धिमशुद्धा मद्यकुंभवत् ॥४१॥
अवगाह्य चिरं ज्ञान तीर्थं ये शुद्धितां गताः। विना नीरेण ते शुद्धा आज्यकुंभा यथा सदा ॥४२॥
निशम्य तद्वचो विप्रस्तीर्थमौढ्यं निराकरोत्। तत्रैवाथ च पंचाग्नि साधुनादुस्सहं तपः ॥४३॥
कुर्वतस्तापसस्यैव प्रज्वलद्वह्निवृंदके। पतत्प्राणिविघातं च दर्शयामास तस्य सः ॥४४॥
पाखंड्य मौढ्यमित्येवं तस्य तेन निराकृतं। वेदे या गीयते विप्रैः हिंसावाक्यं भयप्रदं ॥४५॥
तत्कथं तव सत्तथ्यं भाति चित्ते निरंकुशं। वृषो विना कृपां विप्र वर्त्तते चेद्यथा कथम् ॥४६॥
मार्जार मूषका व्याघ्रा मंडलादंतिवैरिणः। नागापल्ली मृगव्याघ्याः धर्मिणः स्युर्द्विजोत्तम ॥४७॥
आलभेत शिवं छागमिति तथ्यं भवेद्यदि। हंतव्यः सधनश्चौरैरिति तथ्यं च किं नहि ॥४८॥
नराश्च मेधयज्ञेषु हताः ये प्राणिनः खलु। ते यांति यदि नाकं च हंतव्या बांधवादयः ॥४९॥
प्राणिघाताद् वृषो नैव वेदे लोके च पापदात्। इत्यागमस्य संमौढ्यं तद्वाक्यात्सनिराकरोत् ॥५०॥
जैनतत्त्वोपदेशेन निराकृत्य वणिग्वरः। सांख्यादि परसद्वादान् जिनतत्त्वं न्यरूपयत् ॥५१॥

प्रिय भाई! तुम निश्चय समझो भीतरी शुद्धि स्नान से नहीं होती किन्तु तप, व्रत, जप, ध्यान, क्षमा और शुभ भाव से होती है। देखो शराब का घड़ा हजार बार धोने पर भी जैसे शुद्ध नहीं होता उसी प्रकार यह देह की स्नान से शुद्धि नहीं हो सकती किन्तु जिन मनुष्यों ने ज्ञान तीर्थ का अवगाहन किया है, ज्ञानतीर्थ में स्नान किया है, वे बिना जल के ही घी के घड़े के समान शुद्ध रहते हैं।

वणिक् के ऐसे वचन सुन ब्राह्मण ने शीघ्र ही तीर्थमूढ़ता का त्याग कर दिया। वहीं पर एक तपस्वी भी पंचाग्नितप कर रहा था। वणिक् ब्राह्मण रुद्रदत्त को उसके पास ले गया और जलती हुई अग्नि में अनेक प्राणियों को मरते दिखाया जिससे विप्र से पाखंडी तपोमूढ़ता भी छुड़वा दी और यह उपदेश भी दिया कि वेद में जो यह बात बतलाई है हिंसावाक्य भय का देने वाला होता है। यह पाखंडी तप महान् हिंसा का करने वाला है सो कैसे तुम्हारे मन में योग्य जँच सकता है ? प्रिय विप्र यदि बिना दया के भी धर्म कहा जायेगा तो बिल्ली, मूसे, बाघ, व्याध आदि को भी धर्मात्मा कहे जायेंगे यज्ञ में सफेद छाग का मारना यदि ठीक है तो धन-युक्त मनुष्य का चोरों द्वारा मारना भी किसी प्रकार पापप्रद नहीं हो सकता। यदि कहो कि नरमेध और अश्वमेध यज्ञ में जो प्राणी मारते हैं वे सीधे स्वर्ग चले जाते हैं तो उक्त यज्ञ भक्तों को चाहिए कि वे अपने कुटुम्बीजनों को भी यज्ञार्थ बलि दे। प्रिय रुद्रदत्त! वेद हो चाहे लोक हो किसी में पापप्रद प्राणीघात से कदापि धर्म नहीं हो सकता प्राणीघात से धर्म मानना बड़ी भारी भूल है। इस प्रकार अपने उपदेश से वणिक् ने रुद्रदत्त की आगम मूढ़ता भी छुड़वा दी। सांख्यादि दूसरे मतों के सिद्धांतों का खंडन करते हुए उसे जैन तत्त्वों का उपदेश दिया जिससे उस ब्राह्मण ने समस्त दोष-रहित बड़े-बड़े देवों

समस्तदोषनिर्मुक्ते देवे देवेंद्रवंदिते। निश्चिकाय निजं चित्तं ससम्यक्त्वं धरासुर ॥५२॥
जिनोदितेषु तत्त्वेषु प्रत्ययं कृतवान् द्विजः। निराकृत्य निजं मौढ्यं महामिथ्यात्ववासितं ॥५३॥
अथ तौ व्रतसंपन्नौ ससम्यक्त्वौ महाप्रियौ। गच्छंतावटवीमध्ये कुर्वीतौ तत्त्वसत्कथां ॥५४॥
पापात्संभ्रष्टमार्गौ तौ क्षणाद्दिग्मूढतां गतौ। देशकः कोऽपि नास्त्यत्र वने मानुषवर्जिते ॥५५॥
संन्यस्य वाडवो धीमांश्चतुर्द्धाहारमुत्तमं। हित्वा प्राणान् जिनध्यानी देवोऽभूत्प्रथमे दिवि ॥५६॥
तत्र भुक्त्वा चिरं शर्मामरंदेवी समाश्रितं। स्वायुरंते ततश्च्युत्वा त्वमभूः श्रेणिकात्मजः ॥५७॥
अतः परं तपः कृत्वा त्वं सेत्स्यसि जिनोदितं। अपृच्छत्स्वभवान् दंतिकुमारो मुनिपुंगवं ॥५८॥
तदाह भगवान् पुत्र समाकर्ण्य त्वद्भवान्। एकस्मिन् दारुणे भीमेऽरण्ये वृक्षादिमंडिते ॥५९॥
सुधर्माख्यो महायोगी योगोद्दीपितविग्रहः। ध्यानेनास्थाद्विशुद्धात्मविशदेनस्ववर्त्तिना ॥६०॥
अथो दारुण्यभिल्लाख्योऽधिष्ठाताविपिनस्य च। अरण्येऽग्निमदात्तं वा जानन् योगभरावहं ॥६१॥
दावानलश्च कल्पांत कालप्रख्यो मुनीश्वरं। स्थिरध्यानं न जज्वाल कायमात्रं न जंतुकं ॥६२॥

से पूजित सम्यक्त्व में अपने चित्त को लगाया। जिनोक्त तत्त्वों में श्रद्धा की और मिथ्यात्व की कृपा से जो उसके चित्त में मूढ़ता थी सब दूर हो गई ॥३९-५२॥

कदाचित् श्रावक व्रतों से युक्त सम्यक्त्व के धारी आपस में परम स्नेही वे दोनों तत्त्व चर्चा करते हुए मार्ग में जा रहे थे पूर्व पाप के उदय से उन्हें दिशा भूल हो गई। वह वन निर्जन वन था वहाँ कोई मनुष्य रास्ता बतलाने वाला न था इसलिए जब उन दोनों का संग छूट गया तो ब्राह्मण रुद्रदत्त ने शीघ्र ही संन्यास लेकर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया और प्रथम स्वर्ग में जाकर देव हो गया। वहाँ पर बहुत काल तक उसने देवियों के साथ उत्तमोत्तम स्वर्ग सुख भोगे। आयु के अन्त में मर कर अब तू अभय कुमार नाम का धारी राजा श्रेणिक का पुत्र उत्पन्न हुआ और अब जैन शास्त्रानुसार तप कर तू नियम से सिद्ध पद को प्राप्त होगा। इस प्रकार जब गौतम गणधर अभय कुमार के पूर्व भव वृत्तांत कह चुके तो दंतिकुमार ने भी विनय से कहा-प्रभो! मैं पूर्वभव में कौन था ? कैसा था ? कृपाकर कहें। दंतिकुमार के ऐसे वचन सुन गौतम भगवान् ने कहा-यदि तुम्हें अपने पूर्व भव के सुनने की इच्छा है तो मैं कहता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो- इसी पृथ्वी तल में एक अनेक प्रकार के वृक्षों से मंडित भयंकर दारुण नाम का वन है। किसी समय उस वन में अतिशय ध्यानी सुधर्म नाम का योगी तप करता था और अतिशय निर्मल अपने शुद्धात्मा में लीन था। उस वन का रखवाला दारुणमिल नाम का देव था। कार्यवश मुनिराज को बिना देखे ही उसने वन में अग्नि लगाई। कल्पांत काल के समान अग्नि की ज्वाला धधकने लगी। अग्नि ज्वाला से मुनिराज का शरीर भस्म होने लगा। उनके प्राण-पखेरू उड़ गए और मरकर मुनिराज अच्युत स्वर्ग में जाकर देव हो गये।

जब वनरक्षक देव ने मुनिराज का अस्थिपंजर देखा तो उसे परम दुःख हुआ। अपनी बार-बार निन्दा करता वह इस प्रकार विचारने लगा कि हाय!!! चरित्र से, पवित्र तप से शोभित बिना कारण मैंने मुनिराज के शरीर को जला दिया। हाय! मुझसे अधिक संसार में पापी कोई न होगा

विसर्ज्य स निजप्राणान् च्युतं चागमद्दिवम्। भिल्लस्तद्विग्रहं वीक्ष्य विषण्णोऽभूत्स्वनिंदकः ॥६३॥
निःकारणं मयास्यैव गात्रं चारित्रचित्रितम्। तपः पूतं नृपैर्वंद्यं संदग्धं पापिना शुभम् ॥६४॥
कालांते स ततश्च्युत्वा तत्राभूत्सिंधुरः शुभः। दीर्घांगो दीर्घदंतश्च चलदंजनसंनिभः ॥६५॥
अथो अष्टान्हिकायां च द्वीपं नंदीश्वरं सुरः। सोऽच्युतस्थश्चचालाशु तत्रापश्यत्तकं गजं ॥६६॥
अनुदेवो मुनेर्मुद्रां पूर्वजां तत्र सद्वने। समादाय स्थितो ध्याने समुत्तीर्य च पुष्करात् ॥६७॥
तदागमनमार्गे तं स्थितं वीक्ष्य गजोत्तमः। अभूज्जातिस्मरो वेगान्मुंचयन्नायनं जलम् ॥६८॥
प्रणिपत्य मुनिनाथं तं निंदयत्स्वभवावलीं। तद्वाक्यादाददौ श्राद्ध व्रतानि स सुदर्शनम् ॥६९॥
गते सुरे प्रपाल्याशु व्रतानि प्रासुकं जलम्। गज संमर्दितं पक्व फलान्यश्नन् गजोत्तमः ॥७०॥
स्वायुरंते स संन्यस्य समारोप्य स्वमानसे। जिनं विसर्जयामास प्राणांश्च स्वसमाधिना ॥७१॥
सहस्त्रारं समासाद्य नाकं नाकिसमाश्रितम्। समुत्पादशिलायां स समासेदे सुविग्रहं ॥७२॥
अंतर्मुहूर्त्ततः पूर्णं विग्रहं प्राप्तवान् सुरः। मेघवृंदं यथा व्योम्नि सर्वधातुविवर्जितम् ॥७३॥
लसत्कुंडलकेयूर तारहारभराश्रितम्। विस्फुरद्रत्नसंदीप्र किरीटं कटकान्वितम् ॥७४॥
सुगंधव्याप्तदिग्भागविशिष्टस्त्रग्विराजितम्। सर्वधातुमलाऽपायात्पवित्रमणिमादिभिः ॥७५॥
ऋद्धिभिर्लिङ्गितं दीप्रं दिव्यवस्त्रविराजितं। बभौ वपुर्विशालाक्षं निर्निमेषं सुरस्य च ॥७६॥

तथा इस प्रकार विचार करते उसकी आयु समाप्त हो गई और वह मरकर उसी जगह शुभ विशाल शरीर का धारक उन्नत दंतों से शोभित एवं अंजन पर्वत के समान ऊँचा हाथी हो गया।

कदाचित् अष्टाह्निका पर्व में अच्युत स्वर्ग का निवासी वह मुनि का जीव देव नन्दीश्वर पर्वत को वन्दनार्थ निकला और उसी वन में उसे वह हाथी दीख पड़ा। अपने अवधिज्ञान बल से देव ने अपनी पूर्व मुनिमुद्रा जान ली और पुष्कर विमान से उतरकर उस वन में उसी प्रकार ध्यान में लीन हो गया। हाथी ने जब उसे देखा तो उसे शीघ्र ही जातिस्मरण हो गया। जातिस्मरण होते ही उसकी आँखों से अश्रुपात होने लगा। अपने पूर्वभव की बार-बार निन्दा करते हुए शीघ्र ही उस देव को नमस्कार किया। देव के उपदेश से हाथी ने सम्यग्दर्शन के साथ शीघ्र ही श्रावकव्रत धारण किये। देव वहाँ से चला गया। हाथी भी प्रासुक जल और पक्व फलाहारों से श्रावक व्रत पालन करने लगा। अपने आयु के अन्त में संन्यास धारण कर हाथी ने समाधिपूर्वक अपना चोला छोड़ा और अनेक देवों से सेवित सहस्त्रार स्वर्ग में जाकर देव हो गया। जैसे क्षणभर में आकाश में मेघ समूह प्रकट हो जाता है। उसी प्रकार उपपाद शैय्या पर उत्पन्न होते ही अन्तर्मुहूर्त में उसे पूर्ण शरीर की प्राप्ति हो गई।

उसके कानों में कुण्डल और केयूर झलकने लगे। वक्षस्थल में मनोहर विशाल हार और सिर पर मनोहर रत्नजड़ित मुकुट झिलमिलाने लगे। चारों ओर दिशा सुगंधि से व्याप्त हो गई। निर्मल ऋद्धियों की प्राप्ति हो गई। शरीर दिव्य वस्त्र और आभूषणों से शोभित हो गया तथा नेत्र विशाल और निर्निमेष हो गये। जिस समय देव ने अपनी ऐसी सुन्दर दशा देखी तो वह विचारने

शय्यायां संस्थितो देवोऽलोकयत् कुकुभा दश। अपूर्वाः कल्पवृक्षाढ्या विस्मय व्याप्तमानसः ॥७७॥
कोऽहं कस्मात्समायातः किं स्थानं का गतिः किमु। सं नृत्यंति लयारूढा कामिन्यः कलभाषिकाः ॥७८॥
इति चिंतयतस्तस्यावधिः प्रादुर्बभूव वै। व्यज्ञायि तेन वृत्तांतं पूर्वदंतिभवोद्भवं ॥७९॥
सुर विज्ञापनाद् ज्ञात्वा वधेश्च स्वर्गसंस्थिति। धर्मे मतिं चकाराशु पूजयन् श्रीजिनादिकं ॥८०॥
ततो दिव्यांगना साकं सुखमश्नाति स्वर्भवम्। मेरुनंदीश्वरादौ च चर्चयन् जिन सद्गृहान् ॥८१॥
वाचामगोचरं शर्म भुक्त्वा तत्र निरंतरं। च्युत्वाऽयं तनुजो जातश्चेलिन्याः प्रोदरे शुभः ॥८२॥
इति सर्वे स्ववृत्तांतं श्रुत्वा पूर्वभवोद्भवं। तुष्टाः श्रेणिकसंमुख्याः प्रणेमुर्मुनिपुंगवं ॥८३॥
दृढसम्यक्त्वपूर्णाङ्गा स्मरंतो जिनशासनं। विविशुः स्वपुरं प्रीतास्तद्गुणग्रामरंजिताः ॥८४॥
आसाद्य भूपतिर्भूत्या महामंडलनाथतां। संसाध्याऽन्यमहीनाथान्बुभुजे शर्मसंततिं ॥८५॥
एकदा त्रिदशाधीशः सभायां नाकिभिः स्तुतः। सम्यक्त्वमहिमानं चावर्णयत् स्ववचोंशुभिः ॥८६॥
शुद्धदृग्भूषणैर्भाति भूपतिर्भरते वरे। श्रेणिकस्तत्समो नास्ति क्षायिकालंकृतो नरः ॥८७॥
यस्य दर्शनसच्छाखी कुदृष्टांतगजैः कदा। न क्षुभ्यते महाशास्त्रदृढस्कंधः स्थिरांह्रिकः ॥८८॥
कुसंगम कुठारेण नोछेद्यो वज्रबंधनः। कुशास्त्रवायुना नैव क्षमश्चालयितुं दृढः ॥८९॥

लगा–मैं कौन हूँ? यहाँ कहाँ से आया हूँ? मेरा क्या स्थान और क्या गति है? मनोहर शब्द करने वाली ये देवांगना क्यों इस प्रकार मुझे चाहती हुई नृत्य कर रही हैं? इस प्रकार विचार करते-करते अपनी अवधि ज्ञान बल से शीघ्र ही उसने, मैं व्रतों की कृपा से हाथी की योनि से यहाँ आया हूँ इत्यादि वृत्तांत जान लिया तथा वृत्तांत जानकर और अपने को स्वर्गस्थ देव समझकर जिनेन्द्र आदि को पूजते हुए उसने धर्म में मति की। दिव्यांगनाओं के साथ वह आनन्द सुख भोगने लगा। नन्दीश्वर पर्वत पर जिन मन्दिरों को पूजने लगा। इस रीति से वचन अगोचर स्वर्ग सुख भोग कर और वहाँ से च्युत होकर अब तू रानी चेलना के गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार गौतमगणधर द्वारा अभय कुमार व दंतिकुमार का पूर्व भव वृत्तांत सुन श्रेणिक आदि प्रधान पुरुषों को अतिशय आनन्द हुआ। सभी ने शीघ्र ही मुनिनाथ को नमस्कार किया। दृढ़सम्यक्त्वकथा से पूर्ण जिन शासन को स्मरण करते हुए भगवान् के गुणों में दत्तचित्त वे सब प्रीतिपूर्वक नगर में आ गये और बड़े-बड़े महाराजों को वश में कर महाराज श्रेणिक ने महामंडलेश्वर पद प्राप्त कर लिया ॥५३-८५॥

किसी समय महाराज इन्द्र अपनी सभा में अनेक देवों के साथ बैठे थे। अपने वचनों से सम्यक्त्व की महिमा गान करते हुए वे कहने लगे कि–भरत क्षेत्र में महाराज श्रेणिक सम्यग्दर्शन से अतिशय शोभित हैं। वर्तमान में उनके समान क्षायिक सम्यक्त्व का धारक दूसरा कोई नहीं। जिसके सम्यग्दर्शन रूपी विशाल वृक्ष को मिथ्यादर्शन रूपी गज तोड़ नहीं सकता और वह वृक्ष महाशास्त्ररूपी दृढ़ मूल का धारक और स्थिर है। कुसंगम कुठार उसे छेद नहीं सकता। कुशास्त्ररूपी

सम्यक्त्वशिखरी तस्य सिंचितः शास्त्रवारिणा। दृढभावमहास्कंधो न छेत्तुं शक्यते परैः ॥९०॥
इति संशयतस्तस्य सम्यक्त्वं च शचीपतेः। श्रुत्वा सर्वे दधुश्चित्ते विस्मयं धर्ममानसाः ॥९१॥
द्वौ सुरौ तत्परीक्षायायवतीर्णौ भुवं वराम्। चिंतयंताविति प्रीतौ मानसे स्मयसुंदरौ ॥९२॥
क्व पाकशासनस्यैव वर्णनं क्व नृपो नरः। इति संचिंत्य नद्यां तौ तस्थतुः श्रेणिकागमे ॥९३॥
मुनिवेषेण चैकोऽस्थादार्यिका कारतः पर। प्रवृद्धगर्भभावस्थः पिच्छिका कुंडकान्वितः ॥९४॥
मुनिरूप सुरो जालैर्मत्स्यानाकृष्य निक्षिपन्। करंडके तया साकं विवृद्धभ्रणयास्थितः ॥९५॥
आगच्छन्नृपतिर्वीक्ष्य तादृशं तद्युगं पथि। उत्तीर्य घोटकान्नत्वा जगौ दर्शनमंडितः ॥९६॥
विधीयते युवाभ्यां किं दुःकर्म जनहास्यकृत्। मायावी वचनं प्राख्यन्नृपाऽस्या गर्भसंभवे ॥९७॥
मीनमांसस्य संजाता वांछा तेन विधीयते। मत्स्याकर्षणमेवात्र नो दोषो मम भूपते ॥९८॥
मुनिवेषेण योग्यं नैतत्कर्मशुभवर्जितं। इति प्रोक्ते जगौ देवः किं विधेयं नृपाधुना ॥९९॥
अनया सह संघट्टो ममासीद्विजने वने। ततो गर्भस्य संभूतिर्मांसाशा च ततोऽजनि ॥१००॥
तत्पूरणं विधेयं हि मया नृप तदर्थिना। नृपेणाऽभाणि भो योगिन्मुनि रूपेण नोचितं ॥१०१॥

प्रबल पवन भी उसे नहीं चला सकती। उसका सम्यक्त्वरूपी वृक्ष शास्त्ररूपी जल से सिंचित है और उस सम्यग्दर्शन का दृढ़ भावरूपी महामूल छिन्न नहीं किया जा सकता। महाराज इन्द्र द्वारा श्रेणिक के सम्यग्दृष्टिपने की इस प्रकार प्रशंसा सुन सभा में स्थित समस्त देव आश्चर्य करने लगे एवं अति प्रीति युक्त किन्तु मन में अति आश्चर्य युक्त दो देव शीघ्र ही महाराज श्रेणिक की परीक्षार्थ पृथ्वी मण्डल पर उतरे और कहाँ तो महाराज श्रेणिक मनुष्य ? और कहाँ फिर उनकी इन्द्र द्वारा तारीफ ? यह भले प्रकार विचार कर जो महाराज श्रेणिक के आने का मार्ग था उस मार्ग पर स्थित हो गये। उनमें एक देव ने पिच्छिका कमण्डलु हाथ में लेकर मुनिरूप धारण किया और दूसरे ने आर्यिका का। वह आर्यिका गर्भवती बन गई और मुनि वेश धारी वह देव मछलियों को किसी तालाब से निकाल अपने कमण्डल में रखता हुआ उस गर्भवती आर्यिका के साथ रहने लगा। महाराज श्रेणिक वहाँ आये। उन्हें देख जल्दी घोड़े से उतर और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार कर कहने लगे–समस्त मनुष्यों का हास्यास्पद यह दुष्कर्म आप क्यों कर रहे हैं ? इस वेश में यह दुष्कर्म आपको सर्वथा वर्जनीय है। श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मायावी उस देव ने जवाब दिया–राजन्! गर्भवती इस आर्यिका को मछली के मांस खाने की अभिलाषा हुई है।

इसलिए इसी के लिए मैं मछलियाँ पकड़ रहा हूँ। इस कर्म से मुझे, कोई दोष नहीं लग सकता। देव की यह बात सुन श्रेणिक ने कहा–मुनिवेश धारण कर यह कर्म आपके लिए सर्वथा अयोग्य है। इसमें मुनि लिंग की बड़ी भारी निंदा है। आपको चाहिए कि इस काम को आप सर्वथा छोड़ दें। देव ने कहा–राजन्! तुम्हीं कहो इस समय हमें क्या करना चाहिए ? मेरा अनायास ही इस निर्जन वन में इस आर्यिका के साथ सम्बन्ध हो गया इसलिए इसे गर्भोत्पत्ति और मांसाभिलाषा हो गई। मैं इसे अब चाहता हूँ इसलिए मेरा कर्तव्य है मैं इसकी इच्छाएँ पूर्ण करूँ। छली मुनि की यह बात सुन राजा ने कहा–

मायावी वचनं चाख्यत्प्रघट्टं प्राप्य भूपते। सर्वेपि मादृशा एव शुभकार्यविदूरगाः ॥१०२॥
यस्यांगुल्लां भवेन्नूनं पीडनं तस्य वेदना। अन्ये हसंति दूरस्थास्त्वत्समा नृप पुंगव ॥१०३॥
नृपोऽवोचन्निकृष्टोऽसि सद्दृष्टिरपि नो भवान्। दयाहीनोऽसि चारित्रवर्जितोऽसि विबुद्धिमान् ॥१०४॥
सबभाण मया राजन्नोच्यते वितथं वचः। किमु गालिप्रदानं त्वं ददासि वर योगिनां ॥१०५॥
जैनत्वं त्वयि नाम्नास्ति न साक्षाद्गुणमंडितं। यतीनां गालिसंदानात्परमर्मविभाषणात् ॥१०६॥
वयं जैना इति प्रोक्ते प्रोवाच मगधेश्वरः। संवेगादिगुणाभावाद्दर्शनं न दयां विना ॥१०७॥
चारित्रं न हि धीमत्वं न हि चेदूग्विकुर्वणात्। संयतत्वं न योगित्वं शास्त्रवित्वं न च त्वयि ॥१०८॥
मार्गप्रभावनानाशान्नोचितं च तवेदृशम्। चेत्करिष्यसि जानासि त्वमेवाद्य फलाद् द्रुतम् ॥१०९॥
दुष्टवाक्यप्रबंधेन नासि त्वं मुनिरेव हि। मुंचेदं कर्म मद्धाम समेहि मुनिपुंगव ॥११०॥

तथापि मुने! इस वेश में तुम्हारा यह कर्तव्य सर्वथा अयोग्य है। आपको कदापि यह काम नहीं करना चाहिए। राजा के ऐसे वचन सुन देव ने कहा–

राजन्! आप क्या विचार कर रहे हैं ? जितने मुनि और आर्यिकाओं को आप देख रहे हैं वे सब मेरे ही समान शुभ कार्य से विमुख हैं। निर्दोष कोई भी नहीं। महाराज! जिसकी अँगुली दबती है उसे ही वेदना होती है। अन्य मनुष्य वेदना का अनुभव नहीं कर सकते वे तो हँसते हैं उसी प्रकार आप हमें देखकर हँसते हैं। देव की यह बात सुन श्रेणिक को कुछ क्रोध-सा आ गया। वे कहने लगे–मुने! तू मुनि नहीं है बड़ा निकृष्ट दया रहित चरित्र-विमुख और मूर्ख है। तेरे सम्यग्दर्शन भी नहीं मालूम होता। श्रेणिक के ऐसे वचन सुन देव ने जवाब दिया–राजन्! जो मैंने कहा है सो बिलकुल ठीक कहा है। क्या तेरा यह कर्तव्य है कि तू परम योगियों को गाली प्रदान करे ?

हमने समझ लिया कि तुझमें जैनीपना नाममात्र का है। यतियों को मर्म विदारक गाली देने से जैनीपने का तुझमें कोई गुण नहीं दीख पड़ता ? देव के ऐसे वचन सुन महाराज ने कहा–

मुने! संवेगादि गुणों के अभाव से तो तेरे सम्यग्दर्शन नहीं है और दया बिना चरित्र नहीं है। ऐसे दुष्कर्म करने से तू बुद्धिमान् भी नहीं है, नीतिमान्, योगी और शास्त्रवेत्ता भी नहीं। साधो! यदि तू ऐसा करेगा तो जैनधर्म की प्रभावना का नाश हो जायेगा। इसलिए तेरा यह कर्तव्य सर्वथा अनुचित है। यदि तू नहीं मानता तो तुझे नियम से इस दुष्कर्म का फल भोगना पड़ेगा। मुने! जो तुमने मुझसे दुष्ट वचन कहे हैं उनसे तुम कदापि मुनि नहीं हो सकते। इसलिए तुम शीघ्र ही दुष्कर्म का त्याग करो, जिससे तुम्हें मुक्ति मिले। अभी तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी सब आशा पूरी करूँगा और यदि तुम मेरे साथ नहीं चलोगे तो तुम्हें गधे पर चढ़ाकर तुम्हारा हाल-बेहाल करूँगा। इस प्रकार साम्य आदि वचनों से मुनि को समझा, आश्वासन दे राजा श्रेणिक उन दोनों को घर ले आये और अपने मंदिर में लाकर ठहराया। जिस समय मंत्रियों ने राजा श्रेणिक को चारित्र भ्रष्ट मुनि और आर्यिका के साथ देखा तो वे कहने लगे–

राजन्! आप क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं आपके संग चरित्र भ्रष्ट इस मुनि-आर्यिका युगल के

तवाशां पूरयिष्यामि नागमिष्यसि चेद् द्रुतम्। कारयिष्यामि ते नूनं गर्दभारोहणं मुने ॥१११॥
इति साम्यादिवाक्येन समाश्वास्य गृहं तकौ। नीतौ च स्थापयामास मंदिरे श्रेणिको नृपः ॥११२॥
तदोचुर्मंत्रिणो राजन्नस्य चारित्रवर्जिनः। संगस्तवकथं योग्यो विशिष्टसायिकेशिनः ॥११३॥
अतिचारो न ते देव दर्शनस्य नृपो जगौ। अयं मुनिसमाकारो जैनं मत्वा नुतो मया ॥११४॥
न चैवं दर्शनस्यातिचारश्चारित्रजो भवेत्। तच्चारित्रं न मय्यस्ति को दोषोऽस्यनुतौ मम ॥११५॥
दृष्ट्वेति दर्शनविधिं त्रिदशाधिपेन तस्य स्तुतं सुर वरौ हृदये प्रहृष्टौ।
साक्षाद्विभूय विनतौ चरणांस्तयोश्च जायापतिद्वितययोर्वरशर्मभाजौ ॥११६॥
गंगा शीता प्रमुख सुजलैश्चंद्रमध्यैः सुभक्त्या संस्नाप्योच्चैः कनककलिते विष्टरे रोपयित्वा।
वस्त्राभूषा कुसुमनिवहैः पूजयित्वा प्रकथ्य देवाधीशप्रकृतसुनुतिं दंपती तौ सुरौ च ॥११७॥
वारंवारं प्रगुण सुगणैर्दर्शनात्संप्रणुत्य मुक्त्वा पुष्पप्रचयरचनां व्योमतो वाद्यनादात्।
कृत्वा स्वर्गं सुगुणविदितं प्रापतुस्तद्गुणांश्च चित्ते कृत्वा प्रमदभरकैः पूर्ण सर्वाङ्गगात्रौ ॥११८॥
दर्शनात्सुर वरैः कृतं परं पूजनं परमतोषदायकं दर्शनात्त्रिदशनाथ
संस्तुतिर्जायते जगति देहिनां सदा ॥११९॥

इति श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभपुराणे श्रेणिकस्य भट्टारक श्री शुभचंद्राचार्य विरचिते देवातिशय प्राप्तिवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

साथ कदापि योग्य नहीं हो सकता। आपको इनका सम्बन्ध शीघ्र ही छोड़ देना योग्य है। चारित्र भ्रष्ट मुनि-आर्यिका के नमस्कार करने से आपके दर्शन में अतिचार आता है। मंत्रियों के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने जवाब दिया ॥८६-११३॥

वेषधारी इस मुनि को मैंने वास्तविक मुनि जान नमस्कार किया है इससे मेरे दर्शन में कदापि अतिचार नहीं आ सकता किन्तु चरित्र में अतिचार आता है सो चरित्र मेरे नहीं हैं इसलिए इनको नमस्कार करने पर भी कोई दोष नहीं। महाराज श्रेणिक का ऐसा पांडित्य देख और इन्द्र द्वारा की हुई प्रशंसा को वास्तविक प्रशंसा जान वे दोनों देव अति आनंदित हुए। अपना रूप बदल उन्होंने शीघ्र ही आनन्दपूर्वक रानी चेलना और महाराजा श्रेणिक के चरणों को नमस्कार किया। सुवर्ण सिंहासन पर बैठाकर दोनों देवों ने भक्तिपूर्वक गंगा, सीता आदि नदियों के निर्मल जल से राजा रानी को स्नान कराया, वस्त्राभूषण फलों से प्रशंसा पूर्वक उनकी पूजा की। अनेक अन्याय गुण और सम्यग्दर्शन से शोभित उन दोनों दंपती को नमस्कार कर आकाश में पुष्प-वर्षा के साथ वाद्यनादों को कर अतिशय हर्षित और राजा रानी के गुणों में दत्तचित्त वे दोनों देव कीर्ति भाजन बने। सो ठीक ही है सम्यग्दर्शन की कृपा से सम्यग्दृष्टियों की बड़े-बड़े देव परम सन्तोष देने वाली पूजा करते हैं और संसार में सम्यग्दर्शन की कृपा से इन्द्रों द्वारा प्रशंसा भी मिलती है ॥११४-११९॥

इस प्रकार भविष्यत् काल के पद्मनाभ तीर्थंकर के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित देव द्वारा अतिशय प्राप्ति-वर्णन करने वाला त्रयोदश सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्दशः सर्गः

अथो सदसि संप्राप्याऽभयो भय विवर्जितः। प्रणत्य श्रेणिकं भूपं तस्थौ स्थिति विवेदकः ॥१॥
सभायां सर्वसभ्यानां तत्वं सर्वज्ञभाषितम्। नानाभेदविभिन्नांग कथयामास कौतुकी ॥२॥
ततोऽवसरमासाद्य स्मरन्पूर्वभवं हृदि। निर्विण्णो भवभोगेषु जगौ स जनकं प्रति ॥३॥
अस्मिन्नसारसंसारे पुरुषा बहवो गताः। युगादौ वृषभाद्याश्च भरताद्याश्च चक्रिणः ॥४॥
संसाराब्धौ सदाकर्म नीरे जन्मसु मीनके। दुःखावर्त्ते जरातीव्र कल्लोले पापकर्दमे ॥५॥
नानामृति तटे भीमे चतुर्गति सुवाडवे। वेदनाकच्छपे तीव्रे दरिद्रसिकताकुले ॥६॥
नानाश्रवसरिद्वृंद प्रवाहपरिपूरिते। धर्मयानं विना राजन्नान्यदुत्तारकं मतं ॥७॥
सप्तधातुमयो देहो नवद्वारैः सदास्त्रवन्। पापकर्ममयः पाप कारणं शर्मवारणम् ॥८॥
को रतिं तत्र संधत्ते मतिमान्मलमंडिते। करणग्राम संदीप्ते चेतो व्यापारपूरिते ॥९॥

कदाचित् महाराज सानन्द सभा में विराजमान थे। समस्त भयों से रहित संसार की वास्तविक स्थिति जानने वाले अभयकुमार सभा में आये। उन्होंने भक्तिपूर्वक महाराज को नमस्कार किया और सर्वज्ञभाषित अनेक भेद-प्रभेदयुक्त वह समस्त सभ्यों के सामने वास्तविक तत्त्वों का उपदेश करने लगा। तत्त्वों का व्याख्यान करते-करते जब सब लोगों की दृष्टि तत्त्वों की ओर झुक गई तो वह अवसर पाकर अपनी पूर्वभवावली के स्मरण से चित्त में अतिशय खिन्न हो अपने पिताजी से कहने लगा-

पूज्य पिताजी! इस संसार से अनेक पुरुष चले गये। युग के आदि में वृषभ आदि तीर्थंकर भरत आदि चक्रवर्ती भी कूच कर गये।

कृपानाथ! यह संसार एक प्रकार का विशाल समुद्र है क्योंकि समुद्र में जैसे मछलियाँ रहती हैं संसाररूपी समुद्र में भी जन्मरूपी मछलियाँ हैं। समुद्र में जैसे भंवर पड़ते हैं संसाररूपी समुद्र में भी दुःखरूपी भँवर हैं। समुद्र में जैसे कलोलें होती हैं। संसार समुद्र में भी जरारूपी तीव्र कलोलें मौजूद हैं। समुद्र में जिस प्रकार कीचड़ होती है संसाररूपी समुद्र में भी पापरूपी कीचड़ है। जैसे समुद्र तटों से भयंकर होता है उसी प्रकार संसाररूपी समुद्र भी मृत्युरूपी तट से भयंकर है। समुद्र में जैसे बड़वानल होता है संसार समुद्र में भी चतुर्गतिरूप बड़वानल है। समुद्र में जैसे कछुवे होते हैं संसाररूपी समुद्र में भी वेदनारूपी कछुवे मौजूद हैं। संसार में जैसे बालू के ढेर होते हैं संसाररूपी समुद्र में भी दरिद्रतारूपी बालू के ढेर मौजूद हैं एवं समुद्र जैसे अनेक नदियों के प्रवाहों से पूर्ण रहता है संसार समुद्र भी उसी प्रकार अनेक प्रकार के आस्रवों से पूर्ण है। महनीय पिताजी! बिना धर्मरूपी जहाज के इस संसार से पार करने वाला कोई नहीं। यह देह सप्तधातुमय है। नाक, आँख आदि नौ द्वारों से सदा मल निकलता रहता है। यह पाप कर्ममय पाप का उत्पादक और कल्याण का निवारक है। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो इन्द्रियों के समूह से देदीप्यमान, मन के व्यापार से

भोगा आतृप्ति संभुक्ता न तृप्तिं कुर्वते नृप। सेव्यमानाः प्रवर्द्धन्ते तैलेनेवाग्न्यः खलु ॥१०॥
नाकभोगैर्न संतृप्तिर्येषां तेषां कथं भवेत्। पीडनापोषितां काष्टाद्वह्नेरिव तृणाग्रतः ॥११॥
इति संसारचापल्ये प्रसीद परमेश्वर। प्रव्रज्यायै पितुर्नृणां नानाशर्म भवेन्नृप ॥१२॥
एतावत्कालपर्यंतं त्वत्प्रसादान्मया नृप। अभोजि राजकीयं च शर्मस्त्रीवृंद संभवं ॥१३॥
इत्याकर्ण्य वचो भूभृद्दुःसहं कर्णयोर्द्वयोः। मुमोह धरिणीं प्राप्तो बभूवेव विचेतनः ॥१४॥
ततः शीतोपचाराद्यैः प्रापितश्चेतनां नृपः। बभाषे वचनं पुत्र! किमुक्तं मम भीतिदम् ॥१५॥
विना त्वया खिलं राज्यमुद्वसं तनु संभव। मयि राज्यं प्रकुर्वाणेन कर्त्तव्यं त्वया तपः ॥१६॥
पश्चात् चतुर्थे वयसि तपो ग्राह्यं जिनांतिके। इदानीं वयसा नूनं लघीयान् नृपपुंगवः ॥१७॥
क्व रूपं क्व च सौभाग्यं क्व लीला राजसंभवा। क्व लावण्यं पक्व वामित्वं तव देहनिर्भरं ॥१८॥
असाधारा मनीषा च स्फुटं बलिभिः स्तुतम्। वीरत्वं वीरसामान्यं त्वयि वर्तेते देहज ॥१९॥
गृहाणेदं शुभं भारं राजकीयं नृपादिभिः। सेव्यं पुण्यवतां प्राप्यं त्यजत्वं तप आग्रहं ॥२०॥

परिपूर्ण, विष्ट आदि मलों से मंडित इस शरीर से प्रीति करेगा? पूज्य पिताजी! ज्यों-ज्यों इन भोगों का भोग और सेवन किया जाता है त्यों-त्यों ये तृप्ति को तो नहीं करते किन्तु घी की आहुति से जैसे अग्नि प्रवृद्ध होती चली जाती है। वैसे ही भोगोपभोग भी प्रवृद्ध होते जाते हैं। काष्ठ से जैसे अग्नि की तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार जिन मनुष्यों की तृप्ति स्वर्ग भोग भोगने से भी नहीं हुई है। उन मनुष्यों की तृप्ति थोड़ी-सी स्त्रियों के संपर्क से कैसे हो सकती है ? संसार को इस प्रकार क्षण-भंगुर समझ पूज्य पिताजी! मुझ पर प्रसन्न होईए और मनुष्यों को अनेक कल्याण देने वाली तपस्या के लिए आज्ञा दीजिये। पूज्यपाद! आपकी कृपा से आज तक मैं राज्य सम्बन्धी सुख और स्त्रीजन्य सुख खूब भोग चुका। अब मैं इससे विमुख होना चाहता हूँ।

पुत्र के ऐसे वचन सुन राजा श्रेणिक ने अपने कान बन्द कर लिए। उनके चित्त पर भारी आघात पहुँचा मूर्च्छित हो वे शीघ्र ही जमीन पर गिर गये और उनकी चेतना थोड़ी देर के लिए एक ओर किनारा कर गई। महाराज श्रेणिक की ऐसी विचेष्टा देख उन्हें शीघ्र सचेतन किया गया। अब वे बिल्कुल होश में आ गये तो कहने लगे-प्रिय पुत्र! तूने यह क्या कहा ? तेरा यह कथन मुझे अनेक भय प्रदान करने वाला है। तेरे बिना नियम से यह समस्त राज्य शून्य हो जायेगा। मैं राज्य करूँ और तू तप करे यह सर्वथा अयोग्य है।

जिन भगवान् के समीप जाकर तुझे चौथेपन में तप धारण करना चाहिए इस समय तेरी उम्र निहायत छोटी है। कहाँ तो तेरा रूप ? कहाँ तेरा सौभाग्य! कहाँ राज्य योग्य तेरी क्रीड़ा ? कहाँ तेरा लावण्य तथा कहाँ तेरी युक्तियुक्त वाणी और कोमल देह ? तेरी बुद्धि इस समय असाधारण है। बलवान्पना, वीरता, वीरमान्यता जैसी तुझमें है वैसी किसी में नहीं। प्रिय पुत्र! अनेक राजा और सामन्तों से सेवनीय पुण्यवानों द्वारा प्राप्त करने योग्य यह राज्य-भार तुम ग्रहण करो और तप का हट छोड़ो। पिताजी के ऐसे मोह परिपूर्ण वचन सुन अभय कुमार ने कहा ॥१-२०॥

तदावादीत्स भो तात गदिता जनका जनैः। जनयंति शुभं शर्म ते तत्सर्वं तपो बलात् ॥२१॥
चतुर्थे वयसि ग्राह्यं त्वयोक्तं तत्कथं वयः। प्राप्यते यमदंतस्यमवेद्यं तज्जनैः सदा ॥२२॥
रूपादिकक्षणध्वंसी सारातीतं विनश्वरम्। मिथ्याबुद्धिरसारा सा या गृहादिकसंस्थिता ॥२३॥
राज्यं विनश्वरं नाथ! न ग्रहीष्यामि निश्चितं। अंगीकरोमि विध्वंसरहितं निश्चलं शुभं ॥२४॥
ईदृशं बहुधा राज्यं भुक्तपूर्वं नराधिप। अपूर्वमिष्यते नून-मदृष्टं क्षयवर्जितम् ॥२५॥
अतः पूर्वं त्वदाज्ञा च कृता हि बहुशो नृप। न करिष्येऽद्य चेन्नूनं भविष्यति विरूपकं ॥२६॥
अतो देहि समादेशं प्रसीद पुरुषोत्तम। इति वाक्यैः प्रबौध्याशुजनकं साश्रुलोचनं ॥२७॥
संबोध्यजननीं स्वीयां विलापमुखरां वरां। भामिनीश्च महारूपविभवा मदनावहा ॥२८॥
समं गजकुमाराद्यैरभयो दंतिनं परम्। समारुह्य प्रतस्थे च वार्यमाणो नृपादिभिः ॥२९॥
महावीरं समासाद्य विपुलाचलसंस्थितम्। हित्वा सर्वाणि यानानि रुरोह समवसृतिं ॥३०॥
तत्रासीनं जिनं प्रेक्ष्य त्रिःपरीत्यप्रपूज्यश्च। नत्वा स्तुत्वा मुनींद्रं च प्रार्थयामास दीक्षणं ॥३१॥

पूज्य पिताजी! संसार में जितने भी उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं वे तप की कृपा से मिलते हैं ऐसे बड़े-बड़े पुरुषों के कथन हैं। आपने जो यह कहा कि तप चौथे वय में धारण करना चाहिए सो चौथेपन में शरीर तप के योग्य रहता ही कहाँ है ? उस समय तो शरीर मन्द पड़ जाता है। इंद्रियाँ भी शिथिल पड़ जाती हैं। इसलिए स्वस्थ अवस्था में ही तप महापुरुषों द्वारा योग्य माना गया है। महनीय पिताजी! रूप लावण्य आदि क्षणिक हैं, निस्सार हैं। गृहादिक में संलग्न जो बुद्धि है सो मिथ्या बुद्धि है और असार है। कृपानाथ! यह राज्य भी विशानीक है मैं कदापि इस राज्य को स्वीकार न करूँगा किन्तु समस्त पापों से रहित मैं निश्चय तप धारण करूँगा। मैंने अनेक बार इस राज्य का भोग किया है मेरे सामने यह राज्य अपूर्व नहीं हो सकता। अक्षय सुख मोक्ष सुख ही मेरे लिए अपूर्व है। पूज्यवर! मैंने आपकी आज्ञा का भी अच्छी तरह पालन किया है। अब मैं भविष्य काल में आपकी आज्ञा पालन न कर सकूँगा इसलिए आप कृपाकर मुझे तप के लिए आज्ञा प्रदान करें। पुत्र को तप के लिए उद्यमी देख महाराज श्रेणिक की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी तथापि अभय कुमार उन्हें अच्छी तरह समझाकर अपनी माता को भी सम्बोधन कर और अतिशय मनोहरांगी अपनी प्रिय स्त्रियों को भी समझाकर शीघ्र ही राजमहल से निकले और राजा आदि के रोके जाने पर भी गजकुमार आदि के साथ हाथी पर सवार हो विपुलाचल की ओर चल दिये।

उस समय विपुलाचल पर महावीर भगवान् का समवसरण विराजमान था इसलिए ज्योंही अभय कुमार विपुलाचल के पास पहुँचे। उन्होंने राजचिह्न छोड़ दिये गज से उतर शीघ्र ही समवसरण में प्रवेश किया। समवसरण में विराजमान महावीर भगवान् को देख तीन प्रदक्षिणा दी, पूजन, नमस्कार और स्तुति की। गौतम गणधर को भी प्रणाम किया और दीक्षार्थ प्रार्थना की। वस्त्राभूषण

ततो वसनभूषादिन्मुक्तवा तद्वचसाऽभयः। बहुभिः बंधुभिः सत्रं जग्राह परमं तपः ॥३२॥
त्रयोदशविधं वृत्तं चचार चरणान्वितः। ध्यानासीनः शिवाकांक्षी चिंतयन् परमं पदं ॥३३॥
हंसतूलसुशय्यायां सवस्त्राया च यैः सदा। सुप्तं ते शेरतेभूमौ शर्करोपलसन्मृदि ॥३४॥
शीतार्त्तौ शय्यते येन हर्म्ये गाढं सयोषितम्। स्थीयते तेन नद्यांते निशि शीतमरुद्भरे ॥३५॥
हरिचंदनलिप्तांगजुष्णे धारागृहे स्थितः। क्ष्माभृन्मूर्ध्नि स्थितः सोऽपि खरांशुकिरणाहतः ॥३६॥
वर्षार्त्तौजलसंचार वर्जिते सदने स्थितः। वृक्षमूले जलाकीर्णे स्थितं तेन सदंसके ॥३७॥
सूक्ष्मचीनांशुकैर्येन परिवव्रे स्वविग्रहं। चतुष्पथे स निर्वस्त्रस्तिष्ठति प्रौढमानसः ॥३८॥
स्वर्णामत्रे चिरं येन भुक्तं रत्नविराजते। पाणौ संभुज्यते तेन क्षरद्धृतजलादिके ॥३९॥
पक्वान्नपायसाद्यैश्च व्यंजनैर्भुज्यते सदा। तैलकोद्रवकंग्वादिपारणायां विव्यंजनम् ॥४०॥
हस्तिघोटकवाहाद्यैर्गतं यैश्च पदे पदे। पादेन गम्यते तैश्च भूतले कंटकाकुले ॥४१॥
सप्तभूमे गृहे येन सुप्तं स्वार्णेमणिप्रभे। सुप्यते तेन शैलेषु दरीगेहे ससर्पके ॥४२॥
यः स्तुतोभूरिभूमीशैः समदैः सबलैः परैः। स्तूयते यतिनाथैः स निर्मदैश्चरणोज्वलैः ॥४३॥

आदि का त्याग कर बहुत से कुटुंबियों के साथ शीघ्र ही परम तप धारण किया।

तेरह प्रकार का चरित्र पालने लगे एवं ध्यानैकतान मुक्ति के अभिलाषी वे परमपद की आराधना करने लगे। जो अभय कुमार आदि महापुरुष अनेक कोमल-कोमल वस्त्रों से शोभित हंसों के समान स्वच्छ रुई से बने मनोहर पलंगों पर सोते थे वे ही अब ककरीली जमीन पर सोने लगे। जो शीतकाल में मनोहर-मनोहर महलों में कामविह्वला रमणियों के साथ सानन्द शयन करने वाले थे वे चौतरफा अतिशय शीतल पवन से व्याप्त नदी के तीरों पर सोते हैं। ग्रीष्मकाल में जो शरीर पर हरिचंदन का लेप करा फुवारा सहित महलों के रहने वाले थे वे ही अब अतिशय तीक्ष्ण सूर्य के आतप को झेलते हुए पर्वतों की शिखरों पर निवास करते हैं।

जो उत्तम पुरुष वर्षाकाल में, जहाँ किसी प्रकार के जल का संचार नहीं ऐसे उत्तमोत्तम महलों में रहते थे उन्हें अब जल से व्याप्त वृक्षों के नीचे रहना पड़ता है। पतले किन्तु उत्तम चीनी वस्त्रों से सदा जिनके शरीर ढके रहते थे वे ही अब चोहटों में वस्त्र रहित हो सानन्द रहते हैं। जो चित्र विचित्र रत्नों से जड़ित सुवर्णपात्रों में भोजन करते थे उन्हें अब सछिद्र पाणिपत्रों में आहार करना पड़ता है। जो भाँति-भाँति के पके अन्न और खीर आदि पदार्थों का भोजन करते थे उन्हें अब पारणा में नीरस आहारों का आहार करना पड़ता है। जो हाथी-घोड़े आदि सवारियों पर सवार हो जहाँ-तहाँ घूमते थे वे ही अब कंटकाकीर्ण जमीन पर चलते हैं। जो साथ-साथ ड्योढीयुक्त मणिजड़ित महलों में सोते थे वे ही अब अनेक सर्पों से व्याप्त पहाड़ों की गुफा में सोते हैं। राज्यावस्था में जिनकी प्रशंसा पराक्रमी और महामानी बड़े-बड़े राजा करते थे उनकी प्रशंसा अब चरित्र से पवित्र निरभिमानी बड़े-बड़े मुनिराज करते हैं। राज्य अवस्था में जो रतिजन्य सुख का आस्वादन करते थे वे ही अब विषयातीत नित्य ध्यानजन्य सुख का आस्वादन करते हैं।

कांतारतिसमुत्पन्नभुक्तं शर्म यके नराः। लिह्यते विषयातीतं शाश्वतं ध्यानसंभवं ॥४४॥
श्रुतानि येन गीतानि कामिनीमुखजानि च। श्रूयंते मृगघूकानां रावा निशि श्मशानके ॥४५॥
पुत्रपौत्रादिभिः केलिः कृता येन चिरंगृहे। क्रियते तेन सारंगैः समंविश्वासतां गतैः ॥४६॥
इत्थं चिरतरं तप्त्वा तपोघोरपरीषहैः। उन्मूल्यघातिसंघातं शुक्लध्यानप्रभावतः ॥४७॥
उत्पाद्यकेवलं लोके विकाश्य सुकृतं भुवि। चिरं विहृत्य निर्वाणं प्राप्तवान् शाश्वतं स च ॥४८॥
अन्ये यथायथं जग्मुर्योगिनो योगयंत्रिताः। गतिं नाकादिकां रम्यां स्वस्वकर्मविपाकतः ॥४९॥
अथ स श्रेणिकः प्रीतः कुर्वन् धर्मं जिनेश्वरं। पालयन् वसुधां भाति कीर्तिव्याप्तजगत्त्रयः ॥५०॥
अथ यो वारिषेणाख्यस्तनुजस्तस्य सुन्दरः। जिनधर्मेरतो धीमान् व्रताभरणभूषितः ॥५१॥
उपविश्यैकदा धीमांश्चतुर्दश्यां वने घने। कायोत्सर्गविधानेन स्थितस्तावत्पुरे वरे ॥५२॥
विलोकितो विलासिन्या श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनी हृदि। स्थितश्च मुग्धसुंदर्याहारो दीप्रो मयूखवान् ॥५३॥
विना दिव्येन हारेणाऽनेन मे जीवितंभुवि। निःफलं चेति संकल्पपतिताशयनोदरे ॥५४॥

जो राजमंदिर में कामिनियों के मुख से उत्तमोत्तम गायन सुनते थे उन्हें अब श्मशान भूमि में मृग और शृगालों के भयंकर शब्द सुनने पड़ते हैं। राजमंदिर में जो पुत्र नातियों के साथ खेल खेलते थे अब वे निर्भय किन्तु विश्वस्त मृगों के साथ खेल खेलते रहते हैं। इस प्रकार चिरकाल तक घोर तप कर परीषह जीतकर और घातिया कर्मों का विध्वंस कर शुक्ल ध्यान के प्रभाव से मुनिवर अभय कुमार ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया एवं केवलज्ञान की कृपा से संसार के समस्त पदार्थ जानकर भूमण्डल पर बहुत काल तक विहार कर अचिंत्य अव्याबाध मोक्ष सुख पाया। इनसे अन्य और जितने योगी थे वे भी अपने-अपने कर्म विपाक के अनुसार स्वर्ग आदि उत्तमोत्तम गतियों में गये ॥२१-४९॥

तीनों लोक में यशस्वी अतिशय सन्तुष्ट जैन धर्म के आराधक, नीतिपूर्वक प्रजा के पालक महाराज आनन्दपूर्वक राजगृह में रहने लगे। उनका पुत्र वारिषेण अतिशय बुद्धिमान्, मनोहर, जैन धर्म में रति करने वाला एवं व्रतरूपी भूषण से भूषित था। कदाचित् राजकुमार वारिषेण ने चतुर्दशी का उपवास किया। इधर यह तो रात्रि में किसी वन में जाकर कार्योत्सर्ग धारण कर ध्यान करने लगा और उधर किसी वेश्या ने सेठ श्रीकीर्ति की सेठानी के गले में पड़ा अतिशय देदीप्यमान सुन्दर हार देखा और हार देखते ही वह विचारने लगी-इस दिव्य हार के बिना संसार में मेरा जीवन विफल है तथा ऐसा विचारकर शीघ्र ही उदास हो अपने शयनागार में खाट पर गिर पड़ी। एक विद्युत नाम का चोर जो उसका आशिक था रात्रि में वेश्या के पास आया। उसने कई बार वेश्या से वचनालाप करना चाहा वेश्या ने जवाब तक न दिया किन्तु जब वह चोर विशेष अनुनय करने लगा तो वह कहने लगी-प्रिय वल्लभ! मैंने सेठ श्रीकीर्ति की सेठानी के गले में हार देखा है। मैं उसे चाहती हूँ। यदि मुझे हार न मिला तो मेरा जीवन निष्फल है और तुम्हारे साथ दोस्ती भी किसी काम की नहीं।

तदासक्तेन चौरेण विद्युन्नाम्ना निशिगृहं। गतेन वादितानैव वक्तिं सा च कथा कथं ॥५५॥
जगौ वल्लभ किं साध्यं जीवितेन त्वया च किं। नाप्यते कीर्त्तिश्रेष्ठिन्याहारश्चेद्दिव्यभूषणं ॥५६॥
श्रुत्वाश्वास्य च तां चौरो गत्वा तत्सदनं द्रुतं। प्रविश्य चोरयित्वा तं सकौशल्येन निर्गतः ॥५७॥
हारोद्योतेन तं चोरं मत्वा तलवराः क्षणात्। धावंति स्मानुमार्गेण चौरोऽयमिति वादिनः ॥५८॥
सकागारिः पलाय्याशु प्रविष्टः पितृसद्मनम्। ततो गंतुमशक्तोऽग्रे वारिषेणस्य मुक्तवान् ॥५९॥
हारो ध्यानस्थितस्यैवादृश्योऽभूत्तस्करः क्षणात्। कुमारं हारपादांतं वीक्ष्य राज्ञे निरूपितं ॥६०॥
तै राजन् यदि ते पुत्रश्चौर्यं चेक्क्रीयते जनाः। परे कथं निवार्य्यंते वृत्तिर्मुक्तेः च चिर्भटान् ॥६१॥
तस्यादेशात्ततस्तत्र मातंगेन कृपाणवत्। पुष्यदामायते मुक्तं तस्य व्रतप्रभावतः ॥६२॥
देवादतिशयं जातं श्रुत्वा निंदां विधाय च। आगत्यश्रेणिकेनैव क्षमा संकारिता मुहुः ॥६३॥
विद्युच्चौरेण संयाच्याभयं दानं नृपान्मुदा। प्रकटीकृत्य स्वात्मानं तत्स्वरूपं निवेदितं ॥६४॥
वारिषेणो गृहं नेतुं प्रार्थितो वचनं जगौ। पाणिपात्रेण भोक्तव्यं गृहीतं च मया व्रतं ॥६५॥

वेश्या की ऐसी रूखी बात सुन चोर शीघ्र ही चला गया तथा सेठ श्रीकीर्ति के घर जाकर और हार चुराकर अपनी चतुरता से बाहर निकल आया। हार बड़ा चमकदार था इसलिए चोर ज्यों ही सड़क पर आया और त्यों ही कोतवाल ने हार का प्रकाश देखा ले जाने वाले को चोर समझ शीघ्र ही उसके पीछे धावा बोला। चोर को और कोई रास्ता न सूझा वह शीघ्र ही भागता-भागता श्मशान भूमि में घुस गया। जब वह श्मशान भूमि में घुसा तो उसे आगे को वहाँ कोई रास्ता न दीखा इसलिए उसने शीघ्र ही वाणिषेण कुमार के गले में हार डाल दिया और आप एक ओर छिप गया। हार की चमक से कोतवाल भागता-भागता कुमार के पास आया। कुमार को हार पहने देख शीघ्र ही दौड़ता-दौड़ता राजा के पास पहुँचा और कहने लगा-राजन्! यदि आपका पुत्र ही चोरी करता है तो चोरी करने से दूसरों को कैसे रोका जा सकता है? राजकुमार का चोरी करना उसी प्रकार है जैसे बाड़ द्वारा खेत का खाना। कोतवाल की बात सुन इधर महाराज ने तो श्मशान भूमि की ओर गमन किया और उधर वारिषेण कुमार के व्रत के प्रभाव से हार फूल की माला बन गया। ज्यों ही महाराज ने यह दैवी अतिशय देखा तो वे कोतवाल की निंदा करने लगे और कुमार के पास क्षमा माँगनी चाही। विद्युत् चोर भी यह सब दृश्य देख रहा था। उससे ये बातें न देखी गई। वह शीघ्र ही महाराज के सम्मुख आया तथा महाराज से अभयदान की प्रार्थना कर और अपना स्वरूप प्रकट कर जो कुछ सच्चा हाल था सारा कह सुनाया। जब महाराज ने चोर के मुख से सब समाचार सुन लिया तो उन्होंने वारिषेणकुमार से घर चलने के लिए कहा किन्तु कुमार ने कहा-पूज्य पिताजी! मैं पाणिपात्र में आहार करूँगा, दिगम्बर दीक्षा धारण करूँगा। यह व्रत मैंने ले लिया है अब मैं राजमन्दिर में नहीं जा सकता। महाराज आदि ने दीक्षा से कुमार को बहुत रोका किन्तु उन्होंने एक न मानी। सीधे सूर्योदय के पश्चात् मुनिराज के पास चले गये और केशलुंचन कर दीक्षा धारण कर ली।

वार्यमाणो नृपाद्यैश्च सूर्यदेवमुनीश्वरम्। आसाद्यलुंचयित्वा तान् कचान्नत्वादिदीक्षके ॥६६॥
त्रयोदशविधं रम्यं चचार चरणं स कः। दर्शनं सगुणं रम्यं दधद्देवनमस्कृतम् ॥६७॥
पुष्पडालादिसच्छिष्या स्थापयन्व्रतवर्जितान्। व्रतमार्गोऽशुभाचारो वारिषेणो विचक्षणः ॥६८॥
चिरं विहृत्य सद्देशान संबोध्य विवधान् जनान्। रत्नत्रयं समाकीर्ण्य प्रांते संन्यस्य युक्तितः ॥६९॥
आराध्याराधनां रम्यां मुक्त्वा प्राणान्समाधिना। नाके महर्धिको देवो जज्ञे देवीविराजितः ॥७०॥
अथैकदानृपो धर्मकृते चिंता विहानये। सुखेन स्थातुमिच्छायै पूर्वजन्मविमोहतः ॥७१॥
समक्षं सर्वभूपानां महोत्सवविधानतः। ददौ कुणिकपुत्राय राज्यं प्राप्यनेश्वरम् ॥७२॥
कुणिकः पूर्वपुण्येन राज्यमासाद्य संबभौ। रक्षयन्वसुधां सारां कुर्व्वंश्चोरादिवर्जितां ॥७३॥
अथ स पूर्ववैरेण श्रेणिकं काष्ठपंजरे। मुनिकंठे विनिक्षिप्तनागोद्भूतविपापतः ॥७४॥
सुधर्मतः क्षयं नीतः किंचिदुच्छिष्टतः खलु। क्षिप्तवांस्तनुज पापी हिंसको मदमोहितः ॥७५॥
मात्रानिवार्यमाणोऽपि गालिदानं ददाति सः। दुर्वाक्यानि किरन् क्रोधात् मर्मभेदानि मूढधीः ॥७६॥
कोद्रवान्नंसतैलं च निर्लावणमव्यंजनम्। भोज्यं तस्मै प्रदत्ते स किरन् दुर्वाक्यसंततिं ॥७७॥

अष्ट अंग सहित सम्यग्दर्शन के धारक बड़े-बड़े देवों द्वारा पूजित वारिषेण मुनि तेरह प्रकार चारित्र का पालन करने लगे।

वारिषेण मुनिराज के व्रत-रहित पुष्पडाल आदि अनेक शिष्य थे उन्हें उपदेश, शुभाचार और चातुर्य से सन्मार्ग में प्रतिष्ठित किया। बहुत काल पर्यन्त भूमण्डल पर विहार किया। अनेक जीवों को संबोधा। आयु के अन्त में रत्नत्रययुक्त हो सन्यास धारण किया। भली प्रकार आराधना आराधी एवं समाधि पूर्वक अपना प्राण त्यागकर मुनि वारिषेण का जीव अनेक देवियों से व्याप्त महान् ऋद्धि का धारक देव हो गया ॥५०-७०॥

किसी समय धर्म सेवनार्थ, चिन्ता विनाशार्थ और सुखपूर्वक स्थिति के लिए पूर्व जन्म के मोह से महाराज ने समस्त भूपों को इकट्ठा किया और उनकी सम्मति पूर्वक बड़े समारोह के साथ अपना विशाल राज्य युवराज कुणिक को दे दिया। अब पूर्व पुण्य के उदय से युवराज कुणिक महाराज कहे जाने लगे। वे नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे और समस्त पृथ्वी उन्होंने चौरादिभय विवर्जित कर दी।

कदाचित् महाराज कुणिक सानन्द राज्य कर रहे थे अकस्मात् उन्हें पूर्वभव के वैर का स्मरण हो आया। महाराज श्रेणिक को अपना बैरी समझ पापी हिंसक महा अभिमानी दुष्ट कुणिक ने मुनि कंठ में निक्षिप्त सर्पजन्य पाप के उदय से शीघ्र ही उन्हें काठ के पिंजरे में बन्द कर दिया। महाराज श्रेणिक के साथ कुणिक का ऐसा बर्ताव देख रानी चेलना ने उसे बहुत रोका किन्तु उस दुष्ट ने एक न मानी उल्टा वह मूर्ख गाली और मर्म भेदी दुर्वाक्य कहने लगा। महाराज श्रेणिक को खाने के लिए वह रूखा-सूखा कोदों का अन्न देने लगा और प्रतिदिन भोजन देते समय अनेक कुवचन भी कहने लगा।

कर्मभावं विजानानस्तथा तस्थौ नृपाधिपः। चिंतयन्नेव सः पाकं सकीले काष्ठपंजरे ॥७८॥
कुणिको दुष्टचेतस्कोऽन्यदा पुत्रेण पापधीः। लोकपालाभिधेनैव स्वर्णामत्रेभुनक्ति वै ॥७९॥
भुज्यमानस्य भूपस्यामत्रे पुत्रेण मूत्रितं। समूत्रौदनमुत्सार्य भुक्तवान् स विमोहतः ॥८०॥
सोऽबां जगौ च भो मातर्मत्समः पुत्रमोहवान्। अस्ति वा भूतले नैव चेलने वद मां प्रति ॥८१॥
सा बभाण महाराज त्वं किं मोहि जगत्रये। बाल्ये ते जनकस्यैव तवोपरि महामतिः ॥८२॥
अभयादिषु पुत्रेषु सत्सु मान्यस्त्वमेव हि। बाल्येऽपि त्वत्समो नैव प्रियः पुत्रो विशांपते ॥८३॥
शृणु पुत्र महामोहकारणं त्वयि ते पितुः। एकदा च तवांगुल्यां व्रण आसीद्रसान्वितः ॥८४॥
महापीड़ा तदा जाता व्रणाद् दुर्गंधतः खलु। नानागदैर्न शांतिं सा याति ते रोदनात्मनः ॥८५॥
तन्निरासकृते तातस्तव निक्षिप्तवान्मुखे। स्वकीयेंऽगुलिमामोहाद्वारयामास वेदनां ॥८६॥
निशम्येति जगौ दुष्टो रे मातर्मम जन्मनि। वने मां क्षेपयामास कथं चेन्मोहान्नृपः ॥८७॥
साऽब्रीभणन्महापुत्र त्वं ते तातेन निश्चितं। न त्याजितो मया त्यक्तो वने दुष्टे क्षणान्स्फुटं ॥८८॥

महाराज श्रेणिक चुपचाप कीलों युक्त पिंजरे में पड़े रहते और कर्म के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए पाप के फल पर विचार करते रहते थे। किसी समय दुष्टात्मा पापी राजा कुणिक अपने लोकपाल नामक पुत्र के साथ सानन्द भोजन कर रहा था।

बालक ने राजा के भोजन पात्र में पेशाब कर दिया। राजा ने बालक के पेशाब की ओर कुछ भी ध्यान न दिया वह पुत्र के मोह से सानन्द भोजन करने लगा और उसी समय उसने अपनी माता से कहा–माता! मेरे समान पुत्र का मोही इस पृथ्वी तल में कोई नहीं, यदि है तो तू कह! माता ने जवाब दिया–राजन्! तेरा पुत्र में क्या अधिक मोह है ? सबका मोह तीनों लोक में बालकों पर ऐसा ही होता है। देख!!! यद्यपि तेरे पिता के अभय कुमार आदि अनेक उत्तमोत्तम पुत्र थे। तो भी बाल्य अवस्था में पिता का प्यारा और मान्य तू था वैसा कोई नहीं था। प्यारे पुत्र! तेरे पिता का तुझमें कितना अधिक स्नेह था ? सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ–

एक समय तेरी अंगुली में बड़ा भारी घाव हो गया था उसमें पीप पड़ गया था। बहुत दुर्गन्ध आती थी। जिससे तुझे बहुत पीड़ा थी। घाव के अच्छे करने के लिए बहुत-सी दवाइयाँ कर छोड़ीं तो भी तेरी वेदना शांत न हुई। उस तेरे मोह से तेरे पिता ने अपने मुख में अंगुली दे दी और तेरी सब पीड़ा दूर कर दी। माता चेलना की यह बात सुन दुष्ट कुणिक ने जवाब दिया–

माता! यदि पिता का मुझमें मोह अधिक था तो जिस समय मैं पैदा हुआ था। उस समय पिता ने मुझे निर्जन वन में क्यों फिंकवा दिया था ? माता ने जवाब दिया–

प्रिय पुत्र! तू निश्चय समझ तेरे पिता ने तुझे वन में नहीं फिंकवाया था किन्तु तेरी भृकुटी भयंकर देख मैंने फिंकवाया था। तेरा पिता तो तुझे वन से ले आया, राजा बनाने के लिए सानंद तेरा पालन-पोषण किया था। यदि तेरा पिता ऐसा काम न करता तो तुझे राज्य क्यों देता ?

तेनानीतः सुतत्वं वै लालितः क्रीडनादिभिः। मोहाद्राजा कृतो नूनं नो चेद्राज्यं कथं त्वयि ॥८९॥
महामोहो महास्नेहो महाप्रीतिर्महामतिः। त्वयि त्वज्जनकस्यास्ति पुत्र नात्र विचारणा ॥९०॥
यथा त्वं जनकस्यापि ददासि बहुवेदनाम्। तथा त्वत्तनुजो नूनं तव दास्यति वेदनां ॥९१॥
यादृशं दर्श्यते नूनं तादृशं प्राप्यते फलम्। यादृशमुप्यते बीजं तादृशं लूयते फलम् ॥९२॥
राज्यदत्तिः कृता येन जन्मदत्तिर्विशेषतः। विद्यादत्तिः कृता तुभ्यं तस्येत्यमुचितं तव ॥९३॥
जनकं पूज्यते दक्ष राज्यदाताविशेषतः। विद्यादाता विशेषेण त्वयेत्थं किं विधीयते ॥९४॥
उपकारादृते संत उपकारं प्रकुर्वते। उपकारे कृते किं न कुर्वंति प्रत्युत स्फुटं ॥९५॥
उपकारं कृतं येऽत्र न जानंति नरास्तके। अधमाकीर्त्तिता लोके नरयं यांति निश्चितं ॥९६॥
कृतघ्नाः कीर्त्तिता राजन् कृतं घ्नंति यके नराः। कृतज्ञाः कथितास्तेत्र कृतं जानंति ये नराः ॥९७॥
नोचितं तव पुत्रेत्थ-मतः पित्रादिबंधनम्। महापापकरं निंद्यं याहि मुंचय पातकं ॥९८॥
इति संबोधितो मात्रा विषण्णो हृदये क्षणं। निंदयन्स्वकृतं कर्मतत्ताम कुलिशाहतः ॥९९॥
अहो! निंद्यं कृतं कर्म कथं मोक्ष्यामि पापधीः। इदानीं जनकं रम्यं मोक्षामि हितकारकं ॥१००॥

पुत्र तेरे पिता का तुझमें बड़ा स्नेह, बड़ा मोह और बड़ी भारी प्रीति थी। तुझसे वे अनेक आशा भी रखते थे। इसमें जरा भी झूठ नहीं।

जैसी वेदना इस समय तू अपने पिता को दे रहा है याद रख तेरा पुत्र भी तुझे वैसी ही वेदना देगा। खेत में जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल काटा जाता है। उसी प्रकार जैसा काम किया जाता है फल भी उसी के अनुसार भोगना पड़ता है ॥७१-९८॥

राजन्! जिसने तुझे राज्य दिया, जन्म दिया और विशेषतया पढ़ा-लिखा कर तैयार किया, क्या उस पूज्यपाद के साथ तेरा यह क्रूर बर्ताव प्रशंसनीय हो सकता है? अरे! जो मनुष्य उत्तम हैं वे अपने पिता को पूज्य समझ भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। पिता से भी अधिक राज्य देने वाले को और उससे भी अधिक विद्या प्रदान करने वाले को पूजते हैं तू यह निकृष्ट काम क्या कर रहा है? जो उपकार का आदर करने वाला है सज्जन लोग जब उसका भी उपकार करते हैं तो उपकार करने वाले का तो वे अवश्य ही उपकार करते हैं। जो मनुष्य पर उपकार को नहीं मानते हैं। वे नराधम कहलाते हैं और वे नियम से नरक जाते हैं। राजन्! जो किये उपकार का लोप करने वाले हैं वे संसार में कृतघ्न कहलाते हैं। किन्तु जो कृत उपकार को मानने वाले हैं वे कृतज्ञ कहे जाते हैं और सब लोग उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। प्यारे पुत्र! पिता आदि का बन्धन पुत्र के लिए सर्वथा अनुचित है महापाप का करने वाला है। इसलिए तू अभी जा और अपने पिता को बन्धन रहित कर। माता द्वारा इस प्रकार सम्बोध पा राजा कुणिक मन में अति खिन्न हुआ। अपने दुष्कर्म की बार-बार निंदा कर वे ऐसा विचारने लगे-हाय! मुझ पापात्मा ने बड़ा निंद्य काम कर डाला। हाय! अब मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पाऊँगा ? अनेक हित करने वाले पूज्य पिता को मैं अभी जाकर छुड़ाता हूँ। इस प्रकार क्षण एक अपने मन में विचार कर राजा कुणिक महाराज

यावन्मोचयितुं याति विचार्येति तनूद्भवः। तावत्तं श्रेणिकः प्रैक्षे गच्छन्तं वक्रवक्रकं ॥१०१॥
दध्यौ तदा नृपश्चित्ते करालास्यं निरूप्यतम्। चिकीर्षितुं किमत्राहो समागच्छति मूढधीः ॥१०२॥
पूर्वं संताषितोऽनेनेदानीं संतापयिष्यति। निर्दयेन कृतं दुःखमहं सोढुं न च क्षमः ॥१०३॥
वितर्क्येत्यसिधारायां पपातार्त्तितमानसः। मृतिमाप क्षणार्द्धेन श्रेणिको नरयं गतः ॥१०४॥
असिधारास्थितं तातं प्राणत्यक्तं विलोक्य सः। विललापेति चेलिन्या सत्रमंत पुरेण च ॥१०५॥
हा नाथ! हा कृपाधीश! हा स्वामिन्! हा महामते। अकारणजगद्बंधो! हा प्रजाधीश! हा शुभ ॥१०६॥
हा तात! हा गुणाधार! हा मित्र! हा शुभाकर। त्वयेत्थं किं कृतं ज्ञानिन्नयोग्यं ज्ञानिनां क्वचित् ॥१०७॥
नंदश्रीश्चेलनातीव रुरोदाऽशर्मपीड़िता। लुंचयंती निजान् केशान् दारयंती स्वमानसं ॥१०८॥
त्रोटयंती वराहारं भंजंती करकंकणम्। हाकार मुखरा भूमौ पपात क्षणमोहिता ॥१०९॥
पुनरुत्थापिता राज्ञी शीताचारैः समीपगैः। विललाप पुनर्दीर्घं चिंतयंती पराभवम् ॥११०॥
प्राणवल्लभ! हा नाथ! हा हा प्रिय पुरंदरः। हा कांत! हा दयाधीश! हा हा देव! शुभालय ॥१११॥
अपुण्यां मां निजाधीश! दीनां हित्वा कथं गतः। निःशरण्यां निराधारा मुद्रासित विमानसां ॥११२॥

को बंधनमुक्त करने चल दिये। ज्यों ही राजा कुणिक कठेरे के पास पहुँचे और ज्यों ही क्रूर मुख राजा कुणक को देखा देखते ही उनके मन में यह विचार उठ खड़ा हुआ–यह दुष्ट अभी पीड़ा देकर गया है अब यह क्या करना चाहता है जिससे मेरी ओर आ रहा है।

पहले यह मुझे बहुत संताप दे चुका है अब भी यह मुझे अधिक संताप देगा। हाय! इस निर्दयी द्वारा दिया दुःख अब मैं सहन नहीं कर सकता। बस, इस प्रकार अपने मन में अतिशय दुःखी हो शीघ्र ही तलवार की धार पर सिर मारा। तत्काल उनके प्राणपखेरू उड़ गये और प्रथम नरक में पहुँच गये। पिता को असिधारा पर प्राण रहित देख राजा कुणक के होश उड़ गये। उस समय उन्हें और कुछ न सूझा। वे चेलना और अंतःपुर के साथ बेहोश हो करुणाजनक इस प्रकार रोदन करने लगे ॥९९-१०५॥

हा नाथ! हा कृपाधीश! हा स्वामिन्! हा महामते! हा बिना कारण समस्त जगत् के बन्धु! हा प्रजाधीश! हा शुभ! हा तात! हा गुणमन्दिर! हा मित्र! हा शुभाकर! हा ज्ञानिन्! यह तुमने बिना समझे क्या कर डाला ? आप ज्ञानी थे। आपको ऐसा करना सर्वथा अनुचित था। महाराज की मृत्यु से नन्दश्री और रानी चेलना को परम दुःख हुआ। उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। उन्होंने शीघ्र ही अपने केश बिखरा दिये छाती कूटने लगी। हार तोड़ दिये। हाथ के कंगन तोड़कर फेंक दिये। हाहाकार करती जमीन पर गिर गई और मूर्छित हो गई। शीतोपचार से बड़े कष्ट से रानी को होश में लाया गया ज्यों ही रानी होश में आई तो उसे और भी अधिक दुःख हुआ। वह पति बिना चारों ओर अपना पराभव देख वह इस प्रकार विलाप करने लगी–

हा प्राणवल्लभ! हा नाथ! हा प्रिय! हा कांत! हा दयाधीश! हा देव! हा शुभाकर! हा मनुष्येश्वर! मुझ पापिनी को छोड़कर आप कहाँ चले गये ? हाय! मैं अशरण निराधार आपने कैसे

अंतः पुरेषु सर्वेषु रुद्यमानेष्विति स्फुटं। रुरुदुः सज्जनाः सर्वे पौरा नार्यो मुहुर्मुहुः ॥११३॥
ततस्तत्तनुजस्तस्य संस्कारं कृतवान् पुनः। मात्रा निवारितो मूढस्तन्मोक्षाय ददौ मुदा ॥११४॥
दानं गो गज गंधर्व गृहभूमिधनादिकं। द्विजेभ्योव्रतसंत्यक्तमानसेभ्यः खलात्मकः ॥११५॥
चेलना च ततो मत्वा संसारं सारवर्जितम्। अचिंतयत्तरां चित्ते संसारासुखभीतधीः ॥११६॥
पितुः स्नेहो न वि पुत्रे सुतस्नेहो न तातके। सर्वे स्वार्थाधिसंरूढा मूढा भुवि भवंति वै ॥११७॥
यावत्स्वार्थं नरास्तावत्तिष्ठंति भुवनोदरे। विना स्वार्थं क्षणं नैकं यथा वृक्षे शकुंतकाः ॥११८॥
अस्थिरं जीवितं लोके न स्थिराः संपदोऽखिलाः। अस्थिरं यौवनं नैव स्थिरमैंद्रियकं सुखम् ॥११९॥
भुज्यमानेषु भोगेषु न तृप्तिर्देहिनां क्वचित्। अभिलाषस्य वृद्धिः स्यात् काष्ठेनेव धनंजयः ॥१२०॥
तैलाद्धनंजयस्यैव सलिलाज्जलधेः क्वचित्। कथंचित्तृप्तिरेव स्यान्नभोगादिंद्रियस्य च ॥१२१॥

छोड़ दी ? रनवास के (अन्तःपुर वास के) इस प्रकार रोने पर समस्त पुरवासी जन और स्त्रियाँ भी असीम रोदन करने लगीं। पश्चात् राजा कुणिक ने महाराज का संस्कार किया। रानी चेलना द्वारा रोके जाने पर भी मिथ्यादृष्टि राजा कुणिक ने ''महाराज सीधे मोक्ष जावें'' इस अभिलाषा से सर्वथा व्रत रहित ब्राह्मणों के लिए गौ, हाथी, घोड़ा, घर, जमीन, धन आदि का दान दिया और भी अनेक विपरीत क्रिया की।

कदाचित् रानी चेलना सानन्द बैठी थी अकस्मात् उसके चित्त में ये विचार उठ खड़े हुए कि यह संसार सर्वथा असार है तथा संसार से सर्वथा भयभीत हो वह इस प्रकार सोचने लगी ॥१०६-११६॥

संसार में न तो पिता का स्नेह पुत्र में है और न पुत्र का स्नेह पिता में है। समस्त जीव स्वेच्छाचारी हैं और जब तक स्वार्थ रहता है तभी तक आपस में स्नेह करते हैं। संसार में संपत्ति यौवन और ऐन्द्रियक सुख भी अस्थिर है। भोग ज्यों-ज्यों भोगे जाते हैं उनसे तृप्ति तो बिलकुल नहीं होती किन्तु काष्ठ से अग्निज्वाला जैसी बढ़ती चली जाती है उसी प्रकार भोग भोगने से और भी अभिलाषा बढ़ती ही चली जाती है। कदाचित्! तेल से अग्नि की और जल से समुद्र की तृप्ति हो जाये किन्तु इन्द्रिय भोग भोगने से मनुष्य की कदापि तृप्ति नहीं हो सकती। अनेक बड़े-बड़े पुरुष पहले धन-परिवार का त्याग कर गये। अब भी जा रहे हैं और आगे जायेंगे। मैं केवल पुत्र के मोह से मोहित हो घर में (महल में) कैसे रहूँ ? विषय भोग से जीव निरन्तर पाप का उपार्जन करते रहते हैं और उस पाप की कृपा से उन्हें नियम से नरक जाना पड़ता है। हजार कटकों के धारक प्राणी के स्पर्श से जैसा दुःख होता है उससे भी अधिक जीवों को नरक में दुःख भोगना पड़ता है। संसार में जो स्त्रियाँ दूसरे मनुष्यों की अभिलाषा करती हैं नियम से उन्हें पूर्व पापोदय से लोहे की तप्त पुतलियों से चिपकाया जाता है। जो मनुष्य पर-स्त्रियों के साथ विषय भोगते हैं उन्हें नरक में स्त्री के आकार की तप्त पुतलियों के साथ आलिंगन कराया जाता है। जो मूर्ख यहाँ शराब गटकते हैं हाहाकार करते हुए भी उन मनुष्यों को जबरन लोह पिघलाकर पिलाया जाता है।

याता यांति च यास्यंति नरा मुक्त्वा धनादिकं। कथं स्थास्यामि दीनाहं सुतमोहविडंबिता ॥१२२॥
विषयानुभवाज्जीवैः समुपार्ज्य च किल्विषं। गम्यते नरके नूनं पातालपरिपूरिते ॥१२३॥
सहस्त्रशूककीटस्य स्पर्शनाद् भूमिसंगतः। किंचिद्दुःखं प्रजायेताधिकं तत्र शरीरिणां ॥१२४॥
योषितोऽन्यनराणां चाव्यभिलाषं प्रकुर्वते। तप्तायः पुत्रकैः साकं योज्यंते ताः स्वपापतः ॥१२५॥
नरोऽन्ययोषिता साकं भुंजंति विषयान्वरान्। तप्तपांचालिकासाकमालिंग्यंतेऽत्र नारकैः ॥१२६॥
ये पिबंत्यासवं मूढास्ते तत्राशर्मपीड़िताः। तप्तनागरसास्तैश्च पाय्यंते दीनमानसाः ॥१२७॥
अगालितजले येऽत्र मज्जयंत्युष्णशांतये। तप्ततैले कटाहे ते मज्यंते तत्र नारकैः ॥१२८॥
ये कुर्वंति महामोहात्परस्त्री कुचमर्दनम्। पीड्यंते ते परैः शस्त्रैर्नारकैर्मर्मवादिभिः ॥१२९॥
योयुध्यंते खलास्तत्र छेछिद्यंते च शस्त्रकैः। भेभिद्यंते नखैस्तीक्ष्णैश्चेक्रीयन्ते च घातनं ॥१३०॥
पापच्यंते कृशानौ तेजं हन्यन्ते परस्परम्। सासह्यते परां पीड़ां लोलुक्यंते दिशोदश ॥१३१॥
पापठ्यंते च मर्माणि चंचूर्यंते च मुष्टिभिः। अन्योन्यं नारकास्तत्र प्रेर्यमाणाश्च भावनैः ॥१३२॥
जीवितात् तं सुखं तत्र क्षणमेकं न विद्यते। असातं प्रचुरं तीव्रं कविवाचामगोचरं ॥१३३॥
शीतवातातपादीनां दुःखं तिर्यक्षु विद्यते। भारारोपणसंजातं क्षुत्तृषावेदनाभवं ॥१३४॥
परस्परं तिरश्चां च साध्वसं मनुजात्पुनः। अन्योन्यं चर्वणं तेषां सबलैर्निर्बलात्मनां ॥१३५॥
स्त्रीपुत्रमित्रपित्रादि वियोगादेधते नरि। अशर्मधनराहित्यात्पर सेवा दरिद्रजं ॥१३६॥
देवेषु मानसं दुःखं मृतौ शुकस्त्रगीक्षणात्। दिव्यांगनावियोगाच्च दुष्टदेवादिसंभवं ॥१३७॥

जो यहाँ बिना छने जल में स्नान करते हैं नारकी उन्हें तप्त तेल की कढ़ाइयों में जबरन स्नान कराते हैं। जो पापी मोहवश यहाँ परस्त्रियों के स्तन मर्दन करते हैं तो नारकी उन्हें मर्मघाती अनेक शस्त्रों से पीड़ा देते हैं। नरकों में अनेक नारकी आपस में लड़ते हैं। अनेक पैने हथियारों से और नखों से छिन्न-भिन्न होते हैं। अनेक अग्नि में डालकर मारे जाते हैं और आपस में अनेक पीड़ा सहते हैं। नरक में रात-दिन भवनवासी देव भिड़ाते हैं इसलिए एक नारकी दूसरे नारकी को आपस में बुरी तरह मारता है। मुष्ठियों से पीस देता है। इस रीति से नारकी सदा पूर्वपापोदय से नरकों में दुःख भोगते रहते हैं। नरक में जीवन पर्यंत क्षणभर भी सुख नहीं मिलता किन्तु तीव्र दुःख का ही सामना करना पड़ता है। तिर्यंचों में भी हमेशा वात ठंडी घाम का दुःख रहता है। बिचारे तिर्यंचों पर अधिक बोझ लादा जाता है। उन्हें भूख-प्यास से वंचित रखा जाता है जिससे तिर्यंचों को असह्य वेदना भोगनी पड़ती है। आपस में भी तिर्यंच एक-दूसरे को दुःख दिया करते हैं। मनुष्यों द्वारा भी वे अनेक दुःख भोगते हैं एवं जब एक बलवान् तिर्यंच दूसरे निर्बल तिर्यंच को पकड़कर खा जाता है तब भी उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। मनुष्य भव में भी जब मनुष्यों के माता-पिता, पुत्र, मित्र मर जाते हैं उस समय उन्हें अधिक दुःख होता है। धनाभाव, दरिद्रता, सेवा आदि से भी अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। देवगति में भी अनेक प्रकार के मानसिक दुःख होते हैं। मरणकाल में भी माला सूख जाने से और देवांगना के वियोग से भी देवों को अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। दुष्ट देवों द्वारा भी अनेक दुःख सहने पड़ते हैं।

चतुर्गतिमये तीव्रे भवे नाम्ना निरंतरं। सातं न विद्यते कुत्र तीव्रा शर्मनिबंधने ॥१३८॥
इति ध्यात्वा चिरं राज्ञी निवृत्त्य भवभोगतः। सोंऽतः पुरागतावेगाज्जिनेशसमवसृतिं ॥१३९॥
परीत्य जिननाथं तं समर्च्य च सपर्यया। प्रणम्य जिनवक्त्राशा शुश्रावयति सद्वृषं ॥१४०॥
चंदनार्यां समालभ्य स्वस्वसारं प्रणम्य च। जगृहे संयमं सारं राजदारादिभिः समं ॥१४१॥
चिरं तपो विधायाशु सिंहनिःक्रीडनादिकं। स्वांते संन्यस्य संमुच्य प्राणान् ध्यानबलेन सा ॥१४२॥
विशुद्धदृग्विभावेन स्त्रीवेदोदयमुल्वणं। निहत्य दिवि संजातः सुरो देवैर्नमस्कृतः ॥१४३॥
महर्द्धिकां महाभूतिममरश्चेलनास्वरः। संभुज्योत्तम शर्माणि यास्यति शिवमंदिरं ॥१४४॥
अन्ये ये भूपतेर्दारा विधाय विविधं तपः। यथायोग्यं गतिं जग्मुर्मुक्त्वा प्राणान्समाधिना ॥१४५॥

इति विविधतपोभिश्चेलनाद्याः सुभावा स्त्रिदिवपदमवापुः प्राप्त पुंवेदभावाः।
निहतनिखिलपापादिव्यदेवांगनाभि र्व्रतसुकृतफलाभीरम्यमाणाः सुखांगाः ॥१४६॥
रत्नप्रभाद्यपटलं समवापपापाच्छित्वा च सप्तमधाराप्रभवं महायुः।
ज्ञात्वा च तत्र घनपापफलं समुत्थं स्वं निंदयन्नृपपतिर्नरके प्रशस्ते ॥१४७॥
वर्षाणि वै चतुरशीतिसहस्रकाणि भुंक्ते समाद्यनरये स च दुःखवृंदं।
सच्छेद्यभेद्यदलनादिभवं विभीतं स क्षायिकः क्षितशरीर सुसातभागः ॥१४८॥

इति श्रेणिकभवानुबद्ध भविष्यत्पद्मनाभपुराणे श्रेणिकादि भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य गतिवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥

इस प्रकार सर्वथा दुःखप्रद चतुर्गतिरूप संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख भरा हुआ है। रंचमात्र भी सुख नहीं। इस रीति से चिरकाल पर्यन्त विचार कर रानी चेलना भव भोगों से सर्वथा विरक्त हो गई और शीघ्र ही भगवान् महावीर के समवसरण की ओर चल दी।

समवसरण में जाकर रानी ने तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्तिपूर्वक पूजा और स्तुति की और यतिधर्म का व्याख्यान सुना पश्चात् चंदना नाम की आर्यिका के पास गई। अपनी सासु को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अनेक रानियों के साथ शीघ्र ही संयम धारण कर लिया।

चिरकाल तक तप किया। आयु के अन्त में संन्यास लेकर और ध्यान बल से प्राण परित्याग कर निर्मल सम्यग्दर्शन की कृपा से स्त्रीवेद का त्याग किया और महान् ऋद्धि धारक अनेक देवों से पूजित देव हो गया। स्वर्ग के अनेक सुख भोग भविष्यत्काल में चेलना का जीव नियम से मोक्ष जायेगा। रानी चेलना के सिवाय और जितनी रानियाँ थीं वे भी तप कर और प्राणों का परित्याग कर यथायोग्य स्थान गई। इस प्रकार चेलना आदि रानियाँ समस्त पापों का नाशकर और पुंवेद पाकर स्वर्ग गई और वहां देव हो अनेक मनोहर देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा कर भोग भोगने लगी। महाराज श्रेणिक भी सप्तम नरक की प्रबल आयु का नाशकर रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में गये तथा वहाँ पाप फल का विचार करते हुए और अपनी निंदा करते हुए रहने लगे। अब वे चौरासी हजार वर्ष नरक दुःख भोग कर और वहाँ की आयु को छेद कर भविष्यत्काल में तीर्थंकर होंगे और कर्मनाश कर सिद्धपद प्राप्त करेंगे ॥११७-१४८॥

इस प्रकार भविष्यत् काल के तीर्थंकर पद्मनाभ के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित श्रेणिक-चेलना आदि की गति-वर्णन करने वाला चतुर्दश सर्ग समाप्त हुआ।

पंचदश: सर्ग:

श्री पद्मनाभंवर भावितीर्थं नत्वा समस्तार्थविबोधनेऽहं।
वक्ष्ये च कल्याणक पंचक च तस्यागहान्यैशिवशर्मसिद्ध्यै ॥१॥
एकविंशतिसहस्त्रवर्षके पंचमस्य समयस्य संगते।
हायने च युगषष्टयोर्गते पंचमस्य समकालवर्त्तिनः ॥२॥
उत्सर्पिणी युगमकालसहस्त्रवर्षे ख्याताश्च षोडशशुभा मनवो बभूवुः।
नानासुनीति निपुणा वरबोधभावा न्याये जनान् शुभधिया खलु योजयंतः ॥३॥
तत्रांत्यमः शुभकरः सुरसेव्यपादो नानागुणः कुलकरश्च महादिपद्मः।
शुंभन्मयूखहतता ममको गभीरो विख्यातकीर्तिरतुलाभरणैर्विशिष्टः ॥४॥
वक्त्रेण चंद्रं नयनेन तारां वक्षस्थलेनैव शिलां जिगाय।
दंतेन कुंदं भुजयुग्मकेन शेषं च भूभृज्जिननाथ तातः।॥५॥
गुणाइंच रूपं सकलाः कलाश्च शीलं यशो लोकविभागचारि।
नरेशताऽशेषं विशेषवित्वं यस्मिन् बभूवुर्नरनाथ सेव्ये ॥६॥
जीवायते यो वर बुद्धिलब्ध्या मारायते रूप वयोमयूखैः।
देवायते संततिभूतिभावैः सूर्यायते कांतिवितानवृन्दैः ॥७॥
वासाय वै यस्य सुभारते च निर्मापिता पूर्मधवाज्ञयाहि।
श्री किंनरेशेन विचित्ररत्नाऽयोध्या ऽभिधाभूषितभूमिंभागा ॥८॥

समस्त पदार्थों के प्रकाश करने में सूर्य के समान भावी तीर्थंकर श्री पद्मनाभ भगवान् को नमस्कार कर स्वकल्याण सिद्ध्यर्थ उन्हीं भगवान् के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित पाँच कल्याणों का वर्णन करता हूँ।

उत्सर्पिणी काल के एक हजार वर्ष बाद अतिशय चतुर उत्तम ज्ञान के धारक चौदह कुलकर 'मनु' होंगे और वे अपने बुद्धिबल से प्रजा को शुभ कार्य में लगायेंगे। उन सब में शुभ कर्ता, अनेक देवों से पूजित, अनेक गुणों के आकर, अपनी किरणों से समस्त अन्धकार नाश करने वाले गंभीर, अनेक आभरणों से शोभित और अतिशय प्रसिद्ध तीर्थंकर पद्मनाभ के पिता अन्तिमकुलकर महापद्म होंगे। कुलकर महापद्म मुख से चन्द्रमा को, नेत्रों से ताराओं को, वक्षःस्थल से शिला को, दाँतों से कुन्दपुष्प को और बाहुयुग्म से शेषनाग को जीतेंगे। अनेक राजाओं से वंदित राजा महापद्म में उत्तमोत्तम गुण, रूप, समस्त कलाएँ, शील, यश आदि होंगे।

महापद्म अपने उत्तम बुद्धिबल से जीवेंगे। मनोहर रूप से कामदेव की तुलना करेंगे। निरन्तर विभूति के प्रभाव से देवतुल्य और अपने शरीर की कांति से सूर्य के समान होंगे। महापद्म के रहने के लिए इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अनेक रत्नों से जड़ित, मनोहर भूमियों से शोभित, अयोध्या नगरी का निर्माण करेगा।

यस्यां च शालः सरसैर्मयूखैः मुक्ताफलैर्नूनविरत्नवर्गैः।
संराजते नाकसमं समंतात्स्पर्द्धां वहंत्यां शुभगैगृहैश्च ॥९॥
गृहैर्विमाना मनुजैर्दिवीशाः सीमंतिनीभिः सुरयोषितश्च।
भूपैः शचिशास्तरुभिश्च कल्पा जिता यया चारुविभूतिभावात् ॥१०॥
योषिन्मुखैरिंदुगणो नखैश्च तारासुनेत्रैर्वरं पद्मवृन्दम्।
कांत्या च शूरो विजिताय यैते सीमंतिनीनां गमनेन नागाः ॥११॥
अभ्रं लिहैः केतनमालिकाभिः संलिह्यते दीप्रसुधांशुबिम्बं।
संमंदिरैः किं सकलंकयुक्तः संजातवांश्चेत्परथा विशुद्धः ॥१२॥
किं वर्ण्यते सा घटिता सुरेण स्थित्यै जिनेशस्य महामहीशः।
इंद्राज्ञया किंनरनायकेन लोकत्रये संतिलकायते या ॥१३॥
तत्र स्थितो सौ नरनाथसेव्यो विकासयन् कीर्तिलतां च मह्यां।
संपूर्णपुण्यः सुभगः प्रवीणः सुसप्तहस्तोच्छ्रुतिदेहभाजी ॥१४॥
सुंदरीत्यभिधया वरमूर्ति रंगनाललित चारुशरीरा।
तार मार दयिते वसुभावा तस्य चित्तवर पद्मयूखा ॥१५॥
यस्या विरेजुः सरसाः कचाश्च मूर्ध्नि प्रभाढ्या भ्रमराः सुगंधात्।
संसेवितुं वक्त्रमहोत्पलस्य स्थिताश्च चूड़ामणि रत्नदीप्ताः ॥१६॥
यस्या विशालं वरभालपट्टं संराजते सत्तिलकायितं च।
त्रैलोक्य नारी विजयाय बद्धं पत्रं विधात्रेव वराक्षराढ्यं ॥१७॥

अयोध्या का परकोटा मनोहर किरणों से व्याप्त, मुक्ताफल और भी अनेक रत्नों से निर्माण किया स्वर्ग की समता को धारण करेगा और घर स्वर्ग घरों के साथ स्पर्द्धा करेंगे। अयोध्या के घर विमानों को जीतेंगे। मनुष्य देवों को, स्त्रियाँ देवांगनाओं को, राजा इन्द्रों को और वृक्ष कल्पवृक्षों को नीचा दिखायेंगे। अयोध्या में रहने वाली कामिनियों के मुख से चन्द्रमंडल जीता जायेगा। नखों से तारागण, मनोहर नेत्रों से कमल और गमन से हाथी पराजित होंगे। अयोध्यापुरी के महलों पर लगी ध्वजा चन्द्रमण्डल का स्पर्श करेगी। अयोध्यापुरी का विशेष कहाँ तक वर्णन किया जाये ? जिनेन्द्र के रहने के लिए कुबेर इन्द्र की आज्ञा से उसे एक ही बनायेगा और वहाँ अनेक राजाओं से पूजित चौतरफा अपनी कीर्ति प्रसार करने वाले अतिशय पुण्यवान्, चतुर, सुन्दर और सात हाथ शरीर के धारक कुलकर महापद्म की प्रिय भार्या सुन्दरी होगी। सुन्दरी अतिशय शरीर की धारक, पद्म के समान सुन्दर, रति के समान होगी। उसके केश अतिशय देदीप्यमान और उत्तम होंगे। मुख कमल की सुगन्धि से उसके मुख पर भौंरे गिरेंगे और उसके सिर पर रत्न जड़ित देदीप्यमान चूड़ामणि शोभित होगा। अतिशय तिलक से युक्त उसका भाल अतिशय शोभा को धारण करेगा और वह ऐसा मालूम पड़ेगा मानो त्रिलोक की स्त्रियों के विजय के लिए विधाता ने एक नवीन यंत्र रचा हो।

आकर्णविस्तारि सुनेत्रयुग्मं रक्तं सुकोपादिवमार्गरोधात्।
श्रुत्योरलक्षा खिलकूपकृत्योः क्रीड़ाकृते पद्मदलं विधातुः ॥१८॥
मध्ये भ्रुवोर्भाति च येन यस्या उंकार मंत्रो लिखितो विधात्रा।
जगद्वशायापरथा कथं स्यान् नरो वशी तामवलोक्य तूर्णं ॥१९॥
आस्यपद्मभवभाति सुंदरं दंतकेसरमनौपमं वरं।
नासिकाविशमनोहरं परमोष्टपर्णकलितं नतभ्रुवः ॥२०॥
चारुकंबुललितं त्रिरेखितं भाति वक्त्रगृहकाष्टतां गतं।
कोकिलध्वनि समाजसुंदरं सुभ्रुवो वटुविराजितं परं ॥२१॥
वक्षःस्थले भाति विशालहारो मुक्ताफलाढ्यो वररत्नभासी।
रक्षाकृते नाग इव स्तनस्य यस्या मनोभूवर सेविधेश्च ॥२२॥
सुदुर्लभौ हार भुजंगसेवितौ सुचूचकाच्छादितवक्त्रपंकजौ।
स्थितावगाधौकुचकुंभकौ परौ सुसेविधेः कम्रघटौ मनोभुवि ॥२३॥
अंगुलिच्छदनमंडितं परं बाहुदण्डमवभाति दीपकं।
पाणिपंकजतरं मृगीदृशः कंकणोन्नतसुकेसराश्रितं ॥२४॥
उदरे यस्या नाभितडागे मदनद्विप वरपीडितमध्यः।
शुभगः श्लक्ष्णाकुंतलपद्मो मदनाहतजनवांछितकेलिः ॥२५॥
कटीतटं तत्र विराजति स्म च नितंबतुंगस्तनभारमध्यतः।
कृशं तयोर्युग्मकयोर्भयादिव। मध्यस्थितस्यैव मयं भवेत्सदा ॥२६॥

कानों तक विस्तृत विशाल और रक्त उसके नेत्र होंगे और वे पद्मदल की शोभा धारण करेंगे ॥१-१८॥

सुन्दरी के भ्रकुटियों के मध्य में ओंकार अतिशय शोभा को धारण करेगा। विधाता उसे समस्त जगत् को वश में करने के लिए निर्माण करेगा। ऐसा मालूम पड़ता है। दाँतरूपी अनुपम केशर का धारक नाशिका रूपी विष से मनोहर ओष्ठ रूपी पल्लवों से व्याप्त उसका मुख कमल अतिशय शोभा धारण करेगा। मनोहर कंबु के समान सुन्दर, तीन रेखा का धारक, मुखरूपी घर के लिए खम्भे के समान कोकिल ध्वनि युक्त उसकी ग्रीवा अतिशय शोभित होगी। मुक्ताफल से शोभित भाँति-भाँति के रत्नों से देदीप्यमान सुन्दरी के वक्षःस्थल का हार अतिशय शोभा धारण करेगा और वह ऐसा जान पड़ेगा मानो विधाता ने स्तन कलशों की रक्षार्थ मनोहर सर्प का ही निर्माण किया हो। सुदुर्लभ हार रूपी सर्पों से शोभित चूचुक रूपी वस्त्र से आच्छादित उसके दोनों स्तन मनोहर घड़े के समान जान पड़ेंगे। अंगुलीरूपी पत्तों से व्याप्त, बाहुरूपी दण्डों का धारक, कंकणरूपी उन्नत केशर से शोभित उनके दोनों कर-कमल अतिशय शोभा धारण करेंगे। मनोहरांगी सुन्दरी का कामदेव रूपी हाथी से युक्त मनोहर बिखरे हुए केशरूपी पद्म का धारक कामीजनों की

सुरम्यजानुद्वितयं विराजते परं सुरंभासुभगं मनोभुवः।
शरद्वयं कामिजनस्य घातिने स्थित यथा चारुसुलक्षणान्वितं ॥२७॥
मीनशंखकुलिशादिलक्षणं पादपद्ममवभातिमेदुरं।
अंगुलीय नखरत्नराजितम् भ्राजितं सर इवास्त्र सज्जलैः ॥२८॥
यस्या रूपं विधात्रा विविधशुभकरै, रिंदुभिर्वक्त्रपद्मं।
नेत्रं पंकेजपत्रैरदनवसनकं विद्रुमै पक्व बिंबैः।
शाखाभिर्बाहुयुग्मं कनकगिरितटै र्वक्ष एवं स्तनौ च।
पीनौ स्वर्णस्य कुभैश्चरणयुगलकं पद्मपत्रैर्व्यधायि ॥२९॥
सालंकृतिः सर्वगुणा विदोषा सुरीतिसंदीपितमध्यभावा।
नानारसैः सा विरराज नित्यं सुभारती वासुकवेः शुभार्था ॥३०॥
गत्या करेणुं नयनेन दीप्र मृगांगनां सा च जिगाय वाचा।
पिकांगनां रूपगुणेन रम्यां रतिं मुखेनेंदु गणं च कम्रा ॥३१॥
इंद्रादेशात्प्रथमनरये श्रेणिकस्याथ रक्षां। चेक्रीयंते नरयनिकरं वार्यमाणो सुराः स्म।
उच्छिष्टे वै नयनतनुजं चायुषां षट्कमासे। हित्वा दुःखप्रथमभरते भावि तीर्थेश्वरस्य ॥३२॥
तस्यालयेऽथ सुरपः खलु षट्कमासान् संकारयिष्यति धनाधिपकेन पूर्वं।
रत्नादिवर्षणममोघसुमेघवृन्दैः संकालयं तदनु मासनवप्रमाणं ॥३३॥

क्रीड़ा का इष्टस्थल नाभिरूपी तालाब संसार में एक ही होगा। सुन्दरी का उन्नत स्तनों के भार से अतिशय कृश कटिभाग अति शोभित होगा सो ठीक ही है। दो आदमियों के विवाद में मध्यस्थ मारे भय के कृश हो ही जाता है ॥१९-२६॥

सुन्दरी के दोनों जानु कदली स्तंभ के समान शोभा धारण करेंगे। कामीजनों को वश में करने के लिए वे कामदेव के दो बाण कहलाये जायेंगे और अनेक शुभ लक्षणों के धारक होंगे। मीन, शंख आदि उत्तमोत्तम गुणों से उसके दोनों चरण अत्यन्त शोभित होंगे।

नखरूपी रत्नों से युक्त उसकी अंगुली होगी। विधाता सुन्दरी का रूप तो अनेक उपायों से रचेगा और मुख चन्द्रमा से, नेत्र कमल पत्रों से, दाँत मूँगों से, ओठ पके बिंबा फलों से, दोनों भुजा शाखाओं से, वक्षस्थल सुवर्ण तटों से, दोनों स्तन सुवर्ण कलशों से एवं दोनों चरणकमल पत्रों से बनावेगा। माता सुन्दरी सरस्वती के समान शोभित होगी क्योंकि सरस्वती जैसी सालंकृति अलंकार युक्त होती है सुन्दरी भी निर्दोष होगी।

सरस्वती उत्तम रीति से देदीप्यमान होती है उसी प्रकार सुन्दरी भी अतिशय सुडौल होगी। सरस्वती जैसी अनेक रसों से युक्त होती है सुन्दरी भी लावण्य युक्त होगी। सरस्वती जैसी शुभ अर्थयुक्त होती है, सुन्दरी भी अपने अवयवों से सुडौल होगी। माता सुन्दरी गति से हथिनी जीतेगी और नयन से मृगी, वाणी से कोकिल, रूप से रति एवं मुख से चन्द्रमा जीतेगी। भगवान् के जन्म के छह मास पहले से जन्म तक पन्द्रह मास पर्यन्त कुबेर इन्द्र की आज्ञा से तीनों काल अमोघ

संप्रेषिताः सुर वरेण सुरांगनाश्चाष्टाविंशतिर्द्विकहताजिनमातृभक्त्यै।
आगत्य ता नरपतिं धृतमौलिहस्ता नत्वाज्ञया नृपगृहं विविशुः समस्ताः ॥३४॥

एकदा निशि नरेंद्रकामिनी स्वप्नसंचयमिमं समैक्षत।
पश्चिमे प्रहरके च तल्पके निद्रिता कमललोचनाशुभा ॥३५॥
शुभ्रं गजेंद्रं वरदानसज्जलं गावं महास्कंधधरं सनादकं।
पंचाननं दंति विदारणोद्धतं देवेंद्रदंतिस्नपितां पयोब्धिजां ॥३६॥
दाम्नी सुगंधे भ्रमरध्वनीद्धते चंद्रं सुपूर्णं तिमिरस्य वारकं।
सूर्यं प्रतापं तनुजस्य वा परम् मीनद्वयं नेत्रयुगं स तस्य वा ॥३७॥
कुंभद्वयं दीप्र तनूजसे विधिं पद्माकरं पद्मसमूहमंडितं।
वार्द्धि गंभीरं मणि मीन मंडितं सिंहासनं स्वर्णमणिप्रभाभृतं ॥३८॥
देवेंद्रयानं सुरभामिनीश्रितं नागेंद्रगेहं सुतसूतिसूचकं।
रत्नप्रचायं सुनिधिं सुतस्य वा निर्धूमवह्निं च ददर्श सा शुभा ॥३९॥
(चतुः कुलं)

वक्त्रे गजेंद्रं शुचि देहमुन्नतं। संविश्यमानं सुविलोकयिष्यति।
सा पूर्णचंद्राननिका मृगेक्षणा। संरक्षिता देववधू समूहकैः ॥४०॥

वीणादुंदुभिशंख काहलमहानादान्निशम्याशुसा बुद्ध्वा मागधगीतशब्दनिकरात् प्रातः परिज्ञाय वै।
उत्थायासनमुत्तमं जिनपते माताव्यलं चक्रके पूर्वाह्निं हततामसा वरतरं भानोर्मरीचिर्यथा ॥४१॥

रत्नों की वर्षा करेगा।

माता की सेवा के लिए इन्द्र की आज्ञा से छप्पन कुमारियाँ आकर माता की सेवार्थ आवेंगी और राजा महापद्म को नमस्कार कर राजमहल में प्रवेश करेंगी ॥२७-३५॥

किसी समय कमल नेत्रा रानी सुन्दरी शयनागार में अपनी मनोहर शय्या पर शयन करेगी अचानक ही वह रात्रि के पिछले प्रहर में ये स्वप्न देखेगी-

(१) जिससे मद चू रहा है ऐसा सफेद हाथी, (२) उन्नत स्कंध का धारक नाद करता हुआ बैल, (३) हाथी को विदारण करता बलवान् सिंह, (४) दुग्ध से स्नान करती लक्ष्मी, (५) भ्रमरों से व्याप्त उत्तम दो माला, (६) सम्पूर्ण चन्द्रमा, (७) अन्धकार का नाशक (प्रतापी सूर्य), (८) जल में किलोल करती दो मछलियाँ, (९) दो उत्तम घड़े, (१०) अनेक पद्मों से व्याप्त सरोवर, (११) रत्न मीन आदि से युक्त विशाल समुद्र, (१२) मणि जड़ित सोने का सिंहासन, (१३) अनेक देवांगनाओं से शोभित सुर विमान, (१४) नागेंद्र का घर, (१५) रत्नों का ढेर, (१६) निर्धूम अग्नि।

तथा उन्नत देह का धारक पवित्र किसी हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते भी वह सुंदरी देखेगी। प्रातःकाल में वीणा, ढक्का, शंख आदि के शब्दों से और मागधों की स्तुति के साथ रानी पलंग से उठाई जायेगी और शय्या से उठते समय वह प्राची दिशा से जैसा सूर्य उदित होता है वैसी शोभा धारण करेगी। महारानी उठकर स्नान करेगी और सिर पर मुकुट, कंठ में ललित हार,

शिरसि मुकुटबंधं भालपट्टे च भालं हृदि सुललितहारं कंकणं बाहुयुग्मे।
धरति सुभगकर्णे कुंडलं मेखलां सा अतिकृश शुभकट्यां नूपुरं पादपद्मे॥४२॥
सपद्मं महापद्मनाथं स्वनाथं समासाद्य कांतं स्थितं विष्टरे च।
प्रणम्य स्थिता वामभागे सुराज्ञी प्रगल्भा महानर्मशर्मादिवाक्या॥४३॥
नाथ! सार्थानिमान् स्वप्रचारान् पश्चिमे यामके पश्य कं वै।
जल्पयत्वं फलं तेषां किं विभो ज्ञान विज्ञान नेत्रैः सुचित्रैः॥४४॥
श्रुत्वेति वाचं नृपतिर्जगौ तां कांते प्रिये दंतिगते मृगाक्षि।
वक्ष्ये फलं तेऽद्य मनोजगेहे तेषां यथार्थं दयिते दयाढ्ये॥४५॥
दंतीक्षणात्ते भविता तनूजो ज्येष्ठो वृषाद्विष्टपके मृगारेः।
अनंतवीर्य शुभपुष्पदाम्नोः वृषस्य सम्यक् स पतिर्भविष्णुः॥४६॥
लक्ष्म्याभिषेकात्कनकाद्रिमूर्ध्नि संस्नाप्यतेऽसौ सुरनाथवर्गैः।
चंद्राज्जनाह्लादकरश्च सूर्य्याद् भास्वद्युतिर्वित्तपतिश्च कुंभात्॥४७॥
मीनादनंतसुखभाक् सरसः सुपूर्णः सल्लक्षणैरुदधितो वर बोधयुक्तः।
सिंहासनाद्भुवनराज्यपतिर्बलिष्ठः पुण्याधिपोऽमर विमान विलोकनाच्च॥४८॥

हाथों में कंगन, भुजाओं में बाजूबन्ध, कानों में कुण्डल, कमर पर करधनी एवं पैरों में नूपुर पहनेगी तथा अपने स्वामी राजा महापद्म के पास जायेगी और सिंहासन पर उनके बामभाग में बैठकर चित्त में हर्षित हो इस प्रकार कहेगी–स्वामिन्! रात्रि के पिछले प्रहर मैंने स्वप्न देखे हैं कृपाकर उनका जैसा फल हो वैसा आप कहें। रानी के ऐसे वचन सुन राजा महापद्म इस प्रकार कहेंगे–प्रिये! मृगाक्षि! जो तुमने मुझसे स्वप्नों का फल पूछा है मैं कहता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो जिससे तुम्हें सुख मिलें–

स्वप्न में हाथी के देखने का फल तो यह है कि तेरे पुत्र रत्न उत्पन्न होगा। बैल के देखने का फल यह है कि वह तीन लोक में अतिशय पराक्रमी होगा। तूने जो सिंह देखा है उसका फल यह है कि तेरा पुत्र अनन्त वीर शाली होगा और दो मालाओं के देखने से धर्मतीर्थ का प्रवर्तक होगा। जो तूने लक्ष्मी को स्नान करते देखा है उसका फल यह है कि मेरु पर्वत पर तेरे पुत्र को ले जाकर देवगण क्षीरोदधि के जल से स्नान करावेंगे। चन्द्रमा के देखने से तेरा पुत्र समस्त जगत् को आनन्द प्रदान करने वाला होगा। सूर्य के देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र अद्वितीय कांति धारक होगा।

कुम्भ के देखने से अगाध द्रव्य का स्वामी होगा। मीन के देखने से तेरा पुत्र सुख का भंडार होगा और उत्तमोत्तम लक्षणों का धारक होगा। समुद्र के देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र ज्ञान का समुद्र होगा और जो तूने सिंहासन देखा है उससे तेरा पुत्र तीन लोक के राज्य का स्वामी होगा। देव विमानों के देखने से बलवान् और पुण्यवान् होगा। तूने जो नागेन्द्र का घर देखा है

नागालयादवधिबोधयुतश्च रत्नान् नानागुणोज्ज्वलनवीक्षणतः क्षणेन।
कर्मेंधनस्य दहने खलु बद्धकक्षो वक्त्रप्रवेशनविधेर्भविता सुतस्ते ॥४९॥
श्रुत्वा स्वप्नफलं नृपस्य दयिता यावत्प्रमोदान्विता।
तावन्नारकतः समेत्य नृपते र्जीवोऽशुभे चोदरे।
तस्या देव वधू सुसोधिततरे स्थाता महापुण्यतः।
हत्वा नारकदुःख पापनिचयं तीर्थोदयाच्छुद्धधीः ॥५०॥
तस्योदयं देवगणो हि मत्वा नत्वा च पित्रोः पदपद्मयुग्मं।
कृत्वा च कल्याणपरम्परां च दत्वा सुवर्णं जनकाय मात्रे ॥५१॥
वस्त्रादिकं तज्जननादिवृत्त मुक्त्वा क्षणेन त्रिदिवं गतश्च।
कुर्वन्कथां श्री जिनपस्य भक्त्या निर्मूलितारेर्वरपुण्यभाजः (युग्मं) ॥५२॥
कुमारिकास्ता जिननाथमातर मुपासते भोजनदानभक्तितः।
विडौज आज्ञा कृत शेखराः शुभा, विलेपनस्नानसुपुष्पदानतः ॥५३॥
काचित्करोति पदधोवनमंबिकायाः काचिद्दधाति वरपुष्पगणं तदग्रे।
काचित्सचंपकसुतैलविमर्दनं च काचित्पयोधिजलधेः सलिलैश्च सेकं ॥५४॥
पूपांश्च मंडक सुमोदकपायसानि माषान्नमुद्गघृतमंडकखज्जकाश्च।
प्राज्याज्यमग्नगुडलग्नसुचूर्णकानि सद्वलंजनानि दधि दुग्धकरं बकाणि ॥५५॥

उसका फल यह है कि तेरा पुत्र जन्मते ही अवधि ज्ञान का धारक होगा। चित्र-विचित्र रत्न राशि देखने से तेरा पुत्र अनेक गुणों का धारक होगा। निर्धूम अग्नि के देखने का यह फल है कि तेरा पुत्र समस्त कर्म नाश कर सिद्ध पद प्राप्त करेगा और तूने जो मुख में हाथी प्रवेश करते देखा है उसका फल यह है कि तेरे शीघ्र ही पुत्र होगा।

राजा के मुख से ज्यों ही रानी स्वप्न फल सुन हर्षित होगी त्यों ही महान् पुण्य का भंडार महाराज श्रेणिक का जीव नरक की आयु का विध्वंस कर रानी सुन्दरी के शुभ उदर में जन्म लेगा। तीर्थंकर महापद्म का आगमन अवधिज्ञान से विचार देवगण अयोध्या आवेंगे। तीर्थंकर के माता-पिता को भक्तिपूर्वक प्रणाम करेंगे। उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्र पहनाएंगे।

भगवान् का गर्भ कल्याण कर सीधे स्वर्ग चले जायेंगे और वहाँ समस्त पुण्यों के भंडार समस्त कर्मनाश करने वाले भगवान् तीर्थंकर की कथा सुन आनन्द से रहेंगे। छप्पन कुमारियाँ माता की भोजनादि से भक्तिपूर्वक सेवा करेंगी। आज्ञानुसार माता का स्नेहन विलेपन आदि काम करेंगी। कोई कुमारी माता के पैर धोयेगी। कोई उनके सामने उत्तमोत्तम पुष्प लाकर धरेगी। कोई माता की देह से तेल मलेगी। कोई क्षीरोदधि जल से माता को स्नान करायेगी। कोई पूवा, माँड, लड्डु, खीर, उर्द, मूंग के स्वाद, दूध, दही और भी भाँति के व्यंजन माता को देगी। कोई माता के

काचिद्ददाति च महानसमंडपस्था सन्नूत्न रत्नवरभाजनरंधनार्त्था।
सन्नव्यभव्यवरपाककृते च दक्षा मात्रे च भोजनतरं वरपुण्यपाकात् ॥५६॥
नर्नर्ति हाववरभावगता च काचिद् वर्वर्त्ति मातृहृदयानुगता च काचित्।
वर्वर्द्धि मातृहृदये सुखमुल्वणं च चर्कर्त्ति कार्यमखिलं सुर भामिनी च ॥५७॥
तांबूलकं खदिरसार युतं च दग्ध पाषाणचूर्णसहितं क्रमुकैः समेतं।
काचिद्ददाति नृपनाथ सुयोषितायै पुष्पस्त्रजं मधुपझंकृति संयुतां च ॥५८॥
शय्यां च काचिद्वरतल्पमंडितां चेक्रीयते रत्नचयैश्च दीपकान्।
काचिच्च रक्षां वर शस्त्रधारिणी विद्युल्लता वा घन मेघवर्तिनी ॥५९॥
किरीटं मस्तके कर्णे कुंडलं कंकणं करे। हृदि हारं शुभे नेत्रे कज्जलं वदने परे ॥६०॥
तांबूलं तिलकं भाले कट्यां च कटिमेखलां। नासायां मौक्तिकं कंठे ग्रैवेयकं सहाटकं ॥६१॥
नूपुरं चरणद्वंद्वे चांगुल्यां वृश्चिकान् परान्। निवेशयंति कामिन्यो देवानां नृपयोषित (त्रिकलं) ॥६२॥
अभ्यर्णे नवमे मासे प्रश्नयिष्यंति मातरं। देवांगना क्रियागुप्तं कारकादींश्च कौतुकान् ॥६३॥
शरीराच्छादकं किं स्यात् किं च स्याद्देहदाहकं। पुष्पाणां ग्रंथने किं स्याद्वदाद्याक्षरतः पृथक् ॥६४॥

''त्वक रुक् स्त्रक्''

नृसिंह तौ किमाख्या स्यात्कास्ते चंद्रस्य मंडले। पापेन कीदृशा जीवा वद मातः स्वबुद्धितः ॥६५॥

''सभा विभा अभाः''

अंते किं देहिनां नूनं कामिना किं विधीयते। कीदृशो ध्यानतो योगी समादिश मम प्रिये ॥६६॥

भोजनार्थ उत्तमोत्तम भोजन बनाने के लिए उत्तमोत्तम पात्र देगी। कोई-कोई माता की प्रसन्नता के लिए हाव-भावपूर्वक नृत्य करेगी। कोई माता की आज्ञानुसार बर्ताव करेगी और कोई कुमारिका अपने योग्य बर्ताव से माता के चित्त को अतिशय आनन्द देगी। कोई-कोई कुमारी कत्था-चूना, सुपारी रखकर सुन्दरी को पान देगी। कोई उसके गले में अतिशय सुगंधित माला पहनायेगी। कोई-कोई माता के लिए मनोहर शय्या का निर्माण करेगी और कोई रत्नों के दीपक जलाएगी। कोई-कोई कुमारी माता के मस्तक पर मुकुट, कान में कुण्डल, हाथ में कंगन, गले में हार, नेत्र में काजल, मुख में पान, मस्तक पर तिलक, कमर में करधनी, नाक में मोती, कंठ में कंठी, पैरों में नूपुर, पाँव की अंगुलियों में बीछिये पहनायेगी।

जब नौवां महीना पास आ जायेगा तब कुमारियाँ माता के विनोदार्थ क्रियागुप्त, कतृगुप्त, कर्मगुप्त और प्रहेलिका कहकर माता का आनन्द बढ़ायेगी। कोई पूछेगी, बताओ माता-शरीर का ढँकने वाला कौन है ? चन्द्र मंडल में क्या है? और पाप की कृपा से जीव कैसे होते हैं ? माता उत्तर देगी- ॥३६-६५॥

सभा विभा अभाः

कुमारियाँ फिर पूछेंगी बता माता-जीवों का अन्त में क्या होता है ? कामी लोग क्या करते

''विनाशः विलाशः विपाशः''

अमरप नर तर समजपकर भगतमददममयजन घननतक।
प्रमदनवन घनदहन कनर प जय जय तव वर जठरभपरम ॥६७॥

''एकस्वरचित्रम्''

शुभेद्यजन्मसंतानसंभवं किल्विषं घनम्। प्राणिनांभ्रूणभावेन विज्ञानशतपारगे ॥६८॥

''क्रियागुप्तकम्''

आनंदयंतु लोकानां मनांसि वचनोत्करैः। मातः कर्तृपदं गुप्तं वद भ्रूण विभावतः ॥६९॥

''कर्तृगुप्तकम्''

सुधामनयसंपन्ना लभंते किंनराः क्वचित्। स्वकर्मवशगा भीमे भवे विक्षिप्तमानसाः ॥७०॥

''कर्मगुप्तकम्''

समस्यापूरणे मातः समस्यां वद वादिनी। भ्रूणप्रभावतस्तूर्णं मुनिर्वेश्यायते सदा ॥७१॥
नरार्थं लोकयत्येव गृहीत्वार्थं विमुंचति। धत्ते नाभिविकारं च मुनिर्वेश्यायते सदा ॥७२॥

हैं ? ध्यान के बल से योगी कैसा होता है ? माता उत्तर देगी–

(१) विनाश, (२) विलास, (३) विपास।

कोई कुमारी क्रियागुप्त श्लोक कहकर माता से पूछने लगी, बता माता–

(१) शुभेद्य जन्म सन्तान सम्भवं किल्विषं धनम्। प्राणिनां भ्रणभावेन विज्ञान शत पारगे॥

इसमें क्रिया कौन है कोई कहने लगी, बता माता–

(२) आनन्दयन्तु लोकांनां मनांसि वचनोत्करैः। मातः कतृपदं गुप्तं वदभ्रूण विभावतः॥

इसमें तीन कर्त्ता कौन हैं? कोई कहने लगी, बता माता–

(३) सुधी मनयं संपन्ना लभन्ते किंनराः क्वचित्। स्वकर्म वशगा भीमे भवे विक्षिप्त मानसाः।

इसमें कर्म क्या है?

कोई–कोई कुमारी कहने लगी–माता! तुम समस्या पूर्ण करने में बड़ी चतुर हो। इस समय तुम गर्भवती भी हो ''मुनिर्वेश्यायते सदा'' इस समस्या की पूर्ति करो। माता ने जवाब दिया–

(४) नरार्थ लोक यत्येव गृहीत्वार्थं विमुंचयति। धत्ते नाभिविकारं च मुनिर्वेश्यायते सदा ॥

(१) इसमें दो अवखंडने धातु का लोट के मध्यम पुरुष का एक वचन 'द्य' क्रियापद है।

(२) लोगों के मन, वचनों से आनन्द को प्राप्त हों। हे माता इसमें कर्तृपद गुप्त है गर्भ के प्रभाव से आप कहें।

(३) इस श्लोक में मानासिक कर्ता है।

(४) विक्षेप चित्त युक्त, कर्मों के वशीभूत और नीति–रहित मनुष्य क्या संसार में कहीं उत्तम बुद्धि के धारक हो सकते हैं ? कदापि नहीं।

इसमें सुधी कर्ता है।

कथयस्व समस्यां त्वं वल्लीवेश्यायते सदा। अपरां भिन्नपद्मेन धरायां संगतं नभः ॥७३॥
स्वपुष्पं दर्शयत्येव कुलीना सुपयोधरा। मधुपैश्चुंब्यमाना च वल्ली वेश्यायते सदा ॥७४॥
पानीये बालिशैर्नूनं धरास्थे प्रतिबिंबितं। दृश्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः ॥७५॥
दूरस्थैर्दूरतो नूनं नरैर्विज्ञानपारगैः। ईक्ष्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः ॥७६॥
सुनेत्रे च शुभाकारे प्रियवादिनि मानिनि। त्वद्‌गर्भे पुण्यवान् कोऽपि समस्ति नयनप्रिये ॥७७॥
बिंदुरहितं वंचनं गुरुराजस्य ये कुर्वन्ति नराः सदा। दुःखं ते यांति किं साधु पक्षपातसमुद्यताः ॥७८॥

''वंचनपदाद्‌बिंदुच्युतकं''

निर्गत्यकालमखिलं जिननाथमातु रेवं सुरेश्वर वधूर्विविधां च सेवां।
चक्रे सु कालकथया वर तीर्थ चक्रि, विष्णुप्रविष्णु बलदेव कथां तथा च ॥७९॥
भ्रङ्गस्त्रिवल्या जठरे न चाभू, दालस्यतंद्रारुचिदेहगेहे।
तस्या मुखे पांडुरता न चाभूद् गुणप्रभावाच्छयने सुखं न ॥८०॥
मासेऽथ पूर्णे नवमे सुयोगे सुवासरे चंद्रबले सुलग्ने।
नक्षत्रयोगे नरनाथ पत्नी सविष्यते सत्तनुजं शुभांगं ॥८१॥
आशास्तदा निर्मलतां गतां पराः विष्णोः पदं पांशुविवर्जितं शुभम्।
क्षोणी त्रृणैरोमचिता प्रमोदतो मार्गाः सुरम्या नगरं शुभावहं ॥८२॥

---

(५) जो मुनि पर धन की ओर देखता रहता है, धन लेकर धनी को छोड़ देता है और नाभि विकार युक्त होता है वह मुनि वेश्या के समान होता है।

दूसरी कुमारी बोली–माता! वली वेश्यायते सदा ? धरायां संगतं नभः। इन दो समस्याओं की पूर्ति जल्दी करो। माता ने जवाब दिया–

(१) स्वपुष्पं दर्शयत्येव कुलीना सुपयोधराः। मधुपैश्चुंव्य माना च वल्ली वेश्यायते सदा ॥
(२) पानीये बालिशैर्नूनं धरास्ते प्रति बिम्बितम्। दृश्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः ॥
(३) दूरस्थैर्दूरतो नूनं नरै र्विज्ञान पारगैः। इस्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः ॥

कोई कुमारी माता से यह कहेगी, शुभ लक्षणों का आकर, मृगनयनी! प्रिय वादिनी! नियम से आपके गर्भ में किसी पुण्यवान् ने अवतार लिया है। माता यह झूठ न समझो क्योंकि जो मनुष्य पक्षपाती और पूज्यों का वंचन करते हैं संसार में वे अनेक कष्ट भोगते हैं। इस प्रकार समस्त कुमारियाँ तीनों काल हृदय से माता की सेवा करेंगी और तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, वासुदेव आदि महापुरुषों की कथा कहकर माता का मन आनन्दित करेंगी।

प्रायः स्त्रियों के गर्भ के समय वृद्धि आलस्य तन्द्रा वगैरह हुआ करते हैं किन्तु माता के गर्भ के समय न तो उदर वृद्धि होगी, न आलस्य और तंद्रा होगी मुख पर सफेदाई भी न होगी जब पूरे नवमास हो जायेंगे तब उत्तम योग में और उत्तम दिन चन्द्रमा लग्न और नक्षत्र में माता उत्तम पुत्ररत्न जनेगी। उस समय पुत्र के शरीर की कांति से दिशा निर्मल हो जाती है।

शंखारवो भावनधाम्नि सुंदरे भेरीरवो व्यंतरपत्तनेऽखिले।
सिंहारवो ज्योतिषिमेघसन्निभो घंटा रवो नाक निकायकेऽजनि ॥८३॥
ज्ञात्वा च जन्म जिनपस्य सुरेंद्रवर्ग आरुह्यमानमभितः प्रथमेश्वरोऽपि।
ऐरावतं गजवरं मुखदंतरम्यं संरुह्य देवनिकरैश्च चचाल शच्या ॥८४॥
आगत्य तस्य नगरं सुरराजपत्नी वेगादरिष्टसदनं सुरराजदेशात्।
संप्राप्य वीक्ष्य जिनपं जननीसमेतम् संतत्य गूढवपुषा स्तुतिमाततान ॥८५॥
संयोज्यतां च शयने तनुजं विकृत्य मायामयं च विनिवेश्य सुशिय्यकायां।
आदाय तं जिनपतिं सुरराजपत्नी निर्गत्य वासवकरे समदात् प्रक्षहृष्टा ॥८६॥
आरोप्य तं निज करे मघवा गजस्थः संसेवितः सुर वरैर्जयवृंदवादी।
ईशानशक्रधृतरम्यवरातपत्रं शक्रद्विकैर्ललित चामरवीज्यमानं ॥८७॥
आकाशमार्गमवलंब्य विमुच्य तूर्णं ज्योतिर्गणं सुरगिरिं क्षणतः समाप।
सत्पांडुकं वर वनं वर पांडुकायां मारोपयज्जिनपतिं सुरपः शिलायां ॥८८॥
क्षीरोदधेश्च पयसा परिपूर्णकुंभै, रष्टाधिकैर्दशहतैक शताभि संख्यैः।
अस्नापयज्जिनपतिं सुरपः सकृच्च शेषैः सुरैः सहजयारव वादिभिश्च ॥८९॥
चक्रे च जिष्णुर्जिनपस्य नाम श्री पद्मनाभेति विशिष्टचेताः।
नाना स्तवैः सन्नुतिमाततान भक्त्या सहस्राक्षसमन्वितोऽभूत् ॥९०॥

भवनवासियों के घरों में शंख शब्द होने लगेंगे। व्यंतरों के घरों में भेरी बजेगी। ज्योतिषियों के घर मेघ ध्वनि के समान सिंहारव और वैमानिक देवों के घर घंटा शब्द होंगे। अपने अवधि बल से तीर्थंकर का जन्म जान देवगण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर अयोध्या आयेंगे। प्रथम स्वर्ग का इन्द्र भी अतिशय शोभनीय ऐरावत गज पर सवार हो अपनी इन्द्रानी के साथ अयोध्या आयेगा। अयोध्या आकर इन्द्रानी इन्द्र की आज्ञा से शीघ्र ही प्रसूति घर में प्रवेश करेगी। वहाँ तीर्थंकर को अपनी माता के साथ सोता देख उनकी गूढ़भाव से स्तुति करेगी। माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसलिए इन्द्रानी उस समय एक मायामयी पुत्र का निर्माण करेगी और उसे माता के पास सुलाकर और भगवान् को हाथ में लेकर इन्द्र के हाथ में देगी। भगवान् को देख इन्द्र अति प्रसन्न होगा ॥६६-८६॥

शीघ्र ही हाथी पर विराजमान करेगा। उस समय ईशान इन्द्र भगवान् पर छत्र लगायेगा। सनत्कुमार और माहेन्द्र दोनों इन्द्र चमर ढोरेंगे एवं सबके सब मिलकर आकाश मार्ग से मेरु पर्वत की ओर उसी क्षण चल देंगे। मेरु पर्वत पर पहुँच इन्द्र भगवान् को पांडुक शिला पर बिठाएगा। उस समय देवगण एक हजार आठ कलशों से भगवान् का अभिषेक करेंगे। इन्द्र उसी समय भगवान् का नाम पद्मनाभ रखेगा। अनेक प्रकार भगवान् की स्तुति करेंगे और उस समय भगवान् का रूप देख तृप्त न होता हुआ सहस्राक्ष होगा। बालक भगवान् को इन्द्रानी अपनी गोद में लेगी

परिष्कृतः सोऽपि सुरेंद्रपत्न्या रराज रम्याभरणैर्विशिष्टैः।
अनेकसूरप्रतिमप्रभाढ्ये नरामरैः पूजितपादपद्मः ॥९१॥

दुंदुभ्यानक शंख काहलमहानादैर्नटंतः सुरा,
वीणावंशमृदंगताल निनदैः संपूरयंतो दिशः।
गायंतः सरसं सुरागकलितं गीतं भणंतः स्तुतिं,
कुर्वंतो जयनादमुन्नतपदाश्चक्रुः क्षणं जन्मजं॥ ९२॥

आरुह्य द्विरदं सुरेश्वरपतिर्नानासुरैः सेवितः,
कृत्वांके जिनपं शिशुं सुरपथि प्राप्तोत्सवैः प्राप्तवान्।
रम्यां तां वर हारि शालकलितां तुंगप्रतोलीपरां,
नाना केतुकराश्रितां शुभ महाधामालिसंराजितां ॥९३॥

पित्रोस्तं तनयं विशालनयनं दत्वा सुरेशः शुभं,
नत्वा तत्पदपंकजं सुरगिरौ संजातवृत्तं मुदा।
आख्यन्नामकृतिं सुनृत्यनृपतेरग्रे शुभैर्नर्तनै,
र्दत्वा भोग कदंबकं सुरवरैः सार्द्धं स्वगेहैऽगमत् ॥९४॥

असुरनिकरसेव्यो वर्द्धयन् पद्मनाभो जनयति मुंदमिद्धं
भूरिपित्रोर्यथेष्टं सकल कनकभूषा-
ऽभूषितो रम्य देहो, विशदतरगुणाढ्यो मूत्रविद्योगहीनः ॥९५॥

वामांगुष्ठं पादपद्मस्य रम्यं, पीयूषाढ्यं संलिहन् पूतदेहः।
एधे वेगाब्दालचंद्रः कलाभिस्, विज्ञानाढ्यो लक्षणैः पूर्णगात्रः ॥९६॥

और अनेक भूषणों से भूषित करेगी। भूषण भूषित भगवान् उस समय सूर्य के समान जान पड़ेंगे और दुंदुभि, आनक, शंख, काहलों के शब्दों के साथ नृत्य करते हुए, ताल के शब्दों से समस्त दिशा पूर्ण करते हुए, लयपूर्वक राग सहित सरस गान करते हुए और जय-जय शब्द करते हुए समस्त देव मेरु पर्वत पर भगवान् के जन्मकाल का उत्सव मनायेंगे। पश्चात् अनेक देवों से सेवित इन्द्र भगवान् को गोद में लेकर हाथी पर विराजमान करेगा। अनेक शालि-धान्य युक्त, बड़ी-बड़ी गलियों से व्याप्त ध्वजायुक्त, अनेक मकानों से शोभित अयोध्यापुरी में आयेगा बड़े-बड़े नेत्रों से शोभित भगवान् को पिता के सुपुर्द करेगा। मेरु पर्वत पर जो काम होगा इन्द्र उस सबको भगवान् के पिता महापद्म से कहेगा। पिता-माता के विनोदार्थ इन्द्र फिर नृत्य करेगा एवं भगवान् को अनेक भूषण प्रदान कर और भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर इन्द्र समस्त देवों के साथ स्वर्ग चला जायेगा। इस प्रकार समस्त देवों से पूजित भाँति-भाँति के आभरण-युक्त देह का धारक, अनेक गुणों का आकार बालक पद्मनाभ दिनों-दिन बढ़ता हुआ पिता-माता का संतोष स्थान होगा।

पद्मनाभ अमृत से परिपूर्ण अपने पाँव के अंगूठे को चूसेगा और पवित्र देह का धारक शुभ

सप्तहस्तोच्छ्रितिदेहः षोडशाधिकसत्शत।
आयुस्तयाऽभवत्पूर्णं दशातिशयभागिनः ॥९७॥
उत्तमां ललितलक्षणान्वितां कामिनीं,
कनककांति कोमलां यौवने ससुरपाग्रहात्।
शुभां प्राप्तवान् परमशर्मसंगतः ॥९८॥
सुतास्तस्याभवंश्चक्रवर्तिनो भरतादयः।
नाभेयस्य यथापूर्वं भरताद्याः सुलक्षणाः ॥९९॥
आसाद्य राज्यं नृपतेर्जिनेश्वरः स पालयामास महीं मनोहराम्।
कृष्यादिषट्कर्मरताः प्रजाः पराः कुर्वंश्च नाभेय इव प्रमोदतः ॥१००॥
देशग्राममटंबककर्वटपुरद्रोणादिकान् पत्तनं
वर्णादीन्नृपवंशभेदगणनां राज्ञां च नीतिं परां।
व्यापारं वणिजां विवाहसुविधिं भोज्यादिनानाक्रियाम्
देवो गोत्रभिदा युगादि जिनवत्संकारयामास च ॥१०१॥
कृत्वा च राज्यं सुरनाथसेव्यः, किंचिन्निमित्तं समवाप्य बुद्धः।
भवांगभोगेषुविरक्ततां च, समाप सद्धर्मरतः सुधीश्च ॥१०२॥
लोकांतिकैर्बोधित बुद्धिभावो, देवैः कृताराधनतो जिनेशः।
संदीक्षतां बोधचतुष्ट्याढ्यो, भावीकृतप्रोषण पारणश्च ॥१०३॥

लक्षणों का स्थान वह कलाओं से जैसा चन्द्रमा बढ़ता चला जाता है वैसा ही शुभ लक्षणों से बढ़ता चला जायेगा। अतिशय पुण्यात्मा तीर्थंकर पद्मनाभ के शरीर की ऊँचाई सात हाथ होगी और आयु ११६ वर्ष की होगी। तीर्थंकर पद्मनाभ की स्त्रियाँ उत्तम अनेक गुणों से भूषित सुवर्ण के समान कांति की धारक शुभ और यौवनकाल में अतिशय शोभायुक्त होंगी।

भगवान् वृषभदेव के जैसे भरत चक्रवर्ती आदि शुभ लक्षणों के धारक पुत्र हुए थे। वैसे ही तीर्थंकर पद्मनाभ के भी चक्रवर्ती पुत्र होंगे। तीर्थंकर वृषभदेव के ही समान तीर्थंकर पद्मनाभ राज्य करेंगे। नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करेंगे और प्रजा वर्ग को षट्कर्म की ओर योजित करेगे तथा देश, ग्राम, पुर, द्रोण आदि की रचना करायेंगे। वर्णभेद और नृपवंश भेद का निर्माण करेंगे। राजा लोगों को नीति की शिक्षा देंगे, व्यापार का ढंग सिखलायेंगे और भोजनादि सामग्री की शिक्षा प्रदान करेंगे। इस रीति से भगवान् पद्मनाभ कुछ दिन राज्य करेंगे पश्चात् कुछ निमित्त पाकर शीघ्र ही भवभोगों से विरक्त हो जायेंगे और सद्धर्म की ओर अपना ध्यान खींचेंगे।

भगवान् को भवभोगों से विरक्त जान शीघ्र ही लौकांतिक देव आयेंगे और भगवान् की बार-बार स्तुति कर उन्हें पालकी में बैठाकर ले जायेंगे।

कृत्वा क्षयं घाति चतुष्टयानां प्राप्तः सुबोधं खलु पंचमं च।
देवागमैर्भूषितभूमिभागः संराजितो वै समवैः शरण्यैः ॥१०४॥
दत्वोपदेशं विविधं नराणां विहृत्य भूमिं वरधर्मदानैः।
संतृप्त लोकानगमच्छिवं स नित्यं परं दुःखविहीनभावम् ॥१०५॥
निर्वाणमाप्तं जिननाथदेवं मत्वा सुरापत्य समं कलत्रैः।
कृत्वा च निर्वाणमहोत्सवं ते प्राप्ताः स्वनाकं परमर्द्धियुक्ताः ॥१०६॥
श्रीपद्मनाभस्य भविष्यतश्च कल्याणचित्रं परमं पुराणं।
पायादपायाद्भवतः समस्तात् श्री श्रेणिकोद्भासि विभासितार्थ ॥१०७॥
इदं चरित्रं पठते च सोमं दत्तं सुधर्मं शिवमार्ग कारि।
श्री पद्मनाभेन भविष्यता च तीर्थेश्वरेणैव वहितार्थवेन ॥१०८॥
छंदोविरुद्धं वरलक्षणैश्च न्यायैः पुराणैः सुगुणैर्विरुद्धं।
अलंक्रियाभिः क्षमयंतु संत कृतं मयात्रेव विबुद्धिना वा ॥१०९॥
प्रायः कलौ संति महानुपापा दुर्दुर्जना हास्यरताः परेषु।
उपास्यमानाऽपि दुर्विभावा नागा इवात्यंतविरूपचित्ताः ॥११०॥

भगवान् तप धारण कर और तप के प्रभाव से मनःपर्ययज्ञान प्राप्त करेंगे और पीछे केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। भगवान् को केवल ज्ञानी जान देवगण आयेंगे और समवसरण की रचना करेंगे। भगवान् समवसरण में सिंहासन पर विराजमान हो भव्य जीवों को धर्मोपदेश देंगे।

जहाँ-तहाँ विहार भी करेंगे और अपने उपदेशरूपी अमृत से भव्य जीवों के मन संतुष्ट कर समस्त कर्मों का नाशकर निर्वाण स्थान चले जायेंगे जिस समय भगवान् मोक्ष चले जायेंगे उस समय देव निर्वाण कल्याण मनायेंगे तथा सानन्द अपनी देवांगनाओं के साथ स्वर्ग चले जायेंगे और वहाँ आनन्द से रहेंगे ॥८७-१०६॥

भविष्यत्काल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर का तथा श्री श्रेणिक को प्रकट करने वाला कहे हुए अर्थ का कल्याणस्वरूप परम पुराण इस समस्त संसार के दुःखों से रक्षा करें। जो यह चरित्र पढ़ता है, उसे अमृतस्वरूप श्रेष्ठ धर्म प्राप्त होता है जो मोक्षमार्ग को करने वाला है, भविष्यकाल में होने वाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के द्वारा भी जीवों का हित होगा। छन्द के विरुद्ध श्रेष्ठ लक्षण, न्याय, पुराण, श्रेष्ठ गुण और अलंकारों के विपरीत यदि कुछ मेरे द्वारा किया गया हो तो संत पुरुष उसे बुद्धिहीन समझ कर क्षमा करें ॥१०७-१०९॥

प्रायः कलिकाल में महापापी दुर्जन लोग दूसरों की हँसी उड़ाने में ही तत्पर रहते हैं उन दुर्जनों की यदि उपासना भी किया जाये तो भी वे अपने दुर्भाव को नहीं छोड़ते हैं, नाग के समान अत्यन्त विकृत चित्त वाले होते हैं ॥११०॥

दृष्ट्वा खलः कुप्यति साधुवर्गं गुणैर्गरिष्टं सुकरं विदोषं।
नित्योदयं भानुमिव स्वभावाद् ध्वांक्षोऽहितस्तामसभाववृत्तः ॥१११॥
खलः स्वभावान्सुगुणान् जनानां निहंति नानाहित कारिणश्च।
संदर्शितानेकपदार्थवृंदान् भास्वत्करान्नाहुरिवप्रबुद्धान् ॥११२॥
प्रसादितो दुर्जन एव दोषं करोति दक्षैर्वर दान वाक्यैः।
अहिर्यथा मिष्टपयः प्रदानै र्जीवैः कृताशेषपरोपकारैः ॥११३॥
वरं विधात्रा विहिताः खलाश्च परस्य दोषग्रहणे समर्थाः।
तथा च काव्यानि विदूषितानि पुराणि कोलैर्मलनाशिते च ॥११४॥
किं प्रार्थ्यते सोऽपि खलो मया यः स्वभावतो दोषगणं ददाति।
संप्रार्थ्यमानोऽपि यमो नराणां नो मुंचते दुष्टगुणप्रभावात् ॥११५॥
किं प्रार्थ्यते साधुगुणः स्वभावाद् दत्ते गुणान् पक्षिविपक्षिकाभ्यां।
अप्रार्थ्यमानोऽब्दगणश्च वृष्टिं करोति निंबेक्ष्वहि शुक्तिकायाम् ॥११६॥
जयतु जित विपक्षो मूलसंघः सुपक्षो हरतु तिमिरभावं भारती गच्छवारः।
नयतु सुगतिमार्गं शासनं शुद्धवर्गम् जयतु च शुभचंद्रः कुन्दकुन्दो मुनीन्द्रः ॥११७॥

दुष्ट पुरुष स्वभाव से ही गुणों से गरिष्ठ, अच्छे कार्य करने वाले दोष रहित, भानु के समान सदा उदित रहने वाले साधु वर्ग को देखकर तामस भाव से घिरे हुए अंधकार की तरह अहित करता हुआ कुपित होता है। सूर्य की किरणों के समान जागृत करने वाले अनेक प्रकार का अहित करने वाले अनेक पदार्थों के समूह को दिखाने वाले, सज्जनों के श्रेष्ठ स्वाभाविक गुणों को नष्ट करता है। ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ॥१११-११२॥

श्रेष्ठ वचनों के द्वारा समस्त सभी प्रकार का परोपकार करने वाले कुशल जीवों के द्वारा प्रसन्न किए जाने पर भी दोष ही करता है, जैसे कि सर्प को दूध पिलाने पर भी दोष ही करता है।

विधाता के द्वारा दुष्ट पुरुषों को दूसरों के दोष ग्रहण करने में समर्थ बनाया गया है, जो ठीक ही है। इसी प्रकार से काव्यों के दूषण दूर करने में और निर्मल बनाने में दुष्ट पुरुष ही समर्थ हैं ॥११३-११४॥

जो दुष्ट पुरुष स्वभाव से ही दोषों के समूह को प्रदान करता है, मेरे द्वारा उसके लिए क्या प्रार्थना की जाये क्योंकि मनुष्यों की यम से प्रार्थना किए जाने पर भी दुष्ट गुणों के प्रभाव के कारण वह छूट नहीं सकता है। साधु पुरुष स्वभाव से ही गुणों को प्रदान करता है। प्रार्थना करने से क्या होता है ? जैसे कि पक्षी और विपक्षियों के द्वारा प्रार्थना नहीं किये जाने पर भी नीम में, सर्प में और सीप में मेघसमूह वृष्टि करता ही है। जिसने विपक्षों को जीता है, जो श्रेष्ठ पक्ष को धारण करता है, ऐसा मूल संघ सरस्वती गच्छ सदा जयवन्त हो। वह अंधकार को दूर करें। शुद्ध वर्ग रूप मोक्षमार्ग के शासन को आगे बढ़ायें। शुभ चन्द्रमा के समान कुन्दकुन्द मुनीन्द्र सदा जयवन्त हों ॥११५-११७॥

तदन्वये श्री मुनिपद्मनन्दी विभाति भव्याकरपद्मनन्दी।
शोभाधिशाली वरपुष्पदन्तः सुकांतिसंभिन्नसुपुष्पदन्तः ॥११८॥
पुराणकाव्यार्थविदांवरत्वं विकासयन्मुक्तिविदांवरत्वं।
विभातु वीरः सकलाद्य कीर्तिः कृता यके नो सकलाद्यकीर्तिः ॥११९॥
भुवनकीर्तिर्यतिर्जयताद्यमीभुवनपूरितकीर्त्तिचयः सदा।
भवनबिंबजिनागमकारणो भवनवांबुदवातभरः परः ॥१२०॥
तत्पट्टोदयपर्वते रविरभूद् भव्यांबुजं भासयन्। सन्नेत्रास्त्रहरं तमो विघटयन्नानाकरैर्भासुरः।
भव्यानंतगतश्च विग्रहमतः श्रीज्ञानभूषः सदा। चित्रं चंद्रकसंगतः शुभकरः श्रीवर्द्धमानोदयः ॥१२१॥
जगति विजयकीर्त्तिः पुण्यमूर्तिसुकीर्ति र्जयतु च यतिराजो भूमिपैः स्पृष्टपादः।
नयनलिन हिमांशुर्ज्ञानभूषस्य पट्टे विविधपरविवादिक्ष्माधरे वज्रपातः ॥१२२॥
तच्छिष्येण शुभेन्दुना शुभमतः श्री ज्ञानभावेन वै। पूतं पुण्यपुराणमानुषभवं संसारविध्वंसकं।
नो कीर्त्त्यां व्यरचि प्रमोह वशतो जैने मते केवलं। नाहंकारवशात्कवित्वमदतः श्रीपद्मनाभेहितम् ॥१२३॥

मुनि की परम्परा में श्री पद्मनन्दी मुनि हुए हैं, जो भव्य जीवरूपी कमलसमूह को विकसित करने वाले थे तथा श्रेष्ठ पुष्पदन्त आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपनी पुष्प के समान दन्त पंक्तियों की कान्ति से अंधकार को दूर किया था और जो अत्यधिक शोभाशाली थे॥११८॥

पुराण और काव्यों के अर्थ को जानने वाले मुक्ति के ज्ञाता, जिनकी सकल कीर्ति आज भी शोभित है और जिन्होंने अकीर्ति स्वरूप कुछ भी नहीं किया। भुवनकीर्ति यति जयवन्त हों जो महाव्रती थे लोक जिनकी कीर्ति के समूह से भरा हुआ था। जैसे कि लोक में श्रेष्ठ मेघ हवा से सर्वत्र भर जाते हैं। ऐसे ही जिन्होंने जिनालय, जिनबिम्ब और जिनागम को पूरित किया है॥११९-१२०॥

उनके पट्टरूपी पर्वत पर सूर्य के समान भव्य कमलों को विकसित करते हुए अंधकार को दूर करते हुए अनेक प्रकार की किरणों से भासुर श्री ज्ञानभूषण हुए जो चन्द्रमा के समान श्री वर्धमान का शासन उदय करने वाले तथा शुभ करने वाले थे। इस जगत् में विजयकीर्ति यतिराज पुण्य की मूर्ति और श्रेष्ठ कीर्ति वाले थे। राजाओं के द्वारा जिनके चरण छुये गये थे वह सदा जयवन्त हों। नयरूपी कमलों के लिए जो सूर्य के समान थे। ज्ञानभूषण के पट्ट पर जो अनेक प्रकार के परमतवादीरूपी पर्वतों के लिए वज्रपात के समान थे॥१२१-१२२॥

उनके शिष्य शुभचन्द्र ने अपने ज्ञान के वैभव से संसार का विध्वंस करने वाला पवित्र पुण्य और पुराण पुरुषों से उत्पन्न होने वाले इस शुभ काव्य की रचना की है। यह रचना न तो कीर्ति की इच्छा से की गई है और न अहंकार के कवित्व के मद से की गई है किन्तु मात्र जैनमत में प्रकृष्ट मोह के कारण से की गई है। जिसमें पद्मनाभ तीर्थंकर बनने वाले राजा श्रेणिक का चरित्र है॥१२३॥

इदं चरित्रं पठतः शिवं वै श्रोतुश्च पद्मेश्वरवत्पवित्र।
भविष्णुसंसारसुखं नृदेवम् संभुज्य सम्यक्त्वफलप्रदीपं ॥१२४॥
चंद्रार्क हेमगिरि सागर भूविमान गंगानदी गगनसिद्ध शिलाश्च लोके।
तिष्ठंति यावदभितो वरमर्त्त्यसेवास् तिष्ठंतु कोविदमनोंबुजमध्यभूताः ॥१२५॥

इति श्री श्रेणिकभवानुबद्धभविष्यत्पद्मनाभ पुराणे भट्टारक श्री शुभचंद्राचार्य पंचकल्याणकवर्णनं नाम पंचदश पर्व ॥१५॥

इतिश्री श्रेणिक चरित्र समाप्तमिति।

संस्कृत श्लोक संख्या त्र्यधिक चतुर्विंशति शतानि २४०३। संवत् १६७७ वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे द्वितीया दिने अंबावती। लिखितं जो सि श्रीधरेण। शुभं भवतु।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

यावच्चन्द्र दिवाकर वत्तावच्चिरं जीयात्।

इस चरित्र को पढ़ने वाले मोक्षफल की तथा सुनने वाले को पद्मेश्वर के समान आगामी संसार की मनुष्य पर्याय और देव पर्याय का सुख भोगकर सम्यक्त्व के फल की प्राप्ति होती है। जब तक चन्द्रमा, सूर्य, हेमगिरि, सागर, पृथ्वी, विमान, गंगा नदी, आकाश और सिद्धशिला इस लोक में विद्यमान हैं, तब तक श्रेष्ठ मनुष्यों से सेवित, ज्ञानियों के हृदयकमल के मध्य में यह काव्य विराजमान रहेगा॥१२४-१२५॥

इस प्रकार भगवान् पद्मनाभ के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में भट्टारक श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित भविष्यत्काल में होने वाले भगवान् पद्मनाभ के पंचकल्याण-वर्णन करने वाला पंचदश सर्ग समाप्त हुआ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः